प्रेमचंद का कथा साहित्य और उन पर लिखी आलोचनाएँ

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की
डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
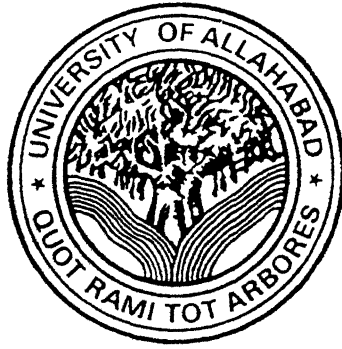
प्रस्तुतकर्त्री
कु० अनुसुइया श्रीवास्तव

निर्देशक
डा० गिरिजा राय
रीडर, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद 2002

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे प्रेमचद का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनका विराट व्यक्तित्व उसके केन्द्र मे अवस्थित है। उस युग मे भारतीय समाज मे आई विकृतियो और धार्मिक अधविश्वासो के उन्मूलन का जोरदार प्रयत्न चल रहा था। इस सुधारवादी भाव बोध ने साहित्य पर अपना असर डाला। प्रेमचद–युग मे आकर सुधारवादी विचारधारा प्रबल वेग ग्रहण कर लेती है। प्रेमचद के आगमन से हिदी उपन्यास मे परिपक्वता आई और वह जीवनगत यथार्थ के नजदीक आया। वे हिदी के पहले आधुनिक–उपन्यासकार थे जिन्होने ऐय्यारी, तिलिस्मी और जासूसी घटनाओ का मोह त्यागकर जनजीवन को उसकी सपूर्णता मे देखा। साहित्य को जीवन की आलोचनात्मक व्याख्या मानकर उन्होने उपन्यास को सामाजिक उद्देश्यो की पूर्ति का माध्यम बनाया और समस्यामूलक उपन्यास लिखे। तत्कालीन भारतीय समाज की निर्मम चीर–फाड करके प्रेमचद ने अपना सारी शक्ति उन अधविश्वासो ओर कुरीतियो के उन्मूलन मे लगा दी जो जीवन के स्वस्थ विकास मे बाधक बनी हुई थी। उनका समस्याओ का अकन यथार्थपरक होता था यद्यपि वे उसका आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत करते है।

प्रेमचद के पूर्ववर्ती रचनाकारो का लक्ष्य मात्र मनोरजन था। असतुलित कथानक, अपरिपक्व और अवास्तविक चरित्र–चित्रण, घटना बहुलता, कच्ची उत्तेजक भाषा, स्थूल उपदेशात्मकता और सस्ती कामुकता का मिला जुला रूप इनकी विशेषताएँ रही है। हिन्दी उपन्यासो और कहानियो का एक निश्चित स्वरूप आज जो दृष्टिगोचर होता है, उसका बहुत कुछ श्रेय प्रेमचद को है। उन्होने साहित्य को कामुकता की अँधेरी गलियो मे भटकने से बचाया और स्पष्ट घोषणा की कि साहित्य का काम पाठको का मन बहलाना नही है। साहित्य वक्त काटने का साधन नही है। वह हमारी मानवीय सवेदनाओ को जागृत करता है, हमे अतर्दृष्टि देता है और हमे जीवन और ससार से जोडता है, उसके रहस्यो और अतर्सबधो को उद्घाटित करता है।

भारत मे अभिजात वर्ग ने साहित्य और कला को आनद से जोडा है, समाज से नही। अभिजात वर्ग साहित्य का उद्देश्य मात्र आनद मानता है और जिसका कोई सामाजिक सरोकार नही होता। इस वर्ग की दृष्टि मे सामाजिक सरोकार की रचनाएँ साहित्य में प्रदूषण

फैलाती है। वर्ग, धर्म को शाश्वत मानने वाली व्यवस्था पर सामाजिक सरोकार रखने वाली रचनाएँ प्रहार करती है। प्रेमचद सामाजिक सरोकार के रचनाकार हैं। उनकी रचनाएँ सामती मूल्यो को जबर्दस्त चुनौती देती है। धर्म और सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह खड़े करती है जिससे परपरित मूल्यो पर चोट पडती है और उनका 'पैराडाइम' खिसकता है। इससे यह वर्ग तिलमिलाता है। प्रेमचद के जीवन काल मे चले निन्दा अभियानो के पीछे अभिजात वर्ग की यही मिलमिलाहट है। मार्क्स, गाँधी और अबेडकर से प्रभावित 'पैराडाइम' उन लोगो का साहित्य रचता है जो अभी तक समाज और साहित्य दोनो से बहिष्कृत थे। प्रेमचद अपनी रचनाशीलता से पुराने साहित्यिक 'पैराडाइम' पर गहरी चोट करते है।

प्रेमचद का रचना – ससार यथार्थ की पीठिका पर खडा है। उनके पूर्ववर्ती और समसामायिक भी जिस यथार्थ से मुँह चुराकर कल्पना की रगीनियो मे खो जाते थे – प्रेमचद दृढतापूर्वक उसका सामना करते है और एक हद तक समाधान का भी सकेत करते हे जिसे लेकर उनपर आदर्शवाद का आरोप लगता है। उन्होने साहित्य को ठोस यथार्थ की जमीन दी और उन समस्याओ को उठाया जिससे उस समय का समाज पीडित था। इसी क्रम मे वे युग के सामाजिक–राजनीतिक इतिहास को इतनी जीवन्तता से पुनर्सृजित करते है कि उनके उपन्यासो को उस युग का दस्तावेज कहा गया हे। युग के दस्तावेज की दृष्टि से उनकी रचनाएँ निर्विवाद रूप से महत्त्वपूर्ण है, पर इससे भी ज्यादा महत्त्व उस 'विजन' का है जो वे अपनी रचनाओ मे देते है। उनकी रचनाओ मे गहरी मानवीय सवेदना का अभूतपूर्व विस्तार मिलता है। मानवीय अनुभूतियो का इतना सघन, बेबाक चित्रण उस समय के साहित्य मे तो दुर्लभ था ही, बाद मे भी सभव न हो सका। उनके अनुकरण की तो बहुत कोशिश की गई और विरासत के दावेदार भी बहुत हुए – पर कोई उस ऊँचाई तक नही पहुँचा।

प्रेमचद का आगाज इतना सशक्त है कि हिदी साहित्य का सामाजिक परिदृश्य हमेशा के लिए बदल जाता है। उसमे उन लोगो का चित्रण होने लगा जो समाज और साहित्य के हाशिए पर थे। पर जो भारतीय समाज की रीढ थे। साहित्य को अभिजात वर्ग के चगुल से मुक्त करके उन्होने सर्वहारा को अपने चित्रण का विषय बनाया। उनके मानवीय पक्ष को सहानुभूति से अकित किया। प्रेमचद की यह ईमानदारी उनको रचनाकार के रूप में महान और लोकप्रिय बनाती है।

प्रेमचद का प्रामाणिक जीवन वृत्त प्रस्तुत करने के सिलसिले मे डॉ० कमलकिशोर गोयनका और डॉ० शैलेश जैदी प्रेमचद के व्यक्तिगत जीवन मे ताक–झॉक करते हैं और उसकी बखिया उधेडते है। गोयनका और जैदी की बखिया उधेड़ आलोचनाओ के सूत्र प्रेमचद की जीवनकाल मे चले कीचड उछाल निन्दा अभियानो से जुडता है। जिससे साहित्य क्षेत्र मे केवल गदगी फैलती है। व्यक्ति प्रेमचद के बारे मे गोयनका और जैदी के सनसनीखेज विवरणो का एकमात्र उद्देश्य प्रेमचद के साहित्यिक कद को छोटा करना है।

जिस समय भारत की जनता स्वाधीनता के लिए जूझ रही थी उस समय रचनाकारो का एक वर्ग पुनरुत्थानवाद से प्रेरित होकर राष्ट्रीय गौरव के लिए अतीत को महिमामडित कर रहा था। बकिमचन्द्र, मैथलीशरण, जयशकर 'प्रसाद' – यहॉ तक कि उर्दू के प्रसिद्ध शायर इकबाल भी अतीत को 'ग्लैमराइज' करके भविष्य के सपने बुन रहे थे। प्रेमचद इस प्रकार के मोहक भुलावे मे नही बहकते। उनके कदम यथार्थ की ठोस जमीन पर पडते है। वे वर्तमान से कतराते नही, उससे सार्थक मुठभेड करते है। इसी से प्रेमचद की राष्ट्रीयता सास्कृतिक सदर्भो से न फूटकर सामाजिक–राजनीतिक सदर्भो मे आकार ग्रहण करती है। ऐसा नही है कि प्रेमचद भविष्य के सुनहले सपने नही देखते। पर उनका सपना उस नए भारत का सपना है जो साम्प्रदायिक सौहार्द्र पर खडा है, जहॉ धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण और जाति या अमीर–गरीब का द्वन्द्व नही, आपसी भाईचारा और सहयोग है। जिन 'सेकुलर' मूल्यो को लेकर भारत का सविधान चलता है – प्रेमचद उसकी पृष्ठभूमि अपनी रचनाओ मे पहले से बना गए थे। जब तक यह सपना ठोस हकीकत का रूप नही लेता – तब तक निस्सदेह प्रेमचद प्रासगिक बने रहेगे।

प्रेमचद आलोचक और रचनाकार दोनो के लिए चुनौती रहे है। आलोचक की आलोचना की सर्जनात्मकता की परीक्षा–स्थली प्रेमचद का साहित्य है। आलोचक की मुठभेड प्रेमचद साहित्य से किस रूप मे होती है या आलोचक किस रूप मे प्रेमचद साहित्य से टकराता है– इससे उसकी आलोचना की स्तरीयता का उदघाटन होता है। आलोचक की आलोचना के स्तर की जॉच परख की कसौटी प्रेमचद का साहित्य है। वह प्रेमचद के साहित्य को किस रूप मे पढता है, किन कोणो से देखता है– इससे प्रेमचद के मूल्याकन मे उसका कोई योगदान होता है कि नहीं, यह गौण बात है। मुख्य बात यह है कि इस समूची प्रक्रिया मे स्वय आलोचक कसौटी पर कसा जाता है न कि प्रेमचद। इसीलिए प्रेमचद के साहित्य को आलोचकों के लिए कसौटी कहा गया है। दूसरी तरफ रचनाकारो के लिए

प्रेमचद का साहित्य चुनौती के रूप मे प्रस्तुत होता है। हर रचनाकार प्रेमचद से होड करता है और अत मे पाता है कि वह लम्बी जद्दोजहद के बाद भी प्रेमचद से दो लट्ठे पीछे है। इस तरह प्रेमचद का साहित्य रचनाकारो के लिए भी मानक प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि एक तरफ प्रेमचद अत्यन्त सरल है अपने पाठको के लिए (और यह उनकी लोकप्रियता का एक कारण भी है) और दूसरी तरफ आलोचक या रचनाकार के लिए बेहद जटिल है। उनकी यह सरलता और जटिलता आलोचक और रचनाकार दोनो के लिए चुनौती के रूप मे उभरती है। प्रेमचद के साहित्य मे जहॉ एक तरफ आधुनिकता – बोध और आधुनिक सवेदना की गवाही मिलती है वही धुर वामपथी क्रातिकारिता का सर्जनात्मक उफान भी है, ढहते सामतवाद के कुछ अवशेषो के प्रति सहानुभूति का भाव है तो पूँजीवाद की अमानवीय क्रूरता के प्रति गहरा आक्रोश। यही गॉधीवाद की कुछ स्थापनाओ से सहमति का स्वर है तो उसकी कई स्थापनाओ का विरोध भी और बोल्शेविक क्राति का समर्थन भी है। प्रेमचद – साहित्य को अस्तित्ववादी और मार्क्सवादी, गॉधीवादी और समाजवादी, आदर्शवादी और यथार्थवादी आदि भिन्न–भिन्न नजरिये से देखा गया है। कही आधुनिकता की शुरुआत उनसे मानी गई है तो कही यह कहा गया है कि उनकी रचनाएँ किसान चेतना से आप्लावित है। कही उनको दकियानूसी तो कही आधुनिक माना गया है। प्रेमचद – साहित्य के विविध रग और छटाएँ है। उनका सर्जनात्मक वैविध्य हमारी जातीय आकाक्षाओ की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है। जैसे तुलसीदास हमारे जातीय जीवन के श्रेष्ठ कवि हैं वैसे ही प्रेमचद जातीय जीवन के रचनाकार है। बाग्ला के जातीय कवि लेखक रवीन्द्रनाथ ठाकुर है, हिन्दी की जातीय चेतना तुलसीदास के बाद प्रेमचद मे फूटती है यह उनके साहित्य को व्यापक आधार प्रदान करती है।

मुझे प्रेमचद साहित्य पर काम करने की प्रेरणा अपने मामा डॉ० रघुवश से मिली और उन्होने ही मुझे डॉ० गिरिजा राय के निर्देशन मे शोध कार्य करने का सुझाव दिया। मेरे इस शोध–कार्य मे अपनी अत्यधिक व्यस्तता के बावजूद पिताजी श्री गोपाल जी श्रीवास्तव ने जो सहयोग दिया उसके बिना यह शोधकार्य इतनी शीघ्रता से सम्पन्न न हो पाता। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध डॉ० गिरिजा राय के सुदक्ष निरीक्षण एव निर्देशन का परिणाम है। उनके अमूल्य सुझावो के लिये मै हृदय से आभारी हूँ। यह मेरा सौभाग्य रहा कि मुझे अपने निर्देशक के अतिरिक्त उनके विद्वान पति डॉ० विद्याशकर राय का भी अत्यधिक सहयोग मिला। इस

विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन के लिए मै श्रद्धा–नत हूँ। यदि उनका इतना सक्रिय सहयोग न मिला होता तो इस शोध प्रबन्ध के पूरा होने की मै कल्पना भी नही कर सकती थी।

इस शोध प्रबध मे जिन विद्वानो से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे सहायता मिली उनमे आचार्य रामचद्र शुक्ल, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० नामवर सिह, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी और श्री विश्वम्भर 'मानव' के नाम उल्लेखनीय है। इन सब विद्वानो के प्रति मै हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

सामग्री सचयन मे 'लेखन' के सम्पादक श्री विद्याधर शुक्ल ने बडी सहायता की। अपने विभाग के शोध छात्र श्री वीरेन्द्र सिह यादव ने अपना अमूल्य समय और वैचारिक सहयोग देकर इस शोध–प्रबन्ध को पूरा करने मे मदद की। इसके लिए मै आभार प्रकट करती हूँ।

अनुसुइया श्रीवास्तव

20 अप्रैल **2002**

अनुसुइया श्रीवास्तव

शोध–छात्रा, हिदी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्रथम अध्याय :

प्रेमचन्द पूर्व का कथा साहित्य

अनुक्रम

प्रथम अध्याय	:	प्रेमचन्द पूर्व का कथा साहित्य	1-13
द्वितीय अध्याय	.	प्रेमचन्द युग का कथा साहित्य (उपन्यास)	14-74
तृतीय अध्याय	·	प्रेमचन्द युग का कथा साहित्य (कहानी)	75-114
चतुर्थ अध्याय	:	प्रेमचन्द का कथा साहित्य और हिदी आलोचना	115-177
पचम अध्याय		गैर मार्क्सवादी आलोचना विरोध का स्वर रामचन्द्र शुक्ल नन्द दुलारे वाजपेयी इलाचन्द्र जोशी हजारी प्रसाद द्विवेदी नगेन्द्र नलिन विलोचन शर्मा इन्द्रनाथ मदान रामस्वरूप चतुर्वेदी	178-220
षष्ठ अध्याय	·	मार्क्सवादी आलोचना और प्रेमचन्द का रचना–ससार रामविलास शर्मा चन्द्रबली सिह नामवर सिह शिव कुमार मिश्र रमेश कुन्तल मेघ	221-301
सप्तम् अध्याय	:	प्रेमचद के कथा – साहित्य की आलोचना प्रक्रिया का अध्ययन	302-307
परिशिष्ट			

प्रेमचंद पूर्व हिन्दी का कथा साहित्य

उपन्यास

कथा साहित्य आधुनिक हिन्दी–साहित्य की अन्यतम उपलब्धि है। हिन्दी मे कथा – साहित्य का आरम्भ भी अन्य प्रमुख गद्य–विधाओ के साथ ही भारतेन्दु युग मे होता है। भारतेन्दु युग मे कथा – साहित्य के अर्न्तगत उपन्यास का तो आरम्भ हो जाता है, लेकिन कहानी विधा का वास्तविक विकास नही हो पाता। वस्तुत हिन्दी कहानी का आरम्भ द्विवेदी युग मे होता है। प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी कथा साहित्य का प्रारम्भ उपन्यास और कहानी के अलग–अलग विवेचन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

उपन्यास आज के साहित्य की सबसे अधिक प्रिय और सशक्त विधा है। उपन्यास मे मनोरजन का तत्त्व अधिक रहता है, जीवन को उसकी बहुमुखी छवि के साथ व्यक्त करने की शक्ति और अवकाश होता है। साहित्य की समस्त सर्जनात्मक विधाओ मे उपर्युक्त दोनो गुण विद्यमान रहते है, किन्तु अन्य विधाएँ अपने – अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण इन दोनो तत्त्वो का प्रस्फुटन उतना नही कर पाती जितना उपन्यास कर पाता है। नाटक, कहानी और प्रबन्ध–काव्य भी कथाश्रित होने के कारण मनोरजन करते है किन्तु नाटक और कहानी मे जीवन की सश्लिष्टता और वैविध्य के उभरने का अवकाश नही रहता। नाटक और कहानी का प्रभाव पाठक के मन पर एक तेज चोट की तरह पडता है। कहानी अपनी आकार–लघुता मे किसी एक सत्य या सत्यखण्ड की प्रतीति कराती है। वह देखने मे उपन्यास की जाति की ही लगती है, परन्तु स्वरूप–सगठन और लक्ष्य की दृष्टि से वह उपन्यास से स्वतन्त्र एक विधा है जिसमे उपन्यास के समान ही कथा का सूत्र होता है किन्तु वह सूत्र अधिक इकहरा, तीव्र, गतिशील और साकेतिक होता है। कविता आज के जटिल जीवन–व्यापारो और चरित्रो की बहुमुखी बाहरी–भीतरी गतियो को व्यक्त कर पाने मे उतना सफल नही होती जितना उपन्यास।

हिन्दी मे उपन्यास का जन्म आधुनिक काल के यर्थाथवादी परिवेश मे हुआ है। उपन्यास पूँजीवादी सभ्यता की देन है। पूँजीवादी सभ्यता के विविध जीवन–सत्यो को कथा के माध्यम से व्यक्त करने के लिए इसकी उत्पत्ति हुई है। यह मात्र कहानी नही है। मूल

वस्तु है वर्तमान जीवन का जटिल यथार्थ। वास्तव मे, उपन्यास पूँजीवादी समाज की अनिवार्य उपज है यानी पूँजीवादी सभ्यता मे यर्थाथ के जो नये स्तर, नये आयाम और भौतिकवादी चिन्तन के प्रश्न उभरे, उन्हे व्यक्त करने मे परम्परा से चली आती हुई अन्य कलाएँ पूर्णरूपेण समर्थ नही थी यद्यपि उन पर भी पूँजीवादी समाज का प्रभाव पडा। उपन्यास अपने मूल मे यर्थाथवादी है। इसे आधुनिक युग का महाकाव्य कहा गया है तो इसका अर्थ है कि जैसे महाकाव्य मे जगत–जीवन की विराटता अपने समस्त वैविध्य, गहरे भाव–बोध, विशिष्ट दर्शन, मानव–मूल्य और प्रश्नो के साथ अकित होती है उसी प्रकार उपन्यास मे भी। उपन्यास का माध्यम गद्य है और उसका स्वरूप विस्तृत है। अन्य विधाओ की अपेक्षा उसका स्वरूप ढीला है इसलिए उसमे अपने भीतर सबकुछ समाविष्ट कर लेने की क्षमता होती है। महाकाव्य अपने विशिष्ट औदात्य के कारण विशिष्ट पाठको के ही काम का होता है किन्तु सामान्य पाठको के लिए भी होता है। उपन्यास जीवन के हर गली–कूचे मे घूम सकता है, आवश्यकतानुसार हर छोटी–बडी चीज का चित्र अँकित कर सकता है।

इस तरह उपन्यास की उत्पत्ति एक विशेष प्रकार की आवश्यकता की अभिव्यक्ति है। उपन्यासकार के पास जीवन–दृष्टि होनी चाहिए। जीवन के यर्थाथ का गहरा अनुभव होना चाहिए, सर्जनात्मक कल्पना की अपार शक्ति होनी चाहिए, विचार की गहनता होनी चाहिए ओर जीवन का विवेचन होना चाहिए।

हिन्दी साहित्य मे उपन्यास का वास्तविक स्वरूप पहले–पहल प्रेमचन्द के उपन्यासो मे दिखायी पडता है या हिन्दी उपन्यासो का वास्तविक विकास प्रेमचन्द से मानना चाहिए, जब कुछ लोगो द्वारा यह बात कही जाती है तो उसके पीछे यही सत्य निहित होता है। प्रेमचन्द के पूर्व के हिन्दी उपन्यासो मे विषय और उद्देश्य की दृष्टि से कुछ वैविध्य भले रहा हो लेकिन वे कही–न–कही एक है और वे सब–के–सब उपन्यास की वास्तविक गरिमा प्राप्त करने मे असमर्थ है। प्रेमचन्द के आगमन तक इसी प्रकार के उपन्यासो का स्वरूप हिन्दी मे दिखायी पडता है प्रेमचन्द ने उपन्यास –साहित्य को एक नयी दिशा दी। दिशा ही नही दी, उसे उत्कर्ष पर पहुँचा दिया। पश्चिम मे तो उपन्यास – साहित्य काफी समृद्ध और विकसित हो गया था क्योकि वहाँ उपन्यास का विकास 17वी शताब्दी से आरम्भ हो गया था। हिन्दी मे उन पश्चिमी उपन्यासो की सी शक्ति अभी नही आयी थी। हिन्दी मे उन पश्चिमी उपन्यासो का अध्ययन प्रारम्भ हो गया था, मगर प्रेमचन्द के पहले के उपन्यासकार पश्चिमी उपन्यासो की मूल छवियो से परिचित नही हो सके थे, वे भारत मे प्रचलित कथा–कहानियों

के प्रभाव से भी नही उबर सके थे और वे उपन्यास को या तो मनोरजन का या सुधार का साधन मान बैठे थे।

प्रेमचन्द ने उपन्यास के क्षेत्र मे मानो एक युग स्थापित किया और इस युग के कथा–साहित्य को काफी प्रभावित भी किया। अत· प्रेमचन्द के पूर्व के उपन्यासो को प्रेमचन्द–पूर्व उपन्यास कहना केवल काल का नही, बल्कि विकास के सोपान का और उस सोपान की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियो का परिचायक है। इसी प्रकार प्रेमचन्द–युग कहना या प्रेमचन्दोत्तर युग कहना भी उपन्यास की दो विशिष्ट धाराओ का द्योतन करता है अर्थात् प्रेमचन्द बीच मे स्थित होकर अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती उपन्यास–साहित्य के मानदण्ड बने से दीखते है।

प्रेमचन्द–पूर्व युग के उपन्यास–साहित्य मे उद्देश्य की दृष्टि से दो प्रवृत्तियॉ लक्षित होती है (1) कोरा मनोरजन और (2) मनोरजन के साथ सुधारवादी भावना। वास्तव मे इन दोनो वृत्तियो का सम्बन्ध अपने यहॉ की परम्परागत कहानियो से है। भारतवर्ष मे कथा–साहित्य की धारा अनादिकाल से बहती हुई आ रही है। वेदो, ब्राह्मणो, रामायण, महाभारत, पुराणो, जैन गाथाओ, जातक गाथाओ, वीरतागर्भित रोमानी कविताओ, हितोपदेश, पचतत्र, वैताल पच–विशति, सिहासन द्वात्रिशिका, शुक सप्तति आदि मे कथा का अनन्त भण्डार भरा हुआ है। कुछ आलोचक इन्ही कथाओ को आधुनिक उपन्यासो का मूल स्रोत मानते है। कुछ तो यह भी मानते है कि पश्चिम के उपन्यासो ने यही के कथा–साहित्य से प्रेरणा ग्रहण की। यह एक तो अवान्तर सी बात है, दूसरे इसमे आत्मतोष का ही भाव अधिक झलकता है। प्रश्न कथा का नही है, कथा तो प्रबन्ध–काव्य मे भी होती है, नाटक मे भी होती है और हितोपदेश पचतन्त्र जैसी उपदेशात्मक कहानियो मे भी होती है। परन्तु कथा होने से ही प्रबन्ध और नाटक की अपनी विशिष्टताऍ नष्ट तो नही हो जाती। कथा के सूत्र का अस्तित्व होने से ही आज का उपन्यास प्राचीन भारतीय पाश्चात्य या अरबी–फारसी के कथाश्रित साहित्य की उपज तो नही मान लिया जायेगा। उपन्यास मे जो कथा का प्रश्न है वह मुख्य प्रश्न नही है और प्राचीन कथाश्रित साहित्य मे यही प्रश्न हल हुआ है–अर्थात् उपन्यास एक अलग विधा है जो पचतत्र, हितोपदेश, कादम्बरी, रामायण, महाभारत, जातक कथाओ, वीरगथाओ और प्रेमगथाओ से अपनी प्रकृति मे नितान्त भिन्न है। वास्तव मे भारतीय साहित्य का अधिकाश कथा–साहित्य काव्य है। रामायण, महाभारत, कादम्बरी आदि तो काव्य हैं ही, अपने यहॉ के नाटक भी काव्य के ही अन्तर्गत आते हैं। सिहासन

द्वात्रिशिका, वैताल पचविशति, हितोपदेश, पचतन्त्र आदि को शुद्ध कथा–साहित्य कह सकते है। किन्तु आधुनिक कथा साहित्य अपनी प्रकृति मे इस कथा–साहित्य का विकास नही लगता। प्रेमचन्द–पूर्व उपन्यासो पर इस प्राचीन कथा–परम्परा का प्रभाव खूब लक्षित होता है। प्रेमचन्द–पूर्व के उपन्यासो ने स्वरूप पश्चिम से तो अवश्य लिया लेकिन उसमे परम्परागत कथा–साहित्य की प्रतिष्ठा अधिक थी।

प्रेमचन्द–पूर्व उपन्यासो की सबसे प्रमुख विशेषता है उनका घटनाप्रधान होना। ये उपन्यास घटना–चमत्कार का प्रदर्शन कर या तो मात्र मनोरजन करना चाहते है या कोई उपदेश देना चाहते है। प्रेमचन्द के पूर्व जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी, ऐतिहासिक, सामाजिक सभी तरह के उपन्यास लिखे गये किन्तु ये सभी घटना–चमत्कार पर आधारित है। घटना–चमत्कार पर आधारित रहने वाला उपन्यास (उसका उद्देश्य चाहे शुद्ध मनोरजन हो, चाहे मनोरजन मिश्रित उपदेश देना) जीवन–यथार्थ की चिन्ता कम करता है। सामाजिक परिवेश के साथ उनके विभिन्न सम्बन्धो के चित्रण के लिए नही होती, घटनाएँ भी गहन जीवन–सदर्भो और पात्रो की पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रियाओ से प्रभावित नही होती, वे जीवन के विभिन्न प्रश्नो, समस्याओ और आकाक्षाओ की जटिताओ से उलझती नही। इस प्रकार के घटना–नियोजन मे कथानक का स्वाभाविक प्रवाह तथा पात्रो का सहज विकास सुरक्षित नही रह पाता। घटनाओ की सम्भाव्यता–असम्भाव्यता पर भी लेखक का बहुत कम ध्यान रहता है। घटना प्रधानता प्राचीन कथाओ की एक खास विशेषता रही है चाहे वे कथाएँ दादी–नानी के मुँह से सुनी गयी कहानियाँ हो, चाहे वैताल पचविशति, सिहासन द्वाविशति, हितोपदेश और पचतन्त्र की कहानियाँ हो। घटना का एक अबाध प्रवाह होता है इनमे। और ये घटनाएँ मानव और मानवेतर जगत् सभी को अपना क्षेत्र और पात्र बनाती हैं। इन कथाओ मे देशकाल की यथार्थता की रक्षा नही होती है। उसे कहानी सुनने से प्रयोजन है– देशकाल की वास्तविकता से विच्छिन्न कहानी। इसलिए मनोरजनप्रधान कहानियो की कोई विशिष्ट लम्बाई हो, कोई अपरिहार्य समाप्ति हो, ऐसा नही दीखता। कहानी मे से कहानी फूटती चली जायेगी, उसे चाहे जितना खीचा जा सकता है। वैताल पचविशति इसका स्पष्ट उदाहरण है। दूसरी ओर जो उपदेशप्रधान कहानियाँ है उनका एक निश्चित अन्त होता है और उसी अन्त तक कथा आकर रूक जाती है, उसी अन्त के लिए सारी कथा नियोजित होती है उपदेश बड़ा स्पष्ट होता है, लेखक अपनी ओर से टिप्पणियाँ भी जड़ता है। इस

प्रकार उपदेशप्रधान कथाओ की सारी घटनाएँ मनोरजनात्मक होती हैं, किन्तु उनका नियोजन किसी उपदेश के लिए होता है।

इन घटना–प्रधान कथाओ मे पात्रो की कोई निजी विशेषता नही होती, वे टाइप होते है। अर्थात् नाम, ग्राम और विशिष्ट व्यक्तित्व से विहीन वे अमुक प्रकार के कार्य–व्यापार करने के लिए, अमुक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए लेखक की ओर से स्थापित किये गये प्रतीक पात्र होते है। मानवेतर प्राणी भी पात्र के रूप मे आते हैं। अत इन पात्रो मे मानव की गहरी सवेदना, जटिल भाव–बोध ओर चिन्तन–शक्ति को प्रभावित करने की क्षमता नही होती। वे राग–विराग के ऊपरी स्तर को छूते हुए विस्मय, कौतूहल पैदा करते हुए चलते रहते है। कहानी के अन्त मे सारी घटनाओ की एक सुखद परिणति दिखायी पडती हे।

प्रेमचन्द से पूर्व के हिन्दी उपन्यासो पर भारतीय कथा–साहित्य के उपर्युक्त रूपो का बडा प्रभाव लक्षित होता है। इन उपन्यासकारो ने पश्चिम के उपन्यासो की विशेषता बगला उपन्यासो के माध्यम से ग्रहण की और उनके अनुसार मौलिक उपन्यास लिखे। इन हिन्दी उपन्यासकारो ने पश्चिम के उन्ही उपन्यासो से विशेष प्रेरणा ली जो घटना–प्रधान थे यानी जिनका उद्देश्य घटना–वैचित्र्य की सृष्टि कर मनोरजन करना था। जासूसी, तिलस्मी, ऐयारी उपन्यास शुद्ध मनोरजनात्मक श्रेणी मे आते है। पश्चिम मे ऐसे उपन्यासो की बडी धूम थी। एडगर वैलेस, ओपेनहम जैसे लेखक इस प्रकार के सनसनीखेज उपन्यास पर्याप्त मात्रा मे लिख चुके थे। प्रेमचन्द से पहले कोई महत्त्वपूर्ण उपन्यास लक्षित नही होता। हिन्दी के आरम्भिक उपन्यासो मे शुद्ध मनोरजनात्मक उपन्यासो के अतिरिक्त उपदेश–प्रधान उपन्यास भी लिखे गये और कुछ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासो की भी रचना हुई। भारतेन्दु युग के लेखक अपने देश और काल की चेतना से स्पन्दित थे। उन्होने अपनी विभिन्न प्रकार की कृतियो मे स्वदेशी जागरण का स्वर मुखर करना चाहा है। देशाभिमान के कारण उन्होने एक ओर राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विकृतियो को चित्रित कर उनका समाधान खोजना चाहा, दूसरी ओर अपने गौरवशाली अतीत की याद कर अपनी उच्चता के भाव से अभिभूत भी होना चाहा और हीनता से पीडित भारतीय जनता मे गौरव और सम्मान का भाव भरने का प्रयत्न किया। इसीलिए तत्कालीन यथार्थ और गौरवमय इतिहास के आदर्श दोनो को व्यक्त करने वाली कृतियाँ इस काल मे दिखायी पड़ती हैं। उपदेशप्रधान और ऐतिहासिक उपन्यास इन्ही दो प्रकार की प्रवृतियो से परिचालित होकर लिखे गये

उपन्यास है। किन्तु जहॉ तक शिल्प का प्रश्न है, इस काल के सभी उपन्यासो मे घटनावैचित्र्य का बोलबाला है असहज विकास से ग्रस्त पात्रो और कथाओ का चमत्कारपूर्ण आयोजन है। इस तरह प्रेमचन्द–पूर्व युग मे तीन प्रकार के उपन्यास दिखायी पडते है

1. शुद्ध मनोरजनप्रधान उपन्यास – तिलस्मी ऐयारी(लेखक–देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, हरेकृष्ण जौहर आदि।)

   जासूसी (लेखक–गोपालराम महमरी, शिवनारायण द्विवेदी, शेरसिह, रूद्रदत्त शर्मा, जयरामदास गुप्त आदि।)
2. उपदेशप्रधान सामाजिक उपन्यास – (लेखक–श्रीनिवासदास, बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण, राधाचरण गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम मेहता आदि।)
3. ऐतिहासिक उपन्यास – (लेखक–किशोरीलाल गोस्वामी, बलदेवप्रसाद मिश्र, कृष्णप्रकाश सिह, अखौरी, ब्रजनन्दन सहाय, मिश्रबन्धु आदि।)

शुद्ध मनोरजनप्रधान उपन्यासो मे विस्मयकारी घटनाओ का जाल–सा बिछा हुआ है। तिलिस्म और ऐयारी के बडे विचित्र विचित्र करिश्मे दिखायी पडते है। घटनाओ के कार्य–कारण सम्बन्धो की परवाह किये बगैर लेखक जहॉ जैसे चाहता है, घटनाओ की सृष्टि करता है और पाठक इन विचित्र घटनाओ के मायाजाल से चमत्कृत होता हुआ, कथा–प्रवाह के साथ तेजी से बहता चलता है। जासूसी उपन्यासो मे भी अनेक पेचीदगियो से भरी हुई घटनाऍ बहती रहती है ओर पाठक इस घटना–जाल मे उलझा हुआ असली बात को जानने के लिए तडपता रहता है। चोरी–डकैती या अन्य प्रकार के अपराधियो की खोज जासूसी उपन्यासो मे होती है। इसमे घटनाऍ इस तरह उलझी होती है कि असली अपराधी का पता लगा पाना बडा मुश्किल होता है। जासूस अनेक प्रकार के कौशल द्वारा अपराधी को पकडने का प्रयास करता है। अपराधी घटनाओ को ऐसा उलझाता रहता है कि सत्य का पता लगाना कठिन हो जाता है।

देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता' (1891) और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' प्रेमचन्द–पूर्व उपन्यासो मे अपनी लोकप्रियता के कारण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कृतियॉ है। कहा जाता है कि इन उपन्यासो को पढने के लिए बहुत से लोगो ने हिन्दी सीखी। मनोरजन के दृष्टिकोण से ये दोनों उपन्यास बडे सशक्त है। पात्रों के विचित्र–विचित्र

अलौकिक करनामे पाठको को चकित करते हैं। इस प्रकार के उपन्यासो का उद्देश्य पात्रो की अन्तर्वृति का निरूपण, सामाजिक यथार्थ का अकन और रस–सचार करना नही होता। यहाँ पात्र अपना वैशिष्ट्य खोकर लेखक द्वारा कल्पित कार्य करने के लिए सरकस के जीवो की तरह रगमच पर आते रहते हैं और कभी पानी पर दौड लगाकर, ऊँची–से–ऊँची जगहो से कूदकर, भूगर्भो मे छिपकर, वहाँ से रहस्यमय ढग से निकलकर या इसी तरह अन्य प्रकार के मायावी कार्य कर एक ऐसी दुनिया मे पाठको को ले जाते है जो वास्तविक दुनिया से एकदम भिन्न होती है। चन्द्रकान्ता की कथा मूलत प्रेमकथा है। विजयगढ की राजकुमारी चन्द्रकान्ता को वीरेन्द्रसिह और क्रूर सिह दोनो चाहते है। चन्द्रकान्ता वीरेन्द्र सिह को चाहती है। प्रेम का सघर्ष ही अनेक प्रकार की वैचित्र्यपूर्ण घटनाओ की सृष्टि करता है। यह प्रेमकथा है परन्तु प्रेम की मार्मिक अनुभूतियो का चित्रण नही है।

'चन्द्रकान्ता सन्तति'(चौबीस भाग, 1896) 'चन्द्रकाता' से भिन्न नही है। तिलस्म और ऐयारी पर आधारित ये प्रेमकथाएँ फारसी के 'तिलस्म होशरूबा' और 'दास्ताने अमीर हम्जा' नामक लोकप्रिय रचनाओ से कुछ प्रभावित जान पडती हैं। खत्रीजी ने 'नरेन्द्र मोहिनी'(1893), 'वीरेन्द्र वीर'(1895), 'कुसुम कुमारी'(1899), 'काजल की कोठरी'(1902), 'अनूठी बेगम'(1905), 'गुप्त गोदान'(1906), 'भूतनाथ'–प्रथम छह भाग उपन्यास भी लिखे है। इन्ही की परम्परा मे हरेकृष्ण जोहर–कृत 'कुसुम लता', 'मयक मोहिनी या माया महल'(1901), 'कमल कुमारी'(1902), 'निराला नकाबपोश'(1902), 'भयानक खून'(1903), किशोरी लाल गोस्वामी–कृत 'तिलस्मी शीशमहल'(1905), रामलाल वर्मा–कृत 'पुतली महल'(1908), उपन्यास आते है।

जासूसी उपन्यासकारो मे श्री गोपालराम गहमरी का नाम अग्रगण्य है। इन्होने 'जासूस' नाम का एक अखबार निकाला, जिसमे जासूसी उपन्यास और कहानियाँ प्रकाशित होती रही। 'अद्भत लाश', बेकसूर की फॉसी', सरकती लाश', खूनी कौन', 'बेगुनाह का खून', जासूस की भूल', अद्भुत खून', खूनी का भेद', 'गुप्तभेद' इनके उपन्यास हैं।

उपदेशप्रधान सामाजिक उपन्यास – यह युग सास्कृतिक पुनरूत्थान का था। राष्ट्रीय और सामाजिक जाग्रति की चेतना धीरे–धीरे विकसित होने लगी थी। उस काल के चिन्तको और कलाकारों को सामाजिक–धार्मिक रूढियाँ और पाश्चात्य सभ्यता की

अन्धी अनुकृतियॉ दोनो बुरी तरह सालने लगी थी। इनको राष्ट्रीय अभिमान तो था परन्तु वह अधिक मुखर होने का अवसर नही पा सका। किन्तु सामाजिक, धार्मिक पक्ष की विकृतियो को चित्रित करने मे कोई विशेष बाधा नही थी। अत भारतेन्दु–काल की समस्त साहित्यिक विधाओ मे राष्ट्रीय जागरण के स्वर के साथ–साथ सामाजिक जागरण का स्वर बडी सघनता से सुनायी पडता है। सामाजिक जागरण का स्वर राजनैतिक जागरण के स्वर से कही अधिक स्पष्ट और उग्र था। भारतेन्दु बाबू भी उपन्यास लेखन की ओर प्रवृत्त हुए, किन्तु बहुत बाद मे। 'पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा'[1] इनका सामाजिक उपन्यास है। इस काल के अन्य सामाजिक उपन्यासो मे 'भाग्यवती'(श्रद्धानन्द फिल्लौरी, 1877), 'परीक्षा गुरू'(श्रीनिवासदास), 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान'(बालकृष्ण भट्ट), 'निस्सहाय हिन्दू'(राधाकृष्णदास), 'विधवा विपत्ति'(राधाचरण गोस्वामी और देवी प्रसाद शर्मा) 'श्यामा स्वप्न'(ठाकुर जगमोहन सिह), 'जया'(कार्तिक प्रसाद खत्री), 'लवग लतिका', 'कुसुम–कुमारी', 'लीलावती वा आदर्शसती', 'पुनर्जन्म वा सौतिया डाह', 'ॲगूठी का नगीना'(किशोरी लाल गोस्वामी), 'सास पतोहू', 'बडा भाई', 'नये बाबू'(गोपालराम गहमरी), 'धूर्त रसिकलाल', 'स्वतन्त्र रमा' और 'परतन्त्र लक्ष्मी'(लज्जाराम मेहता), 'अधखिला फूल', 'ठेठ हिन्दी का ठाठ'(अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'), 'सौन्दर्योपासक', 'राधाकान्त'(ब्रजनन्दन सहाय), 'रामलाल'(मन्नन द्विवेदी), 'वन जीवन वा प्रेम लहरी'(राधिका रमण प्रसाद सिह) आदि के नाम अग्रगण्य है। वास्तव मे इन सामाजिक उपन्यासो मे समाज के बुनियादी सत्यो की पकड नही है। समाज की सतह पर बहती हुई घटनाओ को पकडा गया है, उनका निरूपण किया गया है, उन घटनाओ और परिस्थितियो मे किसी पात्र को डालकर उसकी उन्नति अवनति की दिशाऍ अकित की गयी है तथा उसके पाप–पुण्य और अन्यान्य क्रिया–कलापो का स्थूल चित्रण किया गया है। इस बात को बहुत ही स्पष्ट ढग से दिखाने का प्रयास किया गया है कि अमुक परिस्थितियो मे पडकर मनुष्य भला या बुरा कर्म करने लगता है। इस काल के सारे सामाजिक उपन्यास सोद्देश्य है या यो कहिए कि उपदेश और समाधान–प्रधान हैं। हर उपन्यास मे समस्या का समाधान दिया गया है। इन सारे सामाजिक उपन्यासो के विषयों की परीक्षा करे तो हम पायेगे कि

---

[1] इस विषय मे मतभेद है कि यह उपन्यास भारतेन्दु बाबू की मौलिक कृति है या अनूदित

इनके सामने सबसे बडा विषय था नारी। 'वह हिन्दी–समाज की चिरलाछिता, चिरवचिता, चिरवदिनी, नयी दीप्ति के साथ हमारे सामने आयी। उसकी समस्याएँ ही सारे देश की समस्याएँ थी। बाल–विवाह, कलह–प्रियता, पुरूष से हीनता, विधवा विवाह, दोहाजू, आभूषणप्रियता आदि ये सब विषय सामाजिक उपन्यासकारों के मुख्य विषय रहे है। इन सब विषयो मे नारी अत्यन्त निकट से लिपटी हुई थी। ये ही नये विषय थे। नयी शिक्षा ने नये बाबू और पुराने चाल की सहधर्मिणी की एक समस्या उपस्थित कर दी थी।' किन्तु नारी के अतिरिक्त शराबखोरी, चाटुकारिताप्रियता और उसके दुष्परिणाम, सदाचार और सद्वृत्ति, हिन्दुओ की असहायता, गोवध आदि विषय भी इन उपन्यासो मे स्वीकारे गये है। विषय चाहे जो भी हो किन्तु इतना सत्य है कि उपन्यासकारो ने सतह पर के सत्य को ही अधिक लिया है, उसी सत्य को व्यक्त करने के लिए घटनाओ और पात्रो की सृष्टि की है। अत इन उपन्यासो मे यथार्थ की सश्लिष्टता और चरित्रो की मनोवैज्ञानिक गहनता का सर्वथा अभाव है। इसीलिए इन उपन्यासो मे से कोई भी उपन्यास हिन्दी–साहित्य की स्थायी निधि नही बन सका। केवल 'परीक्षा गुरू' पहला उपन्यास होकर भी कई दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है।

ऐतिहासिक उपन्यास – इस काल मे ऐतिहासिक उपन्यासो का भी प्रणयन पर्याप्त मात्रा मे हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी–कृत 'हृदयहारिणी' वा 'आदर्श रमणी'(1890), 'लवंगलता' वा 'आदर्श बाला'(1890), 'तारा'(1902), 'राजकुमारी'(1902), 'कनक कुसुम' वा 'मस्तानी'(1903), 'लखनऊ की कब्र' वा 'शाही महलसरा'(1906), 'रजिया बेगम' आदि, गगाप्रसाद गुप्त–कृत 'पृथ्वीराज चौहान(1903), 'कुमारसिह सेनापति'(1904), श्यामसुन्दर वैद्य–कृत 'पजाब पतन', कृष्णप्रसाद सिह अखौरी–कृत 'वीर चूडामणि', मथुराप्रसाद शर्मा–कृत 'नूरजहॉ' व्रजनन्दनसहाय–कृत 'लाल चीन'(1916), मिश्रबन्धु–कृत 'वीरमणि'(1917) आदि उपन्यास इस काल के ऐतिहासिक कहे जाने वाले उपन्यास हैं। इस काल मे इतिहास या गौरवमय अतीत की ओर दृष्टि जाना भी स्वाभाविक था। मध्यकाल मे हम मानो अपना सब खो चुके थे, जीवन के बाह्य विधानो मे ही उलझे रह गये थे। हमारा वर्तमान दयनीय था, हम विदेशी सत्ता से पराभूत तो थे ही, अपनी सामाजिक और धार्मिक रूढियो और अन्धविश्वासों मे भी जकडे रह गये थे। विदेशी सत्ता ने हमे पराभूत तो किया , किन्तु जीवन को यथार्थवादी दृष्टि से देखने के लिए प्रेरित भी किया और तब अपना मार्ग खोये हुए कुछ लोग

विदेशी सस्कृति और सभ्यता की ऊपरी चकाचौंध मे ही जा उलझे। ऐसे अवसर पर अपने इतिहास के गौरव की याद आना और उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास करना स्वाभाविक था। ऐतिहासिक उपन्यासो मे दो बाते विशेष ध्यान देने की होती है—एक तो अभिप्रेत काल के जीवन यथार्थ से घनिष्ठ रूप से परिचित होना, दूसरे इतिहास के तथ्यो के साथ कल्पना का सुन्दर समन्वय कर साहित्यिक कृति का निर्माण करना। कहा जा सकता है कि उपर्युक्त उपन्यासो ने इस दायित्व का निर्वाह नही किया है। इन उपन्यासो मे अभिप्रेत काल के समाज का यथार्थ—बोध नही प्राप्त होता। इनमे उस काल की जटिल सामाजिक स्थितियो, मानव—मन की आकाक्षाओ , प्रश्नो, व्यक्तियो के पारस्परिक सम्बन्धो का तो सूक्ष्म निरीक्षण नही ही प्राप्त होता, सामान्य ऐतिहासिक तथ्यो का निर्वाह भी नही लक्षित होता। कल्पना और इतिहास का समन्वय भी दृष्टिगत नही होता। अर्थात् ये उपन्यास न तो इतिहास का जीता—जागता चित्र ही उपस्थित कर पाते है और न तो ये सफल साहित्यिक कृति ही बन पाते हैं। व्रजनन्दन सहाय के 'लाल चीन' और मिश्रबन्धुओ के 'वीरमणि' मे ऐतिहासिकता और काल्पनिकता का कुछ सम्यक् सयोग दिखायी पडता है। इन सारे ऐतिहासिक उपन्यासो मे रोमांचकारी घटनाओ की सृष्टि कर इन्हे मनोरजक बनाया गया है ओर साथ—ही—साथ उपदेश का स्वर भी बुलन्द किया गया है। यानी लेखक पात्रो और कथानक से ध्वनित होने वाले स्वर पर विश्वास नही करता। वह स्वय अन्त मे उपदश का स्वर मुखर करता है या किसी पात्र से कराता है। जैसे किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' उपन्यास मे रानी चन्द्रावली अपने भाई से कहती है—'भारतवर्ष के भाग्य विपर्यय का प्रत्यक्ष इतिहास ऑखो के आगे नाच रहा है, तो भी स्वार्थ से अन्धे होकर तुमने यवनों पर अन्धविश्वास कर लिया है। भाई, जागो और मोह—निद्रा को छोड सनातन धर्म और क्षत्रिय कुल की गौरवता पर दृष्टि डालो।'

'परीक्षा गुरू' हिन्दी का पहला उपन्यास माना गया है इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ सामाजिक यथार्थ की पहचान से हुआ और सामाजिक यथार्थ की पहचान की यह यात्रा प्रेमचन्द, प्रसाद, यशपाल आदि से होती हुई आज तक पहुॅची है तथा विविध आयाम धारण करने मे समर्थ हुई है। यथार्थ की पहचान की एक दूसरी धारा भी है जो व्यक्ति—मन को केन्द्रित करके चली है और जो मूलतः जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि से होती हुई आज के यौन चेतना—केन्द्रित उपन्यासो तक आयी है। किन्तु

इसमे सन्देह नही कि भारतीय जीवन की सही पहचान इन सामाजिक यथार्थ वाले उपन्यासो से होती है, इनमे भारतीय जीवन के तमाम सुख–दुखो, सम्बन्धो और मूल्यो, शक्तियो और सीमाओ, छवियो और अछवियो, मिट्टी और पानी की गन्ध की परते बिछी होती है। वे मनोवैज्ञानिक उपन्यास भी भारतीय जीवन की गन्ध उभारते हैं जो व्यक्ति–मन के सत्य को केन्द्रित करने के बावजूद भारतीय परिवेश को उभारते है। 'त्यागपत्र' और 'शेखर एक जीवनी' इसीलिए भारतीय उपन्यास लगते हैं।

'जो बात सौ बार समझाने से समझ मे नही आती वह एक बार की परीक्षा से भली भॉति मन मे बैठ जाती है और इसी वास्ते लोग परीक्षा(को) गुरू मानते हैं।' इस कथन से स्पष्ट है कि लेखक ने परीक्षा को गुरू सिद्ध करने के लिए यह उपन्यास लिखा है। यह एक सनातन सिद्धान्त है किन्तु इस सिद्धान्त को सनातन सिद्ध करना लेखक का उद्देश्य नही रहा है, वह तो वास्तव मे अपने समय मे कुछ अग्रेजो के प्रभाव से और कुछ अपनी ही विकृत मध्यकालीनता के प्रभाव से देश और समाज मे उत्पन्न होने वाली कुछ सामाजिक और चरित्रगत विसगतियो आर विकृतियो का उद्घाटन कर तथा उनका समाधान प्रस्तुत कर कुछ शिक्षा देना चाहता है। इस प्रकार समकालीन परिवेश के यथार्थ को मूर्त कर भारतीय जीवन मे उत्पन्न होने वाली कुरूपताओ की पहचान उभारना और एक विशिष्ट प्रभावशाली घटना की चोट से एक प्रकाश पैदा करना ही इस उपन्यास का उद्देश्य है।

कहानी

हिन्दी–साहित्य मे कहानियो का आरम्भ कुछ बाद मे हुआ। भारतेन्दु–युग मे कहानिया नही लिखी गयी। कुछ कथानक शैली के निबन्ध लिखे गये थे, जो पढने मे अत्यन्त रोचक थे। कहानियो का विकास आगे हुआ। 'सरस्वती'(1900) पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी–कहानी का जन्म मान्य है। आरम्भ मे लिखी गयी कहानियो मे कुछ शेक्सपियर के नाटको के आधार पर कुछ सस्कृत–नाटको के आधार पर, कुछ बगला–कहानियो को रूपान्तरित करके, कुछ लोककथाओ से प्रेरणा लेकर और कुछ जीवन की वास्तविक घटनाओ को दृष्टि मे रखकर प्रस्तुत की गयी। आरम्भिक

कथा–लेखको मे किशोरीलाल गोस्वामी, माधवप्रसाद मिश्र, बगमहिला, रामचन्द्र शुक्ल, जयशकर प्रसाद, वृन्दावनलाल वर्मा आदि उल्लेखनीय है। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्द्रमती' कहानी 'सरस्वती' मे 1900 ई० मे प्रकाशित हुई। यह शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक के आधार पर लिखी गयी है। इस वर्ष 'सुदर्शन' मे माधवप्रसाद मिश्र की 'मन की चचलता' कहानी प्रकाशित हुई। 1902 ई० मे 'सरस्वती' मे भगवानदीन, बी०ए० की 'प्लेग की चुडैल' कहानी प्रकाशित हुई। यह वास्तविक परिस्थिति का चित्र प्रस्तुत करने वाली रचना है। 'सरस्वती' मे ही रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय'(1903) और बगमहिला की 'दुलाईवाली'(1907) शीर्षक कहानिया प्रकाशित हुई। हिन्दी के आरम्भिक मौलिक कहानीकारो मे इन्ही लेखको के नाम आते है। 1909 ई० मे काशी से 'इन्दु' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसमे जयशकर प्रसाद की भावात्मक कहानिया प्रकाशित हुई। इन कहानियो का सग्रह 'छाया'(1912) नाम से प्रकाशित हुआ।

इस समय तक प्रेमचद की कुछ कहानिया 'जमाना' मे प्रकाशित हो चुकी थी। उर्दू मे अधिक यश और धन की प्राप्ति की सम्भावना न देखकर वे हिन्दी की ओर उन्मुख होने लगे थे। 'सरस्वती' मे प्रकाशित उनकी कुछ कहानियो के शीर्षक है–'सौत'(1915) 'पच परमेश्वर'(1916) 'सज्जनता का दड'(1916) 'ईश्वरीय न्याय' (1917) और 'दुर्गा का मन्दिर'(1917) चन्द्रधर शर्मा 'गुलरी'(1883 से 1920) की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' (1915) ई० मे 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई। पहले महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह कहानी रचना–शिल्प की दृष्टि से अपने समय से बहुत आगे की रचना है। आधुनिक हिन्दी–कहानी का आरम्भ यही से मानना चाहिए। इसमे निहित त्यागमय प्रेम का आदर्श भारतीय सस्कृति की उदात्तता के अनुकूल है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सन् 1900 के लगभग हिन्दी–कहानी का जन्म हुआ और 1912 से 1918 ई० के बीच वह पूर्णत प्रतिष्ठित हो गयी। साहित्य मे उसकी स्वतन्त्र सत्ता तभी मान्य हुई और उसका मौलिक रूप निखरा। किसी भी साहित्य–विधा के उद्‌भव और विकास के लिए यह समय बहुत कम है, किन्तु भारतीय मानस मे प्राचीन लघुकथाओ का सस्कार शेष था। पाश्चात्य कहानी–कला से परिचित होते ही वह सस्कार जाग उठा और हिन्दी मे कलापूर्ण कहानियो की सृष्टि आरम्भ हो गयी। इस क्षेत्र मे प्रेमचद और प्रसाद ने दो भिन्न प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व किया। प्रेमचन्द जीवन की वास्तविक घटनाओं और समस्याओ को लेकर आदर्श की प्रतिष्ठा

कर रहे थे, जबकि प्रसाद मनुष्य की भीतरी भाव–द्वन्द्व को व्यक्त करने मे लीन थे। प्रेमचद मुख्यत वर्तमान के दु:ख–दर्द, हार–जीत और न्याय–अन्याय की कहानी कह रहे थे, जबकि प्रसाद अतीत मे कल्पना के सहारे रम रहे थे।

इस युग मे कहानियो के अनुवाद भी हुए। अधिकतर बगला भाषा से अनुवाद किये गये। अनुवादको मे गिरिजाकुमार घोष(पार्वती नन्दन) और बगमहिला के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सदर्भ ग्रन्थ :–

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल

(2) हिन्दी उपन्यास कोश (खड –1) – गोपाल राय

(3) प्रेमचद पूर्व के कथाकार और उनका युग – लक्ष्मण सिह बिष्ट

(4) हिदी उपन्यास एक अतर्यात्रा – रामदरश मिश्र

(5) साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य – रघुवश

(6) हिदी साहित्य का सर्वेक्षण – विश्वम्भर 'मानव'

द्वितीय अध्याय :

प्रेमचन्द युग का कथा साहित्य
(उपन्यास)

प्रेमचन्द का कथा साहित्य

उपन्यास

उपन्यास को बीसवी शताब्दी के हिन्दी गद्य की सर्वाधिक सशक्त एवं लोकप्रिय विधा कहा जा सकता है। साहित्य के इस माध्यम मे जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के उजागर होने से इसमे समाज की सच्ची तस्वीर देखने को मिलती है। सामाजिक जीवन के विविध स्पन्दनो का, अनुभूतियो एव विचारो का समस्याओ एव चिन्ताओ को इस माध्यम द्वारा हम हू–ब–हू साक्षात्कार कर सकते है। गद्य की इस महाकाव्यात्मक विधा मे भारतीय जन–जीवन को प्रतिबिम्बित हुआ देख सकते है। यह तत्त्व प्रेमचद के उपन्यासे मे विशेष रूप से मिलता है।

मुशी प्रेमचन्द का आगमन हिन्दी उपन्यास साहित्य को सही और नई दिशा प्रदान करता है। उन्होने हिन्दी उपन्यास के तिलिस्म–ऐयार एव जासूस को पिटारी से निकालकर उसको वास्तविक रूप प्रदान किया, उसे जीवन–सदर्भो से जोडकर उसक अभियान को सार्थक बनाया। वस्तुत 'सेवासदन' से 'गोदान' तक के उपन्यासो द्वारा प्रेमचन्द ने हिदी उपन्यास को वयस्कता प्रदान की है। इन उपन्यासो मे प्रेमचन्द की पददलित एव शोषित मानवता के प्रति सच्ची सवेदना प्रकट होती है। भारतीय कृषक तथा भारतीय नारी उनकी सहानुभूति के सर्वाधिक पात्र रहे है। वस्तुत प्रेमचन्द ने हिदी उपन्यास को नया मुहावरा और शिल्प प्रदान किया है। प्रेमचन्द के 'गोदान' के साथ हिदी उपन्यास ने अपने विकास के महत्त्वपूर्ण सोपान को पार कर लिया। उनकी इस रचना के साथ उपन्यास अपने सही अर्थो मे आधुनिक उपन्यास की सज्ञा धारण करता है।

प्रेमचद ने कुल पन्द्रह उपन्यासो की रचना की थी। उनका पहला उपन्यास 'असराने मआविद उर्फ देवस्थान रहस्य' था। इसके बाद उन्होने 'प्रेमा' (उर्दू मे पूर्वरूप हम खुर्मा व हम सबाब), किशना (अनुपलब्ध), रूठी रानी, वरदान, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिज्ञा, गबन, कर्मभूमि, गोदान, मगलसूत्र (अपूर्ण) का प्रणयन किया। प्रेमचन्द के पुत्र अमृतराय ने एक स्थान पर 'श्यामा' को उनकी पहला उपन्यास बताया है। (नयी समीक्षा, पृष्ठ **158**) प्रेमचन्द के जीवनकाल मे 'असरारे–मआबिद' और 'रूठी रानी' से

हिन्दी – जगत परिचित नही हो सका था। **1962** ई० मे अमृतराय ने 'मगलाचरण' नाम से इनका तथा 'प्रेमा' और उसके उर्दू रूप 'हम खुर्मा व हम सवाद' का प्रकाशन किया और इस प्रकार लम्बे समय से चल रहे विवाद का अन्त हुआ। 'प्रेमा और हम खुर्मा व हम सवाब' का एक साथ सकलन भी उपयोगी सिद्ध हुआ, क्योकि इनके तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि 'प्रेमा', 'हम खुर्मा' व हम सबाब का अनुवाद नही बल्कि उसका रूपान्तर है।

असरारे मआविद' और रूठी रानी' को हिन्दी उपन्यास–साहित्य के अन्तर्गत स्वीकार करने मे सकोच हो सकता है। पर इसमे सन्देह नही कि परवर्ती प्रेमचन्द के समुचित बोध के लिए इनका अध्ययन आवश्यक और अनिवार्य है। 'असरारे मआविद' बनारस से निकलने वाले उर्दू साप्ताहिक 'आजाद ए खलक' मे कमिक रूप से प्रकाशित हुआ था और 'मगलाचरण' मे इसकी एक अनुपलब्ध किश्त को छोडकर शेष को सकलित किया गया है। 'मगलाचरण' की भूमिका मे अमृतराय ने लिखा है– ''यह किस्सा बिल्कुल सरशार के रग मे लिखा गया है लेकिन बाद के मुशी प्रेमचन्द की झलकियॉ भी उसमे भरपूर हैं।'' (पृ० **9**) वस्तुत शैली की अपेक्षा वस्तु की दृष्टि से प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यास–साहित्य से इसका सामजस्य अधिक दीखता है। उपन्यास के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इसमे मन्दिरो और मठो मे पनपने वाली बुराइयो और विकृतियो को उद्‌घाटित किया गया ह तथा उसके प्रबन्धको–पडो, पुजारियो और महतो की पोल खोली गई है। इस सदर्भ मे प्रेमचन्द पर आर्यसमाजी विचारधारा का प्रभाव अस्वीकार नही किया जा सकता। अमृतराय के अनुसार वे आर्यसमाज के जलसो मे ता जाते ही थे, हमीरपुर मे रहते हुए आर्यसमाज के बाकायदा मेम्बर' भी थे।' (कलम का सिपाही अमृतराय, पृष्ठ **48**)। यही नही, परवर्ती उपन्यासो मे लक्षित होने वाली सुधारवादी प्रवृति के मूल मे भी आर्यसमाजी विचारधारा और गोखले तथा रानाडे की सोशल रिफार्म्स लीग' की छाप लक्षित होती है। (वही, पृष्ठ **75**) इसमे कोई सन्देह नही कि धर्म के नाम पर जो विलास और पाखण्ड पनप रहा था, उसे मुशी जी कभी स्वीकार नही कर सके और उन्हे जब भी अवसर मिला उस पर निर्मम आघात करने से नही चूके। असरारे मआबिद' के महत त्रिलोकीनाथ का चित्र प्रेमचन्द इस प्रकार खीचते है–''यह जो आप महत जी के माथे पर लाल निशान देख रहे हैं, यह चन्दन के निशान नही बल्कि इस बात को सिद्ध कर रहे है कि हजरत ने न्याय और धर्म का खून कर डाला है। आप जो इनके गले मे मोहनमाला देख रहे हैं, यह असल मे लोभ का फदा है जो आपको खूब कसकर जकडे हुए

है। सिर पर तिरछी रखी हुई टोपी आपकी अकल के तिरछेपन को जाहिर कर रही है। आपके शरीर पर रग–विरगी मिर्जई नही है, बल्कि अध–विश्वासियो को सब्ज बाग दिखाने का यत्र है।" (मगलाचरण, पृष्ठ 5)। मदिरापान, नाच, राग–रग, यही महत की दिनचर्या के अग है। उसकी अलमारी मे शराब की बोतले चुनी हुई है। उसका देवस्थान स्त्रियो को फुसलाने और फसाने का अड्डा है। वे कभी छोकरी वेश्या को फुसलाते दीखते है तो कभी रामकली विवाहिता को अपने जाल मे फासते हुए दृष्टिगत होते है। रामकली का पति महत की अपेक्षा कही अधिक सुदर्शन और सजीला है पर जो सुख–भोग महत उसे उपलब्ध करवाते है, वह उसके मध्यवित्तीय पति द्वारा करवाया जाना सभव नही। इसीलिए रामकली उनके साथ कही भी भाग निकलने के लिए तैयार है। वह त्रिलोकीनाथ को मठ की भूमि बेच डालने के लिए कोचती है। त्रिलोकीनाथ स्वीकार करता है कि उसे यह 'अख्तियार' प्राप्त नही है, नही तो वह कब चूकने वाला था। इसके अतिरिक्त महत बने रहने मे जो चैन–आराम है, वह कही दूसरी जगह कैसे मिल सकता है? उसके अपने शब्दो मे–"दिन भर मे एक से एक सजीली औरते घूरने मे आती है। रात भर नाच–रग की महफिल गर्म रहती है। हर वक्त शराब–कवाब का दौर चला करता है। यार दोस्तो का जमघट रहता है।" (पृष्ठ 25)

'असरारे मआबिद' मे यह भी दिखाया गया है कि ये पडे– पुजारी न केवल स्त्रियो का सतीत्व लूटते है बल्कि कई प्रकार के हथकडों के द्वारा उनके जेवर–कपडे भी हथिया लेते है। इनका जादू इतना प्रबल है कि जो स्त्री फस जाती हे, वह दूसरी स्त्रियो को फसाने मे इनको सक्रिय सहयोग भी देती है। प्रेमचन्द मानते थे कि ये धर्म के ठेकेदार परले दरजे के ऐयाश है, नम्बर एक के जालिम है और इन्तहा दर्जे के बेईमान है (पृ० 46)। इस उपन्यास मे रामकली तथा दूसरी स्त्रियो के माध्यम से नारी की सामाजिक स्थिति, उसके आभूषण–प्रेम, उसके जर्जर आदर्शों का अकन ही नही किया गया, परिवारो को नरक मे परिवर्तित कर देने वाले सघर्षो और कलहो तथा समाज क पतनोन्मुख नैतिक मूल्यो की तस्वीर भी खीची गई है। अपने पहले उपन्यास मे प्रेमचन्द नारी के विषय मे अपना दृष्टिकोण स्थिर करने की प्रक्रिया मे सलग्न दीखते है। इस उपन्यास का एक पात्र कहता है कि 'औरते बाहर निकले जरूर मगर मजबूरी दर्जे, सैर–सपाटे के लिए हरगिज नही। बिना जरूरत छुट्टा साड की तरह मटरगश्ती करना बहुत बुरा मालूम होता है।" (वही, पृ० 44)। स्पष्ट है कि नारी के प्रति पूरी सहानुभूति रखते हुए भी उन्हे पूरी स्वतन्त्रता देने के

पक्ष मे प्रेमचन्द शुरू से ही नही थे। नारी के अन्य रूप वेश्या के प्रति प्रेमचन्द की सहानुभूति भी यहाँ अकित हुई है जिसके रूप, यौवन और कला के बल पर परजीवी ऐश करते हैं और उसे भरपेट भोजन भी नही मिलता।

'असरारे मआबिद' मे प्रेमचद का किस्सागो रूप बहुत उजागर है। वैराग्य, इन्द्रियदमन, गगा, बैल आदि को लेकर वे लम्बी–लम्बी व्याख्याए ही नही करते बल्कि कुछ पात्रो को एक किस्से बेचने वाले की दुकान पर पहुँचाकर एक राजकुमारी और उसके प्रेमी की समूची कथा ही प्रस्तुत करा देते हैं। इसके अतिरिक्त गीतो–गजलो के उद्धरणो से उपन्यास मे रोचकता के समावेश का प्रयत्न हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि कथा सयोजन–शिल्प मे अभी प्रेमचद कुशल नही हुए थे। इसलिए वे न केवल कथा को उसके तर्कसम्मत अत तक नही पहुँचाते बल्कि इसके बिखराव और क्रमविहीनता को भी दूर नही कर पाते। पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ को उजागर करने और उन्हे निजी व्यक्तित्व प्रदान करने की जो सामर्थ्य उनकी परवर्ती रचनाओ मे दीखती है, उसका अनुकरण इस कृति मे भी लक्षित किया जा सकता है। सवादो की चुस्ती और चुटीलापन, व्यगात्मकता, मुहावरो–लोकोक्तियो तथा उपमाओ के प्रयोग से उत्पन्न होने वाली ताजगी और स्फूर्ती जेसी शैलीगत विशेषताओ की झलक प्रारभिक कृति मे भी उपलब्ध हो जाती है।

अपने दूसरे उपन्यास 'प्रेमा' मे प्रेमचद उस समय की ज्वलन्त समस्या 'विधवा–समस्या' को उठाते है। समूचा उपन्यास हिन्दू विधवा की सामाजिक स्थिति के निरूपण और 'विधवा–विवाह' के औचित्य के प्रतिपादन के उद्दश्य से लिया गया प्रतीत होता हे उपन्यास के नायक वकील अमृतराय एक समाज–सुधारक लाला धनुषधारी लाल के व्याख्यान के प्रभाव मे आकर अपने को जाति पर न्योछावर करने की प्रतिज्ञा करता है (मगलाचरण, पृ० 224)। उसके मित्र दीनानाथ का सारा समझाना–बुझाना बेकार हो जाता है। इसी आदर्श से प्रेरित होकर अमृतराय अपनी मगेतर प्रेमा से विवाह न करने का निर्णय करता है। सुधार–कार्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर देन पर उसे चारो ओर से विरोध सहना पडता है। इस उपन्यास मे प्रेमचद दिखाते हैं कि उस समय सुधारवादी होने का मतलब ईसाई हो जाना समझा जाता था। उसके भावी श्वसुर उसे लिखते हैं– "जिसे लोग सामाजिक सुधार सभा कहते हैं वह तो ईसाई मडली है।" प्रत्युत्तर में अमृतराय स्पष्ट कर देता है कि 'सामाजिक सुधार के अतिरिक्त उसे देश की उन्नति का कोई उपाय नही दीखता।' वह यह भी कहता है कि "आप जिसको सनातन धर्म समझे बैठे हैं, वह अविद्या

और असभ्यता का प्रत्यक्ष स्वरूप है।" (पृ० 244)। इस प्रकार प्रेमचद स्वयं पर आर्यसमाज के प्रभाव को स्पष्ट कर देते हैं। प्रेमचद की राजनैतिक चेतना अभी प्राय सुप्त पडी थी और उनके लिए समाज-सुधार ही देश-भक्ति का दूसरा नाम था। अग्रेज कमिश्नर का प्रजा-हितैषी चरित्र (पृ० 276) भी प्रेमचद की अपरिपक्व राजनैतिक चेतना को प्रमाणित करता है।

समाज मे विधवा की वास्तविक अवस्था के चित्रण ओर विधवा-विवाह को समाधान के रूप मे प्रस्तुत करने के उद्देश्य से प्रेमचद प्रेमा की एक सहेली पूर्णा के पति बसन्त कुमार का गगा मे डूबने के प्रसग का समावेश करते हैं। विधवा पूर्णा के पास अमृतराय का आना-जाना और प्रेमा के द्वारा पूर्णा का श्रृगार मुहल्ले की स्त्रियो को तनिक भी अच्छा नही लगता। विधवाओ की दुरवस्था का सकेत एक बाल-विधवा रामकली के मुख से प्रेमचद ने विशेष रूप से कराया है। विधवा हो जाने पर वह घर भर की लौडी बना दी गयी है। उसे न केवल सब काम करने होते है, सभी के जूते और लात भी सहन करनी पडती है। काजल-मिस्सी लगाना, बाल गुंथना, रगीन साडियॉ पहनना पान खाना उसके लिए वर्जित है। बहू-बेटियॉ उससे कन्नी काटती है और भोर के समय तो उसका कोई मुँह भी नही देखना चाहता। दलित और असहाय भारतीय विधवा के मन मे अकसमात विद्रोह का स्वर रामकली के शब्दो मे प्रेमचन्द ने इस प्रकार मुखरित किया ह -"आखिर हम भी तो आदमी हे। हमारी भी तो जवानी है। दूसरो का राग-रग, हॅसी, चुहल देख-देख अपने मन मे भी भावना होती है। जब भूख लगे और खाना न मिले तो हारकर चोरी करनी पडती है (पृष्ठ, 281)। इस प्रकार रामकली के शब्दो मे प्रेमचद विधवा की व्यथा और विवशता ही अकित नही करते, समाज के नियामको को चेतावनी भी देते है कि यदि नैतिक मर्यादाओं की रक्षा करती है तो उन्हे विधवाओ को मानवोचित अधिकार देने होंगे।

'असरारे मआबिद' मे प्रेमचद धर्मस्थानो की जिस पतितावस्था का अकन कर चुके थे, उसे 'प्रेमा' मे भी दिखाने से नही चूकते और पडो-पुजारियो की विलासितापूर्ण और अमर्यादित जिन्दगी की अच्छी तस्वीर उकेरते है। इसके अलावा वे नैतिक विधिनिषेधो के प्रति मध्यवर्ग के अतिरिक्त आग्रह का सकेत भी 'प्रेमा' मे करते है। अमृतराय के प्रति आकृष्ट होते हुए भी उसका विवाह-सन्देश पाकर पूर्णा एककदम भौचक्की रह जाती है और कहती है-"भले मानुसों में ऐसा कभी होता ही नही। हॉ, नीच जातियो मे सगाई, डोला सब आता है।" (पृष्ठ, 302)। पूर्णा और अमृतराय को धर्म, समाज, बिरादरी सभी के विरोध का सामना

करना पडता है। पडित भृगुदत्त कहते है– 'विधवा–विवाह' वर्जित है। कोई हमसे शास्त्रार्थ कर ले। वेद–पुराण मे कही ऐसा अधिकार कोई दिखा तो हम आज से पडिताई करना छोड दे।" (पृष्ठ 308)। अमृतराय को लोगो की ओर से तरह–तरह की धमकियॉ ही नही दी जाती, उन्हे मार डालने के लिए एक भारी भीड भी इकट्ठी हो जाती है। इस विवाह का एक कट्टर विरोधी ठाकुर जोरावरसिह विवाह–स्थल पर हमला करते हुए पुलिस की गोली का शिकार हो जाता है। अमृतराय–पूर्णा के विवाह का चित्र खीचते हुए प्रेमचद हिन्दू समाज मे विद्यमान वैवाहिक रीति–रिवाजो के दोषो का सकेत भी करते हैं और आदर्श विवाह की अपनी कल्पना भी उकेरते है– 'बरात क्या थी, सभ्यता और स्वाधीनता की चलती–फिरती तस्वीर थी। न बाजे की धडधड, पडपड, न बिगुल की धोधो, पोपो, न सोटे बल्लम वालो की कतार, न फूलवाडी, न बगीचे बल्कि भले मानुषो की एक मडली थी जो धीरे–धीरे कदम बढाती चली जा रही थी।' (पृष्ठ 313)। विवाह मे न गीत गाए न गाली–गलौज की नौबत आई, नगाचार का ऊधम मचा। (पृष्ठ 314)। प्रेमचद का विचार था कि 'विधवा–विवाह' की प्रथा एक बार शुरू हो गई तो इसका अनुसरण भी होगा। इसी कारण दो विधवा–विवाह उपन्यास मे और सम्पन्न होते हैं। पर विवाह हो जाने से ही रूढिपथी लोग हार नही मानेगे, यह बात भी प्रेमचद भली–भॉति समझते थे। जो लोग लाठियो से इस विवाह को नही रोक सके थे, अब बिरादरी के बायकाट की धमकी द्वारा अमृतराय के नौकरो को भगाकर अपना रूद्ध आक्रोश प्रकट करते है। धर्म के साथ बिरादरी के प्रतिक्रियावादी रूप और सामान्य मनुष्य के मन पर उसके आतक से प्रेमचद भली–भॉति अवगत थे और 'प्रेमा' से लेकर 'गोदान' तक की अनेक रचनाओ मे इसे अकित भी करते हे। अमृतराय के नौकरो के मन मे बिरादरी का आतक किस तरह बद्धमूल है– "मुदा बिरादरी की बात ठहरी। हुक्का–पानी बन्द होई गवा तो फिर कई के द्वारे जेबे" (पृष्ठ 321)। बिरादरी से निष्कासित होने के भय से सभी नौकरो के खिसक जाने से और दुकानदारो बायकाट से सौदा–सुल्फ प्राप्त करना कठिन हो जाता है। उन्हे कोई कुएँ से पानी भी नही लेने देता। अमृतराय की वकालत चौपट हो जाती है। बाद मे बगाली जज और मुसलमान रिश्तेदार के चतुर व्यवहार के परिणामस्वरूप फिर से मुवक्किल उनके पास आने लगते है और लाला धनुषधारी लाल द्वारा भिजवाए गए पंजाबी और काश्मीरी नौकरों से घर का काम चलने लगता है। इस स्थल पर सकेत हल्के जरूर हैं पर उनकी दिशा बिलकुल साफ है। प्रेमचद के परवर्ती

उपन्यासो मे प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता के प्रति जो विरोधी दृष्टिकोण अपनाया गया है, उसको बीज रूप मे इस उपन्यास मे भी देखा जा सकता है।

उपन्यास यही समाप्त नही हो जाता। प्रेमचंद पहले कह चुके थे कि ईश्वर ने प्रेमा और अमृतराय को एक दूसरे के लिए बनाया था। इसी सूत्र को आगे बढाने के लिए अथवा एक बार फिर विधवा–विवाह करवाने के लोभ से वे दीनानाथ तथा कुछ साथियो से अमृतराय पर घातक हमला करवाते हैं। पूर्णा की गोली का शिकार होकर दीनानाथ मर जाता है और पूर्णा आत्महत्या कर लेती है। प्रेमा और अमृतराय का रास्ता साफ हो जाता है और उनके विवाह के साथ ही उपन्यास खत्म हो जाता है।

'प्रेमा' शैल्पिक दृष्टि से निर्दोष नहीं है। इसमे घटनाओ के आकस्मिक मोडो, सयोगों, मौतो, हत्याओ, आत्महत्याओ का काफी आश्रय लिया गया है। 'असरारे मआविद' की अपेक्षा पात्र–परिकल्पना और चरित्राकन शिल्प मे विकास होने के बावजूद इस उपन्यास के दीनानाथ और प्रेमा के चरित्र काफी कृत्रिम हो उठे हैं। समग्रत अनेक अन्य कमियो के बावजूद यह उपन्यास परवर्ती प्रेमचद की सभावनाओ का सकेत देता है। विधवा की अवस्था के यथार्थ निरूपण और रामकली के माध्यम से शताब्दियो से शोषित और मर्दित नारी–जाति मे विकसित हो रही नव–जागृति की झलक की दृष्टि से यह उपन्यास उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त 'सेवासदन' की सुमन के व्यक्तित्व की परिकल्पना आकस्मिक नही थी, यह प्रेमा के नारी पात्रो के अध्ययन के उपरान्त सहज ही समझा जा सकता है।

'रूठी रानी' प्रेमचन्द का एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है। प्रेमचन्द ने कुछ उत्कृष्ठ ऐतिहासिक कहानियो की रचना भी की थी, पर उनके व्यक्तव्यो से स्पष्ट हो जाता है कि अतीत के प्रति किसी प्रकार की आसक्ति उनके मन मे नही थी। प्रसाद के उपन्यास 'ककाल' का स्वागत करते हुए उन्होने कहा था कि हम दो हजार वर्ष पूर्व की समस्याओ को अकित नही कर सकते। एक अन्य स्थल पर वे कहते है कि 'ऐतिहासिक ज्ञान' और 'कल्पना' निजी और प्रत्यक्ष निरीक्षण की बराबरी नही कर सकता। इस दृष्टिकोण के बावजूद उन्होने 'रूठी रानी' की रचना कयो की? उपन्यास के अध्ययन से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द का लक्ष्य अतीत के किसी कालखण्ड मे विद्यमान समस्याओ का चित्रण करना न था और न ही अतीत के पट पर वर्तमान का चित्र अकित करना उन्हें अभीष्ट था। उन्हे तो लोक–कथाओ और लोक–गीतो मे चले आ रहे जैसलमेर के रावल लोनकरन की बेटी उमा के उदात्त और रोमानी चरित्र ने इतना आकृष्ट कर लिया था कि उसकी जीवन–कथा को

उन्होने इस लघु उपन्यास के रूप मे ढाल दिया। उमा के जन्म से लेकर उसके सती हो जाने तक की घटनाओ को इस उपन्यास में सजोया गया है, इसके बाद की कतिपय घटनाओ का उल्लेख भी हुआ है और इस प्रकार उपन्यास की काल–सीमा तीन सौ वर्ष तक खिचती हुई सन् **1857** तक आ पहुँची है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि इनका मूल कथानक से बहुत अधिक सम्बन्ध नही है। उमा का विवाह विचित्र परिस्थितियो मे होता है। अपने शत्रु मेवाड के राजा मालदेव को अपनी बेटी से विवाह के लिए सदेश रावल लोनकरन स्वीकार तो कर लेता है पर उस विवाह–बेदी पर ही मौत के घाट उतार देने का षडयन्त्र भी करता है। उमा अपनी दासी भारीली के माध्यम से मालदेव को सावधान कर देती है। विवाहोपरान्त, शराब के नशे मे चूर, मालदेव दासी को ही रानी समझकर उसके साथ रात बिता देता है। यही से कथा मे पहला मोड आता है और उमा रूठ जाती है। चारण ईश्वरदास के प्रयत्न से पारस्परिक मनोमालिन्य की समाप्ति की सम्भावना पैदा होती है। पर भारीली के प्रति राजा की आसक्ति का एक और प्रमाण उसे पूरी तरह समाप्त कर देता है। राजा की आयु पर्यन्त उमा रूठी रहती है और उसके मर जाने के बाद उसकी पगडी के साथ सती हो जाती है। कथा–सयोजन मे क्रम–विहीनता, चरित्राकन मे शिथिलता आदि कमियो के बावजूद तत्युगीन परिवेश की पकड की दृष्टि से 'रूठी रानी' उल्लेखनीय है। बेटी के जन्म पर राजपूतो की शोक प्रवृत्ति, वैयक्तिक वैमनस्य के कारण अपनी ही बेटी को विधवा बना देने के लिए प्रस्तुति, महलो के हास–विलास, षडयन्त्र जैसी पतनोन्मुख प्रवृत्तियो को उकेर कर प्रेमचन्द इसे यथार्थ रूप देते हैं। इसके अतिरिक्त अपनी अस्फुट राजनैतिक चेतना को बैरमजी के मुख से इन शब्दो मे व्यक्त करते है– हिन्दुओ मे अनबन और फूट ने हमेशा मुल्क वीरान किए है और गैरो से हमेशा हार दिलायी है' (मगलाचरण, पृ० **391**)। यद्यपि उमा का चरित्र भी प्रेमचन्द ने आवश्यक विस्तार से अकित नही किया तथापि उसमे – दर्प, स्वाभिमान, अत्याचार को चुनौती देने का साहस – जैसे वे सभी तत्त्व विद्यमान प्रतीत होते है जो 'सेवासदन' की सुमन और 'गोदान' की धनिया को अविस्मरणीय बना देते है।

प्रेमचन्द का अगला उपन्यास 'वरदान' है। हिन्दी मे चाहे यह 'सेवासदन' के बाद प्रकाशित हुआ था लेकिन इसका मूल उर्दूरूप 'जलवा ए ईसार' नाम से सेवासदन से **5-6** वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था। 'वरदान' प्रेमचन्द के अपरिपक्व कलाकार को स्मरण कराता

है और उन उपन्यासो की श्रेणी मे आता है जिन्होने बाद के प्रेमचन्द के निर्माण के लिए नीव का कार्य किया।·

'वरदान का कथातन्त्र कुछ उलझा हुआ है और उपन्यास के मूल कथ्य के विषय मे कोई स्पष्ट धारणा बनाने मे बाधक होता है। इसीलिए इस कभी सुधारवादी और कभी दुखान्त प्रेम–कथा का 'आदर्शवादी सुखान्त' उपन्यास बताया गया है। उपन्यास का प्रारम्भ सुवामा द्वारा अष्टभुजा देवी की प्रार्थना से होता है। वह सपूत को ससार का सबसे उत्तम पदार्थ मानती है। पर वह नही चाहती कि उसका बेटा विद्वान हो या माता–पिता की सेवा करे। वह तो यही चाहती है कि वह जाति का उपकार करे। प्रेमचन्द के युग में जाति – सेवा की चेतना बहुत प्रबल थी। इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचन्द ने उसे ही व्यक्त करने का प्रयास किया है। सुवामा का बेटा प्रताप देवी के वर के अनुरूप बालाजी बनकर निम्न जातियो, अनाथो, रोगियो, बाढ – पीडितो की सेवा करता है। इस प्रकार जाति – सेवा के आदर्श की स्थापना उपन्यास का मूल लक्ष्य प्रतीत होता है। पर प्रताप को बाला जी बनाने मे दैवी प्रेरणा के अतिरिक्त पार्थिव एव निजी परिस्थितियो की विवशता भी थी। यो तो बचपन की सखी विरजन के प्रति अपने प्रेम असफल प्रताप बनारस के छात्र–जीवन मे भी छिट–पुट सुधार–कार्य करता हुआ दीखता है, पर उसको बाला जी बनने की अन्तर्प्रेरणा तो तभी मिलती है जब रात के दो बजे वह विधवा विरजन की दिव्य और अनुपम रूपराशि को देखकर, अपने मन की दुर्बलता पर पछताता हुआ, सन्यासी हो जाता है। प्रताप और विरजन की प्रेमकथा को लेखक ने काफी विस्तार भी दिया है। कही–कही तो वह मुख्य कथा का स्थान लेती प्रतीत होती है और इसके कथ्य के विषय मे भ्रान्ति पैदा कर देती है। इस 'दु खान्त प्रेम–कथा' से ही सम्बद्ध है विरजन और कमलाचरण के अनमेल विवाह की कहानी। मूल कथ्य न होने के बावजूद प्रेमचन्द भारतीय कन्या की मूक और असहायावस्था को चित्रित करने का अवसर यहाँ भी छोडना नही चाहते। प्रेमचन्द दिखाते हैं कि विरजन के पिता मुशी जीवनलाल आलस्य औरे प्रमादवश भावी दामाद के विषय मे कोई छानवीन नही करते और विरजन एक आवारा लडके कमल चरण–जो कि पतग लड़ाने और कबूतर उडाने के सिवाय कोई काम नही करता और जो पत्नी के गहनो के लिए अपने घर में ही सेध लगाने मे सकोच नही करता– से ब्याह दी जाती है। इसी को लक्ष्य करके प्रेमचन्द कहते हैं 'मुशी जी के अगणित बान्धव इसी भारतवर्ष मे अब भी विद्यमान हैं जो अपनी प्यारी कन्याओं को इसी प्रकार नेत्र बन्द करके कुएँ मे ढकेल दिया करते हैं।' (वरदान,–पृ० 35)।

विरजन के प्रेम मे कमलाचरण का हृदय– परिवर्तन हो जाना पर प्लेग के प्रकोप से बचने और पडने के उद्देश्य से बनारस गया हुआ कमलाचरण एक माली की लडकी पर आसक्त हो उठता है। माली द्वारा देख लिए जाने पर अपने प्राण लेकर भागता हुआ वह गाडी से गिरकर मर जाता है और विरजन विधवा हो जाती है।

प्रताप–विरजन की कथा से जुडी हुई एक छोटी–सी प्रेम–कहानी और भी हैं विरजन से प्रताप के विषय मे सुनकर माधवी मन–प्राण से उसके प्रति समर्पित हो जाती है। बाला जी के रूप मे प्रताप, उसके समर्पण से प्रभावित होकर सन्यास छोडने के लिए तैयार हो जाता है। पर रोमानी आदर्शवादी माधवी उसे पथभ्रष्ट नही करना चाहती और बालायोगिनी बनकर जिन्दगी काटने लगती है।

इसके अलावा कुछ अन्य प्रासगिक कथाएँ भी हैं। इन सबके कारण कथा–विन्यास मे शिथिलता, कृत्रिमता और बनावटीपन जैसे दोष आ गए है। केन्द्रीय सूत्र के अभाव मे कथानक मे बिखराव प्रतीत होता है और उस पर अनेक जोड और पैबन्द लगे हुए दिखते हे। यही नही पात्रो की भीडभाड, अनावश्यक मौतो, अस्वाभाविक हृदय–परिवर्तनो, बनावटी सवादो, अतिशय भावुकतापूर्ण स्थलो से उपन्यास का रूप काफी विकृत हो गया है। पर इस उपन्यास का महत्व एक अन्य दृष्टि से अवश्य दीखता है। प्लेग के प्रकोप से शहर से भागकर मॅझगॉव नामक गॉव पहुँचे हुए विरजन के श्वसुर डिप्टी श्यामाचरण के परिवार के सन्दर्भ मे लेखक ने भारतीय ग्रामीणो की वास्तविक अवस्था का चित्रण किया है। कमलाचरण को लिखे हुए विरजन के पत्रो ने तथा बाला जी सम्बन्धी प्रसगो से भारतीय गॉवो की दुरवस्था, जमीदारो और महाजनो के शोषण, छूआछूत तथा पुलिस के अत्याचारो की झॉकी मिलती है। इसके साथ ही कमलाचरण के बडे भाई बाबू राधाचरण जैसे व्यक्तियो के रूप मे हम एक ऐसे सामाजिक की उपस्थिति भी पाते है जो विद्रोही स्वभाव का है।[1]

'सेवासदन' ने न केवल प्रेमचन्द को हिन्दी उपन्यासकार के रूप मे प्रतिष्ठित किया था बल्कि हिन्दी उपन्यास के विकास की दिशा भी निर्धारित की थी। इसके साथ ही हिन्दी उपन्यास आदर्शवादी रोमानी भटकावो से मुक्ति के पथ पर अग्रसर हुआ था और इसका भावी रूप निर्धारित होने का मार्ग सुगम हो गया था। 'सेवासदन' उपन्यास की केन्द्रबिन्दु सुमन है और वह समूचे उपन्यास पर छायी हुई प्रतीत होती है। सुमन को परिस्थितियॉ उसे वेश्या बनने पर विवश कर देती हैं। इस सन्दर्भ मे उपन्यास मे 'वेश्या समस्या' का काफी

---

[1] प्रमचन्द –डा० गगाप्रसाद विमल, पृ० 123

विस्तार से चित्रण एव विवेचन भी हुआ है और इसीलिए कतिपय विद्वानो द्वारा इसकी मुख्य कथा–धुरी 'वेश्या समस्या' को ठहराया गया है। पर उपन्यास के अध्ययन से डॉ० रामविलास शर्मा के मत की पुष्टि होती है और कहा जा सकता है कि 'भारतीय नारी की पराधीनता' ही इसकी मुख्य समस्या है।[1]

सुमन के पिता कृष्णचन्द पुलिस मे दारोगा होने के बावजूद ईमानदार, रसिक, उदार ओर बडे सज्जन व्यक्ति है (सेवासदन पृष्ठ 5)। उन्होने जिन्दगी मे कभी रिश्वत नही ली थी और पैसा भी दिल खोलकर खर्च करते थे, इसलिए बेटी के विवाह की बात चली तो उन्हे बडी कठिनाई का अनुभव हुआ। दहेज का विरोध करने वाले लोग भी लालच छोडना नही चाहते थे। लाचार होकर कृष्णचन्द को रिश्वत लेनी पडी। नौसिखिए होने के कारण पकडे गए और सजा हुई। अब सुमन के मामा ने गॉव मे वर ढूँढना शुरू किया और एक दुहाजू वर तलाश कर लिया। यही से सुमन के भावी–जीवन की दिशा निर्धारित हुई। यहॉ प्रेमचन्द यही कहते प्रतीत होते है कि जिस समाज मे लडकी की इच्छा–अनिच्छा की परवाह नही की जाती और जहॉ उसे बलि पशु की तरह जिस खूँटे से बॉध दिया जाता है, बॅधना पडता है, जहॉ स्त्रियो के पास आर्थिक आत्म–निर्भर होने का कोई साधन नही, वहॉ स्त्रियॉ वेश्या नही बनेगी तो क्या बनेगी ?

आश्चर्य की बात तो यह है कि जो भारतीय समाज पहले लडकियो को कुऍ मे ढकेल देता है, वही बाद मे उनसे पतिव्रत के पालन की मॉग करता है। यही नही सदाचार ओर सतीत्व का राग अलापने पर भी इस समाज मे घरेलू स्त्री की अपेक्षा वेश्या का अधिक महत्व दीखता है। सुमन अपने वैवाहिक जीवन से सन्तुष्ट नही थी पर कुल–ललना का स्वाभिमान उसे सहारा दिए हुए था। परन्तु जब उसने धर्मात्माओ और विद्वानो को भी भोली वेश्या की कृपा का आकाक्षी पाया, धन और धर्म को एक साथ उसके सामने सिर झुकाते पाया तो उसका अभिमान चूर–चूर हो गया, उसके पैरो के नीचे की जमीन सरक गई। (सेवासदन पृष्ठ 23)। इसके साथ ही बाग के रक्षक द्वारा कुल ललना की अपेक्षा वेश्या के प्रति सद्व्यवहार भी उसे कचोट गया। जरा–जरा सी बात पर पति की शका, गाली–गलौज ने उस अपनी स्थिति पर फिर से सोचने पर विवश कर दिया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा दिया कि वेश्या की स्थिति उससे इसलिए बेहतर है, क्योकि 'वह वेश्या स्वतन्त्र है, जबकि उसके पैरो मे बेडियॉ हैं।'

---

[1] प्रेमचन्द ओर उनका युग पृ० 32

पुरूष के अत्याचारो का निर्भय सामना करने वाली जिस स्त्री के अकुर 'प्रेमा' की रामकली' और 'रूठी रानी' की उमा' मे दिखाई देते हैं, वे सुमन के व्यक्तित्व मे पूर्णतया विकसित रूप मे दृष्टिगत होते है। प्रेमचन्द की कल्पना मे ढलती हुई वह नारी–मूर्ति प्राणवान् होकर बडे साहस से पति के दुर्व्यवहार का सामना करती है। वह उसकी डॉट–फटकार सुनती है पर उसके सामने गिडगिडाती नही, उसके पॉव नही पडती। वह उसे साफ कह देती है – क्या तुम्ही मेरे अन्नदाता हो ? जहॉ मजूरी करूँगी, वही पेट पाल लूॅगी' (सेवासदन, पृ० 36)। पति के घर से निकलकर वह वकील पद्मसिह के घर आश्रय लेती है पर समाज–भीरू पद्मसिह उसे अपने घर मे रखने मे स्वय को असमर्थ पाता है और उसे भोली का आश्रय स्वीकार करना पडता है। इस प्रकार प्रेमचन्द दिखाते है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था और नारी की परमुखापेक्षिता उसे अनचाही स्थिति मे डाल देती है। डॉ० रामविलास शर्मा ने उचित कहा है–"दहेज, अनमेल विवाह और वेश्या की देहरी। मानो इस विवाह प्रथा और वेश्यावृति मे कोई अन्योन्याश्रय सम्बन्ध हो कि एक होगी तो दूसरी होगी ही। और जिस समाज मे कन्या के विवाह का मतलब कन्याविक्रय हो, उससे वेश्यावृति कौन उठा सका है?"[1] प्रेमचन्द अपनी धारणा की पुष्टि के लिए भोली की वेश्यावृति का मूल कारण भी 'अनमेल विवाह' को ठहराते है। अन्त मे सुमन बाबू पद्मसिह और समाज सुधारक–विट्ठलदास के प्रयत्नो से 'विधवा आश्रम' मे दाखिल हो जाती है। इधर उसकी बहन शान्ता का विवाह इसलिए नही हो पाता क्योकि वह पूर्व–वेश्या की बहन है। विडम्बना तो यह है कि शान्ता का भावी पति पद्मसिह का भतीजा सदन वह व्यक्ति है जो सुमन की कृपा का आकाक्षी बनकर बरसो उसकी देहली पर नाक रगडता और उसके तलुवे सहलाता रहा था। शान्ता–प्रसग के माध्यम से प्रेमचन्द भारतीय समाज की तर्कविहीन निर्दयता की अच्छी तस्वीर उकेरते है। अन्तत सदन शान्ता को अपना लेता है। सुमन को कुछ समय बाद शान्ता का घर भी छोडना पडता है और वह स्त्री उद्धार का कार्य करने लगती है।

सुमन की चरित्र–परिकल्पना मे प्रेमचन्द की कला एक नया उत्कर्ष प्राप्त करती है। इसमे कोई सदेह नही कि 'हिन्दी साहित्य की वह पहली नारी है जो सघर्ष की डगर पर पॉव उठाती है।'[2] प्रेमचन्द यहॉ यही दिखाना चाहते हैं कि शताब्दियो से पददलित, मर्दित

---

[1] प्रेमचन्द और उनका युग पृ० 38

[2] प्रेम|न्द और उनका युग पृ० 41

और अपमानित भारतीय नारी का दर्द अब ठोकर खाकर जाग चुका है और वह अब अत्याचार को अधिक सहन करने के लिए तैयार नही है।

इस उपन्यास मे 'वेश्या पुत्रियो' के सरक्षण और उनमे अच्छे सस्कार उत्पन्न करने के लिए जिस सेवासदन की स्थापना होती है, उसे लेकर आलोचको मे गहरा मतभेद है। उसे एक विद्वान ने काल्पनिक समाधान ठहराया है।[1] वहॉ दूसरे विद्वान ने इसे युगप्रवत्ति और समाजशास्त्र दोनो से अनुमोदित बताया है।[2] वास्तव मे जब तक उन उत्तरदायी कारणो को समाप्त नही कर दिया जाता जो कि वेश्याओ को जन्म देते हैं, तब तक वेश्या पुत्रियो के लिए इस प्रकार के आश्रमो की आवश्यकता को नकारा नही जा सकता। अतएव प्रेमचन्द पर सुधारवादी आश्रमवादी आस्था को लेकर आरोप लगाना, कम–से–कम 'सेवासदन' के सन्दर्भ मे तो अनुचित है।

'सेवासदन' मे इसके अतिरिक्त भी कुछ और ऐसे तत्त्व हैं जो इसके महत्व मे वृद्धि करते है। इन तत्वो मे धर्म का विकृत और अत्याचारी रूप है जो शोषण को अतिरिक्त आयाम देता है। श्री बाकेबिहारीजी के नाम पर गद्दी चलाने वाले महत रामदास तीर्थयात्रा के बाद एक ऐसा यज्ञ करवाते है, जिसमे एक महीने तक हवन–कुड जलता रहता है और जहॉ दस हजार महात्माओ को भोजन करवाया जाता है इस यज्ञ के लिए गरीब आसामियो से प्रत्येक हल के पीछे पॉच रूपये चन्दा उगाहा जाता है। जिन किसानो के पास रूपया नही था, उन्हे उधार लेकर देना पडा। भला 'श्रीबॉकेबिहारीजी की आज्ञा को कौन टाल सकता था ?' (सेवासदन पृ० 8)। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द धर्म के नाम पर चलने वाले इस शोषण को शुरू से देख रहे थे और धर्म–भीरू लोगो मे उसके आतक से भी अच्छी तरह परिचित थे। 'गोदान' मे वे इसे होरी के माध्यम से दिखाते है। जब दातादीन को मूल से कई गुना ब्याज लौटाने मे गोबर आनाकानी करता है तो होरी के मन मे खलबली मच जाती है। वह समझता है कि ब्राह्मण की पाई दबाना भी पाप है। उसकी एक पाई भी दब गयी तो हड्डी तोड़कर निकलेगी और वश मे कोई चिल्लू–भर पानी देने वाला और घर मे दिया जलाने वाला नही रहता।(गोदान, पृ० 223) पर 'सेवासदन' का बूढा चैतू गोबर से बहुत पहले धर्म के इस आतक से छुटकारा पाने के लिए कसमसाता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इजाफा लगान की नालिश के कारण ऋण के बोझ से दबा हुआ, वह

---

[1] वही पृ० 40

[2] प्रमचन्द के उपन्यासो का शिल्प–विधान, डाॅ० कमलकिशोर गोयनका, पृष्ठ 176

चन्दा देने से इनकार कर देता है। ठाकुर द्वारे के सामने उसे बडी निर्ममता से मारा जाता है। पर वह भी अन्त तक प्रतिरोध किए जाता है। उसके "हाथ तो बधे हुए थे, मुँह से लात–घूँसो का जबाब देता रहा और जब तक जबान बन्द न हो गई चुप न हुआ।" (सेवासदन, पृ० 8)। यह चैतू 'प्रेमाश्रम' के बलराज और मनोहर का पूर्वज ही नही, इस बात का प्रतीक भी है कि प्रेमचन्द किसानो की समस्याओ को अब अधिक गहराई से समझ रहे थे। इजाफा लगान, तरह–तरह के बहानो से उनकी नोच–खसोट, धर्म के नाम पर उनका शोषण, पुलिस के हथकडो से उनकी परेशानी के उल्लेख 'प्रेमाश्रम' के लिए तैयार होती हुई प्रेमचन्द की मनोभूमि का परिचय करा देते है।

इस उपन्यास मे प्रेमचन्द ने धार्मिक रूढियो पर जो प्रहार किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उस समय भारत की जनता युद्ध की कठिनाईयो के साथ ही साथ धर्म के शोषण का दु ख भोग रही थी। उसके कष्ट का कारण रामदास जैसा महत भी है जो धर्म के नाम पर श्री बाकेबिहारी के नाम पर उसका शोषण करता है।[1] महन्त रामदास यज्ञ के नाम पर प्रतिहल पाच रूपये का चन्दा किसानो से मागता हे। धर्मभीरू हिन्दू पाच रूपये दे देते है, भले ही उसके लिए कितनो को हैड नोट ही क्यो न लिखना पडे।[2] दीनदयालु के नाम पर होने वाले इस अत्याचार की कथा का अन्त होता हैं चेतू की मौत से। बूढा गरीब चेतू, जिसकी फसल कई साल से मारी गई है कहा से चन्दा दे सकता था ? लेकिन महन्त जी को चेतू की विपन्नता से क्या मतलब ? उनके चेले चेतू को पीटते है। प्रेमचन्द धर्म के ठीकेदारो के इस अन्याय को सह नही पाते। वे जानते है कि ऐसे अनाचार से स्वय धर्म को क्षति होगी और धर्म के प्रति आस्था का जो सस्कार हिन्दुओ को उपलब्ध है वह शेष हो जायगा। इसी से वह चेतू के मुह मे विद्रोह की वाणी डाल देते है। तभी तो मार खाने पर वह विरोध मे गाली दिये जाता है। अकेला चेतू इस तरह के नृशस अत्याचार का शिकार नही है। जमीदारो के लिए यह रोजमर्रे की बात थी। जमीदार की तीर्थ यात्रा के लिए रैयतो को चन्दा देना पडता था और फिर जमीदार के तीर्थ यात्रा से वापस आने पर किसान को रूपये देकर भगवान का प्रसाद लेना पडता था।[3]

जमीदार किसान का रक्त चूस कर ही मोटा होने के लिए पैदा हुआ करता था। इसलिए यदि वह मनचाहे ढग से अपनी रैयत से पैसे वसूलता है तो इसमे अन्याय चाहे जो

---

[1] सेवा सदन–पृ० ८

[2] सेवा सदन–पृ० ८

[3]

हो अस्वाभाविकता नही है। लेकिन प्रेमचन्द की दष्टि तो कही दूसरी ओर है। वह इस घटना के ब्याज से यह बताना चाहते है कि जमीदार धर्म के नाम पर यह अनाचार कर रहा है और किसान धर्म के नाम पर उसे सह भी रहा है। वारूणी स्नान और महाप्रसाद के नाम पर लगाये जाने वाले चन्दे किसान क्यो देता है ? अपनी धार्मिक धर्मभीरूता के कारण ही तो। प्रेमचन्द का जाग्रत युग हैरान है यह देखकर कि धूर्तता और धर्म के इस गठजोड से किसान की गर्दन पर जो फॉसी का फन्दा है वह बहुत मजबूत हो गया है।

'सेवासदन' मे ठाकुरवाडी के भगवान के आगे वेश्या का नाच होता है और वह भी रामनवमी के दिन, भगवान के जन्मोत्सव के क्रम मे। प्रेमचन्द इस दृश्य को प्रस्तुत कर हमे यह सोचने के लिए विवश करते हैं कि ऐसे देवस्थान देवालय है या वेश्यालय ? मन्दिर मे भोली बाई का नाच देखकर सुमन के हृदय पर वज्र–सा आघात होता है। उसने सुन रखा था कि धन वेश्या के चरणो मे नत हुआ करता है, लेकिन आज वह देख रही है कि धन ही नही धर्म भी वेश्या भोली बाई के चरणो मे नत है। इस प्रकार हमारे इन पण्डे–पुजारियो ने धर्म को भी वेश्या का दास बना दिया था। प्रेमचन्द के विचार मे मन्दिरो के पुजारी और मठाधीश भी सेठो और जमीदारो की ही तरह विषैले नाग थ। उनमे कोई तात्विक अन्तर नही रह गया था। देवालय धूर्तो के अड्डे बने हुए थे– जहॉधन की प्रतिष्ठा थी, धर्म की नही। गगा नहाकर आनेवाली धर्मनिष्ठ सद्गृहिणी सुमन पार्क के बेच पर से इसलिए उठा दी जाती है कि उसके वस्त्र उसकी गरीबी की सूचना दे रहे थे। पतिव्रता सुमन सेठ चिम्मनलाल के ठाकुर द्वारे मे भगवान का झूला देखने की लालसा से जब मन्दिर की ओर जाती हे तब उसे भीतर प्रवेश की सुविधा नही मिलती है। बेचारी आधी रात गए तक मन्दिर के बाहर खडी रहने के लिए विवश होती है। लेकिन वही सुमन जब वेश्या होकर उसी मन्दिर मे भगवान के आगे नाचने–गाने पहुँचती है तो ऐसा लगता है कि उसके चरणो से स्वय मन्दिर पवित्र हो गया। प्रेमचन्द इस घटना को उपस्थित कर यह कहना चाहते हैं कि हमारे धर्म–स्थान ऐसे भ्रष्ट हो गए है कि उनमे किसी सती–साध्वी के लिए जगह नही है, लेकिन वेश्या के आ जाने से वे पवित्र हो जाते हैं।

धर्म के इसी रूप का सुधारको ने विरोध किया था। सुधार–आन्दोलन का यह चित्र 'सेवासदन' मे भी प्रस्तुत है। जिस धर्म–व्यवस्था मे सती से वेश्या को अधिक मान मिलता हो उसके औचित्य को स्वीकार कर लेना स्वय धर्म के प्रति अनाचार कहा जायगा। प्रेमचन्द भी चाहते हैं कि यह अनाचार बन्द हो। सेठ चिम्मनलाल जैसे धर्मप्राण लोगो की यह दशा है

कि वे रामलीला के नाम पर हजार दो हजार रूपये खुशी–खुशी दे सकते हैं। लेकिन किसी हिन्दू–महिला के उद्धार के लिए एक पैसे का दान भी वे नही देते। ऐसे लोगो की विलास बुभुच्छा तृप्त होती है उन हतभागिनी हिन्दू नारियो से ही। भला वे नारी–उद्धार की बाते क्यो करे ? उन आन्दोलनो की सहायता क्यो करे जो नारी की मर्यादा की रक्षा मे निरत हैं ? ऐसे व्यक्तियो से प्रेमचन्द को स्वाभाविक घृणा है। लेकिन समाज का यह कोढ कुछ इस तरह फैल गया है कि प्रेमचन्द को शमन का कोई उपाय नही सूझ पाता। खीझ की इस दशा मे प० दीनानाथ की सुमन के हाथो दुर्गति करवा कर ही सतोष कर सकते थे। धार्मिक सुधार–आन्दोलन के प्रति प्रेमचन्द कितने सजग थे यह 'सेवासदन' के प्रो० रमेशदत्त और विट्ठलदास के प्रमाण से विदित है। श्रीमती एनी बेसेन्ट भारत मे थियासोफिल सोसाइटी के प्रचार–प्रसार के लिए आयी थी। सन् **1914** मे ही भारतीय राष्ट्रीय रगमंच पर उनका पदार्पण हो चुका था। राजनीति मे सक्रिय रूप से भाग लेनें के साथ ही उक्त सोसाइटी के सिद्धान्तो के प्रचार मे भी वे सलग्न थी। थियोसोफिकल सोसाइटी ने भारतीय अध्यात्मवाद की उच्चता की ओर विदेशियो का भी ध्यान आकृष्ट कराने का प्रयास किया था। अवतारवाद पर गहरी आस्था रखकर चलने वाली इस सस्था ने हिन्दुओ मे फिर से अपने धर्म के प्रति विश्वास–भाव जगाया था। पश्चिम के इन विद्वानो के मुह से भारत की उच्चता का यश गान बडा प्रेरक सिद्ध हुआ। प्रेमचन्द के इस उपन्यास मे इसकी चर्चा से यह विदित होता है कि युग का आलोडन किस सूक्ष्मता के साथ उनके उपन्यासो मे मुखरित है। उपन्यासकार इतना सजग है कि यह छोटी–सी बात भी उसके ध्यान से हटती नही है। लेकिन प्रश्न का एक दूसरा पहलू भी है जिसकी स्मृति से प्रेमचन्द उद्विग्न हो जाते हैं। एक विजातीय विदेशी महिला के मुख से भारतीय गौरव का जयघोष सुनकर अपने देशवासियो का अकचकाकर यह सोचना–पूछना कि क्या सचमुच हमारा देश इतना महान है, हमारा धर्म इतना उच्च है, हमारी जडता और मानसिकता दासता का सूचक है। प्रेमचन्द के युग के सुधारको की शिकायत थी कि हमारी धर्म सस्था इतनी पगु हो गई है कि वह हमे उस गौरव का अनुभव भी नही करा पाती जो सहज अनुभवगम्य है। लेकिन ऐसा है क्यो ? प्रेमचन्द ने इसी का उत्तर देते हुए कहा है– "हम उपनिषदो को अंग्रेजी मे पढ़ते हैं, गीता को जर्मन मे, अर्जुन को अर्जुना, कृष्ण को कृष्णा कहकर अपनी बुद्धिहीनता का परिचय देते है।" प्रेमचन्द को इस बात का गहरा परिताप है।

प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' मे यह भी बताया है कि सस्कृत की पुरानी पोथियो से हमारा काम नही चल सकता। यह सत्य है कि हिन्दी मे धर्म–ग्रन्थो की रचना नही हुई, लेकिन हिन्दी मे रामचरित मानस, विनयपत्रिका और भक्तमाल जैसी पुस्तके हैं जिनमे हमारे हृदय मे धर्म की वृति उत्पन्न करने की अपार शक्ति है।

वेश्या जीवन को तिलाजलि देने के बाद जब सुमन ने सादगी से रहना आरम्भ किया उसने रामायण, विनय पत्रिका और भक्तमाल जैसी पुस्तको का पढना आरम्भ किया। इन पुस्तको के साथ–साथ वह विवेकानन्द और रामतीर्थ के लेखो को भी पढा करती।

प्रेमचन्द यह मानते थे कि देश को कूपमडूकता से बाहर निकलना है और नये युग मे धर्म–विषयक जो नयी मान्यताएँ स्थिर हो रही हैं उनके प्रति उत्साहित करना है। यह कहा जा नही सकता कि प्रेमचन्द पर रामकृष्ण मिशन के धार्मिक सिद्धान्तो का प्रभाव किस मात्रा मे था। लेकिन इतना स्पष्ट है कि वे यह मानते थे कि अनुतप्त हृदय के अश्रुवर्षण से बडे–बडे पाप का प्रायश्चित हो जाता है। रामकृष्ण परमहस ने पापी को दया और सहानुभूति का पात्र कहा था और पाप को विरोध का विषय माना था। वे ऐसा मानते थे मॉ काली के समक्ष अपने पापो का अनुभव करके कोई भी पापमुक्त होकर सात्विक हो सकता है। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' की सुमन मे भी पापो का प्रायश्चित करके फिर से नया जीवन आरम्भ करने की आतुर लालसा है।

'प्रेमाश्रम' मे प्रेमचन्द नारी की समस्याओ, धर्म की विकृतियो और जातिसुधार के प्रयासो के निरूपण से आगे बढकर तत्कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था की धुरी किसान और उसके प्रमुखतम शोषक जमीदार सबन्धी कथावृत को चुनते हे। 'प्रेमाश्रम' का फलक बहुत विशाल है और इसमे कथा के इतने कोण है कि उसको अलग–अलग स्तर पर देखा और पहचाना गया है। इसे भारतीय जमीदार वर्ग के प्रतीक ज्ञानशकर की कहानी, जमीदार की वश वेलि की कहानी (जमीदारो की तीन पीढियो की कहानी, जिसके द्वारा भारतीय समाज सामन्तवाद, पूँजीवाद और समाजवाद (या साम्यवाद) तीन युगो का चित्रण हुआ है)[1] , किसान जीवन का महाकाव्य[2] आदि बताया गया है।

एक अन्य विद्वान यह मानते है कि ज्ञानशकर और प्रेमशकर दोनो इस उपन्यास के अविच्छिन्नइ अग हैं। उपन्यासकार ने ज्ञानशकर द्वारा कथा का चरम सीमा तक विकास

[1] प्रेमचद एक अध्ययन – डॉ० राजेश्वर गुरु, पृ० 152
[2] प्रेमचद और उनका युग, पृ० 48

करवाया है और प्रेमशकर द्वारा उसका समापन।[1] इन सभी मतो मे सत्याश है। पर यह भी द्रष्टव्य है कि 'प्रेमाश्रम' मे कई अन्य कथाओ और अन्तर्कथाओ का भी समावेश हुआ है। इसमे जमीदार की वश वेलि की कथा, बलराज, मनोहर तथा अन्य लखनपुर निवासियो की कथा, ज्ञानशकर की कथा के अतिरिक्त डिप्टी ज्वालासिह की कथा, गौसखॉ की कथा, गायत्री की कथा आदि भी समाविष्ट है। इसलिए इसके काव्य की तस्वीर बहुत साफ नहीं बन पाती। वस्तुत प्रेमचन्द प्रमुखतया यही दिखाना चाहते हे कि भारत मे सामन्तवादी युग समाप्त हो रहा था और उसकी जगह पूँजीवादी या महाजनी सभ्यता ले रही है। वह यह मानते थे कि सामन्तवादी युग बहुत अच्छा न था। जमीदार द्वारा तब भी किसान का शोषण होता था। उसके द्वारा बेगार ली जाती थी पर उस युग के राजा तथा जमीदार दोनो का व्यवहार पूँजीवादी युग के शासक और जमीदार से भिन्न और बेहतर था। 'राजा और सम्राट् जन—साधारण को अपने स्वार्थ—साधन और धनशोषण की भट्टी का ईंधन न समझते थे। वे उनके दु ख—सुख मे शरीक होते थे और उनके गुणो की कद्र भी करते थे। वे किसानो को अपनी प्रजा की तरह पालते थे। लडकियों के ब्याह के लिए उनके यहॉ से लकडी, चारा और 25 रूपया बॅधा हुआ था। उस समय लगान मे यदि साल—दो—साल की बाकी पड भी जाती थी तो मालिक कुडकी—बेदखली नही करते थे। पर महाजनी सभ्यता मे सारी मुरौव्वत समाप्त हो गई है। पूँजीवादी युग का जमीदार तो किसान को मात्र अपनी स्वार्थ—पूर्ति का साधन मानता है। वह समझता है कि उसे अपना जीवन ऐश और आराम से व्यतीत करना है और इसके लिए रूपया किसानो से चाहिए। किसान के शोषण की जो बात जमीदार के मन मे है वही सरकारी अफसरो के दिल मे भी है। सभी किसान को असहाय, निरूपाय पशु मानकर मार रहे है और यह सोच रहे है कि इसे जितना मारिये उतना ही वह अनुकूल होगा। 'प्रेमाश्रम' मे जमीदार की पिछली पीढी का प्रतिनिधित्व जटाशकर करते हैं और पूँजीवादी युग के जमीदार का प्रतीक उनका बेटा ज्ञानशकर है। ज्ञानशकर और उनके सहयोगी शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है और लखनपुर निवासी शोषित वर्ग के रूप मे सामने आते है। वस्तुतः इस उपन्यास मे नायक का दर्जा निश्चित रूप से यदि किसी को दिया जा सकता है तो लखनपुर निवासियो का और खलनायक ज्ञानशंकर के सारे समाज (कारिन्दे, अफसर, सरकारी कर्मचारी, पुलिस) को स्वीकार करना होगा। इस प्रकार परम्परागत दृष्टि से देखने पर 'प्रेमाश्रम' को 'नायक विहीन उपन्यास' समझा जा सकता है।

---

[1] प्रेमचद के उपन्यासो का शिल्प—विधान, पृ० 184

प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' मे किसान वर्ग की नानाविध समस्याओ को उभार कर प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द का उद्देश्य समग्र रूप से भारत के कृषक वर्ग की समस्याओ को मुखरित करना था। इसी से इस उपन्यास मे किसी विशिष्ट व्यक्ति को नायक रूप मे उपस्थित नही करके उन्होने सारे गॉव को ही उपन्यास का नायक बना दिया है। इसी कारण 'प्रेमाश्रम' हिन्दी उपन्यास–साहित्य की एक नयी दिशा का सूचक हो जाता है। प्रेमचन्द को गावो की ओर जाने की, किसानो की समस्या को चित्रित करने की प्रेरणा चम्पारण और खेडा आन्दोलन के उस सदेश से प्राप्त हुई जिसमे बताया गया था कि देश के कल्याण के निमित्त छेडे जाने वाले आन्दोलनो का केन्द्र गॉव को ही होना होगा।

'प्रेमाश्रम' मे जिस लखनपुर गॉव के किसानो की कथा आयी है उनपर जमीदार और सरकार के वैसे ही अत्याचार हो रहे है जैसे चम्पारण अथवा खेडा के किसानो पर हो रहे थे और जिनके विरूद्ध उन स्थानो मे सघर्ष किया गया था। इससे यह सोचने का अवसर मिलता है कि जैसे चम्पारण और खेडा मे हमारे राष्ट्र नेताओ ने सक्रिय प्रतिरोध आन्दोलन चलाया था वैसे ही प्रेमशकर लखनपुर के किसानो के बीच बंठकर उन्हे अन्याय का विरोध करना सिखायेगा, उनको अपने स्वत्व पर दृढ रहने की प्रेरणा देगा और जमीदार तथा सरकार का विरोध झेल लेगा। लेकिन प्रेमशकर ऐसा कुछ नही करता। वह उस मानी मे बहुत सक्रिय नही होता। प्रश्न है, ऐसा निष्क्रिय वह क्यो है।

ऐसा दीखता है कि प्रेमचन्द के ध्यान मे प्रश्न की तात्कालिकता नही है। वे प्रश्न की गहराई मे बैठना चाहते थे और किसान–समस्या के विविध पहलुओ को प्रत्यक्ष करके उनका समाधान खोज रहे थे। चम्पारण और खेडा के किसान–आन्दोलन के पीछे एक निश्चित समस्या थी जिसका समाधान भी प्राप्त हुआ। लेकिन उस समाधान क्रे बाद भी किसानो की विपन्नता तो नही मिटी, उनकी दशा का सुधार तो नही हुआ। प्रेमचन्द इसलिए 'प्रेमाश्रम' मे उन मुख्य कारणो को ही प्रत्यक्ष करते है जिनके परिणाम–स्वरूप किसान मिट रहे हैं, बर्बाद हो रहे है।

इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने जिन तामसिक कीट–पतगो का ऊपर उल्लेख किया है वे है सरकारी मुलाजिम जो नियुक्त तो है जनता की सेवा आर भलाई के निमित्त लेकिन वे फसल के समय जोंक बनकर किसान का खून चूसने देहातो मे पहुँच जाते हैं। प्रेमाश्रम मे प्रेमचन्द ने इसी नौकरशाही के अनाचार–अत्याचार की पृष्ठभूमि मे किसान वर्ग की मुसीबतो

का विवरण प्रस्तुत किया है। यह वह नौकरशाही है जिसके बल पर भारत मे ब्रिटिश शासन टिका हुआ था।

प्रेमाश्रम' के लखनपुर गॉव मे हाकिम का दौरा होने वाला है। प्रेमचन्द के शब्दो मे दौरा करने वाला हाकिम कोई अग्रेज साहब बहादुर नही है, ज्वालासिह नामक हिन्दुस्तानी डिप्टी है। यह हाकिम अपने लाव–लश्कर के साथ देहात के मुकदमो की तहकीकात करने आया है। गरीबो को घर बैठे न्यायसुलभ करने आया है। लेकिन गॉव वालो को पूरा पता है कि ज्वालासिह जैसे सरकारी हाकिमो के हाथो न्याय पाना कितना महॅगा पडता है। प्रेमाश्रम' का कादिर कहता ही है–'हाकिमो का दौरा क्या है, हमारी मौत है।'[1] गॉव के दूसरे किसान मनोहर का कहना है कि दौरे के लिए आने वाले हाकिम बडा अन्धेर मचाते है। इन्तजाम करने, इन्साफ करने के लिए आने वाले ये हाकिम किसानो के गले पर ही छुरी चलाते हैं।[2] हाकिमो के जुल्म की यह कहानी अकस्मिक घटना नही है। हर साल ऐसा ही होता है। पिछले ही वर्ष डपट सिह को पूरे तीन सौ की चपत पडी थी।' इसी से तो मनोहर कहता है– 'इससे तो कही अच्छा यह था कि दौरे बन्द हो जाते।' इन दौरो के न होने से गॉव के लोगो को मुकदमे के लिए शहर दौडना पडता लेकिन वह भी बुरा कही होता। जो मुकदमा लडना चाहे, वह चाहे जैसे भुगतान दे। यहॉ तो उनकी भी जान सासत मे है जो मुकदमे के पास फटकना भी नही चाहते। प्रेमचन्द के कहने का आशय यह है कि दौरो से लाभ कुछ होता नही, उल्टे किसानो पर बोझ पडता है। हाकिम एक है तो उसके अमले हजार–हजार। इनके शोषण से कृषक वर्ग बेहाल है। ब्रिटिश–शासन का अत्यन्त कुरूप पक्ष यह था कि देश का अधिपति रहता था सात समुद्र पार। इससे प्रजा क दु ख–दर्द उस तक पहॅुच नही पाते थे। इधर राज्य चलाते थे सरकारी मुलाजिम जो जनता का शोषण करने के लिए पूर्ण स्वच्छन्द हो गये थे, उन पर किसी प्रकार का अकुश नही था। प्रेमचन्द इशारा करते है कि भारतीय किसानो की इस परवशता, विवशता की ओर ध्यान देना होगा।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि अग्रेजी अमलदारी में किसानो को न्याय नही मिल सकता, कानून का सरक्षण नही मिल सकता। ऐसी स्थिति मे किसान सब तरह से निरूपाय है। लेकिन न्याय विधान के इस खोखलेपन और किसान वर्ग की निरीह विवशता का चित्र स्पष्ट कर ही प्रेमचन्द अपने कर्तव्य की इतिश्री नही कर लेते।

---

[1] प्रमाश्रम पृ० 54

[2] वही

[3] वही

उनके आगे प्रश्न है कि किसानो की समस्याओ का समाधान कैसे किया जाय। उनके बलराज के पास लाठी की ताकत तो है। लेकिन प्रेमचन्द को भी हम यह मानते हुए नही देखते कि किसान वर्ग की नानाविध समस्याओ का समाधान क्रान्ति जैसी किसी हिसात्मक क्रान्ति द्वारा सभव है। गाधी जी ने हिसा के स्थान पर अहिसा को प्रतिष्ठित करके एक नये इतिहास का समारभ किया था।

महात्मा जी का जो प्रभाव तत्कालीन युग पर पड रहा था उसने प्रेमचन्द के हृदय मे भी नवीन आशा और आस्था का सचार किया। इसी से प्रेमचन्द ने एक ओर डा० प्रियनाथ चोपडा इर्फान अली और उनके साथ ही मुखबिर बिसेसर का हृदय–परिवर्तन कराया है और उसके कारण सत्य की विजय होती है और परिणामत लखनपुर के किसान अपील मे मुकदमा जीतते है।

दूसरी ओर वे यह भी विश्वास रखते दीखते है कि जमीदारो से भी सर्वथा निराश होने की जरूरत नही है। उनकी आशा है कि जमीदारो का भी हृदय–परिवर्तन होगा और वे अपना इतिहास बदल लेगे। प्रेमचन्द का यही आशावाद मायाशकर के रूप मे जमीदारो की नयी परम्परा की कल्पना कर जाता है।

किसानो के स्वत्व के विषय मे प्रेमचन्द की निश्चित धारणा है कि जिसे उन्होने जमीदार मायाशकर के मुँह से कहलाया है। मायाशकर अपनी जमीदारी का प्रबन्ध भार ग्रहण करते समय घोषित करता है कि भूमि या तो ईश्वर की है, जिसने उसकी सृष्टि की है अथवा उस किसान की है जो उसकी सेवा करता है। ईश्वर की ईच्छा के अनुसार उसका उपयोग करता है, अस्तु, भूमि के ऊपर जमीदार का स्वत्व नही हो सकता। जमीदार की स्थिति मात्र रक्षक है। वह किसान की रक्षा करता है और इसलिए कर प्राप्त करने का अधिकारी है। लेकिन इसके आगे कुछ नही। मायाशकर मीरास मिल्कियत, जायजाद, अथवा अधिकार के नाम पर जमीदार को इस बात की स्वीकृत नही दे सकता कि वह किसान का शोषण करे। साथ ही वह जमीदारी–प्रथा को वर्तमान समाज–प्रथा का कलक–चिन्ह भी मानता है। उसकी आकाक्षा है कि कर उगाहने के लिए जमीदारी की सस्था के बदले किसी किसी अन्य व्यवस्था की कल्पना की जाय।

प्रेमचन्द यह भी चाहते है कि किसानों को न्याय सुलभ हो, उनको अपना पक्ष प्रस्तुत करने की सुविधा हो और इसलिए वे चाहते है कि अदालत से ही सरकार के प्रतिपक्ष के वकील को भी नियुक्ति की जाय। पुलिस के कारण किसान की जो तबाही है उसका अन्त

तो तभी हो सकता है जब पुलिस की नौकरी मे सेवा भाव से प्रेरित सच्चरित्र व्यक्तियो की नियुक्ति की जाय। सरकार जब तक पुलिस मे चुन–चुनकर ऐसे लोगो को बहाल करती रहेगी जो जनता को अधिक से अधिक दबा सके तब तक पुलिस से जनता का लाभ नही हो सकता है। लेकिन यह तो तब होगा जब शासन पुलिस को रक्षक की स्थिति में रखने के न्याय का अनुभव करे।

'प्रेमाश्रम' मे कथाओ – अर्न्तकथाओ के फैलाव अनेक सयोगो, हत्याओ, आत्महत्याओं के समावेश आदि ने इसके रूप हो काफी विकृत कर दिया है। साथ ही कृत्रिम सुधारवादी समाधान का आकर्षण भी सघर्ष की महाकाव्योचित गरिमा और प्रभाव की सघनता को फीका बना देती है। इसलिए 'प्रेमाश्रम' एक उल्लेखनीय उपन्यास होते हुए भी महान उपन्यास नही बन पाता।

'रगभूमि' मे प्रेमचन्द औद्योगीकरण' की समस्या को उठाते हैं। इसकी प्रधान कथा सूरदास को लेकर रची गई है जो जान सेवक के कारखाने से अपनी तथा गॉव की जमीन बचाने के लिए मरते दम तक सघर्ष करता है। यह जमीन उसके पुरखो की यादगार है और इस पर गॉव के जानवर भी चरते है। सूरदास यह भी मानता है कि कारखाना बनेगा तो गॉव मे दुराचार फैलेगा। वह कहता है–" सरकार बहुत ठीक कहते है, मुहल्ले की रौनक जरूर बढ जायेगी, रोजगारी लोगो को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहॉ तक रौनक बढेगी, वहॉ ताडी–शराब का भी तो परचार बढ जायगा कसबियॉ भी तो आकर बस जाएँगी, परदेशी आदमी हमारी बहू–बेटियो को घूरेगे, कितना अधरम होगा। दिहात के अपना काम छोडकर मजूरी के लालच से दौडेगे, बुरी–बुरी बाते सीखेगे और अपने बुरे–बुरे आचरण गॉव मे फैलायेगे" (रगभूमि, पृ० 88)। अपनी इसी धारणा के अनुरूप सूरदास औद्योगीकरण और इससे जुडी हुई पूँजीवादी प्रवृतियो से लडता है। उसकी लडाई का एक स्तर और भी है, जिस पर वह स्वार्थ से पागल बने हुए गॉव वासियों की ईर्ष्यालु प्रवृतियो से सघर्ष करता है। उसकी लडाई के शस्त्र सत्य, अहिसा, असहयोग और सत्याग्रह हैं। इसे देखते हुए विद्वानो ने सूरदास को गाधी जी का प्रतीक ठहराया है। सूरदास का सघर्ष विफल रहता है, जमीन छिन जाती है और मिल चल निकलती है। मरते समय सूरदास कहता है–"तुम जीते, मैं हारा। यह बाजी तुम्हारे हाथ रही, मुझसे खेलते नहीं बना। तुम मॅजे हुए खिलाडी हो, दम नही उखडता, खिलाडियो को मिलाकर खेलते हो और तुम्हारा उत्साह भी खूब है। हमारा दम उखड जाता है, हॉफने लगते हैं और खिलाड़ियो को मिलाकर नही खेलते, आपस में

झगडते है हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नही, रोये तो नही, धाँधली तो नही की। फिर खेलेगे, जरा दम ले लेने दो, हार–हार कर तुम्ही से खेलना सीखेगे और एक–न–एक दिन हमारी जीत होगी,जरूर होगी।" (रगभूमि, पृ० 558)। इस प्रकार सूरदास के माध्यम से प्रेमचन्द 'आर्थिक– सामाजिक स्तरो पर पूँजीवाद के फैलते प्रभाव और पूँजीवाद से लडते हुए स्वाधीनता की कामना रखने वाले भारतीय समाज की कथा अकित करते हैं। इसके साथ ही स्वाधीनता सग्राम की असफलता से उत्पन्न निराशा और पराजय–बोध का सकेत करते हुए फिर से सघर्ष की प्रेरणा देते और आशा की किरण जगाते हैं।

'रगभूमि' के सूरदास का पूँजीपति जान सेवक के साथ जमीन के मामले को लेकर सघर्ष होता है इस सघर्ष को किसी भी स्थिति मे अग्रेज विरोधी सघर्ष नही कह सकते। फिर भी यह तो सत्य ही है कि सूरदास अपने अधिकार ओर स्वत्व के प्रति वैसे ही तत्पर और सन्नद्ध है जैसे सारा राष्ट स्वराज्य–प्राप्ति के लिए सन्नद्ध है।

सूरदास अपने पुरखो की जमीन की रक्षा के लिए प्राणपन से भिडा हुआ है। वह जानता है कि वह शक्तिहीन है, दुर्बल है, गरीब है, अपन विरोधियो से लड सकने की स्थिति मे नही है। फिर भी वह कमान रख नही देता। ईश्वर पर पूर्ण आस्था रखकर अपने स्वत्व की रक्षा के लिए सत्याग्रह करता है। सूरदास का यह सत्याग्रह असहयोग आन्दोलन का इस अर्थ मे प्रतिरूप है कि प्रबल ब्रिटिश राजसत्ता के विरूद्ध गाधी जी केवल आत्म–बल के सहारे लडने के लिए खडे हुए थे। सूरदास यह जानता हं कि आज की दुनिया मे रूपये वाले सब कुछ कर सकते है। उसे यह भी अच्छी तरह मालूम है कि उसकी जमीन उसके न देने पर भी उसके हाथ से निकल जायेगी। लेकिन इससे निराश होकर वह अन्याय और शोषण को सह ले यह भी तो अधर्म है। अन्याय करना ओर अन्याय सहना दोनो से अन्याय को ही पोषण मिलता है। गाधी जी के युग का सूरदास परिणाम के प्रति सर्वथा निरपेक्ष रह कर अपनी शक्ति भर अन्याय का विरोध करता है। सूरदास ने अन्याय का विरोध करने के लिए जो प्रणाली अपनायी है वह वही है जिसे लेकर गाधी जी उपस्थित हुए थे। ऐसी लडाई मे ईर्ष्या–द्वेष के लिए स्थान नही होता। कुछ लोग लाठिया लेकर जब सूरदास की जमीन पर पहुँच कर हिसात्मक कार्रवाई करने के लिए उतारू होते है तो सूरदास एक सच्चे सत्याग्रही की तरह आपत्ति करता है।

'रगभूमि' के जिस दूसरे पात्र को गाधी से प्रभावित बताया गया है वह है कुँवर विनय सिह। विनय सिह को गाधी जी से प्रभावित इसलिए बताया जाता है कि वह जिस

बात को ठीक समझता है उस पर अडने का उसके पास मनोबल है। उसकी इस वृति का प्रमाण 'रगभूमि' मे उस जगह प्राप्त होता है जहा वह डाकिये की रक्षा मे तत्पर होकर अन्यायी का विरोध करता है। विनय सिह को गाधीवादी आदर्शो का अनुयायी इसलिए भी कहा गया होगा कि वह वीरपाल सिह की सहायता से जेल से भागने से इन्कार करता है। गाधी जी ने भी अग्रेजो का विरोध करने के बाद भी उनके दिये हुए दण्ड को सदा स्वीकार किया था।

किन्तु, ये तो ऊपरी बाते है। विनयसिह गाधीवाद को मूर्त करता है यह मानते भी नही बनता। विनयसिह समाज की सेवा करना अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझता है। किसी लोभ अथवा लाभ के कारण अपने इस व्रत को भग करने मे वह असमर्थ है। वह यह भी जानता है कि रियासतो मे बडी अव्यवस्था है, कुशासन है। फिर भी वह वीरपाल सिह की तरह उसके विरूद्ध सशस्त्र विद्रोह करना नही चाहता। क्योकि आग से आग की शान्ति नही होती। अग्नि के शमन के लिए जल की आवश्यकता होती है। विनयसिह आतकवाद मे विश्वास नही रखता। लेकिन इतने से ही उसे गाधीवादी कह दिया जाय यह भी ठीक नही। विनयसिह की कार्य प्रणाली मे हिसा के लिए स्थान नही है। लेकिन सूरदास और विनयसिह मे अहिसा के प्रति आस्था को लेकर स्पष्ट अन्तर है। सूरदास अहिसा को विश्वास के रूप मे ग्रहण करता है और उसे वीरो का अस्त्र मानता है अपाहिजो अन्धो के लिए सहारे की लाठी मात्र नही। इधर विनयसिह अहिसा को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन मात्र समझता हे, इस साधन की, इस अस्त्र की चिन्ता उसे बराबर बनी रहे ऐसा नही है। उसका अगला इतिहास इस विषय मे प्रमाण है।

रगभूमि मे देशी राज्यो की प्रतिक्रियावादी भूमिका का अकन भी अवलोकनीय है। अग्रेजी साम्राज्यवाद के एजेन्ट तथा प्रजा के शोषक के रूप मे उनका चित्रण करके प्रेमचन्द ने अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त विनय–सोफिया की प्रेम–कहानी जैसी कुछ प्रासगिक कथाएँ भी है, जिनका मुख्य कथा से कोई सम्बन्ध नही प्रतीत होता। फिर भी समूचे तौर पर यह कहा जा सकता है कि रगभूमि अपने युग की सघर्ष–गाथा को वाणी देने और अपने अन्त के 'त्रासद भाव' की दृष्टि से उल्लेखनीय

उपन्यास है। 'यह त्रासद भाव कथा को जिस किस्म की गहराई देता है, वह प्रेमचन्द के उपन्यासो मे पहली बार आई है।'[1]

'कायाकल्प' की कथा के तीन बिन्दु है– चक्रधर, रानी देवप्रिया और तीसरा किसान जनता। चक्रधर का लडका शखधर आगे चलकर देवप्रिया से मिलता है और पता चलता है कि वह भी उसका पूर्वजन्म का पति था। शखधर के देहावसान के बाद देवप्रिया भोगविलास की जिन्दगी छोडकर फिर से जगदीशपुर पर राज्य करने लगती है। चक्रधर शुरू मे एक विद्रोही के रूप मे उभरता है। उसे इसके लिए नाना प्रकार के कष्ट झेलने पडते है पर बाद मे उसमे लोभवृत्ति जागृत होती है और उसकी सद्वृतियॉ लुप्त हो जाती हैं। असद् वातावरण मे नैतिक दृष्टि से पतित वह एक व्यक्ति के प्राण भी ले लेता है। पर उसकी आत्मा मरती नही है और वह वैराग्य ले लेता है।

विशालसिह के माध्यम से प्रेमचन्द राजाओ की स्वार्थ–लोलुपता, शोषण, अत्याचार और अग्रेज–भक्ति का चित्रण करते है। रानी देवप्रिया और विशालसिह के सन्दर्भ मे इन राजाओ की विलासिता की तस्वीर भी खीचते है। इनके बीच किसानो की दुरवस्था और उनके द्वारा सत्ता के दमन के प्रतिरोध और बेगार के विरूद्ध सघर्ष की मार्मिक कथा को भी नियोजित किया है। 'कायाकल्प' साम्प्रदायिकता की समस्या को उजागर करने की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इस दृष्टि से वह सेवासदन स अगला पडाव है। प्रेमचन्द हिन्दू–मुस्लिम एकता की भावना को चक्रधर के शब्दो मे इस प्रकार प्रतिष्ठित करते हैं–"बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है, जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू।" (कायाकल्प, पृ० 227)। युगीन परिस्थितियो और साम्प्रदायिक दगो के सन्दर्भ मे प्रेमचन्द का साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करने का यह प्रयास निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है।

रियासती प्रजा की दशा के सम्बन्ध मे प्रेमचन्द ने कायाकल्प' की रचना के पूर्व 'रगभूमि' मे प्रकाश डाला था। 'रगभूमि' मे प्रजा की सेवा–सहायता के लिए सेवा समिति नामक सस्था की भी प्रस्तुति की गयी है। कायाकल्प' मे एक बार फिर से प्रेमचन्द देशी रियासतो के विषय मे विचार करते हैं। इस उपन्यास का चक्रधर अपनी सेवा समिति द्वारा रियासती प्रजा मे जागरण सदेश फैलाता है, उनके बीच शिक्षा का प्रचार करता है, स्वार्थान्ध अमलो के फदों से उनको बचाने का उपाय करता है और इस प्रकार उन्हें उपदेश देता है

---

[1] प्रमचद पृ० 137

कि वे अपने को मनुष्य बनावे, मनुष्य समझे और किसी स्वार्थ के वशीभूत अत्याचारी राज्यकर्मचारियो की चिरौरी न करे। ('कायाकल्प', पृ० 159-160)।

'रगभूमि' से ही यह पता चलता है ताल्लुकेदारो के परिवारो मे भी जागरण–सदेश पहुँच चुका है। कुवर विनय सिह इस विषय मे प्रमाण है। 'कायाकल्प' का विशाल सिह भी एक ऐसा ही पात्र है जो प्रजा की तबाही से दुखी होता है। लेकिन यही विशाल सिह जब रियासत का राजा बनता है उसके सारे आदर्श तिरोहित हो जाते हैं। चक्रधर ने बडे स्पष्ट शब्दो मे उसके प्रति यह शिकायत की है–"अभी बहुत दिन नही गुजरे कि राजा साहब के विचार मेरे विचारो से पूरे–पूरे मिलते थे। उन्हे अपने विचारो को बदलने के नये कारण हो गये हो, मेरे लिए कोई कारण नही।" (वही, पृ० 160)।

विशाल सिह के राज्याभिषेक के अवसर पर हल पीछें दस रूपये प्रजा से रियासत की प्रथा के अनुसार वसूलने का निश्चय होता है। चक्रधर सेवा–समिति के सेवको के साथ इस वसूली के विरूद्ध आन्दोलन खडा करने के लिए गॉव का दौरा करता है। यही से उसका राजसत्ता से सघर्ष आरम्भ हो जाता है। चक्रधर को इस बात की पीडा है कि पढे–लिखे लोग ऐसे पशु हो गए है कि वे उनकी गर्दन दबाते हैं–जिनको गले लगाना चाहिए था और इतने जड हो गए है कि जिनसे लडना चाहिए उनके तलुए चाटते हैं। राजा विशाल सिह से उसके प्रगतिशील विचारो के करण बडी आशा के लिए सभावना थी लेकिन गद्दी पर बैठने के छ महीने के भीतर ही उसने पुराना ढङ्ग अख्तियार कर लिया। पराधीनता की परम्परा जिनकी नस–नस मे व्याप्त है सद्वृतिया और सद्गुण उनके पास या तो पहुँच नही पाते, जो भूले–भटके आ भी गये तो रह नही पाते। राजा विशाल सिह इस बात का प्रमाण है। लेकिन अब प्रजा जग चुकी है। चौधरी ने ठीक ही कहा है–'जब लात खाते थे तब खाते थे अब न खायेगे।' स्पष्ट है सेवा–समिति ने रियासती प्रजा को अपने अपमान और अपने प्रति होने वाले अनाचार के विरूद्ध सिर उठाना सिखला दिया है।

किसी प्रकार का प्रत्यक्ष सघर्ष करने के पूर्व जैसे गाधी जी और दूसरे काग्रेस नेता अन्यायी को अन्याय करने से रोकने का प्रयास करते थे वेसे कि 'कायाकल्प' का चक्रधर राजा विशाल सिह के पास जाकर उसे समझाता–बुझाता है। लेकिन सम्पत्ति और वैभव के घटाटोप मे राजा विशाल सिह का सारा विवेक नष्ट हो चुका है। इसका परिणाम होता है–सघर्ष। रियासतो में जन–संगठन का कार्य जोर पकड़ता जा रहा था। सन् 1927 में तो

जाकर अखिल–भारतीय–रियासती–जन–सम्मेलन (आल इडिया स्टेट्स पीपुल कान्फ्रेन्स) नामक सस्था का विधिवत प्रथम अधिवेशन भी हुआ। इस सस्था ने रियासती प्रजा मे जागरण–सदेश फैलाया। अब रियासतो की जनता भी जगने लगी, अपने अधिकारो को पहचानने लगी और यह अनुभव करने लगी कि ब्रिटिश भारत की पराधीन जनता से उसकी स्थिति किसी भी रूप मे अच्छी नही है।

'कायाकल्प' मे सन् **1924–28** की कालावधि के बीच जो साम्प्रदायिक दगे हुए, उनका चित्र प्रस्तुत है–

हिन्दुओ और मुसलमानो के परस्पर सघर्ष का एक बडा कारण गाय की कुर्बानी का प्रश्न था। लेकिन सच तो यह है कि गाय की कुर्बानी अपने मे एक महत्वपूर्ण प्रश्न नही थी, मुख्य थी कुर्बानी के पीछे छिपी हुई भावना। प्रश्न अधिकार का था–जिद का था। हिन्दुओ को यह सुझाया जा रहा था गाय उनकी सस्कृति के अन्तर्गत मातृ रूप है और उधर मुसलमानो को यह बहकाया जा रहा था कि गाय की कुर्बानी करना उनका धार्मिक अधिकार है और अपने धार्मिक कृत्य के लिए उनकी पूर्ण स्वच्छन्दता होनी चाहिए। इसलिए मुसलमान हिन्दुओ के मुहल्ले मे ही कुर्बानी करेगे।

जाहिर है, ऐसी स्थिति मे हिन्दू यही समझेगे कि उनकी धार्मिक भावना पर कुठाराघात हो रहा है। इस तरह दोनो के बीच सघर्ष के लिए आधार तैयार हो जाता है। प्रेमचन्द के 'कायाकल्प' मे इस स्थिति की भयानकता का सशक्त दिग्दर्शन कराया गया है।

कायाकल्प' मे मुसलमानो का नेता ख्वाजा महमूद फरमाता है–'जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाय उसे एक हजार हजो कर सवब होगा।'

अब हिन्दू भी क्यो कर चुप बैठे रहे। ? काशी क पण्डितो की व्यवस्था है–'एक मुसलमान का बध एक लाख गोदानो से श्रेष्य है।'

देश जब सदियो की गुलामी के बन्धन से मुक्त होने के लिए छटपटा रहा हो, धार्मिक मदान्धता को पश्रय देना किस राष्ट्रवादी अच्छा लगेगा ? ऐसे अवसर पर राष्ट्रवादी साहित्यकार का दायित्व होता है कि वह भेदभाव पैदा करने वाली शक्ति पर प्रहार करे और निष्पक्ष होकर अपनी जाति–सीमा से ऊपर उठकर सत्य और केवल सत्य का सदेशवाहक हो जाय।

'कायाकल्प' का चक्रधर प्रेमचन्द के अपने विचारो को प्रकट करता है और यशोदानन्दन और ख्वाजा महमूद को लक्ष्य कर कहता है–दोनो आदमी फिर धर्मान्धता के

चक्कर मे पड गये होगे। जब तक हम सच्चे धर्म का अर्थ न समझेगे हमारी यही दशा रहेगी। मै तो नीति को ही धर्म समझता हूँ और सभी समुदायो की नीति एक–सी है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध सभी सत्कर्म और सद्विचार की शिक्षा देते हैं।'

स्पष्ट है, प्रेमचन्द आर्य समाजी पीछे हैं, राष्ट्रवाद के प्रचारक पहले हैं। यह सत्य है कि प्रेमचन्द का झुकाव आर्य समाज की तरफ था और वे उसके सदस्य भी थे। लेकिन प्रेमचन्द उसके अन्धानुयायी नही थे। प्रेमचन्द आर्य समाज को तो पसन्द करते थे किन्तु उसके सघर्षशील रूप के प्रति जिसके अन्तर्गत वह शुद्धि आन्दोलन चाहता था–वह बहुत उत्सुकता नही रखते थे। आर्य समाज का कहना था कि यदि हिन्दओं को मास खिलाकर अथवा कलमा पढाकर मुसलमान बनाया जा सकता है तो फिर जनेऊ पहना कर किसी मुसलमान को हिन्दू क्यों नही बनाया जा सकता ?

प्रेमचन्द ने आर्य समाज के इस कार्य को बहुत नही सराहा। यह शायद इसलिए कि ऐसे प्रतिक्रियात्मक भावो के प्रचार से हिन्दू–मुस्लिम समस्या के समाधान में मदद नही मिलती थी बल्कि सनातनी को ही उत्तेजना मिलती थी। शिलीमुख जैसे कुछ आलोचको को प्रेमचन्द से इस विषय मे शिकायत भी है। वे ऐसा कहते हं कि प्रेमचन्द ने मुसलमानो के प्रति ऐसा कहकर पक्षपात किया है।[1] किन्तु पो० शिलीमुख प्रेमचन्द की आलोचना करते समय देश की तत्कालीन परिस्थितियो के प्रति ऑखे बन्द कर लेते हैं। सन् 1924–25 मे देश के नेता राष्ट्रीय हित का ध्यान करके किसी भी कीमत पर देश मे आपसी ऐक्य बनाये रखना चाहते थे। प्रेमचन्द के एतद्विषयक विचारो को नेताओ की इसी भाव–स्थिति के सदर्भ मे ग्रहण करना उचित होगा।

'कायाकल्प' मे देवप्रिया और उसके पति के तीन–तीन जन्मो की जो कहानी आयी है वह क्षेपक जैसी जान पडती है। आलोचको ने तदर्थ 'कायाकल्प' की आलोचना भी की हे। इस योजना के पीछे प्रेरणा रूप है– श्रीमती एनी बेसेन्ट की थियासोफिकल सोसायटी का प्रभाव।

भारत के मनीषियो ने बताया है कि मनुष्य अपने कर्मो का भोग भोगता है और तदर्थ उसे बार–बार जन्म धारण करना पड़ता है। 'कायाकल्प' मे इसी धारणा के फलस्वरूप देवप्रिया का पति फिर–फिर जन्म लेकर अपनी पत्नी के पास आता है। मनुष्य की आत्मा की

---

[1] प्रमचद और गोर्की, पृ० 312

अतृप्त लालसाएँ उसे बार–बार ससार मे भेजती हैं। 'कायाकल्प' की देवप्रिया का पति भी कहता है– यह अतृप्त तृष्णा फिर–फिर मुझे तुम्हारे पास लायेगी।'

देवप्रिया और उसके पति का वृतान्त एक अन्य कारण से भी उल्लेखनीय है। देवप्रिया का पति स्वय अपने उद्धार के लिये जिस अर्थ मे प्रयत्नशील है उसी अर्थ मे वह देवप्रिया की वासनात्मक वृत्तियो के शमन के लिए भी उत्सुक है।

हिन्दुओ ने धार्मिक साधना के क्षेत्र मे स्त्रियो को बाधक माना है। कबीर जैसे कुछ सत ऐसे अवश्य थे जिन्होने गृहस्थी बसायी थी और स्त्री–सगति को सर्वथा त्याज्य नही माना था। इसके पीछे उनका वैष्णव आदर्श था जो अनासक्त कर्म विधान मे विश्वास रखता था। लेकिन ऐसे सतो को भी कामिनी–रूपिणी माया बाधक स्वरूप दिखी थी। इस कारण नारी धर्म साधना के क्षेत्र मे अनाहत थी।

प्रेमचन्द को धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बरो से चिढ है। फिर भी वे सर्वथा निराश नही है। भविष्य के प्रति वे निश्चय ही आशावान है। इसीसे वे मानते हैं कि स्थिति बदलेगी और ससार का भावी धर्म सत्य, न्याय और प्रेम के आधार पर बनेगा।

पर इन विशेषताओ के बावजूद 'कायाकल्प' शैल्पिक दृष्टि से अत्यन्त दुर्बल उपन्यास है। अलौकिक एव चमत्कारपूर्ण घटनाओ, सामाजिक चेतना की गौणस्थिति जैसे तत्वो ने इसे प्रेमचन्दीय कथा परम्परा से हटा हुआ उपन्यास बना दिया है और यह रचना 'कति' नही हो पायी।

'निर्मला' एक प्रकार से 'प्रेमा' और 'सेवासदन' की परम्परा का उपन्यास है। इसमे भी नारी–जीवन की समस्याओ को लिया गया है। पर एक दूसरी दृष्टि से उनसे भिन्न कोटि का भी है, क्योकि यहॉ उन्होने किसी सेवासदन या विधवाश्रम की स्थापना करके पाठक को झूठी सात्वना नही दी और कहानी को 'अपने निर्मम तर्क सगत परिणाम की तरफ अविराम गति से बढने दिया है।'[1] प्रारम्भ मे भारतीय समाज मे पुत्र–पिताओ की दहेज–लोलुपता का चित्रण है, जिसके कारण भुवन से निर्मला का विवाह होते–होते रह जाता है। मध्य मे मुशी तोताराम जैसे प्रौढ व्यक्ति से निर्मला नवयुवती के अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का अकन है। मुशी तोताराम अपनी असमर्थता को अपने पुत्र मसाराम पर सन्देह करके प्रकट करते है। मसाराम की मृत्यु के जियाराम और सियाराम के सन्दर्भ में विमाता और सौतेली सन्तान के सबधो की समस्या को उकेरा गया है। इसके बाद निर्मला की बहन

[1] प्रमचद और उनका युग, पृ० 65

से भुवन के भाई की बिना दहेज के, विवाह की घटना है जिसके मूल मे पश्चात्ताप की भावना काम करती दिखाई देती है। इसके साथ ही समाविष्ट है डॉ० भुवन की निर्मला से छेडछाड और इसके लिए पत्नी की फटकार सुनकर आत्महत्या की अविश्वसनीय घटना। कहानी का अन्त निर्मला की मृत्यु और जियाराम की तलाश मे गए मुशी तोताराम के नाकाम लौटने से होता है। निर्मला की लाश को ठिकाने लगाने का प्रश्न लोगो को चिन्तित किए दे रहा था कि "सहसा एक बूढ़ा पथिक बकुचा लटकाए आकर खडा हो गया। यह मुशी तोताराम थे।" (निर्मला, पृ० 208) कहानी का यह त्रासद अन्त 'गोदान' के अन्त के समान ही त्रासद है और प्रेमचन्द द्वारा परिकल्पित अत्यन्त सफल समापनो मे से एक है।

'निर्मला' निर्दोष कृति न होने पर भी एक अत्यन्त प्राणवान् कृति है, जिसमे निर्मला के माध्यम से भारतीय स्त्री की त्रासद जिन्दगी को उकेरा गया है। मुशी तोताराम की तरूण–पत्नी को सन्तुष्ट करने की हास्यास्पद क्रियाएँ स्थिति की विद्रूपता को उजागर करती है। मसाराम–निर्मला–तोताराम का त्रिकोण एक अलग ही प्रकार का त्रिकोण है, जो अपने द्वन्द्वात्मक स्वरूप के लिए ही नही, अपनी करुण परिणति के लिए भी उल्लेखनीय हो गया हे। सियाराम–जियाराम की विमाता के प्रति प्रतिक्रिया आर सम्बन्धो की जटिलता का व्यक्तिकरण प्रेमचन्द की मानवीय सम्बन्धो की तीखी पहचान का साक्षी है। अनावश्यक प्रतीत होने वाली डॉ० भुवन–सुधा की कहानी मे सुधा के रूप मे एक नारी मूर्ति उभरती है जो पति की आत्म–हत्या के बाद यह कहने का साहस करती है "ऐसे सौभाग्य से मैं वैधव्य को बुरा नही समझती। दरिद्र प्राणी उस धन से कही सुखी है, जिसे उसका धन सॉप बनकर काटने दौडे। उपवास कर लेना आसान है, विषैला भोजन करना उससे कही मुश्किल।" (निर्मला, पृ० 206)

प्रेमचन्द ने अपने एक मित्र केशोराम सव्वरवाल के नाम अपने एक पत्र मे लिखा था कि उन्होने कमोवेश समाज की बुराईयो का पर्दाफाश करने के उद्देश्य से 'निर्मला' और 'प्रतिज्ञा' शीर्षक दो छोटे उपन्यास लिखे है।

निर्मला के प्रतिपाद्य का निर्धारण करते हुए श्री अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' मे लिखा है कि 'निर्मला' मे समाज के जालिम ढकोसले, लेन–देन की नहूसते बेवा की बेचारगी और निपट अकेलापन और अनमेल व्याह की गुत्थियो की प्रस्तुति हुई है'। इस प्रकार निर्मला एक ऐसा छोटा सा सामाजिक उपन्यास है जिसमे मुख्य रूप से दहेज की प्रथा और तद्जन्य सामाजिक विकृतियो का चित्रण हुआ है।

इसके पहले प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' नामक अपने सामाजिक उपन्यास मे बताया था कि जिन कारणो से सुमन वेश्या–वृति अपनाने के लिए विवश हुई उनमें दहेज प्रथा भी एक महत्वपूर्ण कारण थी। 'सेवासदन' के लेखक ने ऐसा अनुभव किया कि यदि हमारे समाज मे दहेज की कुप्रथा नही होती तो सुमन का विवाह गजाधर जैसे व्यक्ति के साथ नही होता। और सुमन वेश्या नही होती। यह ठीक है कि सुमन के वेश्या होने के दूसरे कारण भी हैं लेकिन दहेज की कुप्रथा सबसे महत्वपूर्ण इसलिए है कि पैसे के अभाव मे ही सुमन का विवाह उस व्यक्ति के साथ हुआ जिससे सुमन का कोई मेल हो ही नहीं सकता था।

'निर्मला' मे इसी दहेज की समस्या की बुराइयो के विषय मे प्रेमचन्द ने गम्भीरता के साथ विचार किया है।

निर्मला के पिता वकील उदयभानु लाल की कमाई तो खासी थी लेकिन उनमे सचय–वृति नही थी। इससे वकील साहब की मृत्यु के बाद परिवार आर्थिक–दृष्टि से विपन्न हो गया। वकील साहब के जीवन काल मे ही निर्मला का विवाह आबकारी विभाग के भालचन्द्र सिन्हा के पुत्र भुवनचन्द्र के साथ निश्चित हुआ था। वर पक्ष ने वकील साहब की अच्छी खासी आमदनी को देखकर यह समझ लिया था कि वकील साहब अपनी लडकी की शादी धूम–धाम से करेगे और ऐसे व्यक्ति के साथ दहेज की रकम स्थिर करने से अधिक लाभप्रद यही है कि उस प्रश्न को वकील साहब की मर्जी पर छोड दिया जाय। वकील साहब के दिवगत होते ही भालचन्द्र सिन्हा की आशालता पर अनायास तुषारापात हो गया। इसी से उसने अपशकुन का बहाना लेकर विवाह सम्बन्ध तोड दिया। इस प्रकार निर्मला उस सम्पन्न घर मे बहू बनकर न जा सकी।

इस सम्बन्ध के टूटने के बाद उसकी विधवा मॉ कल्याणी उसके विवाह के लिए योग्यवर की खोज ढूँढ आरम्भ करती है। एक लडका जिसे रत्न कहा जा सकता था मिलता तो है लेकिन घर मे उसको खरीदने के पैसे नही है। एक दूसरे वर का पता चलता है जो रेलवे मे नौकरी करता था। और सब तरह से निर्मला के योग्य था। किन्तु कल्याणी को उस वर के साथ निर्मला का विवाह इसलिए इष्ट नही हुआ कि उसका खानदान अच्छा नहीं था। उस समाज मे हिन्दू–समाज मे व्यक्ति की योग्यता का कोई अर्थ नही था। मुख्य थी कुल परम्परागत प्रतिष्ठा। इस कारण रेलवे की नौकरी करने वाले इस योग्य वर के साथ निर्मला का विवाह इसलिए नही हो सका कि कल्याणी उस हिन्दू समाज की है जिसने कुलीनता के झूठे दम्भ को दॉत से पकड़ रखा है और उसे वह किसी कीमत पर छोड़ेगी भी नहीं। और

इसी कुलीनता का लाभ उठा लेता है तीन बच्चो का बाप तोताराम जो अपनी **45** वर्षो की पक्की उम्र मे कुल **15** वर्षो की फूल–सी कोमल निर्मला का पति बन जाता है। विपन्नता और निस्हायता की स्थिति मे ही भाग्यवाद का सहारा लेकर कल्याणी ने अपनी बेटी का व्याह इस बूढे तोताराम के साथ कराया होगा।

हिन्दू–समाज की दृष्टि मे कन्या की योग्यता का भी कोई अर्थ नही होता। प्रेमचन्द ने बताया है कि बेटे वालो के आगे एक ही बात का महत्व हे और वह है दहेज। इधर हिन्दू घरो मे लडकी क्वॉरी रखी नही जा सकती। इससे वर पक्ष का पलडा भारी पड जाता है।

दहेज की कुप्रथा मॉ की ममता पर भी हावी हो जाती है। उसे अनुभव करना पडता है कि बेटे और बेटी मे प्रत्यक्ष अन्तर है। बेटी के विवाह मे दहेज देना पडता है, बेटे के विवाह मे दहेज मिलता है। इसी से तो कल्याणी भी कहती है–लडके हल के बैल है भूसे खली पर उनका पहला हक है। उनके खाने से जो बचे वह गायो का। सभवत अनजाने ही कल्याणी ने बेटी के लिए गाय शब्द को प्रयोग किया है। किन्तु इससे हिन्दू समाज की कन्या की निरीहता की ओर भी इशारा हो जाता है। सचमुच हिन्दू घरो की अविवाहित कन्याएँ गाय ही तो होती है–निरीह, विवश और मूक।

विवहोपरान्त अपने भरे–पूरे परिवार मे निर्मला को किसी प्रकार का अभाव झेलना नही पडा किन्तु अपने पति तोताराम के पास बैठने और उसके साथ हसने बोलने मे उसे एक प्रकार का सकोच होता था। प्रेमचन्द ने इस सकोच को कारण निर्दिष्ट करते हुए बताया है कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था। अब उसी उम्र का यह तोताराम उसका पति है। तोताराम के प्रेम–प्रदर्शन के प्रति उसे घृणा होती थी। फिर भी निर्मला परिस्थितियो के साथ समझौता करने की अनथक चेष्टा करती है। अपने सौतेले बेटो के प्रति वह स्नेह का व्यवहार भी करती है। किन्तु यही उसका भयकर अपराध हो जाता है। नवयुवक मशाराम और निर्मला के परस्पर सम्बन्ध मे तोताराम को वात्सल्य की पवित्रता के स्थान पर कलुषता नजर आती है।

दहेज–प्रथा का अभिशाप निर्मला की जिन्दगी खराब तो करता ही है तोताराम के परिवार को भी छिन्न–भिन्न कर डालता है। प्रेमचन्द जैसे यह कहना चाहते हैं कि दहेज की इस कुप्रथा का परिणाम किसी एक व्यक्ति को ही भुगतना पडता है ऐसा नही है। उस पाप की आग मे अनेक लोग दग्ध होते है।

तोताराम सोचता है कि उसने निर्मला से विवाह करके ऐसा कौन सा पाप किया कि उसे भगवान का दण्ड मिले। उसी के पिता थे जिन्होने पचपनवे वर्ष में विवाह किया था और उनका जीवन दु खपूर्ण भी नही था। सोचते-सोचते उसे अपने दाम्पत्य जीवन की विफलता का एक ही कारण दृष्टिगत होता है जिसका उल्लेख करते हुए वह कहता है-'पहले स्त्रियॉ पढी-लिखी न होती थी, पति चाहे कैसा ही हो उसे पूज्य समझती थी। तो क्या निर्मला का शिक्षिता होना उसके जीवन की व्यर्थता का कारण है ? तोताराम को इस सम्बन्ध मे पूर्ण निश्चय नही है। विकल्प के एक क्षण मे वह भी यह सोचता है कि या यह बात हो कि पुरूष सब कुछ देख कर भी बेहयायी से काम लेता हो। तोताराम की विचार-सरिणी मे यह दूसरी बात ही अधिक स्थिरता के साथ जाकर बैठती है। उसने कहा ही है-'अवश्य यही बात है। जब युवक वृद्धा के साथ प्रसन्न नही रह सकता तो युवती क्यो किसी वृद्धा के साथ प्रसन्न रहने लगी ?' कहना नही होगा कि तोताराम के मुह मे ये प्रेमचन्द के ही शब्द है। प्रेमचन्द यह बताना चाहते थे कि दहेज-प्रथा की अमानुषिकता किसी युवती को वृद्ध के पास पहुँचा कर या तो उसे जीवन की रिक्तता एव व्यर्थता का अनुभव करने के लिए विवश करती है अथवा उसे कुलटा बनाती है।

हिन्दू-समाज की यह कुप्रथा एक भीषण सामाजिक समस्या के रूप मे समाज के सामने थी। सुधारको का ध्यान इस प्रश्न की ओर गया भी था। किन्तु दहेज के मोह का छूटना बडा ही कठिन व्यापार है। जिस समाज मे भुवनचन्द्र जैसा पढा-लिखा लडका निर्लज्ज की तरह कहता हो कि कही ऐसी जगह शादी करवाइए कि खूब रूपये मिले और न सही एक लाख का तो डौल हो। उस समाज मे आशा के लिए आधार कहॉ रह जाता है ? लेकिन प्रेमचन्द इस विषय मे सर्वथा निराश नहीं थे। वे जानते थे कि नारी-समाज मे दहेज की कुप्रथा के प्रति प्रतिक्रियात्मक विद्रोह भाव उत्पन्न होगा और आज न सही कल पुरूष समाज भी इस प्रथा की बुराई का अनुभव करेगा ही।

निर्मला मे एक लाख का डौल लगाने की आकॉक्षा रखने वाले भुवनचन्द की ही मॉ है रगीली बाई जो अपने पति और बेटे को वेवश विपन्न विधवा कल्याणी से दहेज की मॉग करते देख व्यथित होती है। यदि रगीली बाई की बात चलती तो शायद निर्मला की कहानी कुछ दूसरी ही होती। 'निर्मला' मे ही उसी भुवनचन्द्र की जिसके साथ निर्मला का व्याह पैसे के अभाव मे नही हो सका था पत्नी सुधा भी है जो भुवनचन्द्र की ऑख खोल देती है और इसका शुभ-परिणाम यह होता है कि भुवनचन्द्र के छोटे भाई का व्याह निर्मला की बहन

कृष्णा से बिना–तिलक के ही हो जाता है। प्रेमचन्द यह मानते हैं कि दहेज की प्रथा गलत हे और जो चीज गलत होती है वह सदा सर्वदा तक बनी रह सकती है। आवश्यकता है बुरी चीज के विरूद्ध आन्दोलन करने की। मनुष्य मे इतना न्याय विवेक तो हैं ही कि वह गलत चीज को गलत समझ सके। इसी का उदाहरण है भुवनचन्द्र का वह प्रायश्चित जिसके कारण निर्मला के घर अपनी ओर से सवाद भेज कर वह अपने छोटे भाई के लिए कृष्णा की माग करता है। इस प्रकार उसके जिस लोभ के कारण निर्मला की जिन्दगी बर्बाद हुई है उसका यत्किचित् प्रायश्चित उसकी ओर से हो जाता है।

'प्रतिज्ञा' पूर्ववर्ती उपन्यास 'प्रेमा' के ही पात्रो को लेकर लिखा हुआ उपन्यास है। इस उपन्यास मे भी विधवा–विवाह की समस्या का अकन हुआ है लेकिन जहॉ प्रेमा का अमृतराय पूर्णा और प्रेमा दो विधवाओ से विवाह रचाकर इस समस्या का अधिक तर्कसगत समाधान प्रस्तुत करता है, वहॉ 'प्रतिज्ञा' का अमृतराय विधवा से विवाह की प्रतिज्ञा करके भी अन्त मे विधवा–आश्रम (वनिता आश्रम) से अपने विवाह का बहाना बनाकर इसे टाल जाता है। कमलाप्रसाद–पूर्णा प्रसग के माध्यम से प्रेमचन्द विधवा की सतीत्व सुरक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता की समस्याओ को उकेरते है। प्रेमचन्द मानते थे कि "हमारी लाखो बहनें केवल जीवन–निर्वाह के लिए पतित हो जाती हैं अगर उन बहनो की रूखी रोटियो और मोटे कपडो का सहारा हो, तो वे अन्त समय तक अपने सतीत्व की रक्षा करती रहे। स्त्री हारे दर्जे की ही दुराचारिणाी होती है। अपने सतीत्व से अधिक उसे ससार की और किसी वस्तु पर गर्व नही होता, न वह किसी चीज को इतना मूल्यवान् समझती है ।" (प्रतिज्ञा, पृ० 87)। प्रेमचन्द के उपर्युक्त कथन मे निहित सत्य को नकारा नही जा सकता, पर यह भी स्पष्ट हे कि इसमे नारी की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ की उपेक्षा कर दी गई है। यही नही, स्त्री की आवश्यकताओ की पूर्ति और सतीत्व–सुरक्षा जिस प्रकार पुनर्विवाह द्वारा हो सकती है वैसे वनिता–आश्रम द्वारा कैसे सम्भव है ? 'प्रेमा' मे प्रेमचन्द 'विधवा–विवाह' का समाधान प्रस्तुत कर चुके थे और इसमे भी सैद्धान्तिक रूप से इसको स्वीकृति प्रदान कर देते है। इसे क्रियात्मक रूप मे अकित ने करने के पीछे उनका परिवर्तित दृष्टिकोण ही लगता है। डॉ० रघुवीरसिह को अपने एक पत्र मे वे स्पष्ट कर देते हैं कि 'वे विधवा–विवाह द्वारा हिन्दू–नारी का आदर्श नही गिराना चाहते।'

'प्रतिज्ञा' मे स्थान–स्थान पर पुरूष प्रधान समाज मे स्त्री के पराश्रय और उन पर पुरूष के शासन तथा पुरूष–स्त्री के पारस्परिक असामंजस्य का उल्लेख हुआ है। इसका

समाधान प्रेमचन्द दोनो की समान उन्नति मे ढूँढते हैं –"समाज में स्त्री और पुरूष दोनो ही है। जब तक दोनो की उन्नति न होगी, जीवन सुखी न होगा। ' (प्रतिज्ञा, पृ० 16)।

'गबन' की कथा रमानाथ की कथा है। यह कथा दो नगरो मे विभाजित है – रमानाथ का इलाहाबाद का जीवन, रमानाथ का कलकत्ता प्रवास। इन दोनो खण्डो के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने मध्यमवर्ग की महत्त्वाकाक्षाओ, उसकी पराजयो तथा समझौतावादी प्रवृति को उजागर किया है। नगरीकरण से सम्बद्ध मध्यवर्ग की बेहतर जीवन स्तर अपनाने की आकाक्षा, वास्तविक से उच्चतर दीखने की अभिलाषा उसे पत्नी के गहनो की चोरी, सरकारी रूपयो का गबन ही नही देशभक्तो के विरूद्ध 'मुखबिर' बनने के लिए भी तैयार कर देती है। नगरो और कस्बो मे रहने वाली मध्यवित्तीय युवा पीढी किस तरह मूल केन्द्र से विच्छिन्न होकर मूल्यहीनता की भूलभुलैयो मे भटक रही है, इसे प्रेमचन्द 'गबन' मे बड़ी कुशलता से उकेरते है। नगरीकरण के परिणामस्वरूप आर्थिक और सामाजिक दबावो को झेलते हुए मध्यवर्ग के लिए प्रेमचन्द जो समाधान सुझाते है वह आश्रमवादी न होने पर भी कृत्रिम और बनावटी प्रतीत होता है और गाधीजी के 'गॉव की ओर लौटो' नारे से प्रभावित लगता है। रमानाथ की पत्नी अपने श्रृगार की वस्तुओ को गगा की भेट करती है तो प्रेमचन्द टिप्पणी करते है –हॉ, यह वास्तव मे यात्रा ही थी, ॲधेरे से उजाले की, मिथ्या से सत्य की।' (गबन, पृष्ठ 152) इस कृत्रिम समाधान के अलावा देवीदीन के रूप मे एक आदर्श चरित्र प्रस्तुत करने का लोभ भी प्रेमचन्द सवरण नही कर पाते। इस प्रकार 'गबन' भी प्रेमचन्दीय दुर्बलताओ से पूरी तरह मुक्त नही है पर शैल्पिक स्तर पर मुख्य कथा से देवीदीन, जौहरा, रतन, वकील साहब की प्रासगिक कथाओ की समुचित अन्विति स्थापित करने और सयोगो और चमत्कारपूर्ण घटनाओ से उपन्यास को मुक्त रखने तथा पात्रो के अन्तर्द्वन्द्वो को उकेरने मे लेखक की सफलता और कथ्य की साकेतिक शैली मे प्रस्तुति के कारण 'गबन' शैल्पिक दृष्टि से एक उल्लेखनीय उपन्यास हो गया है। इसके अलावा जर्जर मूल्यो के कुहासे मे भटकते मध्यवर्ग का चित्रण और भारतीय पुलिस के हथकडो के अकन मे लेखक की वस्तुवादी और यथार्थाश्रित दृष्टि ने इसे कृति का दर्जा दिला दिया है।

मूल रूप मे मध्यवर्गीय जीवन की एक समस्या को लेकर चलने वाला यह उपन्यास आगे चलकर सामाजिक उपन्यास मात्र नही रह जाता। सामाजिक उपन्यास के वृत्त से आगे निकल कर नयी राष्ट्रीय चेतना का दिग्दर्शक भी हो जाता है। उपन्यास का नायक रमानाथ उस मध्यवर्ग से आया है जिसे अपनी अवश्यकताओ की पूर्ति के हेतु साधन जुटाने पड़ते हैं।

यह साधन प्राय ऋण है और उससे हटकर न्यास का गबन। रमानाथ गबन के सिलसिले मे भागकर कलकत्ता जाता है जहॉ केवल सन्देह पर उसे पुलिस गिरफ्तार कर लेती है। और वही से लेखक को पुलिस के हथकडो और उसके मनमाने अत्याचार को पर्दाफाश करने का सुयोग मिल जाता है। इस तरह गबन के कथानक के दो हिस्से हो जाते हैं। पूर्वार्द्ध तक तो वह एक पारिवारिक सामाजिक उपन्यास है और उत्तरार्द्ध मे एक प्रकार का राजनैतिक उपन्यास।

'गबन' का रमानाथ म्युनिसिपल बोर्ड के रूपयो का गबन करके घर से अपराधबोध की स्थिति मे निकल भागा था। कलकत्ते मे सौभाग्यवश देवीदीन खटिक और उसकी पत्नी जग्गो जैसी उदार दम्पति के वात्सल्य की छाया उसे प्राप्त हो जाती है और लिखने का काम कर जीविका का अर्जन भी वह करने लगता है। इस प्रकार अपने कलकत्ता –प्रवास मे रमानाथ सत्सगति मे है और मेहनत–मजदूरी करके कालक्षेप कर रहा है। वह समाज या सरकार के विरूद्ध कोई आचरण नही कर रहा है। इससे पुलिस से डरने का उसके लिए कोई कारण नही है। फिर भी गबन के अपराध–बोध का खटका उसके मन मे तो है ही। इसके कारण वह सहज ही पुलिस के चगुल मे फस जाता है।

कहना न होगा कि अग्रजो की पुलिस 100 मे से 99 अवसरो पर अनुमान के भरोसे ही अपने पजे मे गिरफ्तार किया करती थी। पुलिस के आतक के कारण भारत के नागरिक अपने मौलिक अधिकारो की कल्पना भी नही कर सकते थे। अग्रेजो का राज्य सही मानी मे पुलिस राज्य था। इससे उस जमाने मे किसी मे पुलिस का विरोध करने की हिम्मत ही नही थी। ऐसे परिप्रेक्ष्य मे गाधी जी ने भारतीय राष्ट्रीय रङ्गमच पर अवतीर्ण होकर प्रजा के मौलिक अधिकारो की माग प्रस्तुत की और भय के उस भूत को हटाने का उद्योग किया जिसके कारण भारतीय जनता मूक पशु की दशा में पडी हुई थी।

परिणाम हुआ कि अब भारत मे ऐसे लोग भी नजर आने लगे जो अपने अधिकरो के प्रति सजग थे और स्वय कानून की मर्यादा निभाते हुए इस बात की भी अपेक्षा रखते थे कि शासन भी कानून का पालन करे। 'गबन' मे इसी की प्रतिच्छाया वहॉ प्राप्त होती है जहॉ राह चलते जब रमानाथ पुलिस की नजर से अपने को बचाने के लिए आड़ खोजता है तब पुलिस की सतर्क ऑखे यह देख लेती है कि वह उसके किसी काम आ सकता है। रमानाथ सिपाही के हाथ पकड़ने पर आपत्ति करता है और कहता है–वारट लाओ तब हम चलेंगे।

रमानाथ आपत्ति करते हुए कहता है कि वह एक सम्भ्रान्त नागरिक है और उसे अपना अधिकार विदित है। वह कोई देहाती नही जो नागरिक अधिकार के प्रति अनजान हो। लेकिन अग्रेजो की पुलिस नागरिको के अधिकार की चिन्ता कहॉ किया करती थी ?

राष्ट्रभक्त के विरूद्ध जो राजद्रोह के मुकदमे गढकर चलाये जाते थे न्यायालय मे उनकी सफलता के लिए पुलिस को मुखबिर करना पडता था। मुखबिर मामले से सम्बद्ध हो ही यह एकदम जरूरी नही था। पुलिस अपने पक्ष–समर्थन के हेतु झूठे मुखबिर खडा करती थी और उनकी झूठी शहादत के बल पर सरकारी मुकदमो का फैसला सरकार के पक्ष मे हुआ करता था। 'गबन' मे रमानाथ को जिस तरह मुखबिर बनाया गया है उससे मुखबिरो की असलियत का पर्दाफाश होता है।

'गबन' मे रमानाथ को किसी डकैती के मामले मे मुखबिर बनाया गया। सामान्यत डकैती जैसे साधारण मामलो मे मुखबिर का प्रयोग पुलिस वाले नही करते। इससे प्रेमचन्द को अपने आलोचको को सन्तुष्ट करने के लिए यह बताना पडा है कि डकैती का वह मामला एक विशेष महत्त्व का हो गया था। उसके अपराधियो का पता नही चल रहा था और इससे पुलिस कप्तान के आगे छोटे पुलिस कर्मचारियो की अकर्मण्यता सिद्ध हो रही थी। अस्तु, पुलिस के निम्न पदस्थ कर्मचारी बडी तत्परता के साथ उस डकैती के असली अभियुक्तो के बदले मे चाहे जिस किसी निरपराध को फॅसाकर मुकदमा चलाना चाहते थे। पुलिस के ऐसे मुकदमो मे अक्सर निर्दोष आदमी ही दडित होते थे। 'गबन' का दिनेश एक ऐसा ही पात्र है जिसको पुलिस के प्रपच और रमानाथ की झूठी गवाही के प्रमाण पर डकैती के उस मामले मे फॉसी की सजा दी गयी और दूसरे पॉच को दस–दस साल तथा अन्य आठ अभियुक्तो को पॉच–पॉच साल की कैद की सजा मिली।

प्रेमचन्द इस ब्याज से यह बताना चाहते थे कि पुलिस की चाल न्याय पर किस प्रकार हावी हो गयी थी।

उस जमाने मे मुखबिर को अपने जाल मे फॅसाने के लिए पुलिस हर सम्भव अस्त्र का प्रयोग करती थी। 'गबन' मे जौहरा नाम की वेश्या को पुलिस ने मुखबिर रमानाथ के मनुहार के लिए नियुक्त कर रखा था। रमानाथ को जाने क्या–क्या प्रलोभन दिये गये थे।

प्रेमचन्द ने पुलिस के हथकडो का विवरण प्रस्तुत करने के साथ–साथ अॅग्रेजी न्याय–विधान के दोषो की ओर भी सकेत किया है। अग्रेजो का न्याय विधान झूठ पर टिका

हुआ था। कचहरी मे जज के आगे मुकदमे का रूप क्या होगा यह उसी दिन सोच लिया जाता था जिस दिन मुकदमा थाना मे दर्ज होने के लिए आता था। सचाई के ऊपर जितने भी बैठन लगाये जा सकते थे लगाये जाते थे। एक तरह से मुकदमो का पूर्ण नियमन पुलिस के हाथो होता था।

इस प्रकार 'गबन' के उत्तरार्द्ध मे अग्रेजों के पुलिस राज्य की कुरूपताओ का चित्रण किया गया है। जनता की सुरक्षा के नाम पर बनने वाले पब्लिक सेफ्टी ऐक्ट से जनता की जो सुरक्षा और भलाई हो रही थी—'गबन' की इस कहानी से जाहिर है।

'कर्मभूमि' की कथा निर्धन और निम्न जनता की सामाजिक शासकीय पराधीनता से मुक्ति सघर्ष की कथा है।[1] उपन्यास मे निर्धन और धनी दो वर्ग हैं। गॉव के निर्धन किसान और चमार है और नगर के धोबी, नाई, मेहतर आदि। गॉव के शोषक वर्ग का प्रतीक जमीदार महत। शहर की शोषक टोली मे धनी व्यापारी और म्युनिसिपिल बोर्ड के चेयरमैन शामिल है। ॲग्रेजी प्रशासन और उसकी पुलिस की सहानुभूति शोषको के साथ है—वे चाहे शहर के हो या गॉव के। शहर का शिक्षित वर्ग गॉव और शहर दोनो जगहो के शोषितो के पूरी तरह साथ ही नही, उनके सघर्ष को नेतृत्व भी प्रदान करता है। इसलिए कतिपय विद्वानो द्वारा इसे अछूतोद्धार की कथा अथवा लगानबन्दी के आन्दोलन की कथा ठहराया जाना उचित नही कहा जा सकता। यह ता वस्तुत "देश की गरीब और निम्न जाति की जनता द्वारा सरकारी और सामाजिक पराधीनता को जड से उखाड फेकने के सघर्ष—आन्दोलन की कथा है।"[2]

कर्मभूमि' मे प्रेमचन्द सफलता से सामूहिक चेतना को वाणी देते है और इस सत्य को उजागर करते है कि तथाकथित उच्चवर्गों की सारी विलासिता इन निम्न कहे और समझे जाने वाले वर्गो के श्रम पर आधृत है। एक ही शहर मे बसे दो शहरो को प्रेमचन्द उपन्यास मे इस तरह उकेरते है—'गली मे बडी दुर्गन्ध थी। गन्दे पानी के नाले दोनो तरफ बह रहे थे। घर प्राय कच्चे थे। गरीबो का मुहल्ला था। शहरो से बाजारों और गलियों मे कितना अन्तर है ? एक फूल है—सुन्दर स्वच्छ सुगन्धमय दूसरी जड है— कीचड और दुर्गन्ध से भरी टेढी—मेढी लेकिन क्या फूल को मालूम है कि उसकी हस्ती जड से है ?' (कर्मभूमि, पृ० 40)। अछूतो की मूलभूत समस्याओ और उनकी वास्तविक दशा के चित्रण की दृष्टि से

[1] प्रमचद के उपन्यासो का शिल्प विधान पृ० 416
[2] वही

'कर्मभूमि' पहला उपन्यास है। इसके अलावा सन् ३० के बाद जाग्रत और सक्रिय नारी की तस्वीर अकित करने की दृष्टि से यह उल्लेखनीय रचना है। सुखदा, सकीना, नैना, मुन्नी के रूप मे नारी के विविध रूपो को उपन्यास में उकेरा गया है। इससे यह भी लक्षित होता है कि धर्म के विकृत रूप के उद्घाटन से प्रेमचन्द की जो उपन्यास–यात्रा शुरू हुई थी वह 'कर्मभूमि' तक बराबर चलती आई है। गूदड चौधरी के शब्दो मे–"यहॉ के पण्डे पुजारियो के चरित्र सुनो तो दॉतो तले उँगली दबा लो, पर वे यहॉ के मालिक हैं और हम भीतर कदम नही रख सकते।" (कर्मभूमि, पृ० 304)।

'कर्मभूमि' प्रेमचन्दीय कथा–शिल्प की बहुत–सी दुर्बलताओ से मुक्त है। इसमे अस्वाभाविक और चामत्कारिक घटनाओ के लिए कोई स्थान नही है। कथानक मे बिखराव अवश्य आ गया है क्योकि इसमे 'प्रेमाश्रम' के विविध कथा कोणो को जोडने वाला कोई ज्ञानशकर नही है। इस उपन्यास को तो शहर और गॉव दोनो मे चलने वाले संघर्ष की समानता ही एकसूत्रता मे बॉधे प्रतीत होती है।

'कर्मभूमि' मे आन्दोलन की सक्रियता, अछूतो के मदिर प्रवेश के प्रश्न को लेकर प्रकट हुई है। धनी–मानी सेठो के मन्दिर के प्रागण मे कथा सुनने का उत्साह लकर आने वाले अत्यजो को हिन्दू धर्म के रक्षक जब जूते मार कर मन्दिर से बाहर कर देते हैं तब डाक्टर शान्तिकुमार के मन मे विद्रोह – भाव उत्पन्न होता हे।[1] वह यह देखकर हैरान है कि घी मे चरबी मिला कर बेचने–वाले सेठो और रिश्वते खाने वाले मुलाजिमो के लिए तो मन्दिर का दरवाजा खुला हुआ है लेकिन सच्ची निष्ठा लेकर आने वाले हरिजनो के लिए भगवान के मन्दिर का दरवाजा बन्द है।[2] शान्तिकुमार जानता है कि धनियो के इस उत्याचार का अन्त तभी हो सकता है जब अछूत यह समझ ले कि मन्दिर किसी एक आदमी या सम्प्रदाय की चीज नही है। वह हिन्दू–मात्र की चीज है और ऐसी स्थिति मे अछूतो को मन्दिर – प्रवेश के अपने अधिकार पर आत्मोन्नति का सजीव संदेश प्रचारित कर उन्हे सगठित करता है और मन्दिर प्रवेशार्थ मन्दिर के द्वार पर उन्हे ले आता है। शान्तिकुमार जानता है कि अछूतो के इस सगठन को भग करने के लिए दमन हो सकता है, धनियों के इशारे पर गोलियो की वर्षा भी हो सकती है। लेकिन धर्म की रक्षा सदा प्राण देकर की गई

---

[1] कर्मभूमि – 200

[2] वही पृ० 01

है। इसलिए उत्सर्ग के लिए अछूतो को तैयार रहना होगा।[1] शान्तिकुमार न्यायोचित अधिकार के लिए अहिसक आन्दोलन छेडता है। उसका उद्देश्य फौजदारी करने का नही है। वह इतना ही चाहता है कि भगवान के भक्तो को भगवान के मन्दिर मे जाकर उनके दर्शन की सुविधा मिलती रहे। अवश्य ही हिन्दू होने के कारण भगवान तक पहुँचने का उनका जन्म–सिद्ध अधिकार है। इस अधिकार को अछूत अपने अज्ञान के कारण भूल बैठे थे। लेकिन यह भी तो सही है कि जब जग जायें तभी सबेरा है। लेकिन हमारा अनुदार उच्चवर्ग अछूतो को हिन्दू ही कहाँ तक समझता है जो उन्हे मन्दिर मे घुसने दे? सेठों और धनियो को तो शान्तिकुमार के नेतृत्व मे अछूतो की भीड को मन्दिर के द्वार पर देखकर ऐसा लगा होगा जैसे वह भीड उनके स्वत्व, उनकी तिजोरी छीन लेने के लिए बढ आयी है। इसी से वे भीड का मुकाबला करने के लिए शक्ति–प्रयोग करते है। अछूतो की भीड के ऊपर पडे–पुजारियो की लाठियॉ बरस पडती है। शान्तिकुमार को भी गहरी चोट लगती है।[2] इस घटना की प्रतिक्रिया भी हुई और परिणाम स्वरूप पुलिस ने गोलियॉ चलायी। अन्त मे पडे–पुजारियो और धनी–मानी सेठो की मनमानी पर अछूतो की सच्ची निष्ठा की विजय हुई। इस घटना से यह सूचित होता है कि सघ–शक्ति बेबसो'मे भी शक्ति का ज्वार उठा देती है। सेठो की शक्ति बडी थी, उनके पीछे पुलिस की ताकत भी थी फिर भी जनशक्ति के आगे वे सर्वथा निरुपाय सिद्ध हुए।

'कर्मभूमि' मे जो दूसरा आन्दोलन खडा हुआ है उसका सम्बन्ध म्युनिसिपल बोर्ड से है। डॉ० शान्तिकुमार नागरिको के उस वर्ग की सेवा मे लीन है जो उपेक्षित, शोषित, अभाव–ग्रस्त और विपन्न है। रेणुका देवी की सम्पत्ति का ट्रस्टी बन कर वह इस वर्ग के उत्थान के हेतु प्रत्येक मुहल्ले मे अपने सेवाश्रम की शाखाए खोलता है।[3] उसने सेवाकार्य के लिए जो कार्यक्रम स्थिर किया है उसके अन्तर्गत गरीबो को नगर मे सस्ते मकान देने की योजना भी है।[4] इन मकानो के लिए जमीन की व्यवस्था म्युनिसिपल बोर्ड ही कर सकता है। किन्तु, बोर्ड के स्वार्थी सदस्यो के हाथो शान्तिकुमार की आशालता पर तुषारपत होता है। डा० शान्तिकुमार इस दूसरे सघर्ष मे बहुत सक्रिय होने का पहले विचार नही रखता था।

---

[1] वही पृ० 204–5
[2] वही 206
[3] कर्मभूमि – 234
[4] वही 234-5

वह चाहता है कि उसकी इस योजना के पक्ष मे पहले जनमत तैयार हो ले ताकि बोर्ड[1] के सदस्यो को इस बात का अनुभव हो कि जो म्युनिसिपैलिटी स्कूलो और कालेजो और तो और मिलो के लिए जमीन का प्रबन्ध कर सकती है उसे ही गरीबो के लिए सस्ते मकान बनाने के लिए जमीन भी देनी चाहिए। रेणुका देवी की पुत्री सुखदा मे शान्तिकुमार की सी सहनशीलता नही है। जब वह यह देखती है कि म्युनिसिपल–बोर्ड के सदस्यो की खुशामद व्यर्थ गई तब वह उसी जनशक्ति का आह्वान करना चाहती है जिसके खडा होते ही अछूतो के लिए मदिर का दरवाजा खुल गया था। वह यह भी यह भी जानती है कि प्राणो की आहुति इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देनी होगी। लेकिन, वह उसके लिए तैयार है। सुखदा[2] का कहना है कि डाक्टर शान्तिकुमार अनुनय–विनय के रास्ते चल कर गरीबो के लिए बोर्ड से यह रिआयत नही प्राप्त कर सका, उसकी प्रार्थना निष्फल गई तो इससे स्पष्ट है अब अर्जियॉ भेजने से काम चलने वाला नही है, रिआयत न करने का बोर्ड को यदि अख्तियार है तो गरीबो को भी अपने हक पर जान देने का पूरा अधिकार है।[3] फलस्वरूप हडताल का प्रबन्ध होता है और लडाई ठन जाती है। ये हडताली भी उत्पात करने की नियत से नही आते है, सिर्फ यह दिखाने आते है कि बोर्ड के फैसले को उन्होने अन्यायपूर्ण समझ कर स्वीकार नही किया है और वे तब तक हडताल जारी रखेगे जब तक बोर्ड अपने अनुचित निर्णय को बदल नही देता।[4] इस आन्दोलन को भी दबाने के लिए पुलिस पहुँच जाती है। वह दमन करती है और आन्दोलन के सभी नेताओ को जैसे सुखदा, शान्तिकुमार, रेणुका देवी, पठानिन, अमरकान्त एक के बाद एक करके गिरफ्तार कर लेती है। नेताओ की गिरफ्तारी से आन्दोलन ठप्प नही पडता। अन्त मे इसका नेतृत्व ग्रहण करने के लिए नैना आ जाती है। उसका पति सेठ मनीराम उसे इस स्थिति मे देखकर आवेश मे आ जाता हैं और उस पर गोली चला देता है। मनीराम व्यक्तिगत रूप से इस आन्दोलन से प्रभावित नही है–फिर भी वह विरोध मे खडा होकर अपनी ही पत्नी पर गोली चलाता है। इससे स्पष्ट है कि धनियो के हृदय मे गरीबो के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति, समवेदना नही हे। और निहित स्वार्थ वर्ग का एक ही स्वार्थ है। वह यह कि गरीब अनन्त काल तक गरीब

---

[1] वही पृ० 235
[2] कर्मभूमि, पृ० 255
[3] वही पृ० 255
[4] वही पृ० 259
[5] वही पृ० 386

बने रहे, बेचारे बने रहें। किन्तु नैना का यह बलिदान व्यर्थ नही जाता। म्युनिसिपल बोर्ड को अपना पहला निर्णय बदलना पडता है।[1]

'कर्मभूमि' मे किसानो के प्रश्न को लेकर भी एक आन्दोलन चला है। घोर आर्थिक सकट मे पडे हुए किसान अपने जमीदार महत के लगान की रकम दे सकने के योग्य नही रह गये है।[2] स्वामी आत्मानन्द और अमरकान्त के उद्योग से किसान अपने अधिकारो की पहचान करने लगे थे।[3] इस जन–जागरण के कारण कारकुनो–कारिन्दो के लिए अब स्थिति दिन प्रतिदिन विषम होती जा रही थी। मनमाने ढग से वे किसानो पर अब सख्ती नही कर पाते थे। इन सारी बातो को महत जी समझते थे और इसलिए किसानो की प्रार्थना पर यह मान लेते हैं कि उनके असामी कारिन्दो के हाथो सताये नही जायेगे। लेकिन महत जी ने जो कुछ नया वादा किया था उसके पीछे कोई सच्चाई नही थी। यह इससे स्पष्ट है कि जब महत जी ने चालू–लगान मे सरकारी फैसले के आने तक **4** आने की रूपये की दर से छूट देने की घोषणा की तो उनके करिन्दो ने बकाया लगान की वसूली, जिस पर कोई छूट नही थी, के लिए जबरदस्ती करना शुरू किया। प्रश्न चालू अथवा बकाया लगान का नही था। प्रश्न था कि किसानो की आर्थिक स्थिति ऐसी गिर गयी थी कि वे लगान की कोई भी रकम दे सकने की स्थिति मे ही नही थे। महत जी के दरबार मे किसानो की इस असमर्थता का अनुभव नही किया गया और न वैसी कोई नीयत ही थी। ऐसी स्थिति मे अमरकान्त के आगे एक ही उपाय शेष बचता है–लगान–बन्दी।

महत जी की जमीदारी मे होने वाले इस लगान–बन्दी–आन्दोलन के नेता अमरकान्त को सरकार गिरफ्तार कर लेती है। शासनाधिकारी सलीम उसे अपनी गाडी पर बैठा कर जब चल पडता है तब जनता के बीच प्रतिक्रिया–स्वरूप उत्तेजना फैलती है। अमरकान्त भीड को पीछे हटने का आदेश देता है और यह बताता है कि वैसी उत्तेजना से अमरकान्त का आन्दोलन विफल होगा।

अमरकान्त का यह आन्दोलन गाधी जी के नेतृत्व मे चलने वाले राष्ट्रीय–मुक्ति–आन्दोलन, अर्थात सविनय–अवज्ञा–आन्दोलन का प्रतिरूप है। अमरकान्त भी गाधी जी के ही समान कहता है–"यह हमारा धर्म युद्ध है और हमारी जीत हमारे त्याग,

---

[1] वही पृ० 387
[2] कर्मभूमि, पृ० 287
[3] कर्मभूमि पृ० 288

हमारे बलिदान और हमारे सत्य पर है।" गांधी जी भी राष्ट्रीय-मुक्ति-आन्दोलन को धर्म-युद्ध ही तो मानते थे।

अमरकान्त की गिरफ्तारी के बाद सरकार की ओर से मि० घोष ने बडे जोर के साथ दमन कार्य आरम्भ किया। सलीम ने किसानो की दुरवस्था के सम्बन्ध मे सरकार के पास भेजे जाने वाले अपने प्रतिवेदन मे किसानो की हिमायत की थी। यह हिमातयत उसके लिए भारी पडी। उसके कारण उसका स्थानान्तरण कर दिया गया। ब्रिटिश शासन भारतीय अधिकारियो से इस बात की अपेक्षा नही रखता था कि वे उसे जनता की दु ख गाथा का सच्चा वृतान्त सुनाये।

किसानो का यह आन्दोलन अपने लक्ष्य की पूर्ति की दृष्टि से पूर्ण सफल नही हो सका। सरकार ने किसानो की समस्या के समाधान के लिए सात व्यक्तियो की कमेटी बनाने का निश्चय किया। इस आन्दोलन की इतनी ही सफलता कही जा सकती है कि सरकार परम निरपेक्ष स्थिति मे आकर जमीदार को अत्याचार करने के लिए खुला सांड नहीं बनाये रख सकी। उसे कुछ करना पडा। इस विषय पर विचार करने के लिए जिस कमिटी की स्थापना की घोषणा की गयी उसमे किसानो के प्रतिनिधियो को भी रखने से यही स्पष्ट होता है कि सरकार इस किसान आन्दोलन की नितान्त उपेक्षा न कर सकी।

'कर्मभूमि' मे उपस्थित होने वाले ये तीन आन्दोलन या तो अछूत समस्या जैसी साम्प्रदायिक, धार्मिक समस्या, अथवा दीनहीन जनो के बसाने की समस्या अर्थात् विपन्नवर्ग के लिए यत्किचित् सुविधा की उपलब्धि किवा महगाई और लगान के बोझ से दबे हुए किसानो की न्यायोचित माग से सम्बद्ध है। इनमे कोई भी आन्दोलन ऐसा नही है जिसका सम्बन्ध विदेशी सरकार से हो। 'कर्मभूमि' के रचना-काल मे महात्मा गाधी के निर्देशन मे सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन अपने पूरे बल के साथ विदेशी शासन का अन्त करने के लिए चल रहा था।

'कर्मभूमि' मे अछूतो के मदिर-प्रवेश के प्रश्न को लेकर जो इतना बृहत सघर्ष दिखाया गया है वह प्रश्न सामाजिक अथवा साम्प्रदायिक प्रश्न हो सकता है। प्रेमचन्द ने अछूतो की समस्या को अपने एकाधिक उपन्यासो प्रस्तुत किया भी है और वैसा करते समय उसे एक सामाजिक या साम्प्रदायिक समस्या के रूप मे ही उन्होने ग्रहण किया है। किन्तु, 'कर्मभूमि' मे अछूत समस्या का सामाजिक पक्ष प्रेमचन्द का ध्यान खींच कर नही बैठा है। 'कर्मभूमि' के रचना-काल मे परिस्थिति की विडम्बना के वश इस प्रश्न का एक राजनैतिक

पहलू भी हो गया था। 'कर्मभूमि' के लेखक के सामने अछूत समस्या का यह राजनीतिक पहलू ही प्रेरक हो गया है। अग्रेजो ने जब यह देखा कि भारत मे स्वशासन की माग बहुत सशक्त और प्रबल रूप मे खडी हो गयी है और अब उसकी अपेक्षा भी नही की जा सकती तब उन्होने शासन–सुधार के प्रश्न पर विचार करने के लिए गोलमेज परिषद् का आयोजन किया। लेकिन ईमान की बात तो यही है कि अग्रेज भारत मे उत्तरदायित्वपूर्ण स्वशासन की स्थापना करना दिल से नही चाहते थे। इसलिए पहले तो उन्होने हिन्दुओ के सामने मुसलमानो का सवाल रखवाया और बाद मे डा० भीमराव अम्बेडकर जैसे अपने शतरज के मोहरे को अछूतो के नेता के रूप मे खडा किया। अब अम्बेडकर ने अछूतो को हिन्दुओ से सर्वथा स्वतत्र घोषित कर उनके राजनीतिक अधिकारो की सुरक्षा का प्रश्न खडा किया।

गाधी जी इस बात को सह नही पाये कि जनगणना की विवरण–पुस्तिका मे अछूतो को एक पृथक् जाति के रूप मे उल्लिखित किया जाय। उन्होने कहा–'सिख सदैव के लिए सिख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अग्रेज सदा के लिए अग्रेज रह सकते है किन्तु क्या अछूत भी सदैव के लिए अछूत रहेगे ? अस्पृश्यता जीवित रहे इसकी अपेक्षा मै यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू–धर्म डूब जाय।" गाधी जी तो इस बात के लिए भी तैयार थे कि अछूत मुसलमान अथवा ईसाई हो जाये लेकिन वे यह नही सह पाते थे कि प्रत्येक हिन्दू बस्ती मे हिन्दुओ के दो भाग हो जाये। डा० अम्बेडकर को अछूतो का नेता स्वीकार करने से भी उन्होने इन्कार किया। उन्होने बताया कि जो अछूतो को हिन्दुओ से भिन्न एक स्वतत्र जाति मानने का प्रस्ताव करते हैं वे भारत को ही नही पहचानते और इतना भी नही जानते कि हिन्दू–समाज बना कैसे है। गाधी जी ने बडे आत्मविश्वास के साथ यह भी दावा किया कि वे स्वय अछूतो के विशाल समुदाय के प्रतिनिधि है।

गाधी जी और उनके अनुयायी उन सारे कारणो का अन्त करना चाहते थे जिनसे सवर्ण हिन्दुओ और अवर्ण हिन्दुओ अर्थात् अछूतो के बीच भेद–सृष्टि खडी होती है।

'कर्मभूमि' मे डा० शान्तिकुमार एक ऐसा ही व्यक्ति है जो यह मानता है कि भगवान की दृष्टि मे न कोई छोटा है न कोई बडा, न कोई शुद्ध हे और न कोई अशुद्ध, न कोई सवर्ण, न कोई अवर्ण। शान्तिकुमार अछूतो को यह समझाता है कि वे ईश्वर के घर से गुलामी करने का बीडा लेकर नही आये हैं। यह समाज की विडम्बना है कि जो समाज की बुनियाद है उन्हे अछूत समझा जाता है और उनको मंदिरो मे जाने नही दिया जाता। ऐसी अनीति भारत जैसे अभागे देश में ही चल सकती है। प्रश्न है, क्या अछूत अपनी गर्हित

जिन्दगी का सतोष करके अनाचार सहते जायेगे ? नही, ऐसा नही करना है। इसी से शान्तिकुमार उनमे उत्साह पैदा करता है और अपने न्यायोचित अधिकार पर उनको दृढता के साथ खडा रहने की प्रेरणा देता है।

गाधी जी ने अछूत समस्या की राजनीति का पूरे बल के साथ विरोध तो किया लेकिन वह यह तो समझ ही रहे थे कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म और जाति के लिए घोर कलक है।

इस कलक का प्रक्षालन इसलिए भी आवश्यक है कि जो शक्तिशाली साम्राज्यवादी नीति, हमारी दुर्बलताओ का लाभ उठाना चाहती है उसे एक अच्छा अवसर मिल जाता है। गाधी जी ने प्रश्न के इस पहलू को भी पहचाना था। अस्तु, सन् **1930** मे अपनी गिरफ्तारी के समय जनता के नाम अपना अन्तिम सदेश देते हुए उन्होने यह आदेश दिया था कि—हिन्दू किसी को अछूत न माने। गाधी जी ने सन् **1932** अखिल भारतीय 'हरिजन—सेवक—सघ' नामक एक ऐसी सस्था का जन्म दिया जिसे अछूतो की दशा के सुधार के लिए सक्रिय रूप से प्रयत्न करना था। यह सस्था काग्रेस सगठन से स्वतत्र रह कर अछूतो के सम्बन्ध मे गाधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा कारने का उद्योग करती थी। इससे भी स्पष्ट है कि गाधी जी अछूत समस्या को राजनीति से बाहर निकालने के प्रयासी थे।

इस प्रकार 'कर्मभूमि' की रचना की कालावधि मे एक ओर तो अछूतो की, हिन्दुओ से सर्वथा भिन्न जाति के रूप मे परिगणना का विरोध किया गया, और दूसरी ओर अछूतो के उत्थान का भी प्रयत्न हुआ।

'कर्मभूमि' मे इन दोनो आयोजनो के स्पष्ट चित्र मिलते हैं। डा० शान्तिकुमार अछूतो को उन अधिकारो की प्राप्ति के लिए प्रेरणा देता है जो हिन्दू होने के नाते उनका सहज प्राप्य थे और इस विषय की प्रतिरोधिनी शक्तियो से सघर्ष करके अन्तत अछूतो के न्यायोचित प्राप्य की प्राप्ति भी कराता है। दूसरी ओर अमरकान्त है जो रैदासो की गन्दी बस्ती मे ही आकर टिक जाता है। अछूतो के बीच पहुँचने वाला यह अमरकान्त जात—पॉत नही मानता। उनके बीच बिल्कुल उनके जैसे रहकर उनके हृदय मे अपने प्रति विश्वास—भाव पैदा तो करता ही है साथ ही उनको यह भी अनुभव कराता है कि वे उसके जैसे सवर्ण से भिन्न नही है। उनकी हीन स्थिति से उनको ऊपर उठाने के हेतु वह उनको स्वच्छता का पाठ पढाते हुए उन्हे रोज नहाने के लिए प्रेरित करता है, उनके बीच शिक्षा का प्रचार करता

है और उनसे अनुरोध करता है कि वे मरे हुए पशुओ का मास न खाये और मदिरा पीना छोड दे। अमरकान्त का ध्यान अछूतो के उत्थान की ओर है। इसी से वह उन कारणो को मिटाना चाहता है जिनके कारण अछूत हीन समझे जाते है।

'कर्मभूमि' मे दूसरा आन्दोलन गरीबो को सस्ते मकान बनाकर देने की रेणुका देवी के ट्रस्टी डा० शान्तिकुमार और रेणुका देवी की पुत्री सुखदा की प्रगतिशील योजना के प्रति स्वार्थ के वात्याचक्र मे पडे हुए म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्यो की उदासीनता का परिणाम है।

यह आन्दोलन भी ऐसा कुछ नही है जिसके चलाने से देश की आशा-आकाक्षा के प्रति शत्रु-भाव रखने वाली अग्रेज सरकार की कोई प्रत्यक्ष हानि है। फिर भी इस आन्दोलन की ओर ध्यान दो कारणो से जाता है।

पहली बात तो यह है कि प्रेमचन्द यह अनुभव करते थे कि देश के विपिन्न वर्ग की समस्याओ के प्रति निरपेक्ष रहना न तो उचित है और न अब उससे काम चलने वाला है। गाधी जी के नेतृत्व मे अहिसक राष्ट्रीय-आन्दोलन चल रहा था। उसकी सफलता के लिए जनशक्ति की अपेक्षा थी। राष्ट्रीय काग्रेस को अपेक्षित जनबल तभी मिल सकता था जब वह गरीबो की समस्याओ के सुधार का कोई प्रभावशाली कार्य-क्रम ग्रहण करती। गाधी जी ने कुछ समझबूझ कर ही तो नमक-आन्दोलन छेडा था। 'कर्मभूमि' का यह सघर्ष एक ओर गरीबो की सहायता के क्रम मे है और दूसरी ओर इस बात की सूचना देता है कि राष्ट्रीय काग्रेस भारत की कोटि-कोटि दैन्य-जर्जर जनता का प्रतिनिधित्व करने लगी है।

'कर्मभूमि' मे महन्त के असामियो ने जो लगानबन्दी का आन्दोलन चलाया है उसके साथ भी सरकार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो नही ही है। किन्तु उसमे सरकार कही न कही आ ही जाती है। किसानो की माग है कि भयानक मदी को देखते हुए लगान मे छूट दी जाय। महन्त ने अमरकान्त को बताया था कि सरकार जितनी मालगुजारी छोड देगी वह भी किसानो को उतनी ही लगान छोड देगा। उसके कहने का मतलब है कि असामियो को उतनी ही छूट जमीदार की ओर से मिलेगी जितनी स्वय जमीदार को सरकार की ओर से मिलती है। महन्त की यह बात ऐसे दीखती तो वाजिब है लेकिन यह सभव कैसे है कि अरबो कर्ज का भार ढोने वाली सरकार महन्त को जिसके करोडों रूपये बैक मे जमा है मालगुजारी मे छूट दे दे। महन्त जानता है सरकार यह छूट नही देगी और उसे भी कुछ करना-धरना नहीं पडेगा।

महन्त के समर्थन मे, उसकी रक्षा मे सरकार को इसलिए भी पहुँचना था कि देश मे जमीदारो का ही तो एक वर्ग था जिसका पूर्ण समर्थन उसे प्राप्त था। प्रेमचन्द का युग जमीदारो के इस राष्ट्रविरोधी वर्ग को विविध प्रकार से समझाता था कि उसे अपनी प्रजा से भिन्न होकर विदेशी सरकार का साथ नही देना चाहिए। सरकार और तो और अपने प्रबलतम समर्थक जमीदारो के वर्ग के प्रति भी ईमानदार नही है। उसकी नजर मे जमींदार के लिए तभी तक स्थान है जब तक उसे यह दीखता रहे कि अपने असामियो पर जमीदार का दबदबा है। जिस दिन सरकार को यह विदित हो जायगा कि जमीदारो के निकाले जाने पर कोई एक बूँद ऑसू बहाने वाला नही होगा उसी दिन जमीदारो का अन्त हो जायगा। इस प्रकार जनता की नजर मे गिरने का सीधा मतलब जमीदार के लिए होता है उसकी नजर से गिरना जिसके बल पर वह कूदा करता है। लेकिन स्वार्थान्ध जमीदारो पर इन बातो का कोई असर नही होता।

प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' मे जमीदारो से यह उम्मीद की थी कि वे ट्रस्टी (सरक्षक) की भूमिका निबाहेगे और देश मे जमीदारो और किसानो के बीच वर्ग–सघर्ष न आने देगे। लेकिन प्रेमचन्द की यह आशा कल्पना–विलास सिद्ध हुई।

इधर राष्ट्रीय काग्रेस दिनानुदिन जन–सस्था बनकर किसानो के अतिनिकट आती गयी। सन् **1929** के महाधिवेशन के अवसर पर काग्रेस ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया था–

चूँकि काग्रेस को गरीब जनता की प्रतिनिधि बनना है और दिसम्बर के अन्त मे अधिवेशन होने से गरीबो को कपडे के लिए खर्च करना आर दूसरा भी कष्ट उठाना पडता हे, इसलिए यह निश्चय किया जाता है कि अधिवेशन की तारीखे बदल कर फरवरी या मार्च मे ऐसे समय रखी जायॅ जो कार्यसमिति सम्बद्ध प्रान्तीय समिति की सलाह से मुकर्रर करे।

इस प्रकार काग्रेस भावना और कर्तव्य दोनो से यही सिद्ध कर रही थी कि स्वराज्य का आन्दोलन गरीबो को आन्दोलन है। राष्ट्र का सबसे बडा यह वर्ग अन्याय–पीडित था और स्वभावत भारत की कोटि–कोटि जनता की आशा–आकाक्षा को वाणी देने का दावा करने वाली काग्रेस चुप नही बैठी रह सकती थी। गाधी जी ने लार्ड इरविन के पास सधि के लिए सन् **1930** मे जो ग्यारह सूत्री प्रस्ताव भेजा था उसमे भी यह मॉग की गयी थी कि जमीन का लगान आधा कर दिया जाय। लार्ड इरविन के नाम ता० **2** अप्रैल **1930** के अपने पत्र मे गाधी जी ने लिखा था–सरकारी आय का मुख्य भाग जमीन की आय है।

इसका बोझ इतना भारी है कि स्वाधीन भारत को इसमे काफी कमी करनी पडेगी। स्थायी बन्दोबस्ती अच्छी चीज है, परन्तु इसमे भी मुट्ठी भर अमीर जमीदारो को ही लाभ है, गरीब किसानो को कोई लाभ नही। ये तो सदा से बेबसी मे रहे है। उन्हे जब चाहे बेदखल किया जा सकता है। भूमिकर को ही घटा देने से ही काम नही चलेगा। सारी कर–व्यवस्था ही फिर से इस प्रकार बदलनी पडेगी कि रैयत की भलाई ही उसका मुख्य हेतु रहे।

12 अप्रैल 1930 को सविनय–अवज्ञा–आन्दोलन की दिशा का निर्देश करते हुए काग्रेस कार्यसमिति ने जो प्रस्ताव पास किया था उसमे भी लगानबन्दी आन्दोलन खडा करने के लिए आवाहन किया गया था।

'कर्मभूमि' मे किसान–सघर्ष के दो नेता थे। एक था अमरकान्त जो गाधी जी और काग्रेस की तरह शान्तिपूर्ण अहिसात्मक सघर्ष चलाने का पक्षपाती था। वह सघर्ष मे कूदने के पहले महन्त के पास जाकर असामियो की करूण–दशा का वृत्तान्त सुनाता है और उम्मीद करता है कि वह अपनी प्रजा के घोर कष्ट का अनुभव करके ऐसा कुछ करेगा जिससे उनका उपकार हो और सघर्ष की नौबत न आवे। महन्त से उसकी भेट बडी मुश्किल से ही सही लेकिन हो जाती है। किन्तु, वास्तविक लाभ कुछ होता नही है। इजाफा लगान मे छूट मिलती भी है तो बकाया लगान की वसूली को लेकर सख्ती होती है।

अब अमरकान्त को विदित हो गया कि लगान बन्दी के प्रत्यक्ष सघर्ष के बिना कुछ होने से रहा। किसानो का दूसरा नेता है स्वामी आत्मानन्द जो उस उग्र प्रकृति का है। वह चाहता है कि किसान महन्त का मकान और ठाकुरद्वारा घेर ले और जब तक वह लगान बिल्कुल न छोड दे, कोई उत्सव न होने दे। यह तो अमर की हिम्मत है कि उसने आत्मानन्द की उग्र नीति का विरोध किया और बताया कि यह रास्ता उद्धार का नही, सर्वनाश का रास्ता है। परिणामस्वरूप किसानो की ओर से कोई ऊधम नही हुआ।

इधर सरकार यह सोचती थी कि शासन मे कुछ न कुछ खौफ और रोब का होना जरूरी है। किसानो को यदि ऐसे आसार मिल जाये कि लगान की आधी रकम देने से आज काम चल सकता है तो वे कल एक चौथाई रकम ही देना चाहेगे और परसो पूरी लगान की माफी के लिए आन्दोलन खडा करेगे। उसके आगे किसानो की समस्या बिल्कुल भिन्न स्थिति मे खडी है– वह किसानो के बीच उत्पन्न इस जागरण को सह नहीं पाती और पूरे बल के साथ दमन करती है। किसान भी जुल्म के सामने झुकने से मर मिटना अधिक अच्छा समझते है और लडाई ठन जाती है।

आत्मानन्द की उग्र नीति को अमरकान्त ने किसी तरह रोक लिया था लेकिन उसके गिरफ्तार होने के बाद किसानो मे उग्रता फैलती है। सरकार ने अपने अधिकरी सलीम को सिर्फ इसलिए अपमानित किया कि वह किसानो की दुर्दशा से प्रभावित है और उसने सरकार के नाम अपने प्रतिवेदन मे सच्ची-सच्ची बाते लिखी थी। लेकिन सरकार को सच्ची बात सुनने का धैर्य कहॉ था ? यही सलीम सरकार-विरोधी हो जाता है और इसके नेतृत्व मे जो सघर्ष होता है वह सरकारी दमन के आगे ईट का जबाब पत्थर भी हो जाता है।

राष्ट्रीय अहिसक आन्दोलन का इतिहास यह बताता है कि काग्रेस आवाहन तो करती थी अहिसात्मक, शातिपूर्ण सघर्ष का लेकिन सघर्ष कालान्तर मे हिसा पर उतर आता था और वह शान्तिपूर्ण न रह कर उग्र हो उठता था। सरकार काग्रेस के ऊपर इस हिसा का उत्तरदायित्व डाल कर दमन के लिए स्वतत्र हो जाती थी। प्रेमचन्द ने सरकार की इस नीति का भी पर्दाफाश 'कर्मभूमि' मे किया है। उन्होने दिखाया है कि अमरकान्त के नेतृत्व में चलने वाला आन्दोलन अहिसक और शान्तिपूर्ण रहता है। अपने प्रिय नेता अमरकान्त की गिरफ्तारी के समय किसानो मे उत्तेजना फैलती है और वे उसे गिरफ्तार होने देना नही चाहते। किन्तु, अमरकान्त उनको शान्त करता है और सहज भाव से गिरफ्तार हो जाता है। अमरकान्त की गिरफ्तारी के बाद जो कुछ होता है उसका उत्तरदायित्व उस पर नही हो सकता। प्रेमचन्द कहना चाहते है कि काग्रेस को जेल मे डाल कर जनता को नेता-विहीन बनाने वाली सरकार ही आन्दोलन हिसात्मक बनाती है, न कि जेल मे पडी हुई काग्रेस।

'कर्मभूमि' के सलीम का जन-आन्दोलन के नेता के रूप मे अवतरण कई दष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक ओर वह इस बात से आश्वस्त है कि भारत के शिक्षित समाज की आत्मा सरकारी नौकरी मे जाकर सर्वथा कलुषित नही हो जाती और स्वाभिमान पर जब धक्का लगेगा वह विद्रोह कर उठेगा।

सलीम एक मुसलमान है। अग्रेज सरकार मुसलमानो को राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन से उदासीन बनाये रखने के लिये अपने जानते पूरा प्रयत्न करती थी। किन्तु सलीम, सकीना और पठानिन का आन्दोलन मे कूद पडना इस बात का प्रमाण है कि राष्ट्रीय-मुक्ति-आन्दोलन साम्प्रदायिकता की क्षुद्रता से बाधित नही हो सका। तेग मुहम्मद किसानो के कुर्क किये हुए जानवरो को जब ले जाने आता हैं सलीम उसे इस्लाम के पवित्र उपदेश का स्मरण कराता है और उससे आग्रह करता है कि वह मजहब की गरदन पर छुरी

न फेरे।[1] इस पर तेग मुहम्मद ठीक उन्ही शब्दो का उच्चारण करता है जो उसने अग्रेजो से सीखा है। वह कहता है – "जब सरकार हमारी परवरिश कर रही है तो हम उसके बदख्वाह नही बन सकते। और फिर सरकार से लडना हमारे मजहब के खिलाफ है।[2] तेग मुहम्मद सलीम को ही याद कराता है मुसलमान होने के नाते उसे सरकार की मदद करनी चाहिए।[3] लेकिन सलीम उसे करारा जवाब देता है – "अगर मुसलमान होने का मतलब है कि गरीबो का दमन किया जाये तो मै काफिर हूँ।"[4]

सलीम के नेतृत्व मे चलने वाले उग्र आन्दोलन को प्रस्तुत करके प्रेमचन्द ने उग्र राजनीति का समर्थन किया है – ऐसा भ्रम हमें नहीं हो इसलिए उन्होने अमरकान्त और सलीम की वार्ता करायी है। अमरकात ने सलीम से साफ–साफ कहा है– "तुम्हारा ख्याल है कि खून और कत्ल से किसी कौम की नजात हो सकती है तो तुम गलती पर हो।"[5] अमरकात तो पूरा का पूरा गाधीवादी है। वह मुक्ति का जो अर्थ जानता है वह उसके ही शब्दो मे इस प्रकार है– "मै नजात उसे कहता हूँ कि इसान मे इन्सानियत आ जाय और इन्सानियत की जब्र, बेइन्साफी और खुदगरजी से दुश्मनी है।[6]

प्रेमचन्द ने उग्र राजनीति का कभी समर्थन नहीं किया। उन्होने स्वय लिखा है– "हम आतकवाद के कभी समर्थक नही रहे और हमारा सिद्धान्त है कि आतकवाद से देश की बहुत बडी हानि हो रही है।[7] जागरण मे **26** अक्टूबर **1932** के अक मे श्री श्यामधारी प्रसाद लिखित 'उसका अन्त' शीर्षक कहानी पर आपत्ति करते हुए सरकार ने कहा था कि उक्त कहानी के प्रकाशन से आतकवाद और हिसाकाण्ड को बल मिलता है और प्रेमचन्द से अधिकारियो ने दो हजार रुपयो की जमानत तलब की।[8] प्रेमचन्द की अहिसा मे ऐसी आस्था कि उन्होने उक्त कहानी के विषय मे जागरण के **26** दिसम्बर **1932** के अक मे लिखा– 'हमे खेद है कि भविष्य मे ऐसी कोई चीज न प्रकाशित करेगे जिसका आतकवाद से सम्बन्ध हो, क्योकि अहिसा मे हमारा पूर्ण विश्वास है।' यह ठीक है कि सलीम के हिसा के समर्थन

---

[1] कमभूमि पृ० 364
[2] वही पृ० 364
[3] वही पृ० 364
[4] वही पृ० 364
[5] वही पृ० 372
[6] वही पृ० 372
[7] विविध प्रसग पृ० 542
[8] वही पृ० 540

में दिये गये तर्क भी कम पुरअसर नहीं है। इस सम्बन्ध में सलीम का निम्नलिखित कथन ध्यातव्य है–

"लगान हम दे नहीं सकते। वह लोग कहते हैं, हम लेकर छोड़ेगें। क्यों अपना सब कुछ कुर्क हो जाने दें? अगर हम कुछ कहते हैं तो हमारे ऊपर गोलियां चलती हैं। नहीं बोलते तो तबाह हो जाते हैं। फिर दूसरा कौन सा रास्ता है? हम जितना ही दबते जाते हैं, उतना वह शेर होते हैं। मरने वाला बेकार दिलों में रहम पैदा कर सकता है, लेकिन मारने वाला खौफ पैदा कर सकता है, जो रहम से कहीं ज्यादा असर डालने वाली चीज है।"[1]

प्रेमचन्द समस्या के इस पहलू को इसलिए जोरदार ढंग से प्रस्तुत करते हैं कि वे हिंसा के लिए स्वयं सरकार को उत्तरदायी मानते हैं। एक राष्ट्र की आत्मा को कुचलना भी तो एक प्रकार की हिंसा है और फिर हिंसा के लिए उत्तेजना भी तो वही देती है। इस हिंसा को जो रोक सकता ाहै उसे सरकार कैदखाने में सीखचों में भर कर बन्द रखती है। ऐसी स्थिति में हिंसा के लिए दूसरे को दोषी बनाने का उसे हक नहीं हो सकता।

'कर्मभूमि' में मुन्नी पर होने वाले गोरों के अनाचार का वृत्तान्त भी कितना उत्तेजक है! प्रेमचन्द ने जून सन् १६३१ में लिखा था– भारत में तो गोरे सोल्जरों का यह हाल है कि जिस इलाके में इनका पड़ाव पड़ जाता है वहाँ स्त्रियों का राह चलना बन्द हो जाता है।[2] एक शासित देश को दुर्भाग्य की जो–जो पीडाएँ भोगनी पड़ती है, अंग्रेजों के शासन काल में भारतीय जनता को भोगनी पड़ीं। ऐसे में प्रजा का यदि कोई धर्म हो सकता है तो वह है – राजद्रोह। अंग्रेजों के भाग्य से भारतीय राजनीति का नियन्त्रण करने के लिए महात्मा गांधी खड़े हो गये जिन्होंने अहिंसा का मंत्र देश को देकर उग्र राजनीति को सशक्त नहीं होने दिया। अन्यथा इस देश में भी अंग्रेजों को नाकों चने चबाने पड़ते।

असहयोग – आन्दोलन के समय सरकारी शिक्षण संस्थाओं से असहयोग करके विद्यार्थी राष्ट्रयज्ञ में भाग लेने के लिए आये थे। उस युग में ऐसा अनुभव किया गया था कि उन संस्थाओं में जिस तरह की शिक्षा दी जाती है उससे जीवन की शिक्षा नहीं मिलती, आत्मा जागरित नहीं होती।[3] इनसे जो छात्र निकलते हैं वे पैसों पर जान देने वाले, पैसे के लिए गरीबों का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेचने वाले होते हैं।[4]

---

[1] कर्मभूमि – पृ० 372
[2] विविध प्रसंग– २, पृ० 77
[3] कर्मभूमि – पृ० 104
[4] वही पृ० 5

देश के सामने अपने अतीत के गुरुओ का गौरवपूर्ण इतिहास था जिससे उसे ज्ञात होता था कि हमारे वे शिक्षक झोपडो मे स्वार्थ और लोभ से सर्वथा स्वतत्र रह कर रहते थे। वे सात्विक जीवन के जीवित आदर्श और निष्काम सेवा के उपासक थे। वे राष्ट्र से कम से कम लेकर अधिक से अधिक देते थे। उनसे सर्वथा भिन्न आदर्श था इस युग के अध्यापको का। वे स्वय अन्धकार मे पडे थे, अपने मनोविकारो के कैदी थे, अपनी इच्छाओ के दास थे। उनकी दशा यह थी कि जिसके पास जितनी बडी डिग्री थी उसका स्वार्थ भी उतना ही बढा हुआ था। उनको रहने के लिए बगले चाहिए थे, मोटर की सवारी चाहिए थी, नौकरो की पूरी पलटन होनी चाहिए थी। ऐसे शिक्षक शिक्षार्थी को डिग्री दे सकते थे, ज्ञान नही।[1] इस तरह 'कर्मभूमि' युगीन यथार्थ के चित्रण और सीधे साक्षात्कार का दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यास है।

'गोदान' प्रेमचन्द का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास ही नही, हिन्दी उपन्यास की वयस्कता का प्रतीक भी है। इसके साथ ही प्रेमचन्द न केवल अपनी रचना–यात्रा के अन्तिम पडाव पर पहुॅचते है बल्कि हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक ऐसे शिखर पर भी ले जाते हैं जहाॅ से आगे बढना परवर्ती रचनाकार के लिए बहुत कठिन सिद्ध होता रहा है। गोदान का कथ्य क्या है? यह प्रश्न इसके प्रकाशन काल से ही विवाद का विषय रहा है। इसे 'भारतीय जीवन का महाकाव्य', 'किसान जीवन का महाकाव्य' बताकर इसे भारतीय राष्ट्र का प्रतिनिधि उपन्यास और कृषक जीवन को उसकी समग्रता मे अकित करने वाला उपन्यास ठहराने का प्रयास किया जाता रहा है। इसकी मूल समस्या कभी ऋण की समस्या को ठहराया गया है[2] और कभी 'कृषक सस्कृति के ध्वस' को यह स्थान दिया गया है।[3] इसमे कोई सन्देह नही कि 'गोदान' मे ऋण की समस्या को विस्तार से अकित किया गया है और इसके अधिकाश पात्र किसी–न–किसी अवसर पर ऋणदाता या ऋणी के रूप मे अकित हुए है। यह भी उल्लेखनीय है कि स्वय प्रेमचन्द भी इसके प्रणयन–काल मे इस समस्या से जूझ रहे थे।[4] परन्तु समग्रता से विचार करने पर इसे कृषक सस्कृति के ध्वस की कहानी मानना अधिक तर्कसगत लगता है। प्रेमचन्द अपने 'महाजनी सभ्यता' लेख मे पूॅजीवादी सभ्यता के

---

[1] वही – पृ० 104
[2] प्रमचन्द और उनका युग पृ० 125
[3] प्रमचन्द के उपन्यासो का शिलप–विधान, पृ० 485
[4] हस, मई, 1939

मानवता – विरोधी रूप का विवेचन करके अपने अन्तर्मन मे पूँजीवादी समाज व्यवस्था के प्रति विद्यमान वितृष्णा को व्यक्त करते हैं।

इसके अतिरिक्त अपनी पूर्व कृतियो मे वे किसान के उस निरन्तर सघर्ष को भी दिखाते है जो कि किसान के रूप मे बने रहने के लिए उसके द्वारा किया जा रहा हे। 'किसान' के रूप मे उसे जो 'मरजाद' दीखती है, वह मजदूर बन जाने मे नही। पर अपनी कहानी 'पूस की रात' और उपन्यास 'गोदान' दोनो के माध्यम से प्रेमचन्द यह स्वीकार करते दीखते है कि इस महाजनी युग मे किसान के लिए अपने अस्तित्व को बनाए रखना असम्भव सा हो गया है। गोदान का होरी समूची जिन्दगी जूझता है लेकिन अन्त मे मजदूर बन जाता है। इसके लिए वह कौन सा कष्ट नही झेलता, कौन सा अपमान नही सहता। उसे तो इस कारण अपनी बेटी तक बेच देनी पडती है। रामसेवक जैसे अधेड से अपनी बेटी रूपा के बदले दो–सौ रुपये पाकर होरी की जो दशा होती है, उसे प्रेमचन्द इस तरह उकेरते है– 'उसका हाथ कॉप रहा था। सिर ऊपर न उठा सका . एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढे मे गिर पडा है । आज वह परास्त हुआ है – मानो नगर के द्वार पर खडा कर दिया गया है और जो आता है, मुँह पर थूक देता है। चिल्ला–चिल्लाकर कह रहा हे, भाइयो, मै दया का पात्र हूँ, मैने नही जाना जेठ की लू कंसी होती है और माघ की वर्षा कंसी होती है उस पर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम।' (गोदान, पृ० 359) तीस साल के दुर्धर्ष और निरन्तर सघर्ष के बाद परास्त होरी की दशा का यह चित्र त्रासद भाव को गहराता है और देश मे व्याप्त पराजय बोध को उकेरता है। 'पूस की रात' कहानी का हल्कू भी यही महसूस करता ह कि खेती को बचाने के लिये किया गया उसका सारा प्रयास अर्थहीन है क्योकि इसके द्वारा अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए तो उसे कुछ मिलता ही नही, लगान चुकाने के लिए मजदूरी फालतू मे करनी पडती है। इस प्रकार इन दोनो रचनाओ के माध्यम से प्रेमचन्द ने किसान को इस निष्कर्ष पर पहुँचाया है कि 'जिस पेट के लिए रोटी ही मयस्सर नही, उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोग है।

'गोदान' के होरी की विवशताओ का लाभ उठाने वालो में नये ढग के जमींदार रायसाहब भी है जो कि अपनी आसामियो के शोषण के लिए जहर की अपेक्षा गुड़ का प्रयोग अधिक कारगर मानते है और जिनकी जमीदारी मे वे सब दोष आ गए हैं जो अनुपस्थित जमीदार की रियासत मे आमतौर पर आ जाया करते है। रायसाहब जैसे जमींदार किसान के

शोषण की भित्ति पर आश्रित अपनी विलासचर्या मे डूबे रहते हैं। वे गरजने – गुर्राने की अपेक्षा मीठी बोली बोल कर शिकार खेलते हैं और अपने ऐशो–आराम के साधन जुटाते हैं। इससे वे होरी जैसे किसानो के मन मे अपने प्रति सहानुभूति का भाव भी जाग्रत करने मे सफल रहते है – 'सच पूछो तो वह हम से भी ज्यादा दुखी है। हमे अपने पेट ही की चिन्ता है, उन्हे हजारो चिन्ताएँ घेरे रहती हैं।' (गोदान) पर उनका दु:ख नई पीढ़ी की दृष्टि से धूर्तता और 'मोटमर्दी' के अतिरिक्त कुछ नही है। गोबर के ये शब्द 'जिसे दुख होता है वह दर्जनो मोटरे नही रखता, महलो मे नही रहता, हलवा, पूरी नही खाता और न नाच–रग मे लिप्त रहता है'– सत्याश लिए हुए है। पर अपने शोषक व्यक्तित्व के बावजूद व्यक्ति के रूप मे रायसाहब दु:खी है और शहर के महाजनो की धूर्तताओ का मुकाबला करने मे असमर्थ है। इसमे कोई सन्देह नही इस प्रकार पतनोन्मुख सामन्तवाद को हम उभरते हुए पूँजीवाद के सम्मुख बहुत लाचार पाते है। अपनी जरूरते पूरी करने के लिए उन्हे इस महाजनी सभ्यता के अनुरूप 'व्यवसाय को व्यवसाय' ही समझने वाले खन्ना के सम्मुख गिडगिडाना पडता है।

इस प्रकार प्रेमचन्द कृषि सभ्यता के दोनो स्तम्भो के धराशायी होने की प्रक्रिया का निरूपण करते है। वे दिखाते है कि उभरता हुआ पूँजीवाद औद्योगिकरण और नगरीकरण के माध्यम से प्रकट होता है। परिणामत गॉव उजड रहे हैं और गॉव के लोग शहर मे रोजगार की तलाश मे घूम रहे है। वैसे तो मिल मे मजदूरो की स्थिति भी अच्छी नही हैं। मेहता खन्ना से ठीक ही कहते है – आपके मजदूर बिलो मे रहते है। गन्दे बदबूदार बिलो मे जहॉ आप एक मिनट भी रह जाएँ तो आपको कै हो जाय। कपड जो वह पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेगे। खाना जो वह खाते है, वह आपका कुत्ता भी न खायेगा।'' लेकिन गॉव के समान यहॉ न धर्म और न बिरादरी के नाम पर व्यक्ति का शोषण होता है।

'महाजनी सभ्यता' के व्यापक प्रसार को प्रेमचन्द सभी वर्गों की अधिक धन प्राप्ति के लिए बेचैनी द्वारा भी अकित करते है। फटेहाल लोगो के इस गॉव मे शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने दो–चार रुपये जमा हो जाने पर महाजनी न की हो। गॉव मे अनेक महाजन है और उनकी चालाकी और धूर्तता के सामने किसान स्वयं को लाचार और बेबस पाता है। कठोर श्रम से पैदा की गई उपज महाजन द्वारा खेत मे ही तुलवा ली जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि किसान कर्ज मे ही पैदा होता है, जीवित रहता है और मर जाता है। महाजनी सभ्यता के घिनौने रूप को कुछ घटनाए विशेषरूप से उजागर करती है। अपने भाई के लिए सब कुछ सहने और झेलने वाला होरी साझे के बॉसो के लिए मिली हुई

तुच्छ रकम मे से उसी भाई का हिस्सा दबाने का प्रयत्न करता है। शहर मे अपने आश्रयदाता मिर्जा खुर्शीद को गोबर कुछ रुपये देने से इनकार कर देता है जबकि कुछ ही देर बाद तागे वाले को खुशी से रुपये दे देता है, क्योकि जहॉ तागे वाले से उसे ब्याज मिलेगा, वहॉ मिर्जा द्वारा मूल का लौटाया जाना भी निश्चित नही होता। खन्ना रायसाहब के सामने 'बिजनिस इज बिजनिस' का सिद्धान्त बघारते हैं और उनसे कोई रू-रियायत करने को तैयार नही है। इस प्रकार प्रेमचन्द दिखाते है कि पूँजीवादी सभ्यता में मानवीय सम्बन्ध अपना सही रूप खोकर विकृत हो उठते हैं। प्रेमचन्द का सकेत यह भी है और यही कृषि-सस्कृति के विनाश का मुख्य कारण है।

अपने प्रारम्भिक उपन्यास 'असरारे मआबिद' से ही प्रेमचन्द धर्म के विकृत रूप को उजागर करने लगे थे। गोदान मे भी वे दिखाते हैं कि हमारा धर्म खान-पान छुआछूत पर ही आश्रित होकर रह गया है- 'हमारा धर्म है हमारा भोजन, भोजन पवित्र रहे धर्म पर ऑच नही आ सकती।' इसके अलावा अपनी पूर्ववर्ती कृतियो मे- विशेषत 'कर्मभूमि' मे - उन्होने महत और जमीदार के व्यक्तित्वो को एक ही व्यक्ति मे समाविष्ट कर धर्म और सामन्तवाद के गॅठजोड का सकेत कर दिया था। इसी सदर्भ मे धर्म के प्रतिनिधि दातादीन का महाजन के रूप मे उकेरा जाना निरुद्देश्य नही है। इसके माध्यम से प्रेमचन्द धर्म और महाजनी सभ्यता की ओर इगित करना चाहते है। इसी कारण जहॉ झुनिया को अपनी स्त्री बनाने के लिए गोबर को अपने घर से भागना पडता है और उसके बाप होरी को बिरादरी को डॉड देना पडता है। वहॉ सिलिया के साथ शारीरिक सम्बन्धो के बावजूद मातादीन को कुछ कहने का साहस समाज को नही होता। इस प्रकार 'गोदान' के माध्यम से प्रेमचन्द कृषक-सस्कृति के विनाश का ही नही पूँजीवाद के निरन्तर बढते हुए चरणो का भी सकेत करते है। किसान की दुरवस्था के उत्तरदायी कारणो मे प्रेमचन्द किसान की अपनी रूढिवादिता, बिरादरी, धर्म और व्यवस्था के आतक से अपनी भीरुता और 'एका का अभाव' (गोदान, पृ० 26) को गोदान मे विशेष स्थान देते है इसीलिय वे इसमे कोई कृत्रिम समाधान नही सुझाते, उपचार नही बताते, रोग का निदान भर कर देते है।

इस सदर्भ मे देखने पर 'गोदान' पर दुहरे-तिहरे कथानक का आरोप भी निराधार हो जाता है। यह स्पष्ट ही है कि गॉव छोडकर शहर मे जा बसने वाले रायसाहब और उनके शहरी मित्रो - खन्ना, तनखा, खुर्शीद आदि के बिना पूँजीवादी व्यवस्था की निरन्तर मजबूत होती हुई जकडन और ढहती हुई ग्रामीण - व्यवस्था का चित्रण सम्भव नहीं था।

इसमे यदि किन्ही प्रसगो की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह लगाया जा सकता है तो वे मालती–मेहता, गोविन्दी–खन्ना के प्रसग ही हैं जिनके माध्यम से वे पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण के लिए तत्पर नारी और परम्परागत मूल्यो मे जीती नारी – भारतीय नारी की इन दो परस्पर विरोधी स्थितियो को उकेरते हैं। 'गोदान' के अध्ययन के बाद, इसमे कोई सदेह नही रह जाता कि नारी से पूरी तरह सहानुभूति रखते हुए तथा स्थान–स्थान पर उसकी पक्षधरता करते हुए भी प्रेमचन्द एक सीमा से नारी को बढने देने के पक्ष मे नही थे। 'असरारे मआविद' के पात्र 'दूसरा' के माध्यम से जो दृष्टिकोण प्रेमचन्द व्यक्त कर चुके थे उसे ही तनिक अधिक परिष्कृत ढग से मेहता के माध्यम से 'गोदान' मे प्रस्तुत करते है। गोदान का मेहता, जो प्रेमचन्द का प्रवक्ता माना जा सकता है, यह मानने के लिए तैयार नही है कि स्त्री और पुरुष मे समान शक्तिया और समान प्रवृत्तिया होती हैं।(गोदान, पृ० 163) वह स्त्री मे सेवा, त्याग के गुणो को विशेष महत्व देता है और इसी के आधार पर प्राणियो के विकास मे स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ बताता है (वही, पृ० 162)। उसकी दृष्टि मे नारी केवल माता है और उसके उपरान्त जो कुछ है,वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है (वही, पृ० 202)। प्रेमचन्द का नारी– सम्बन्धी यह दृष्टिकोण परम्परागत ही है और युगीन विचारधारा के अनुरूप है।

'गोदान' मे प्रेमचन्द न केवल स्त्री और पुरुष की समता की धारणा को अस्वीकार कर देते है, मनुष्य और मनुष्य की समता पर भी सदेह प्रकट करते दीखते है। इसलिए 'गोदान' को गाधीवादी आस्था के त्याग और मार्क्सवादी दृष्टिकोण के स्वीकार का उपन्यास ठहराते हुए मेहता के इन शब्दो को दृष्टि–ओझल करना उचित नही है –– 'ससार मे छोटे–बडे हमेशा रहेगे और उन्हे हमेशा रहना चाहिए। इसे मिटाने की चेष्टा करना मानव जाति के सर्वनाश का कारण होगा।'(वही, पृ० 59) यही नही रूसी समाज–व्यवस्था पर मेहता की एक अन्य टिप्पणी भी उल्लेखनीय है– आप रूस की मिसाल देगे। यहॉ इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राजकर्मचारी का रूप ले लिया है(वही, पृ० 59)।

इस प्रकार 'गोदान' मे भी प्रेमचन्द की शकाए निर्मूल नही हो पाई थी और न ही भावी समाज–व्यवस्था की तस्वीर ही उनके मन मे साफ हो सकी थी। एक निष्कर्ष पर वे अवश्य पहुॅच गए थे कि शोषित को 'अपना भाग्य खुद बनाना होगा। अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतो पर विजय पानी होगी।'(वही, पृ० 358) अतएव इस सबके बावजूद 'गोदान' प्रेमचन्द के अधिक परिपक्व चिंतन का प्रतीक अवश्य है। इसके साथ ही वह उनके अधिक

प्रौढ एव परिष्कृत शिल्प का उदाहरण भी है। शिकार, नौका–विहार और कबड्डी–मैच जैसे प्राय निरर्थक प्रसगो के बावजूद कथाप्रस्तुति की सिनेरियो पद्धति, यर्थाथवादी चरित्र परिकल्पना, जीवन–सन्निकट भाषा, दुरुह बिम्बाश्रयी शैली की अपेक्षा मुहावरो और लोकोक्तियो से समन्वित प्रभावशाली अभिव्यजना प्रणाली, व्यग्य की तिक्ष्णता तथा त्रासद अत की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस प्रकार होरी की ठडी हथेली से किया गया गोदान भारतीय जीवन मे सामन्त युग के अन्त और हिन्दी उपन्यास–यात्रा के एक सोपान के समापन का प्रतीक है।

'मगलसूत्र' एक अधूरा उपन्यास है जिसमे पहली बार प्रेमचन्द एक साहित्यकार को प्रमुख पात्र के रूप मे स्थापित करते दीखते है। इसमे प्रेमचन्द द्वारा निजी अनुभवो को सजोने का प्रयास लक्षित होता है। इसलिए कतिपय विद्वानो ने इसे 'आत्मकथात्मक उपन्यास' भी ठहराया है। दो पीढियो के टकराव की भूमिका का उद्घाटन भी उपलब्ध पृष्ठो मे दृष्टिगत होता है। अपनी पूर्ववर्ती कृतियो के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से 'गोदान' के प्राय यथार्थवादी रूप तक की एक लम्बी यात्रा प्रेमचन्द तय कर चुके थे। 'मगलसूत्र' के प्राप्त अशो मे इसके पूर्णतया यथार्थवादी कृति होने की सभावना भी उजागर होती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासो के इस सर्वेक्षण के बाद प्रेमचन्द के कृतित्व के विषय मे कुछ निष्कर्षो पर पहुॅचना सरल हो जाता है।

प्रेमचन्द ने साहित्य–सर्जन के क्षेत्र मे विशेष लक्ष्य से प्रवेश किया था। वे साहित्य को केवल मनोरजन की वस्तु नही मानते थे। वे स्पष्ट रूप से कहते है "साहित्य अब केवल मनोरजन की वस्तु नही है। मनोरजन के सिवा उसका कुछ और भी उद्देश्य है। वह विरह और मिलन के राग नही अलापता। वह अब जीवन की समस्याओ पर विचार करता है, उनकी आलोचना करता है और उनको सुलझाने की चेष्टा करता है। नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का कार्यक्षेत्र एक है, केवल उनके रचना–विधान मे अतर है (हस, फरवरी 36)। इस प्रकार निश्चित रूप से एक सामाजिक उद्देश्य से वे लेखन–कार्य मे प्रवृत्त हुए थे। उनके मानस मे शोषण, अन्याय और अत्याचार से पीडित मानवता की जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए ललक थी। उनके मन मे एक कुरेदन थी जो उन्हे यह सब लिखने के लिए विवश करती रहती थी। इसीलिए वे कहते है कि वे यह सब अपनी 'आत्मा की शान्ति के लिए लिखते है।' (प्रेमचन्द घर में, शिवरानी देवी, पृ० 172)

परिणामस्वरूप वे युगो–युगो से वचित शोषित, दलित एव मर्दित जनता के प्रवक्ता बनकर सामने आते हैं। उनके अनुसार "साहित्यकार मानवता का, प्रगति का, शराफत का वकील है। जो दलित है, पीडित है, जख्मी है, चाहे व्यक्ति हो या समाज उनकी वकालत ओर हिमायत उसका धर्म है। उसकी अदालत समाज है। इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तागासा पेश करता है।" (हस, फरवरी 36) इस प्रकार प्रेमचन्द व्यक्ति और समाज दोनो को समुचित महत्व देते है पर वे व्यक्ति को अलग करके नही समाज की अभिन्न इकाई के रूप मे ही स्वीकार करते है। इसीलिए उनके उपन्यासो मे सभी वर्गों, पेशो और स्थितियो के पात्रो का चित्रण हुआ है और उनमे वैयक्तिक विशेषताएँ भी हैं लेकिन मूलतः वे एक ही महासागर के अग– नदी, नाले और झरने दीखते हैं।

प्रेमचन्द ने समष्टि और व्यष्टि जीवन को विकृत बना देने वाले तत्वो मे धर्म को विशेष रूप से उकेरा है। उन्होने उसमे आ गई विकृतियो आर बुराइयो का ही चित्रण नही किया, शोषण और अत्याचार के प्रमुख सहयोगी के रूप मे भी उसे अकित किया है। बिरादरी को भी प्रेमचन्द अन्याय के पोषणकर्ता की भूमिका ही अदा करते हुए दिखाते हैं। इस प्रकार आर्थिक व्यवस्था मे सत्ताधारियो– जमीदारो ओर पूँजीपतियो के घिनौने और शोषक रूपो को ही सामने लाते है। उनकी सहानुभूति साफ तौर पर शोषित, दलित, वचित ओर पीडित के साथ थी। वस्तुत उनके मन मे धन के प्रति शत्रुता का भाव था और वे यह मानते थे कि धनी होने के लिए बेईमानी करना अनिवार्य ह और धन का आधिक्य कभी सुखी नही बना सकता। इस प्रकार धनियो को दु·खी और पीडित दिखाकर प्रेमचन्द उनसे प्रतिकार लेते हुए दिखाई देते है। अपने दृष्टिकोण को उन्हाने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये एक पत्र मे इस प्रकार रखा था – "जो व्यक्ति धन–सम्पदा मे विभोर और मगन हो, उसके महान् पुरुष होने की मै कल्पना भी नही कर सकता। जैसे ही किसी आदमी को धनी पाता हूँ, वैसे ही मुझ पर उसकी कला और बुद्धिमता की बातो का प्रभाव काफूर हो जाता है। मुझे जान पडता है ' कि इस शख्स ने मौजूदा सामाजिक व्यवस्था को – उस सामाजिक व्यवस्था को, जो अमीरो द्वारा गरीबो के दोहन पर अवलम्बित है – स्वीकार कर लिया है।"[1] तत्कालीन शासन की वास्तविकता और शोषक रूप को वे पुलिस, न्याय–व्यवस्था आदि के चित्रण के माध्यम से उद्घाटित करते हैं। विदेशी शासन को वे अन्याय, अत्याचार, शोषण और दोहन का प्रमुख सहयोगी ही नही, स्रोत भी मानते थे और

[1] 3 जून 1930 हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, पृ० 21 पर उद्धृत

स्वराज्य के समर्थक थे। वे कहते हैं कि 'स्वराज्य हो जाने से समाज के किसी अग को कोई हानि नही पहुँच सकती, लाभ ही लाभ होगे। हॉ, उनकी अवश्य हानि होगी जो खुशामद ओर लूट और अन्याय के मजे उडा रहे है।' (हस, अप्रैल 30) इससे यह बात भी बिल्कुल साफ हो जाती है कि वह स्वराज्य का अर्थ आर्थिक स्वराज्य ही अधिक समझते थे। उन्हे शोषक अग्रेज के बदले शोषक भारतीय का शासन स्वीकार्य नही था। स्वराज्य का अर्थ केवल आर्थिक स्वराज्य है। आज भारत का उद्योगधन्धा पनप उठे, आज भारत के घर घर मे खाने के लिए दो मुट्ठी अन्न, पहनने के लिए दो गज कपडा हो जाए . जीवन मे कुछ कविता, कुछ स्फूर्ति, कुछ सुख मालूम पडे तो कौन कल इस बात की चिन्ता करेगा कि भारत की पार्लियामेट मे अग्रेज है या हिन्दुस्तानी (जागरण, 17 अप्रैल, 1933 सम्पादकीय टिप्पणी)। उपर्युक्त कथन से यह तो स्पष्ट है कि प्रेमचन्द आर्थिक स्वतन्त्रता को राजनैतिक स्वतत्रता से अधिक महत्व देते थे और राजनैतिक स्वतत्रता का लक्ष्य भी आर्थिक स्वतत्रता को ही ठहराते थे। पर इसके आधार पर यह कहना कि प्रमचन्द ने स्वातन्त्र्य–युद्ध का अपेक्षाकृत कम चित्रण किया है और उसके मूल मे विदेशी सरकार की दमन नीति का भय था, उचित नही है। यदि प्रेमचन्द ऐसा करते तो ''सरकार उनके (उपन्यासो के) पठन–पाठन मे बाधक होती।'' – एक विद्वान की इस टिप्पणी को स्वीकार करना प्रेमचन्द के प्रति अन्याय करना है। प्रेमचन्द के समग्र साहित्य मे कही भी 'भय' की वृत्ति नही है। धन, समाज और सरकार सभी का वे यथार्थ और वास्तविक चित्रण पूरी निर्भयता से और दो टूक शेली मे करते है।

प्रेमचन्द ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारो की तरह नारी – जीवन की समस्याओ को अपने उपन्यासो मे विस्तार से उकेरा है। पर यह भी निर्विवाद है कि नारी के समुचित सम्मान और महत्व के पक्षधर होते हुए भी नारी और पुरुष की समानता उन्हे स्वीकार्य नही है। मेहता के लम्बे भाषण और मालती की तुलना मे गोविन्दी के आदर्श–चरित्र की स्थापना से यह बात बिल्कुल साफ हो आती है कि वे प्रसाद तथा अपने अन्य समकालीनो के समान नारी को महान् और आदरणीय तो ठहराते है पर पुरुष के समकक्ष उसे नही मानते हैं, जिस प्रकार इडा की अपेक्षा प्रसाद श्रद्धा को उत्कृष्ट मानते है, उसी तरह मालती की बजाय गोविन्दी प्रेमचन्द का भी आदर्श है।

यहॉ यह विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि प्रेमचन्द से पूर्ववर्ती उपन्यास रोमास और आदर्श की भूल–भुलैयो मे भटक रहा था। प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार थे, जिन्होंने

उसे महज किस्सा–कहानियो से उठाकर जीवन के यर्थाथ से जोडा। उनकी प्रारम्भिक कृतियो मे उनका झुकाव अवश्य आदर्श की ओर कुछ ज्यादा है लेकिन यथार्थ उनमे भी उपेक्षित नही है। उनका पहला उपन्यास 'असरारे मआबिद' या अपने मामा को लेकर लिखा गया अनुपलब्ध व्यग्य इस बात के साक्षी हैं कि प्रेमचन्द की प्रवृत्ति मूलतः यथार्थ की ओर ही थी। पर यह भी साफ है कि उनकी यथार्थ चेतना किसी विशिष्टवाद से नियत्रित नही थी। अपने युग मे होने वाले गाधी जी के हृदय परिवर्तनवादी उपायो को व्यवहार मे अनुपयुक्त पाए जाने से पूर्व ठुकराने की हठधर्मिता उनमे न थी। उन्होने जब इन उपायो को सामाजार्थिक व्यवस्था के सन्दर्भ मे अर्थहीन पाया, उन्हे त्यागने मे कोई हिचकिचाहट भी नही दिखाई। इसलिए उनके उपन्यासो मे यथार्थ की ओर झुकाव क्रमश गहरा होता गया है।

'प्रेमचन्द' के वास्तविक महत्व को उन्हे प्राप्त उपन्यास परम्परा के परिप्रेक्ष्य मे देखने से ही पहचाना जा सकता है। प्रेमचन्द का पूर्ववर्ती उपन्यास या तो तिलिस्मी, ऐयारी और जासूसी कोटि का था या नारी की समस्याओ के आदर्शवादी–सुधारवादी निरुपण मे सलग्न था। तत्कालीन सामाजिक उपन्यासो की उद्देश्यमूलकता बडी स्थूलता से उन पर आरोपित थी। प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को इससे मुक्ति दिलाई। पर यह कार्य सहसा घटित नही हुआ। इसलिये उनके कई उपन्यासो मे सुधारवादी प्रवृत्ति भी है, आदर्श के प्रति आग्रह भी। इसके अलावा वे कही कही चमत्कारपूर्ण घटनाओ को भी अपने उपन्यासो मे स्थान देते है। प्रारम्भिक कृतियो मे तो घटना और चरित्र मे घटना पर ही अधिक बल देते हुए दीखते है तथा तिलस्मी और ऐयारी उपन्यासो की परम्परा मे, वे किस्सा–गो की शैली अपनाते हुए, वर्णनो और विवरणो को अनावश्यक विस्तार भी देते हुए प्रतीत होते हैं, पर यह साफ है कि प्रेमचन्द का उपन्यासकार निरन्तर विकसित होता रहा है। उन्हे न तो अपनी वैचारिक मान्यताओ के दोषो[1] का परिहार करने मे कोई सकोच होता था और न ही कलात्मक कमियो को दूर करने मे हिचकिचाहट। इसलिए प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य के क्रमिक विकास मे हिन्दी उपन्यास की प्रगति–यात्रा निहित है।

स्थूल दृष्टि से देखने पर प्रेमचन्द के उपन्यास अपने युग की कुछ समस्याओ, कतिपय घटनाओ और आन्दोलनो को लेकर लिखे गए लगते हैं। परन्तु मात्र समकालीन

[1] उनकी विचारधारा मे निरन्तर स्पष्टता आती गई और वे इस जीवन को परिचालित करने वाले भौतिक – आर्थिक कारणो को पूरी तरह समझने लगे थे। केवल नारी के विषय मे उनका दृष्टिकोण आगे की ओर बढन की बजाय पीठे की ओर ही लोटता दीखता है।

जीवन और उसकी परिस्थितियो के यर्थाथ एव जीवन्त दस्तावेज होने मे ही उनका महत्व नही है। उनका महत्व होरी, सुमन, निर्मला, सूरदास जैसे अविस्मरणीय पात्रो की परिकल्पना से और उनके माध्यम से मानव मात्र की आशाओ आशकाओ, जय–पराजयो, सबलताओ–दुर्बलताओ को वाणी देने की ही दृष्टि से अधिक है। इन मुख्य पात्रो की अपेक्षा भी गौण, तुच्छ और बहुधा नामविहीन पात्रो की जीवन्तता मे प्रेमचन्द की कला का वास्तविक उत्कर्ष निहित है। उनके रचना ससार मे विभिन्न वर्गो, धर्म–सम्प्रदायो और मनोवृत्तियो के पात्रो को हम जिन्दगी जीते, काटते और झेलते पाते है। इस ससार मे प्रविष्ट होने पर पाठक के सामने एक औपन्यासिक जगत् मात्र नही होता, जीते–जागते मनुष्यो का एक ससार होता है।

प्रेमचन्द–पूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य शैल्पिक स्तर पर भी अपरिपक्व था। उसमे घटना–सयोजन, चरित्र–अकन, सवाद–परिकल्पना सभी दृष्टियो से अपरिष्कार और अधकचरापन है। प्रेमचन्द ने अपने औपन्यासिक शिल्प के विकास के माध्यम से हिन्दी उपन्यास को निजी चेहरा दिया, एक अपना मुहावरा सुलभ करवाया। उनके योगदान की वास्तविक पहचान, किसी भी अन्य भारतीय भाषा मे रचनाशील, उनके समकालीनो से तुलना द्वारा ही हो सकती है। उनके महत्व को समान परिस्थितियो मे क्रियाशील किसी भी अन्य उपन्यासकार के साहित्य को उनके कृतित्व के आमने–सामने रखकर आका जा सकता है।

तृतीय अध्याय :

प्रेमचन्द युग का कथा साहित्य
(कहानी)

प्रेमचन्द का कथा साहित्य

कहानी

प्रेमचन्द की कहानियो का रचना–काल स्थिर करना सभव नही है। प्रेमचन्द की कहानियो के निश्चित रचना–काल के अभाव मे हम कहानीकार प्रेमचन्द के वैचारिक विकास–क्रम के विभिन्न सोपानो का वैज्ञानिक और वस्तुपरक अध्ययन नही कर सकते। प्रेमचन्द के प्रकाशक उनकी कहानियो के प्रामाणिक एव वैज्ञानिक सपादन तथा प्रकाशन मे इतनी रुचि नही रखते है। प्रेमचन्द की कहानियो के इस समय बाजार मे इतने अधिक सग्रह उपलब्ध है कि प्रेमचन्द का अध्येता उनके द्वारा एक अच्छी–खासी उलझन मे फॅस जाता है। 'मानसरोवर' नाम से प्रेमचन्द की कहानियो के जो आठ भाग बाजार मे उपलब्ध हैं, उनमे प्रेमचन्द की सभी कहानियॉ नही है। इसके अलावा उनका सपादन भी सर्वथा अवैज्ञानिक तथा क्रम विहीन हुआ है।

प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त ने प्रेमचन्द के कुछ कहानी – सग्रहो का प्रकाशन क्रम स्थिर करने का प्रयास किया है, जो इस प्रकार है – (1) सप्त सरोज (2) नवनिधि (3) प्रेम–पूर्णिमा (4) प्रेम–पचीसी (5) प्रेम–प्रतिमा (6) प्रेम–द्वादशी (7) समय–यात्रा (8) मानसरोवर, भाग 1,2 (9) कफन।[1] जनवरी 1960 के त्रैमासिक 'साहित्य' मे 'प्रेमचन्द के जीवन तथा साहित्य सबधी तिथियो मे भ्रान्तियॉ' विषय पर पटना की प्रो० श्रीमती गीतालाल का एक शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ था जिसमे प्रेमचन्द की जीवन और साहित्य – सबधी तिथियो को स्थिर करने का एक महनीय प्रयास किया गया है। इस लेख के आधार पर प्रेमचन्द के कतिपय कहानी सग्रहो का प्रथम प्रकाशन काल इस प्रकार है :–

(1) सप्त सरोज	1917 ई०
(2) नवनिधि	1918 ई०
(3) प्रेम–पूर्णिमा	1920 ई०
(4) प्रेम–पचीसी	1923 ई०

[1] प्रमचन्द एक अध्ययन डॉ० राजेश्वर गुरु, पृ० 250-51

(5) प्रेम–प्रसून	1924 ई०
(6) प्रेम–प्रमोद	1926 ई०
(7) प्रेम–प्रतिमा	1926 ई०
(8) प्रेम–द्वादशी	1926 ई०
(9) प्रेम–तीर्थ	1929 ई०
(10) प्रेम–चतुर्थी	1929 ई०
(11) अग्नि– समाधि तथा अन्य कहानियाँ	1929 ई०
(12) पाँच फूल	1929 ई०
(13) समर–यात्रा और ग्यारह अन्य राजनीतिक कहानियाँ	1930 ई०
(14) सप्त सुमन	1930 ई०
(15) प्रेम–पचमी	1930 ई०
(16) प्रेरणा और अन्य कहानियाँ	1932 ई०
(17) प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	1933 ई०
(18) मानसरोवर, भाग 1	1936 ई०

यद्यपि इस सूची मे प्रेमचन्द के कई कहानी–सग्रहो यथा प्रेम–पीयूष, कफन आदि का उल्लेख नही है, किन्तु फिर भी इसमे सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द के कहानी–सग्रहो का प्रकाशन–काल स्थिर करने का यह सर्वप्रथम प्रयास है।

प्रो० गीतालाल द्वारा दिए गए प्रेमचन्द के प्रमुख कहानी–सग्रहो के प्रथम प्रकाशन – काल के आधार पर हमे कहानीकार प्रेमचन्द के विकास–क्रम की एक सरसरी रूपरेखा अवश्य ज्ञात हो जाती है, लेकिन प्रेमचन्द विचारधारा के सम्यक् आकलन के लिए इतना पर्याप्त नही है। प्रेमचन्द के कहानी–सग्रहो के प्रकाशन – काल के आधार पर उनमे सकलित कहानियो के रचना–काल तक पहुँचना सर्वदा निरापद या खतरे से खाली नही है, क्योकि अनेक कहानियाँ ऐसी भी है जो उनके विभिन्न कालो के अलग–अलग सग्रहो में पाई जाती – 'बैक का दिवाला' (प्रेम–द्वादशी, प्रेम चतुर्थी), 'शाति' (प्रेम–द्वादशी, प्रेम चतुर्थी), 'लाग–डॉट' प्रेम चतुर्थी), 'गृह–दाह' (प्रेम प्रसून, सप्त सुमन, प्रेम–द्वादशी), 'बैर का अंत' (सप्त सुमन, प्रेम पचीसी), 'मदिर' (प्रेम–तीर्थ, प्रेम–पीयूष, सप्त सुमन), 'ईश्वरीय न्याय' (प्रेम

पूर्णिमा, सप्त सुमन), 'सुजान भगत' (प्रेम पीयूष, सप्त सुमन), 'ममता' (नवनिधि, सप्त सुमन), 'मन्त्र' (प्रेम पीयूष, प्रेम तीर्थ), 'सती' (प्रेम तीर्थ, प्रेम पीयूष, सप्त सुमन), 'कजाकी' (प्रेम तीर्थ, प्रेम पीयूष), 'आत्माराम' (प्रेम पचीसी प्रेम–द्वादशी), 'दुर्गा का मदिर' (प्रेम पूर्णिमा, प्रेम–द्वादशी), 'बडे घर की बेटी' (सप्त सरोज, प्रेम–द्वादशी), 'डिक्री के रुपये' (प्रेम पीयूष, प्रेम–द्वादशी), 'मुक्ति मार्ग' (प्रेम पीयूष, प्रेम–द्वादशी), 'पच परमेश्वर' (सप्त सरोज, प्रेम–द्वादशी), 'शखनाद' (प्रेम पूर्णिमा, प्रेम–द्वादशी), 'आहुति' (समर–यात्रा, कफन) आदि। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति मे कहानी–सग्रहो के प्रकाशन–काल के आधार पर प्रेमचन्द की कहानियो का रचना–काल निर्धारित नही किया जा सकता। कहने की आवश्यकता नही कि कहानीकार प्रेमचन्द के अध्ययन को एक वस्तुपरक भूमिका प्रदान करने के लिए वर्तमान अराजकतापूर्ण स्थिति को समाप्त करके उनकी कहानियो का एक वैज्ञानिक एव प्रामाणिक सस्करण प्रकाशित करना नितान्त आवश्यक है।

प्रेमचन्द की कहानियो को आलोचको ने विभिन्न आधारो पर एव विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। अधिकाश आलोचको ने विषय–वस्तु की दृष्टि से ही उन्हे वर्गीकृत किया है। काल–क्रम के आधार पर प्रेमचन्द की कहानियो का वर्गीकरण करने वालो मे डॉ० राजेश्वर गुरू मुख्य है। उनका वर्गीकरण इस प्रकार है –

"(1) प्रारम्भिक युग देश–प्रेम–सबन्धी भावुकतापूर्ण कहानियॉं, एव बुन्देलखण्ड के इतिहास की गौरवपूर्ण गाथाएँ – जैसे 'सोजेवतन्' क्रम की कहानियॉं और 'रानी सारन्धा', राजा हरदौल', 'विक्रमादित्य का तेगा' आदि।

"भारतीय मन और भारतीय प्राचीन व्यवस्था के उदात्त स्वरूप को चित्रित करने वाली कहानियॉं जैसे – 'शखनाद', 'पच परमेश्वर' आदि।"

"(2) विकास युग : भारतीय ग्राम – जीवन के विभिन्न प्रसग और सामाजिक, राजनैतिक और साम्प्रदायिक जीवन की कहानियॉं।"

"(3) यथार्थोन्मुख कहानियॉं – सन् 1930 के राजनेतिक आन्दोलन के दिनो के चित्रण एवम् अनेक यथार्थवादी कहानियॉं"[1]

डॉ० गुरू ने प्रारम्भिक युग को सन् 1920 तक[1], विकास युग को 1930 तक और यथार्थोन्मुख कहानियो के युग को 1930 के पश्चात् माना है।

---

[1] प्रमचन्द एक अध्ययन पृ० 250

विषय–वस्तु के आधार पर प्रेमचन्द की कहानियो को राजनीतिक, सामाजिक, ग्राम्य –जीवन सबधी आदि वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है।

यद्यपि हिदी मे प्रेमचन्द का सर्वप्रथम कहानी–सग्रह 'सप्त सरोज' 1917 ई० मे प्रकाशित हुआ था, किन्तु हिदी मे कहानियॉ लिखना प्रेमचन्द ने सन् 1913 से ही आरम्भ कर दिया था,[2] और उनकी प्रसिद्ध कहानी 'पच परमेश्वर' 'सरस्वती' मे जून 1916 मे प्रकाशित हुई थी। यूँ प्रेमचन्द की सर्वप्रथम कहानी 'ससार का अनमोल रत्न' है जो 1907 मे 'जमाना' मे छपी थी।[3] प्रेमचन्द का सर्वप्रथम कहानी – सग्रह 'सोजेवतन' सन् 1909 मे प्रकाशित हुआ था और प्रकाशित होने के छ महीने बाद ही सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। ब्रिटिश सरकार को 'सोजेवतन' की कहानियो मे राजद्रोह की गध आई थी।[4] इस घटना के बाद धनपतराय श्रीवास्तव 'नवाबराय' के बजाए 'प्रेमचन्द' के नाम से लिखने लगे। हिदी साहित्य उन्हे इसी नाम से जानता है। डॉ० राजेश्वर गुरू का कहना है कि प्रेमचन्द नाम से उनकी पहली कहानी 'ममता' थी जो सन् 1909 या 1910 के 'जमाना' मे छपी थी।[5]

'सप्त सरोज' (सन् 1917) सग्रह की कहानियॉ उस समय की रचनाएँ हैं जब कि प्रेमचन्द की सामाजिक चेतना और जीवन–दृष्टि पर सुधारवाद और आदर्शवादी परपरागत भारतीय सस्कृति का घना कोहरा तथा धुध छाई हुई थी। 'बडे घर की बेटी' और 'पच परमेश्वर' – जिनकी गणना प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियो मे की जाती है – कहानियो मे परपरागत आदर्शवादी जीवन–दर्शन का प्रभाव अपने चरमोत्कृष्ट रूप मे देखा जा सकता हैं। यद्यपि प्रेमचन्द को अपने निजी जीवन मे सयुक्त परिवार के काफी कटु अनुभव हुए थे, किन्तु फिर भी वे संयुक्त परिवार–प्रथा की सामाजिक उपयोगिता और आवश्यकता के प्रति सर्वथा आस्थाहीन नही हुए थे। उन्होने अपनी कई कहानियो मे इस प्रथा का समर्थन एव उसकी पुनर्स्थापना का प्रयत्न किया है। 'बडे घर की बेटी' प्रेमचन्द की एक ऐसी ही कहानी है। इसमे वे दिखाते है कि बडे घर की बेटी आनन्दी की उदारता और बडप्पन के कारण एक सयुक्त परिवार का विभाजन होते–होते रह जाता है। यहॉ पर यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि बडे घर की बेटी से प्रेमचन्द का तात्पर्य उच्च अर्थात् अभिजात घर की बेटी से है अथवा शरीफ खानदान की बेटी से? स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने पहला ही अर्थ लिया है।

---

[1] उपरोक्त पृ० 256
[2] प्रमचन्द घर मे, पृ० 22
[3] कफन पृ० 65
[4] उपरोक्त पृ० 65-66
[5] प्रमचन्द एक अध्ययन, पृ० 250

वे स्वय कहते है "आनन्दी एक बडे कुल की लडकी थी। उसके बाप एक छोटी–सी रियासत के ताल्लुकेदार थे। विशाल भवन, एक हाथी, तीन कुत्ते, बाज, बहरी, शिकरे, झाड–फानूस, आनरेरी मजिस्ट्रेटी और ऋण, जो एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार के योग्य पदार्थ है, वह सभी यहाँ विद्यमान थे।"[1] स्वभावत अगला प्रश्न उठता है कि आनन्दी की इस उदारता का मूल उसके अभिजात पितृ कुल मे खोजना कहाँ तक उचित है? उदारता और उच्च कुल मे क्या कोई अन्योन्याश्रित सबध होता है? स्पष्ट है कि प्रेमचन्द का यह विश्लेषण सर्वथा अवैज्ञानिक है। यह नही कि बडे घर की लडकियो मे आनन्दी की उदारता, सहाश्यता और बडप्पन होता ही नही। हमारा तात्पर्य केवल इतना है कि किसी एक विशिष्ट वर्ग या कुल के व्यक्तियो के साथ ही इन मानवीय गुणो को अनिवार्यत सबद्ध नही किया जा सकता। प्रस्तुत कहानी मे आनन्दी की इस उदारता ओर बडप्पन के सबध मे उसके एक बडे ताल्लुकेदार की बेटी होने की बात पर इतना अधिक बल दिया गया है कि मानो इन दोनो बातो मे कोई आन्योन्याश्रित या अनिवार्य सबध हो।

'बडे घर की बेटी' के अतिरिक्त 'अलग्योझा' (मानसरोवर, भाग 1) कहानी मे भी प्रेमचन्द ने टूटती हुई सयुक्त परिवार – प्रथा की समस्या को उठाया है। काफी बाद की रचना होने पर भी 'अलग्योझा' मे सम्मिलित परिवार के प्रति प्रेमचन्द का मोह लक्षित किया जा सकता है। सामन्तवाद और पूजीवाद मे एक मूलभूत अतर यह होता है कि सामन्ती समाज–व्यवस्था मे परिवार एक इकाई होता है जब कि पूजीवादी व्यवस्था मे व्यक्ति इकाई होता हे। सामन्तवाद मे अधिकाश लोग खेती तथा उससे सबद्ध दूसरे घरेलू धधो पर निर्भर करते है जबकि पूजीवाद मे बडे–बडे कल–कारखानो या दफ्तरो की नौकरी पर। कृषि प्रधान होने के कारण सामन्ती समाज–व्यवस्था परिवार को– और परिवार के साथ जमीन को– छोटे–छोटे टुकडो मे बॉटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नही करती। यही कारण है कि इस व्यवस्था मे सयुक्त परिवार पर इतना बल दिया जाता है ओर उसे कुल की इज्जत और आदर –सम्मान का मूल कारण समझा जाता है। जब परिवार का कोई सदस्य अलग होने की बात करता है तो उसे कुल की इज्जत मे बट्टा लगाने वाला कुल–द्रोही समझा जाता हे। जब 'अलग्योझा' के रग्घु की पत्नी मुलिया उसे परिवार से अलग होने पर बाध्य करती है तो वह इस कल्पना से ही कॉप उठता है। वह सोचता है "आह! मेरे मुँह मे कालिख

---

[1] सप्त सराज पृ० ७

लगेगी, दुनिया यही कहेगी कि बाप के मर जाने पर दस साल भी एक में निबाह न सका । .. उसका गला फस गया। कॉपते हुए स्वर मे बोला – तू क्या चाहती है कि मै अपने भाईयो से अलग हो जाऊँ? भला सोच तो, कही मुँह दिखाने के लायक रहूगा?"[1] रग्घु को और बातो के अलावा सबसे बडा दु ख यह है कि अलग होने से उसके मुँह पर कालिख लग जायेगी और वह कही मुँह दिखाने लायक भी नही रहेगा।

बडे–बडे कल–कारखानो और नगरो की वृद्धि के रूप मे पूजीवाद के आगमन के कारण टूटती हुई सामन्ती सयुक्त परिवार – प्रथा के विघटन को प्रेमचन्द का आदर्शवाद रोक अवश्य लेता है, पर प्रश्न यह है कि कब तक? स्पष्ट है कि पुरानी समाज–व्यवस्था के विघटन की प्रक्रिया को बडे–से–बडा आदर्शवाद और सुधारवाद भी रोक नही सकता, क्योकि यह एक सामाजिक और ऐतिहासिक अनिवार्यता है।

यहॉ पर प्रेमचन्द के आदर्शवाद के अतिरिक्त एक और तथ्य पर भी विचार करना होगा। प्रेमचन्द के युग मे परपरागत भारतीय सयुक्त परिवार का ढॉचा टूटने तो लगा था, पर अभी उसके स्थान पर नई व्यवस्था विकसित नही हो पा रही थी। इसका कारण साम्राज्यवाद की उस नीति मे खोजा जाना चाहिए, जो सामाजिक और ऐतिहासिक आवश्यकताओ के विरुद्ध भारत को कृषि – प्रधान देश बनाए रखने की पूरी कोशिश कर रही थी। विघटित होती हुई पुरानी व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था के उभर पाने के कारण स्वभावत समाज–व्यवस्था मे एक रिक्ति का भाव उत्पन्न होने लगा था। पूँजीवाद की घृणित व्यक्तिवादी सभ्यता के स्थान पर किसी नवीन प्रगतिशील व्यवस्था के अभाव मे स्वभावत प्रेमचन्द जैसे विचारको ने पुरानी सामन्ती व्यवस्था को ही भारत के लिए अधिक श्रेयस्कर समझा। प्रेमचन्द मे परपरागत भारतीय जीवन के प्रति जो इतना मोह, लगाव और आकर्षण दिखाई देता है, अन्य कारणो के अतिरिक्त निस्सदेह उसका यह भी एक कारण है।

'पच परमेश्वर' का मूल प्रतिपाद्य भी यही है। 'पच परमेश्वर' मे प्रेमचन्द ने भारतीय गॉवो – जहॉ अभी आधुनिक व्यक्तिवादी सभ्यता का प्रवेश नही हुआ है– वे सरल, निश्छल, सत्यपरायण, अकृत्रिम, त्यागपूर्ण तथा उदार जीवन का एक उत्यन्त ही मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। जुम्मन शेख और अलगू चौधरी के रूप मे प्रेमचन्द ने हमे दो ऐसे अमर

---

[1] मानसरोवर, भाग 1 पु० 21

चरित्र दिए है जो सत्यपरायणता, न्यायपरायणता, साम्प्रदायिक, ऐक्य, क्षमा आदि उदात्त मानवीय विभूतियो – सक्षेप मे मानवता – के प्रतीक हैं। उनके चरित्र को हम आदर्शवादी भी कह सकते है, किन्तु यह वह आदर्शवाद नही है जो अस्वाभाविक या अकृत्रिम आदर्शवाद हो। आदर्शवाद शब्द के साथ आज हालॉकि परपरा और प्रतिक्रिया का अर्थ सबद्ध किया जाने लगा है, लेकिन जुम्मन और अलगू के चरित्रो के निमार्ण मे जो आदर्श काम कर रहा है, वह ऐसा आदर्श है जिससे बडे से बडा यथार्थवादी भी इकार नही कर सकता। यह वही आदर्श है जो प्रत्येक यथार्थवादी के अतस् मे बसा होता है। जुम्मन और अलगू का आदर्श ही मानवता का आदर्श है। इसमे सन्देह नही कि भविष्य अलगू चौधरी और जुम्मन शेख का हे, ज्ञानशकर, राय कमलानन्द, रानी गायत्री, राजा विशालसिह, रायसाहब अमरपालसिह, मातादीन, झिगुरीसिह का नही!

गॉधी जी की भॉति प्रेमचन्द भी आधुनिक नागरिक जीवन की अपेक्षा प्राचीन भारतीय ग्रामीण जीवन के प्रशसक एव समर्थक थे। 'रगभूमि' मे प्रेमचन्द ने शहरी जीवन की बुराईयो का मनोयोग के साथ चित्रण किया है। शहरी बनाम ग्रामीण जीवन की समस्या को उन्होने अपनी अनेक कहानियो का भी विषय बनाया है। उदाहरण के निए उनकी मन्त्र (पॉच फूल) ओर लोकमत का सम्मान('प्रेम–पचीसी') कहानियो को लिया जा सकता है। 'मन्त्र' का डाक्टर चड्ढा आज की घोर व्यक्तिवादी एव स्वार्थी नागरिक सभ्यता और बुड्ढा भगत सरल, निश्छल, निस्स्वार्थ तथा दूसरे की भलाई मे प्रसन्न होने वाली ग्रामीण सस्कृति का प्रतिनिधि है। नागरिक और ग्रामीण सभ्यता के पारस्परिक अन्तर (**Contrast**) को अपनी पूरी नग्नता मे उभार कर सामने रखने मे प्रेमचन्द को इस कहानी मे अपूर्व सफलता मिली हे। भगत का हृदय इतना उदार, व्यक्तिगत स्वार्थ, राग–द्वेष तथा बदले की भावना से ऊपर उठा हुआ और परोपकार की भावना से आकण्ठ पूरित है कि वह बिना बुलाए ही डाक्टर चड्ढा – जिसने अपने आमोद–प्रमोद के आगे कभी उसके मरते हुए रोगी पुत्र को एक नजर देखना भी अस्वीकार कर दिया था–के बेटे को बचाने के लिए पहुॅच जाता है। भगत की सद्वृत्तियो और असद्वृत्तियो (बदले की भावना आदि) मे होने वाले सघर्ष को प्रेमचन्द ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक अकित किया है। डाक्टर चड्ढा और भगत के इस 'कन्ट्रास्ट' को दिखाते हुए प्रेमचन्द कहते है :– "मोटर चली गई। बूढ़ा कई मिनट तक मूर्ति की भॉति निश्चल खडा रहा। ससार में ऐसे भी मनुष्य होते है जो अपने

आमोद–प्रमोद के आगे किसी की जान की भी परवा नहीं करते, शायद इसका ऐसा मर्मभेदी अनुभव अब तक न हुआ था। वह उन पुराने जमाने के जीवो मे था जो लगी हुई आग को बुझाने, मुर्दे को कन्धा देने, किसी के छप्पर को उठाने और किसी कलह को शान्त करने के लिए सदैव तैयार रहते थे।"[1]

'मन्त्र' मे नागरिक और ग्रामीण सभ्यता के 'कन्ट्रास्ट' को प्रकट किया गया है। इसके विपरीत 'लोकमत का सम्मान' कहानी मे प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन पर शहरी जीवन के अनिष्टकारी प्रभाव का एक चित्र प्रस्तुत किया है। गॉव का सरल, निश्छल और परिश्रमी बेचू धोबी शहर मे आकर किस प्रकार शराब इत्यादि की बुरी आदते सीखता है, झूठ बोलने और ग्राहको के कपडो को किराए पर उठाने के लिए मजबूर होता है—सक्षेप मे यही इस कहानी की कथावस्तु है। गॉव मे बेचू को आधे पेट रूखी–सूखी खाकर रहना पडता था और जमीदार के चपरासियो की गालियॉ और मार भी खानी पडती थी। लेकिन इतना हेते हुए भी वह गॉव का एक सम्मानित सदस्य था। गॉव की बहुएँ उसे बेचू दादा कहकर पुकारती थी और शादी–गमी के प्रत्येक अवसर पर उसका बुलावा होता था।[2] शहर मे उसकी आमदनी अवश्य बढ जाती है, उसका और उसके परिवार के अन्य सदस्यो का जीवन–स्तर भी सुधर जाता है, लेकिन साथ ही शहर की बुराईयॉ भी उसे घेर लेती हैं। स्वभावत आमदनी मे वृद्धि के बावजूद दसके खर्च का पलडा भारी रहने लगा।[3] वह अनुभव करने लगता है कि शहर मे ईमानदार बनकर रहना सभव नही है। वह कहता है "मुझे मालूम हो गया कि शहर मे अच्छी नीयतवाले आदमी का निर्वाह नहीं हो सकता।"[4]

यहॉ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रेमचन्द जब शहरी जीवन की बुराइयो ओर उसके अनिष्टकारी प्रभाव की ओर सकेत करते है तो वे वस्तुत अप्रत्यक्ष रूप से पूँजीवादी सभ्यता (जिसे वे महाजनी सभ्यता कहा करते थे) एव तज्जन्य व्यक्तिभेद की ही बुराई करते है।

'सप्त सरोज' मे ऐसी कहानियॉ भी है जिनमे 'कफन' और 'पूस की रात' का यथार्थवादी प्रेमचन्द का मन झॉकता हुआ मिलता है। 'उपदेश' और 'सज्जनता का दण्ड'

---

[1] पॉच फूल, पृ० 36 (सातवॉ सस्करण)
[2] प्रम–पचीसी, पृ० 114-15 (बनारस 1958)
[3] वही पृ० 116-17
[4] वही पृ० 117

ऐसी ही कहानियॉ हैं। इन कहानियो मे समाज–सुधारक प्रेमचन्द के अलावा व्यग्यकार प्रेमचन्द, नश्तर लगाने वाले प्रेमचन्द के भी दर्शन होते हैं। 'सज्जनता का दण्ड' मे प्रेमचन्द ने एक ऐसे ईमानदार इजीनियर की कठिनाइयो का वर्णन किया है जो ठेकेदारो से किसी भी रूप मे – कमीशन के रूप मे भी नही – रिश्वत नही लेता। रिश्वत आज के सरकारी विभागो के जीवन का एक अनिवार्य और अविच्छेद्य अग बन गई है। उसने अनेक रूप धारण कर लिए है। कही वह दस्तूरी के रूप मे प्रचलित है और कही कमीशन के रूप मे तो कही डालियो के रूप मे। कहानी के अत मे विचारशील पाठक के मन मे उस समाज और शासन–व्यवस्था के प्रति – जिसका इस सीमा तक पतन हो गया है कि उसमे एक ईमानदार आदमी को अपनी ईमानदारी की रक्षा के लिए भी सघर्ष करना पडता है – बरबस एक आक्रोश की भावना उत्पन्न हुए बिना नही रहती। इस कहानी के द्वारा प्रेमचन्द ने तत्कालीन शासन–व्यवस्था पर आघात किया है।

'सप्त सरोज' सग्रह की कहानियो मे व्यग्यकार प्रेमचन्द का सबसे अधिक निखरा हुआ रूप 'उपदेश' कहानी मे मिलता है। इस कहानी मे प्रेमचन्द ने अखबारो मे लेख लिखकर तथा 'सोशल सर्विस लीग', 'फ्री लाइब्रेरी', 'स्टूडेण्टस् एसोसिएशन' आदि के पदाधिकारी बनकर देशभक्ति और जाति–सेवा का स्वॉग रचने वाले नकली नेताओ की पोल खोली है।[1] प्रेमचन्द दिखाते है कि उँगली पर खून लगाकर शहीद बनने वाले नकली देशभक्त समय आने पर किस प्रकार अपनी जिम्मेदारी से बचकर निकल भागते है।[2] 'उपदेश' के शर्माजी ऐसे ही नकली देशभक्त है। प्रेमचन्द मानते थे कि "देश पर मिट जाने वाले को देश–सेवक का सर्वोच्च पद प्राप्त होता है, वाचलता और कोरी कलम घिसने से देश–सेवा नही होती। कम–से–कम तो अखबार पढने को यह गौरव नही दे सकता।"[3]

'उपदेश' 'सप्त सरोज' सग्रह की अकेली कहानी है जिसमे प्रेमचन्द ने जमीदार–किसान–सबधो पर भी प्रकाश डाला है। इस कहानी मे प्रेमचन्द किसानो की वर्त्तमान अवस्था का कारण समाज–व्यवस्था में नहीं बल्कि कर्मपरायण, नीतिज्ञ और विद्वान जमीदारो के अभाव मे खोजते है। वे दिखाते हैं कि जमीदार यदि अपने इलाको की

---

[1] सप्त सरोज, पृ० 65
[2] वही पृ० 66-67
[3] वही पृ० 68

देख–भाल कारिन्दो पर न छोडकर स्वय करे तो किसानो की हालत बहुत जल्द सुधर सकती है।[1] 'उपदेश' का बाबूलाल प्रेमचन्द के इन्ही विचारो का वाहक है। किन्तु स्पष्ट है कि किसानो की दुरवस्था के कारणो का यह गाधीवादी विश्लेषण और समाधान सर्वथा अवैज्ञानिक है। प्रश्न जमीदारो के कर्मपरायण, नीतिज्ञ और विद्वान होने का नही, वरन उस समाज–व्यवस्था के बदले न बदले जाने का है, जिसने एक अल्पसख्यक उपजीवी वर्ग को जनता के शोषण की छूट दी हुई है।

'उपदेश' कहानी मे प्रेमचन्द ने पुलिस–विभाग की धॉधलियो का भी उद्घाटन किया है। पुलिस के हथकण्डो की ओर प्रेमचन्द का ध्यान आरम्भ से ही रहा है। पुलिस–विभाग पर प्रेमचन्द का आक्रमण हमेशा सीधा और प्रत्यक्ष होता था। पुलिस–विभाग पर प्रेमचन्द का यह आक्रमण वस्तुत ब्रिटिश साम्राज्य पर ही आक्रमण है। पुलिसवाले गरीब और बेजबान किसानो को किस प्रकार लूटते है–प्रेमचन्द ने इसका ऑखे खोल देने वाले वर्णन किया है।[2] पुलिस के हथकण्डो का इतना यथार्थ और व्यग्यपूर्ण वर्णन प्रेमचन्द– साहित्य की अपनी विशेषता है। प्रेमचन्द की यह विशेषता उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण की परिचायक है।

'सप्त सरोज' की एक अन्य कहानी–'नमक का दरोगा' – का भी हम यहॉ उल्लेख करना चाहते है। 'नमक का दरोगा' मे प्रेमचन्द का आदर्शवाद अपने स्थूलतम, सर्वाधिक अनाकर्षक, अविश्वसनीय और भोडे रूप मे देखा जा सकता है। प० अलोपीदीन के बारे मे मुशी बशीधर के मत मे परिवर्तन बडा ही हास्योत्पादक तथा कृत्रिम है। नमक के दरोगा की हैसियत से मुशी बशीधर ने कल जिस व्यक्ति को समाज की, राज्य की और कानून की चोरी करते हुए पकडा था, आज वही सज्जन और कीर्तिवान हो जाता है। कल जो व्यक्ति चालीस बार रिश्वत लेने से इन्कार कर देता है, आज वही छ हजार वार्षिक वेतन पर प० अलोपीदीन की चाकरी करना स्वीकार कर लेता है।[3] प० अलोपीदीन के मैनेजरी करने का अर्थ इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि अब से मुशी बशीधर भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष

---

[1] सप्त सराज पृ० 88

[2] आजकल किसाना क फसल के दिन हैं। यही जमाना हमारी फसल का भी ह। शर का भी तो मॉद म बेठे–बठ शिकार नही मिलता जगल मे घूमता है। हम भी शिकार की तलाश मे है। किसी पर खुफिया–फरार्शा का इलजाम लगाया, किसी को चोरी का माल खरीदने के लिए पकडा, किसी को हमल–हराम का झगडा उठाकर फॉसा। अगर हमारे नसीब स डाका पड गया तो हमारी पॉचो ॲगुलियॉ घी मे समझिये। डाकू तो नोच–खसोटकर भागते है, असली डाका हमारा पडता है। आस–पास के गॉवो मे झाडू फेर देते है। X X X X अगर देखा कि तकदीर पर शाकिर रहने से काम नही चलता तो तदबीर से काम लेते हैं। जरा से इशारे की जरूरत है, डाका पडते क्या देर लगती है। आप मेरी साफ–गोई पर हैरान हाते होगे। अगर मैं अपने सारे हथकडे बयान करूँ तो आप यकीन न करेगे ओर लुत्फ यह कि मेरा शुमार जिले के निहायत हाशियार, कारगुजार, दयानतदार सब–इस्पेक्टरो मे है। फर्जी डाके डलवाता हूँ। फर्जी मुल्जिम पकडता हूँ। मगर सजाएँ असली दिलवाता हूँ।"

–सप्त सराज पृ० 83

[3] सप्त सरोज पृ० 62-63

रूप से अलोपीदीन के चोरी के व्यापार मे सहयोग देगे। अलोपीदीन ने कही भी इस बात का सकेत नही किया है कि वह अब चोरी का व्यापार नही करेगा। अत प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति मे अलोपीदीन की नौकरी करते हुए मुशी बशीधर अपने को उस घृणित व्यवसाय से अलग कैसे रख सकेगे? स्पष्ट है कि मालिक के बदल जाने मात्र सच्चाई और ईमानदारी का स्वरूप नही बदल सकता।

'नमक का दरोगा' का यह अत सर्वथा अनावश्यक और अस्वाभाविक है। यदि प्रेमचन्द नमक का दरोगा के पद से मुशी बशीधर की बर्खास्तगी के साथ ही अपनी कहानी को समाप्त कर देते तो प्रस्तुत कहानी वर्त्तमान अर्थ–प्रधान न्याय–व्यवस्था पर एक बहुत ही तीखा और चुभता हुआ व्यग्य बन जाती। उस अवस्था मे 'नमक का दरोगा' की गणना प्रेमचन्द की कतिपय श्रेष्ठ कहानीकारो मे की जाती–इसमे सन्देह नही।

'सप्त सरोज' के अनन्तर प्रेमचन्द का 'नवनिधि कहानी – सग्रह प्रकाश मे आया। सग्रह की अधिकाश कहानियॉ – 'ममता' और 'पछतावा' का छोडकर – ऐतिहासिक 'राजा हरदौल' कहानी मे एक और जहॉ सामन्ती युग के त्याग, उत्सर्ग और बलिदान के आदर्श को प्रस्तुत किया गया है, वहॉ दूसरी ओर उस ह्रासोन्मुख (**Decadent**) ईर्ष्या, विद्वेष एव अविश्वासमय दूषित वातावरण का भी चित्र उपस्थित किया गया है। हरदौल का चरित्र उस युग की आदर्श वीरता, त्याग और बलिदान का चित्र ह तो जुझारसिह का ईर्ष्या और अविश्वासमय वातावरण का। इस प्रकार कहानी सामती युग के विषाक्त वातावरण का एक यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने मे सफल हो सकी है। इसके विपरीत 'रानी सारन्धा' एक साधारण कहानी है जिसमे आन पर मिटने के राजपूती आदर्श की पुनरावृति मात्र की गई है। सग्रह की अन्य कहानियो मे कोई उल्लेखनीय वैशिष्ट्य लक्षित नही होता। इसी सग्रह की 'मर्यादा की वेदी' कहानी मे प्रेमचद चलते–चलते भोजन भट्ट साधुओ पर व्यग्य करने से नही चूके है।[1] "भोजन भट्ट साधुओ और पडे–पुजारियो को प्रेमचद ने अनेक कहानियो मे अपने अचूक व्यग्य का निशाना बनाया है। मोटेराम सीरीज की उनकी अधिकाश कहानियॉ समाज के इस मुफ्तखोर अग के हथकण्डो को अनावृत करने के उद्देश्य से लिखी गई है। इस सबध मे उनकी 'सत्याग्रह' (मानसरोवर भाग 3) और 'नियन्त्रण' (मानसरोवर, भाग 5) कहानियो

---

[1] 'दस बजे रात का समय था। रणछोडजी के मन्दिर मे कीर्तन समाप्त हो चुका था आर वष्णव साधु बेठे हुए प्रसाद पा रहे थे। X X X X साधुगण जिस प्रेम से भोजन करते थे, उससे यह शका होती थी कि स्वादपूर्ण वस्तुओ मे कही भक्ति–भजन स भी अधिक सुख तो नही है। X X X X कभी पेट पर हाथ फेरते और कभी आसन बदलन थे। मुँह से 'नही कहना तो वे घोर पाप क सम्मान समझते थे। X X X X इसलिए ये महात्मागण घी और खोये से उदर का खूब भर रहे थे।"

का उल्लेख किया जा सकता है। मुफ्तखोर साधुओ की समस्या पर प्रेमचद की एक छोटी–सी कहानी है– 'बाबाजी का भोग' (मानसरोवर, भाग 3) दो पृष्ठो की यह लघु कथा प्रेमचद की कतिपय श्रेष्ठतक यथार्थवादी कहानियो मे से है। कहानी मे प्रेमचद ने एक परिश्रमी किन्तु भूखे किसान–परिवार और एक मुफ्तखोर बाबाजी के 'कन्ट्रास्ट' को पूरे यथार्थ मे प्रस्तुत किया है। कहानीकार अपनी तरफ से कुछ नही कहता। सब कुछ पाठक को सोचना पडता है। कहानी मे किसी आदर्श की स्थापना नही की गई है, न कोई सुधारवादी समाधान कहानीकार की ओर से सुझाया गया है। किसान परिवार की गरीबी का चित्र एक ओर तथा बाबाजी की मुफ्तखोरी का चित्र दूसरी ओर–इन दो चित्रो के अतर को ही प्रस्तुत कहानी मे उपस्थित किया गया है। कहानी के अत मे पाठक सोचने पर विवश हो जाता है कि आखिर क्या कारण है कि रामधन जैसे परिश्रमी इसान रात को भूखे सोएँ और बाबाजी जैसे अकर्मण्य, आलसी, मुफ्तखोर और दूसरो क श्रम पर जिदा रहने वाले दाल–बाटी उडाएँ?

'नवनिधि' के प्रकाशन के बाद भी प्रेमचद ने समय–समय पर कुछ ऐतिहासिक कहानियॉ लिखी है, जैसे 'परीक्षा', 'वज्रपात', 'दिल की रानी', 'लैला', 'क्षमा', 'धिक्कार', 'शतरज के खिलाडी' इत्यादि। 'परीक्षा' (मानसरोवर, भाग 3) और वज्रपात (मानसरोवर, भाग 3) दोनो ही मुगलकालीन कहानियॉ है, जिनमे मुगलकाल के नैतिक, चारित्रिक और सामाजिक पतन का चित्रण किया गया है। प्रेमचद दिखाते है कि स्त्रियॉ किसी जाति अथवा समाज की नैतिक और चारित्रिक चेतना की प्रतीक होती है। जब स्त्रियॉ अपने समाज और गौरव की रथा का प्रयत्न त्यागकर किसी भी परिस्थिति से समझौता करने को तैयार हो जावे तो हमे समझ लेना चाहिए कि उस जाति और समाज की जीवनी शक्ति नष्ट को चुकी है और वह कहानी भी विनाश के गर्त मे समा सकती है। 'परीक्षा' मे शाही हरम की बेगमो की कायरता दिखाकर प्रेमचद ने इसी सत्य का उदघाटन किया है।

'दिल की रानी' (मानसरोवर, भाग 1) और 'क्षमा' (मानसरोवर, भाग 3) कहानियो मे प्रेमचद ने अहिसा और हिसा, प्रेम और घृणा, न्याय और अन्याय के सघर्ष को प्रस्तुत किया है। इस्लाम पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि उनका प्रसार तलवार के बल पर हुआ है, उसमे प्रेम की शक्ति से अधिक तलवार की ताकत पर विश्वास किया जाता है। 'दिल की रानी' और 'क्षमा' मे उन्ही आक्षेपो का उत्तर दिया गया है। हिंसा, घृणा, जुल्म, रक्तपात, धर्मान्धता, असहिष्णुता आदि की प्रवृत्तियॉ किसी धर्म या सप्रदाय विशेष के मानने

वाले मे ही पाई जाती हो– ऐसी बात नही है। विश्व का कोई भी धर्म इन विनाशक प्रवृत्तियो की शिक्षा नही देता। इस्लाम इस सामान्य तथ्य का अपवाद नही है। 'क्षमा' का शेख हसन अपने बेटे को मारने के लिए ईसाई दाऊद से कहता है "दाऊद, मैने तुम्हे माफ किया। मैं जानता हूँ, मुसलमानो के हाथ ईसाइयो को बहुत तकलीफे पहुँती हैं, मुसलमानो ने उन पर बडे–बडे अत्याचार किये है, उनकी स्वाधीनता हर ली है। लेकिन यह इस्लाम का नही मुसलमानो का कसूर है। विजय–गर्व ने मुसलमानो की मति हार ली है। मैं इसलाम के नाम पर बट्टा न लगाऊँगा।"[1] देखा जाय तो प्रेमचद की यह कहानी नाम के लिए ऐतिहासिक है, वर्ना उसमे आधुनिक युग की ज्वलन्त सामाजिक और राजनीतिक समस्या धार्मिक असहिष्णुता की समस्या का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत कहानी मे गॉधीजी के सर्वधर्म समभाव–व्रत का सदेश दिया गया है और दिखाया गया है कि क्षमा तथा सहिष्णुता ही वास्तव मे धर्म की आत्मा है। धार्मिक सहिष्णुता को गॉधीजी सर्वधर्म समभाव के नाम से पुकारते थे। 'सहिष्णुता' या 'सर्वधर्म–आदर' शब्द उन्हे पसन्द नही थे, क्योकि सहिष्णुता मे सहने का भाव है और आदर मे कृपा का भाव। गॉधीजी मानते थे कि दूसरे धर्मी को सहन करना या उन्हे आदर की दृष्टि से देखना ही पर्याप्त नही हे। अहिसा हमे विश्व के सभी धर्मो के प्रति समभाव रखना सिखाती है।[2]

'दिल की रानी' का मूल प्रतिवाद्य भी यही सन्देश हे। इस कहानी मे प्रेमचद ने अपने विचारो को और भी अधिक स्पष्टता और विस्तार से प्रस्तुत किया है। वे कहते है 'मजहब खिदमत का नाम है, लूट और कत्ल का नही।[3] 'दिल की रानी' का तैमर प्रेमचद के इन्ही उदार और मानववादी विचारो का वाहक है। वह कहता हे– बेशक जजिया मुआफ होना चाहिए। मुझे कोई मजाज नही है कि दूसरे मजहब वालो से उनके ईमान का तावान लूँ। कोई मजाज नही है, अगर मस्जिद मे अजान होती है, तो कलीसा मे घण्टा क्यो न बजे? घण्टे की आवाज मे कुफ्र नही है। ++++++++ काफिर वह हे, जो दूसरो का हक छीन ले, जो गरीबो को सताये, दयावान हो, खुदगरज हो। काफिर वह नही, जो मिट्टी या पत्थर के टुकडो मे खुदा की सूरत देखता है जो नदियो और पहाडो मे दरख्तो और झाड़ियो मे खुदा का जलवा पाता हो, +++++++ किसी को काफिर समझना ही कुफ्र है। हम सब खुदा के

---

[1] मानसरोवर भाग 3 पृ० 208
[2] गॉधी साहित्य, भाग 5 पृ० 157
[3] मानसरोवर भाग 1 पृ० 203

बन्दे है, सब।"[1] 'दिल की रानी' मे प्रेमचद युद्ध और शाति, हिसा और अहिसा, घृणा और प्रेम के सघर्ष मे प्रेम, अहिसा और शाति की शक्तियो की अतिम विजय दिखाते हैं। पशुबल के ऊपर आत्मबल तथा प्रेम की शक्ति की प्रतिष्ठा ही प्रस्तुत कहानी का मूल प्रतिवाद्य है।

प्रेमचद इस तथ्य से भलि–भॉति परिचित थे कि हिन्दू–मुस्लिम एकता सास्कृतिक आर्थिक स्तर पर सभव है, केवल राजनीतिक स्तर पर नही। यही कारण है कि उन्होने अपनी कहानियो मे इस्लाम के इतिहास और मुस्लिम–सस्कृति को प्रस्तुत करने का प्रशसनीय प्रयास किया है। इस सबध मे उनकी 'न्याय' (मानसरोवर, भाग 2) कहानी और 'कर्बला' नाटक का उल्लेख किया जा सकता है। 'ईदगाह' (मानसरोवर, भाग1) कहानी मे बाल–मनोविज्ञान के अतिरिक्त मुस्लिम–सस्कृति का भी एक चित्र प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचद दिखाते है कि मूलत मुसलमानो की भी वही समस्याएँ है जो हिन्दुओ की है– भूख, गरीबी व अभाव। हामिद के रूप मे प्रेमचद ने एक अमर बाल–चरित्र की सृष्टि की है। हामिद के जीवन–सघर्ष के द्वारा प्रेमचद ने वर्तमान अन्यायपूर्ण समाज–व्यवस्था के सबध मे अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए है। कहानी के अन्त मे पाठक के मन मे आज की उस समाज–व्यवस्था के प्रति एक तीव्र विरोध की भावना उठे बिना नही रहती, जो हामिद को उसमय ही प्रौढो जैसा व्यवहार करने पर विवश करती है। प्रमचद की ऐतिहासिक कहानियो की चर्चा करते हुए उनकी 'शतरज के खिलाडी' (प्रेम द्वादर्शी) कहानी को भी नही छोडा जा सकता। 'शतरज के खिलाडी' मे प्रेमचद ने ह्रासोन्मुख सामन्ती समाज–व्यवस्था के सामाजिक, नैतिक और चारित्रिक पतन का अत्यन्त मार्मिक व्यगपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। 'शतरज का खिलाडी' के माध्यम से उस युग का घोर आलस्यपूर्ण, विलासमग्न, उत्तरदायित्वहीन, अनैतिक तथा आसामाजिक जीवन मूर्त हा उठा है। शतरज के खिलाडी व्यक्तिगत रूप से कायर नही है। लेकिन राष्ट्रीय और सामाजिक रूप से कायर और क्लीव व्यक्तियो से भी बढकर है। मिजी सज्जादअली और मीर रोशनअली प्रेमचद की कुछ सर्वश्रेष्ठ चरित्र–सृष्टियो मे से है। हिन्दुस्तान आज स्वतत्र हो चुका है, किन्तु दुर्भाग्यवश हमारे देश मे आज भी अनेक मिजी सज्जादअली और मीर राशनअली विद्यमान हैं, जो कोउ नृप होउ हमहि का हानी' के अस्वस्थ एव घोर असामाजिक जीवन–दर्शन मे विश्वास रखते है। मिजी और मीर जैसे व्यक्तियो के कारण हिन्दुस्तान को गुलामी का तौक पहनना पडा था। 'शतरज के खिलाड़ी' कहानी को ऐतिहासिक केवल इस अर्थ मे कहा जा सकता है कि

---

[1] मानसरावर भाग 1 पृ० 210

उसमे कहानीकार ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दी है, वर्ना वह एक शुद्ध राजनीतिक और सामाजिक व्यग्य है। प्रस्तुत कहानी मे व्यग्यकार प्रेमचद को अपनी उत्कृष्टतम रूप मे देखा जा सकता है।

'प्रेम–पूर्णिमा' (सन् 1920) के प्रकाशन तक डॉ० राजेश्वर गुरू प्रेमचद की कहानियो का प्रारम्भिक काल मानते हैं। 'सप्त सरोज' और 'नवनिधि' की कहानियो की तरह इस सग्रह की अधिकाश कहानियॉ भी स्थूल आदर्शवाद से ओत–प्रोत तथा कच्ची भावुकता के रग मे हुई थी। 'ईश्वरीय न्याय' मे सत्य की अतिम विजय दिखयी गयी है। प्रेमचद दिखाते हे कि मनुष्य मूलत सत्यप्रिय और न्यायप्रिय होता है। स्वभावगत सत्य और परिस्थितिगत असत्य के इस सघर्ष मे यदि किसी प्रकार मनुष्य के हृदय के तत्व को जागृत कर दिया जाए तो इसमे सदेह नही कि सत्य और न्याय की रक्षा एव पुर्नस्थापन के लिए वह बडे–से–बडा त्याग और आत्म–बलिदान कर सकता है। महात्मागॉधी का हृदय–परिवर्तन इस सिद्धान्त जिसे हम उनकी राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक आदि मान्यताओ की धुरी कह सकते है – इसी विश्वास पर, इसी आस्था पर टिका हुआ है। 'ईश्वरीय न्याय' मे प्रेमचन्द कहते है "कुछ विद्वानो का कथन है कि मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाप की ओर होती है, पर यह कोरा अनुमान ही अनुमान है, बात अनुभवसिद्ध नही। सच तो यह है कि मनुष्य स्वभावतः पाप–भीरू होता है ।"[1] इसी सग्रह की 'शखनाद' कहानी में भी प्रेमचन्द ने गाधीवाद के इस सिद्धान्त का अविकल अनुवाद प्रस्तुत किया हे। वे कहते है "जिस तरह पत्थर और पानी मे आग छिपी रहती है, उसी तरह मनुष्य के हृदय मे भी – चाहे वह कैसा ही क्रूर और कठोर क्यो न हो, उत्कृष्ट और कोमल भाव छिपे रहते है।"[2] 'बेटी का धन' (प्रेम–पूर्णिमा) कहानी मे भी इसी सिद्धान्त की स्थापना की गई है। इसमे दिखाया गया है कि सूदखोर महाजन भी सर्वथा हृदयहीन और क्रूर नही होते। प्रेमचन्द के महाजन सिर्फ सूदखोर ही नही हैं, उनमे कुछ उदार हृदय वाले भी है। 'बेटी का धन' का झगडू साहू और 'मूक्तिधन' (मानसरोवर, भाग 3) का दाऊदयाल ऐसे ही उदार – हृदय महाजन है। मनुष्य–हृदय के देवत्व की प्रबलता को प्रेमचन्द ने अपनी कतिपय अन्य कहानियो का भी विषय बनाया है। उदाहरण के

---

[1] प्रम–पूर्णिमा, पृ० 13 (दसवॉ सस्करण, स० 2011)
[2] वही पृ० 41

लिए उनकी 'माता का हृदय' (मानसरोवर, भाग 3) और 'शूद्रा' (मानसरोवर, भाग 2) कहानियो का उल्लेख किया जा सकता है। 'माता का हृदय' मे दिखाया गया है कि मनुष्य के हृदय मे स्थित देवता इतना प्रबल होता है कि वह मनुष्य को अनजाने ही भलाई की ओर प्रेरित करता है।[1] 'शुद्रा' मे भी प्रेमचन्द ने अपने इसी गाधीवादी विश्वास को वाणी दी है कि क्रूर–से–क्रूर अत्याचारी मे भी मानवीय भावो को उद्‌बुद्ध किया जा सकता है। 'शुद्रा' के जण्ट साहब का हृदय–परिवर्तन अविश्वसनीय अवश्य है, किन्तु सर्वथा असभव नही। 'माता का हृदय' कहानी मे पुलिस के हथकण्डो का भी वर्णन किया गया है। राजनीतिक कार्यकर्ताओ को चोरी–डाके के झूठे अपराधो में फॉसकर लबी–लबी सजाएँ दिलाना साम्राज्यवाद की पुरानी नीति रही है। अपने समय के अन्य सैकडो–हजारो देशभक्त नवयुवको की तरह प्रस्तुत कहानी का आत्मानन्द भी साम्राज्य की इस नीति का शिकार बनता है।[2]

'सेवामार्ग' (प्रेम–पूर्णिमा) मे प्रेमचन्द ने गाधीवाद के एक अन्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। कहानी का बाह्य आवरण अलौकिकता से परिपूर्ण ह, किन्तु उसके माध्यम से एक नितान्त लौकिक एव मानवीय सत्य का उद्‌घाटन किया गया है। वह सत्य है – निस्स्वार्थ और फल की आशा के बिना की जाने वाली सेवा ही सच्चे आत्मिक सतोष का मार्ग है, धन ओर विलास के मार्ग से वह तोष नही प्राप्त हो सकता। हम देख चुके है कि 'कायाकल्प' मे भी प्रेमचन्द ने अलौकिक तथा अतिमानवीय घटनाओ के माध्यम से इसी सत्य का उद्‌घाटन किया है।

'प्रेम–पूर्णिमा' मे एक ऐसी कहानी भी है जो प्रेमचन्द की निरन्तर विकसित हो रही सामाजिक चेतना का दिग्दर्शन कराती है। 'बलिदान' मे प्रेमचन्द ने एक किसान को मजदूर होते दिखाया है। प्रेमचन्द दिखाते है कि आज से बीस वर्ष पूव्र हरखचन्द्र कुरमी के यहाँ शक्कर बनती थी और कई हल की खेती होती थी, लेकिन विदेशी चीनी ने उसका मटियामेट कर दिया। सत्तर वर्ष का बूढा हरखू जो पहिले एक तकियेदार माचे पर बैठा हुआ

---

[1] मानसरोवर, भाग 3 पृ० 101

[2] आत्मानन्द के सेवा–कार्य ने, उसकी वक्तृताओ ने और उसके राजनीतिक लेखो न उस सरकारी कर्मचारियो की नजरो मे चढा दिया था। सारा पुलिस–विभाग नीचे से ऊपर तक, उसस सतर्क रहता था, सबकी निगाहे उस पर लगी रहती थी। आखिर जिल मे एक भयकर डाके ने उन्हे इच्छित अवसर प्रदानप कर दिया। आत्मानन्द क धर की तलाशी हुई, कुछ पत्र और लेख मिल जिन्हे पुलिस ने डाके का बीजक सिद्ध किया। लगभग 20 युवको की एक टोली फास ली गयी। आत्मानन्द इनका मुखिया ठहराया गया। शहादते तैयार हुई। इस बेकारी और गिरानी क जमाने मे आत्मा से ज्यादा सस्ती और कौन वस्तु हो सकती है। बचन को और किसी के पास

नारियल पिया करता था, अब सिर पर टोकरी लिए खाद फेकता है।[1] किसान से मजदूर होने की यह कहानी उस समय अपने निर्मम किन्तु यर्थाथ चरमान्त पर पहुँच जाती है जब कि हरखू का पोता 20) मासिक पर एक ईट के भट्टे पर काम करने लगता है।[2] इस प्रकार पूजीवाद की बाढ मे एक और किसान परिवार बह जाता है। इस सबन्ध मे 'गोदान' मे पूजीवादी सभ्यता के जिस निर्मम सत्य का उद्घाटन किया गया है, प्रस्तुत कहानी मे भी उसी सच्चाई को चित्रित किया गया है।

यहॉ पर 'प्रेम–पूर्णिमा' की एक अन्य कहानी 'शिकारी राजकुमार' का उल्लेख किया जा सकता है। कथावस्तु, चरित्र–चित्रण और कलात्मक दृष्टि से यह एक साधारण कहानी है, किन्तु इसकी विशेषता इस बात मे है कि इसमे प्रेमचन्द के उस मानववादी रूप का दर्शन होता है जो अन्याय–प्रतिकार मे सदैव तत्पर रहता था। 'शिकारी – राजकुमार' मे प्रेमचन्द ने मनुष्यरूपी कतिपय ऐसे हिस्र जीवो – डाकू, महत और अन्यायी राज्य कर्मचारी – का परिचय दिया है जो इसानों के रक्त और मास पर जीवित रहते हैं। प्रेमचन्द शिकारी राजकुमार को भोले–भाले और निरीह जानवरो को मारने के बजाए इन मनुष्यरूपी हिस्र जीवो का शिकार करने के लिए प्रेरित करते है। कलात्मक दृष्टि से यह एक असफल कहानी है, क्योकि उसकी उद्देश्यमूलकता सूक्ष्म और साकेतिक न रहकर स्थूल और उपदेशात्मक बन गई है।

'प्रेम–पचीसी' सग्रह मे पहली बार कहानीकार प्रेमचन्द की सामाजिक और राजनीतिक चेतना का क्रमश प्रखर होता रूप दिखता है। 'प्रेम–पचीसी' का प्रकाशन 1923 ई० मे हुआ था। प्रेमचन्द का 'प्रेमाश्रम' उपन्यास भी इसी दर्ष प्रकाशित हुआ था। स्वभावत कहानीकार प्रेमचन्द को इस सग्रह की कहानियो मे पहले–पहल सामाजिक प्रश्नो के अतिरिक्त आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नो पर भी विचार करते देखते हैं। प्रेमचन्द के आर्थिक विचारो को जानने के लिए इस सग्रह की 'पशु से मनुष्य' कहानी का महत्त्व निर्विवाद है। इस कहानी का नायक प्रेमशकर 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशकर का ही प्रतिरूप है। दोनो के विचारो मे अद्भुत साम्य है। प्रेमचन्द प्रस्तुत कहानी मे घोषित करते हे कि पूजी और श्रम मे – शोषक और शोषितो मे – आज जो सघर्ष चल रहा है, उसमे जल्द ही श्रम की – शोषितो

---

[1] अब रह ही क्या गया हे। नाममात्र का प्रलोभन दकर अच्छी–से–अच्छी शहादते मिल सकती हैं और पुलिस के हाथो मे पडकर तो निकृष्ट से निकृष्ट गवाहियॉ भी देव वाणी का महत्व प्राप्त कर लेती है। शहादते मिल गयी महीने भर तक मुकदमा चला मुकदमा क्या चला एक स्वॉग चलता रहा, और सारे अभियुक्तो को सजाऍ दे दी गयी।"

– मानसरोवर, भाग ३ पृ० ६६

[2] प्रम–पूर्णिमा पृ० 151

की – विजय होने वाली है। यूँ तो आज से पहले भी पूजी के प्रभुत्व को अनेक बार धक्का लग चुका है, लेकिन लक्षण बता रहे है कि इस बार पूजी के प्रभुत्व की जो पराजय होगी वह अतिम और निर्णायक होगी।[1] वर्त्तमान वर्ग सघर्ष मे श्रम की इस विजय के पश्चात् जिस युग का आगमन होगा, वह सहकारिता का युग होगा।[2] वर्त्तमान समाज–व्यवस्था इतनी भ्रष्ट हो चुकी है कि उसमे परिश्रम का फायदा परिश्रम करने वाली बहुसख्यक जनता को नही, वरन् उपजीवी वर्ग के कुछ अन्य व्यक्तियो को मिलता है। प्रेमचन्द मानते थे कि "यदि एक मजूर 5) रुपया मे अपना निर्वाह कर सकता है, तो एक मानसिक काम करने वाले प्राणी के लिये इससे दुगुनी–तिगुनी आय काफी होनी चाहिये और यह अधिकता इसलिये कि उसे कुछ उत्तम भोजन, वस्त्र तथा सुख की आवश्यकता होती है। मगर पॉच और पॉच हजार, पचास और पचास हजार का अस्वाभाविक अन्तर क्यो हो? इतना ही नही, हमारा समाज पॉच और पॉच लाख के अन्तर का भी तिरस्कार नही करता, वरन् उसकी और भी प्रशसा करता है।"[3]

प्रस्तुत कहानी मे प्रेमचन्द ने अपने शिक्षा – सबधी विचारो को भी व्यक्त किया है। वे मानते थे कि जो शिक्षा हमे दूसरो का शोषण करने के लिए प्रेरित और शिक्षित करे, वह शिक्षा नही भ्रष्टता है। शिक्षा वास्तव मे प्रेम और सेवा का साधन है, शोषण का नही। वर्त्तमान शिक्षण – प्रणाली लोगो को घोर स्वार्थी, व्यक्तिवादी, अर्कमण्य, आलसी और निकम्मा बनाती है। यही कारण है कि आज का शिक्षित वर्ग दूसरो के श्रम के ऊपर ऐश करता है, स्वय परिश्रम करना नही जानता।[4] हमे यह स्वीकार करना पडेगा कि बौद्धिक वाद–विवाद के आधिक्य के कारण प्रस्तुत कहानी 'कहानी' न रहकर एक भाषण' मात्र बन गई है। कहानीकार ने अपने सामाजिक–आर्थिक विचारो को इतनी स्पष्टता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया हे कि कहानी की कलात्मकता पूर्णत· नष्ट हो गई है।

---

[1] प्रम–पचीसी पृ० 23 (बनारस 1958)
[2] वही पृ० 20
[3] वही पृ० 21-22
[4] 'प्रेमशकर – +++ मुझे वर्त्तमान शिक्षा और सभ्यता पर विश्वास नही है। +++ जा शिक्षा हमे निर्बलो को सताने के लिए तयार करे, जो हमे धरती और धन का गुलाम बनाये जो हमे भोग–विलास मे डुबाये जा हमे दूसरो का रक्त पीकर मोटा होने का इच्छुक बनाये वह शिक्षा नही भ्रष्टता है। +++ हमने विद्या और बुद्धि – बल को विभूति के शिखर पर चढने का मार्ग बना लिया। वास्तव मे वह सेवा और प्रेम का साधन था। +++ मै समस्त शिक्षित समुदाय का केवल निकम्मा ही नही, वरन् अनर्थकारी भी समझता हूँ।'

प्रेम–पचीसी,

पृ० 20–21

प्रस्तुत सग्रह मे प्रेमचन्द की कतिपय राजनीतिक कहानियॉ भी सकलित हैं। 'आदर्श विरोध' मे उन राजनीतिक नेताओ पर व्यग्य किया गया है जो अधिकार पाते ही पक्के शासन–भक्त हो जाते है। 'दुस्साहस' मे गाधीजी के शराबबदी और नशाबदी–आदोलन का चित्रण है। इस कहानी के मुशी मैकूलाल और उनके साथियो का जो हृदय–परिर्वतन दिखाया गया है, वह सर्वथा आकस्मिक अत अस्वाभाविक है। अपनी एक अन्य कहानी 'राजभक्त' मे प्रेमचन्द स्वय इस तथ्य को स्वीकार करते है कि "मानव–चरित्र मे आकस्मिक परिवर्तन बहुत कम हुआ करते है।"[1] 'सुहाग की साडी' मे स्वदेशी–आदोलन का चित्रण है। प्रेमचन्द दिखाते है कि स्वदेशी – आदोलन के कारण असख्य जुलाहो और कोरियो को बेकारी तथा दूसरो की गुलामी के शाप से मुक्ति मिल जाती है।[2] किन्तु प्रेमचन्द यह भूल जाते है कि इस आदोलन का असली लाभ बडे बडे उद्योगपतियों और मिल–मालिको को ही पहुँचा था, जुलाहो और कोरियो को नही। इस आदोलन ने सूत और कपडे के मिलो **(Textile industry)** के विकास मे अभूतपूर्व योग दिया था। यही कारण है कि देश का पूँजीपति वर्ग गाधीजी के स्वदेशी और खद्दर–विकास कार्यक्रम का समर्थन करते हुए भी नए–नए कारखाने और मिले स्थापित करता रहा।[3] स्वदेशी–आदोलन के कारण देश के छोटे दूकानदार–वर्ग **(Petty ShopKeeper class)** को कितना पिसना पडा था, कितनी कठिनाइयॉ झेलनी पड़ी थी – इसका चित्रण प्रेमचन्द ने अपनी 'तावान' (मानसरोवर, भाग 1) कहानी मे किया है। प्रेमचन्द ने इस आदोलन के एक ही पक्ष का चित्रण नही किया है – 'तावान' इसका प्रमाण है। इस कहानी मे प्रेमचन्द ने स्वदेशी – आदोलन और काग्रेस पर एक गहरा व्यग्य किया है। काग्रेस के स्वय सेवको और अधिकारियो का पुलिस को भी मात कर देने वाला निर्मम व्यवहार देखकर 'तावान' की अबा पूछती है · "जो अभी इतने निर्दयी है, वह कुछ अधिकार हो जाने पर न्याय करेगे।"[4] प्रस्तुत कहानी से स्पष्ट हो जाता है कि इस आदोलन का असली बोझा छकौडीमल, उसकी वृद्धा माता, रोगिणी पत्नी एव उसके

---

[1] मानसरावर भाग 6 पृ० 269

[2] प्रम पचीसी पृ० 55–57

[3] **"The industrialists, with their historical sense and knowledge of laws of economy, did not regard Ghandhiji's parallel propaganda of khaddar as a danger to their industrial programme. In fact, while operating and multiplying modern machine-hbased industries in India and deriving profits out of them, some of them, anomalous though it be, donned handspun khaddar and even subsidized the khaddar movement "**

- Social Background of Indian Nationalism, P. 178

[4] मानसरोवर भाग 1 पृ० 306 (नवॉ सस्करण)

पॉच बेटे–बेटियो को उठाना पडा था, जब कि उसका असली लाभ देश के उद्योगपति वर्ग को पहुँचा था।

'प्रेम–पचीसी' की सामाजिक कहानियो मे भी हम प्रेमचन्द के इसी यथार्थोन्मुख रूप की झलक पाते है। 'नैराश्य – लीला' मे एक ऐसी बाल–विधवा की कहानी कही गई है जो भगवद्भक्ति, समाज–सेवा आदि विभिन्न दिशाओ मे अपनी शक्तियो का उपयोग करती है, किन्तु उसे पग–पग पर सन्देह और झूठे लाछनो का सामना करना पड़ता है। धीरे–धीरे वर्त्तमान पुरुष–प्रधान समाज–व्यवस्था के प्रति कैलाशी के मन मे तीव्र विद्रोह के भाव जगने लगते है।[1] वह एकादशी और तीज के व्रतो को, जिनको वह अपने मृत पति के कल्याण की कामना से पिछले आठ वर्षो से रखती आ रही थी, रखना छोड देती है। वर्त्तमान समाज–व्यवस्था मे स्त्री का स्वतन्त्र महत्त्व नही है। वह अपनी आवश्यकताओ के लिए ही नही, अपने आत्म–सम्मान के लिए भी पुरुष की आश्रिता है। आज स्त्री का महत्व और उपयोगिता केवल दो रूपो मे है – पुरुष के मान–बहलाव की सामग्री के रूप मे तथा पुरुष के पुत्रो – वे पुत्र जो पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी आर उसकी कुल का नाम चलाने वाले होते है– को जनम देने वाली के रूप मे । दुर्भाग्य से यदि किसी स्त्री की कोख से केवल पडकियॉ ही जन्म ले तो परिवार मे उस स्त्री का जीवन नरक तुल्य हो जाता है। 'नैराश्य' (मानसरोवर, भाग 3) कहानी मे प्रेमचन्द ने इसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का चित्रण किया है।

विधवा समस्या पर प्रेमचन्द ने अपनी कुछ और कहानियो मे भी विचार किया है, उदाहरणार्थ 'धिक्कार' (मानसरोवर, भाग 1)(धिक्कार शीर्षक से प्रेमचनद की एक और कहानी भी है, जो मानसरोवर, भाग 3 मे सगृहीत है।), स्वामिनी (मानसरोवर, भाग 1) इत्यादि। लगभग एक ही समय की रचनाएँ होने पर भी उक्त दोनो कहानियो मे प्रेमचन्द के दो रूप दृष्टिगत होते है। 'धिक्कार' की मानी और 'स्वामिनी' की प्यारी के चरित्रो मे दक्षिणी ओर उत्तरी ध्रुव जितना अतर है। प्रेमचन्द मानी का पुनर्विवाह करवाकर भी उसका वैवाहिक जीवनल नही दिखा सके है। वह क्षणिक आवेश मे आकर चलती गाडी से कूदकर

---

[1] कलाशी – तो कुछ मालूम भी तो हो कि ससार मुझसे क्या चाहता है। मुझ मे जाव आर चेतना है जड क्योकर बन जाऊँ? मुझसे यह नही हो सकता कि अपने को अभागिनी दुखिया समझूँ और एक टुकडा रोटी खाकर पडी रहूँ। +++ मैं इसे अपना घार अपमान समझती हूँ कि पग पग पर मुझ पर शका की जाय नित्य कोई चरवाहो की भॉति मेरे पीछे लाठी लिये घूमता रह कि किसी के खेत मे न जा पडूँ।+++ यह दशा मेरे लिये असह्य है। +++ कुछ दिनो से उसे अपनी बेकसी का यर्थाथ ज्ञान होने लगा था। स्त्री पुरुषो के कितने अधीन है, मानों स्त्री विधाता ने इसीलिये बनायी ह कि पुरुषो के अधीन रहे। यह सोचकर वह समाज के अत्याचारो पर दॉत पीसने लगती थी।

आत्महत्याकर लेती है।[1] इसे हम मानी की मध्यवर्गीय दुर्बलता कहे अथवा उसके सृष्टा प्रेमचन्द की– बात एक ही है। मानी के विपरीत प्यारी एक स्वस्थ्य – तन से भी और मन से भी – स्त्री है, जो केवल अपने लिए ही नही, दूसरो के लिए भी जीना जानती है। उसमे बाबू – सुलभ आत्मदडीय प्रवृत्ति या मानसिक ग्रन्थियॉ और कुठाएँ बिल्कुल नही हैं। वह भर–जवानी मे विधवा हो जाती है, किन्तु वैधव्य का यह दु ख उसकी जीवनैषण को नष्ट नही कर पाता। वह प्रेमचन्द की पूर्णा(प्रतिज्ञा), गायत्री(कायाकल्प), रतन(गबन), मानी(धिक्कार) आदि विधवा चरित्रो से सर्वथा भिन्न है। प्यारी की इस अपूर्व जीवनैषणा का कारण यह है कि उसे परिश्रम से एक स्वाभाविक लगाव है। अपनी समस्त मर्यादावादिता के बावजूद कहानी के अत मे प्रेमचन्द ने प्यारी और हलवाहे जोखू के स्वस्थ प्रणय की एक मधुर झॉकी भी प्रस्तुत की है। मध्यवर्गीय लोगो की भॉति विधवा–विवाह के पक्ष–विपक्ष के सैद्धान्तिक विवाद मे न पडकर प्यारी अपने लिए एक स्वस्थ जीवन–मार्ग तथा साथी चुन लेती है। स्पष्ट है कि प्रस्तुत कहानी के द्वारा प्रेमचन्द ने विधवा समस्या का एक स्वस्थ और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया है।

विधवा – समस्या के अतिरिक्त अनमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, दहेज की प्रथा, वेश्या – समस्या, मृतक भोज आदि समस्याओ पर भी प्रेमचन्द ने अपनी कहानियो मे विचार किया है। 'नया विवाह' (मानसरोवर, भाग 2), नरक का मार्ग(मानसरोवर, भाग 3) आदि कहानियो मे अनमेल विवाह या वृद्ध विवाह की समस्या को उठाया गया है। यो तो इस समस्या को 'सेवा सदन', 'निर्मला', 'कायाकल्प' और 'गबन' उपन्यासो मे भी उठाया गया है, किन्तु 'नया विवाह' कहानी मे उसे एक सर्वथा नए दृष्टिकोण से देखा गया है। प्रेमचन्द को आम तौर पर मर्यादावादी कहा जाता है, जो वे किसी हद तक है भी, किन्तु 'नया विवाह' मे प्रेमचन्द ने अपनी मर्यादावादिता को ताक पर रख दिया है। प्रस्तुत कहानी मे प्रेमचन्द लाला डगामल की जवान पत्नी आशा को अपने युवक नौकर जुगल से प्रेम करते दिखाते हैं। प्रेमचन्द साहित्य मे यह एक सर्वदा नवीन बात है। 'नरक का मार्ग' की नायिका भी अनमेल विवाह की शिकार है। अपनी अतृप्त आकाक्षाओं को दबाने के लिए वह भक्ति का मार्ग अपनाती है, किन्तु भक्ति के पास उसकी समस्याओ का समाधान नही है। अत मे वह वेश्या हो जाती है। कहानी के अत मे कहानीकार एक शुष्क उपदेशक का रूप धारण कर लेता है, फलत कहानी की समस्त प्रभावत्मकता नष्ट हो गई है।

---

[1] मानसरोवर, भाग 1

अपनी कुछ कहानियो मे प्रेमचन्द ने अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को भी उठाया है। उदाहरण के लिए उनकी कायर(मानसरोवर, भाग 1) कहानी का उल्लेख किया जा सकता है। इस कहानी का नायक केशव एक ऐसा युवक है जो बाते बडी – बडी कर लेता है, किन्तु उन बातो को कार्यरूप मे परिणत करने की शक्ति और साहस उसमे नही है। प्रेमचन्द कहते है "वह साधारण युवको की तरह सिद्धान्तो के लिये बडे बडे तर्क कर सकता था, जबान से उनमे अपनी भक्ति को दोहाई दे सकता था; लेकिन इसके लिये यातनाएँ झेलने की सामर्थ्य उसमे न थी।"[1] केशव के विपरीत उसकी प्रेमिका प्रेमा बडी बडी बाते नही करती, लेकिन समय आने पर वह अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए बडे से बडा त्याग कर सकती है। प्रेमा के पिता हालॉकि पुराने विचारो के व्यक्ति है, लेकिन उनमे भी केशव से अधिक साहस है। वह प्रेमा के अन्तर्जातीय विवाह के सबध मे अपनी पत्नी से कहते है " .. कुल मर्यादा के नाम को कहॉ तक रोये +++ कुल मर्यादा के नाम पर मै प्रेमा की हत्या नही कर सकता। दुनिया हॅसती हो, हॅसे, मगर वह जमाना बहुत जल्द आने वाला है, जब ये सभी बन्धन टूट जायेगे। आज भी सैकडो विवाह जात–पॉत के बन्धनो को तोडकर हो चुके है। अगर विवाह का उद्देश्य स्त्री और पुरुष का सुखमय जीवन है, तो हम प्रेमा की उपेक्षा नही कर सकते।"[2] केशव की कायरता से मर्माहत होकर प्रेमा आत्महत्या कर लेती है। स्पष्ट है कि प्रेमा का यह भावुकतापूर्ण और नकारात्मक कदम उसके चरित्र को गिराने वाला ही सिद्ध हुआ है। आत्महत्या करने के बजाए यदि वह केशव जैसे पुसत्वहीन पुरुष की याद को भुलाकर अपने जीवन को नए सिरे से जीने का प्रयास करती तो जीवन का ज्यादा स्वस्थ आर्दश प्रस्तुत कर सकती थी। आत्महत्या को किसी भी परिस्थिति मे उचित नही ठहराया जा सकता, प्रेम मे असफल होने पर या मनचाहा वर न मिलने पर आत्महत्या करना तो और भी अनुचित, अनावश्यक तथा मूर्खतापूर्ण है। गाधीजी मानते थे कि यदि पढी–लिखी लडकियॉ भी वर न मिलने पर अथवा विवाह न होने पर आत्महत्या करे तो स्पष्ट हो जाता है कि उनकी शिक्षा व्यर्थ है। जो शिक्षण–प्रणाली हमें सामाजिक बुराइयो से

---

[1] मानसरोवर, भाग 1, पृ० 243

[2] वही, भाग 1 पृ० 240

लडने की शक्ति न प्रदान करे, उस प्रणाली मे निस्सन्देह कोई मूलभूत कमी है।[1] अन्तर्जातीय विवाह के सबध मे भी गाधीजी के विचार इतने ही प्रगतिशील हैं। वे कहते हैं ''लडकियो के मा–बाप को अग्रेजी डिग्रियो का मोह छोड देना चाहिये और अपनी लडकियो के लिए सच्चे और बहादुर नौजवान ढूढने के लिए अपनी छोटी जातियो और प्रांतों से बाहर निकलने मे सकोच नही करना चाहिये।''[2] गाधीजी यह भी मानते थे कि दहेज की प्रथा उस समय तक समाप्त नही हो सकती जब तक किसी खास जाति के भीतर ही विवाह का बन्धन रहेगा। अत यदि दहेज की बुराई को जड से मिटाना है तो लडके–लडकियो और उनके अभिभावको को जाति का बन्धन तोडना ही पडेगा।[3]

दहेज प्रथा के सदर्भ मे हम यहॉ पर प्रेमचन्द की दो कहानियो का उल्लेख करना चाहते है – 'एक ऑच की कसर' (मानसरोवर, भाग 3) और 'उद्धार' (मानसरोवर, भाग 3)। 'एक ऑच की कसर' ऐसे पाखण्डी की व्यग्यपूर्ण कहानी है, जो दहेज का विरोध केवल इसलिए करते है क्योकि इससे समाज मे उनकी प्रतिष्ठा बढती है। प्रस्तुत कहानी के महाशय यशोदानन्दन एक ऐसे ही पाखण्डी समाज–सुधारक है, जो दहेज के विरोध मे लबे–चौडे व्याख्यान देते हुए भी चोरी छिपे दहेज की रकमे लेते है। एक ऑच की कसर मे यदि व्यग्यकार प्रेमचन्द प्रमुख है तो उद्धार मे आदर्शवादी प्रेमचन्द। दहेज की प्रथा के कारण हिन्दु समाज मे लडकियो की शादी एक समस्या बन गई है। इस सबध मे 'उद्धार' मे प्रेमचन्द कहते है ''हिन्दू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी दूषित, इतनी चिन्ताजनक, इतनी भयकर हो गयी है कि कुछ समझ मे नही आता, उसका सुधार क्योकर हो। बिरले ही ऐसे माता पिता होगे जिनके सात पुत्रो के बाद भी एक कन्या उत्पन्न हो जाय तो वह सहर्ष उसका स्वागत करे। कन्या का जन्म होते ही उसके विवाह की चिन्ता सिर पर सवार हो जाती है और आदमी उसी मे डुबकियॉ खाने लगता है। अवस्था इतनी निराशामय और भयानक हो गयी है कि

---

[1] पढी–लिखी लडकियो को वर न मिले तो वे आत्महत्या करती हुअी क्यो पाअी जाय? अुनकी तालीम की कीमत ही क्या है अगर अिससे अुनके अैसे रिवाज को तोडने की शक्ति न आये जो किसी भी तरह बचाव करने के लायक नही है और जो नैतिक दृष्टि से अितना घृणित है? जवाब साफ है। जो शिक्षा–प्रणाली लडके और लडकियो का सामाजिक या दूसरी बुराअियो के साथ लडने के हथियार नही देती अुस प्रणाली मे जरूर कोअी न कोअी बुनियादी खराबी है।

– स्त्रिया और अुनकी समस्याये, पृ० 71

[2] वही, पृ० 70

[3] वही पृ० 70–71

ऐसे माता–पिताओ की कमी नही है जो कन्या की मृत्यु पर हृदय से प्रसन्न होते है, मानो सिर से बाधा टली। इसका कारण केवल यही है कि दहेज की दर, दिन दूनी रात चौगुनी, पावस काल के जल–वेग के समान बढती चली जा रही है।"[1] निस्सन्देह हिन्दू वैवाहिक प्रथा आज इतनी भ्रष्ट और दूषित हो चुकी है कि साधारण सुधारो से अब उसका जीर्णोद्धार सभव नही रह गया है। किन्तु यह कहना उचित नही होगा कि केवल दहेज की प्रथा ही वह कारण हे जिसकी वजह से सात पुत्रो के बाद उत्पन्न होने वाली कन्या का भी सहर्ष स्वागत नही किया जाता। इसका मूल कारण वह सामन्ती समाज–व्यवस्था है, जिसमे स्त्री का समाज के एक उपयोगी (आर्थिक दृष्टि से भी) और आवश्यक सदस्य (इकाई) के रूप मे कोई महत्व नही है। स्पष्ट है कि जब तक स्त्रियो के सबध मे वर्तमान सामन्ती दृष्टिकोण मे आमूल परिवर्तन नही होता, तब तक कन्या के जन्म को इसी तरह अशुभ और अनिष्टकारी समझा जाता रहेगा।

वर्तमान समाज–व्यवस्था मे स्त्री की स्थिति पर विचार करते हुए प्रेमचन्द ने कई कहानियॉ लिखी है, यथा कुसुम (मानसरोवर, भाग 2) सोहाग का शव(मानसरोवर, भाग 5), शाति (मानसरोवर, भाग ७) (नारी जीवन की कहानियॉ सग्रह मे यही कहानी अतिम शाति शीर्षक से सकलित है।), उन्माद (मानसरोवर, भाग 2), दो सखियॉ (मानसरोवर, भाग 4) आदि। इन सभी कहानियो मे प्रेमचन्द ने स्त्री पुरुष के समानाधिकार के सिद्धान्त का समर्थन एव प्रतिपादन किया है। कुसुम मे प्रेमचन्द ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है अगर पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था मे स्त्री को हर समय धर्म, त्याग, पति सेवा, सतोष, सयम आदि का पाठ पढाया जाता है जिसका उद्देश्य स्त्री के आत्म सम्मान, आत्म विश्वास, आत्म निर्भरता, स्वाधीनता आदि भावो को कुचलकर उसके स्वतत्र व्यक्तित्व विकास के मार्ग को अवरूद्ध करना है। प्रेमचन्द इस तथ्य से परिचित थे। इसलिये कुसुम मे वे कहते है "स्त्रियो को धर्म और त्याग का पाठ पढा पढा कर हमने उनके आत्म सम्मान ओर आत्म विश्वास दोनो ही का अन्त कर दिया है। "[2] प्रेमचन्द इस बात को जानते और अनुभव करते थे कि सुखमय और स्वस्थ दाम्पत्य जीवन की नीव स्त्री पुरुष के अधिकार साम्य पर ही रखी जा सकती है।[3]

---

[1] मानसरावर भाग 3 पृ० 38
[2] मानसरावर, भाग 3 पृ० 38
[3] वही, भाग 2 पृ० 13

सोहाग का शव और दो सखियॉ कहानियो मे इसी समस्या पर और अधिक विस्तार से विचार किया गया है। पत्रात्मक शैली मे लिखित दो सखियॉ कहानी को कहानी कहने की अपेक्षा लघु उपन्यास कहना अधिक युक्तियुक्त होगा। इसमे प्रेमचन्द ने क्रमश प्राचीन और नवीन आदर्शो की भक्त दो सखियो के माध्यम से वैवाहिक प्रथा, नारी की स्वाधीनता, स्त्री और पुरुष के सामानाधिकार आदि प्रश्नो पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। प्रस्तुत कहानी से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द विवाह को एक सामाजिक समझौता **(Civil contract)** ही मानते थे, धार्मिक गठबधन **(Sacrament)** नही। वैवाहिक प्रथा पर दो सखियो के विनोद के विचार प्रेमचन्द के ही विचार है। विनोद इस प्रथा को वर्तमान काल के लिए उपयोगी नही मानता। वह कहता है "इस प्रथा का अविष्कार उस समय हुआ था, जब मनुष्य सभ्यता की प्रारम्भिक दशा मे था। तब से दुनिया बहुत आगे बढी है। मगर विवाह प्रथा मे जौ भर भी अन्तर नही पडा। यह प्रथा वर्तमान के लिए उपयोगी नही।"[1] इसके अनुसार इस प्रथा का सबसे बडा दोष यह है कि वह एक शुद्ध सामाजिक प्रश्न के धार्मिक रूप दे देती हे। इसका दूसरा दोष यह है कि वह व्यक्तियो की स्वाधीनता मे बाधक है। वर्तमान व्यवस्था मे स्त्री का एकमात्र कर्तव्य पुरूष की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी – वह सम्पत्ति जिस पर उसका कोई अधिकार नही हैं – उत्पन्न करना है।[2] इसमे सन्देह नही कि सामाजिक समझोता मानते हुए भी विवाह का आदर्श यही होना चाहिए कि उसकी पवित्रता और स्थिरता की जीवन पर्यन्त रक्षा की जाय। वर्तमान वैवाहिक प्रथा के सुधार के नाम पर प्रेमचन्द मुक्त भोग या व्याभिचार को बढावा नही देते थे।[3] मिस पद्मा (मानसरोवर, भाग 2) कहानी मे प्रेमचन्द ने एक ऐसी आधुनिका का चित्रण किया है, जो विवाह को पराधीनता समझती है। मुक्त भोग को स्वाधीनता का पर्याय माननेवाली मिस पद्मा को एक ऐसा ही पुरुष मिल जाता है। अत मे जब वह पुरुष

---

[1] मानसरोवर भाग **4** पृ० **240**

[2] दूसरा यह कि यह व्यक्तियो की स्वाधीनता मे बाधक है। यह स्त्री व्रत और पतिव्रत का स्वॉग रचकर हमारी आत्मा को सकुचित कर देता है। +++ इसने मिथ्या आदर्शो को हमारे सामने रख दिया और आज तक हम उन्ही पुरानी सडी हुई लज्जाजनक, पाशविक लकीरो को पीटते जाते हैं। व्रत केवल एक निरर्थक बधन का नाम हे। इतना महत्वपूर्ण नाम देकर हमन उस कद को धार्मिक रूप दे दिया हे। पुरुष क्यो चाहता है कि स्त्री उसको अपना इश्वर अपना सर्वस्व समझे? केवल इसलिय कि वह उसका भरण पोषणकरता हे? क्या स्त्री का कर्तव्य केवलपति की सम्पत्ति क लिए वारिस पैदा करना हैं? उस सम्पत्ति क लिए जिस पर, हिदू नीतिशास्त्र के अनुसार, सारा सगठन सम्पत्ति रक्षा के आधार पर हुआ हे। इसने सम्पत्ति को प्रधान ओर व्यक्ति को गोण कर दियाहै। +++ मैं इस वैवाहिक प्रथा का सारी बुराइयो का मूल समझता हूँ।"

[3] मानसरोवर भाग **4** पृ० **241**

उसे धोखा देकर चला जाता है तो उसे विवाह की सार्थकता, उपयोगिता और आवश्यकता मालूम होती है।

'सोहाग का शव' की नायिका सुभद्रा के रूप मे प्रेमचन्द ने एक साहसी, निर्भीक और विद्रोहिणी नारी की अवतारणा की है। पुरुष प्रधान सामन्ती समाज – व्यवस्था मे स्त्री घर की लक्ष्मी अर्थात सम्पत्ति मानी जाती है, अत उस पर मृत्यु पर्यन्त– और मृत्यु के पश्चात् भी एक ही व्यक्ति का, एक ही परिवार का एकाधिकार रहता है। भारतीय सस्कृति मे स्त्री की पवित्रता पर निरन्तर इतना अधिक बल दिया गया है कि हमारे यहॉ यह कल्पना भी नही की जा सकती कि स्त्री एक पुरुष को छोडकर किसी अन्य पुरुष के साथ वैवाहिक सबध स्थापित करे। स्त्री की पवित्रता पर इतना अधिक बल दिए जाने के कारण ही इस सस्कृति मे विवाह को एक सामाजिक समझौता– जो आवश्यकता पडने पर तोडा जा सके– न मानकर एक धार्मिक गठबधन – जो किसी भी परिस्थिति और अवस्था मे तोडा न जा सके– माना जाता है। प्रेमचन्द विवाह को धार्मिक बधन नही मानते थे, किन्तु साथ ही स्त्री की पवित्रता का प्राचीन भारतीय आदर्श भी उन्हे अस्वीकार्य नही था। यही कारण है कि विवाह को सामाजिक समझौता मानने के पक्ष मे होते हुए भी प्रेमचन्द तलाक का अधिकार दिए जाने के पक्ष मे नही थे। प्रस्तुत कहानी मे प्रेमचन्द ने यूरोप मे तलाको की बढती हुई सख्या पर चिता व्यक्त की है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि विवाह रूपी इस सामाजिक समझौते की स्थिरता और पवित्रता पर पुरुष की ओर से आघात हो ('सोहाग का शव' मे यही होता है!) तो ऐसी स्थिति मे स्त्री क्या करे? क्या वह पुरुष के इस आघात को चुपचाप सहन कर ले? क्या पुरुष को इस समझौते को निभाने के लिए बाध्य नही किया जा सकता? और, यदि पुरुष समझौते को निभाने से इकार कर दे तो क्या स्त्री जीवन भर उसके नाम को रोती रहे और घुल घुल कर अपने प्राण दे दे? स्पष्ट है कि पश्चिम मे तलाको की बढती हुई सख्या से आशकित होते हुए भी प्रेमचन्द इन प्रश्नो का उत्तर नही दे पाए हैं।

यहॉ पर हम प्रेमचन्द की 'निर्वासन' (मानसरोवर, भाग 3) कहानी का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहते है। इस कहानी मे प्रेमचन्द ने उस सस्कृति पर एक तीखा व्यग्य किया है जो स्त्री की पवित्रता और पातिव्रत पर आवश्यकता से अधिक बल देती है, जो सस्कृति स्त्री पर पर–पुरुष की दृष्टि पडते ही अपवित्र और अशुचि की सज्ञा देकर उसे घर से, परिवार से और समाज से बहिष्कृत कर देती है। 'निर्वासन' प्रेमचन्द की कतिपय श्रेष्ठ यर्थाथवादी कहानियो मे से है। इस कहानी में हमें शुद्ध यर्थाथवादी प्रेमचन्द के दर्शन होते

हैं। कहानीकार ने अपनी तरफ से कुछ नहीं कहा है, केवल परिस्थितियों के चित्रण के माध्यम से वह वर्तमान संस्कृति के प्रति हमारे मन में तीव्र घृणा के भाव जागृत करने में समर्थ हो सका है।

प्रेमचन्द का स्त्री संबंधी आर्दश जानने के लिए उनकी 'शांति' (मानसरोवर, भाग 7) का अध्ययन आवश्यक है। 'शांति' में पति की प्रेरणा से एक प्राचीना का आधुनिका के रूप में परिर्वतन और फिर उसके पुनर्परिवर्तन की गाथा कही गई है। नायिका के दोनों रूपों के जो शब्द चित्र प्रस्तुत किए गए हैं, वे वास्तव में दो भिन्न जीवनादर्शों – परंपरागत भारतीय और पश्चिमी आदर्शों – के प्रतीक हैं।[1] कहानीकार दिखाता है कि प्राचीना के रूप में नायिका जब कि दूसरों के लिए जीती थी, आधुनिका बन जाने पर वह केवल अपने लिए जीती है। अब उसके ह्रदय से त्याग और सेवा के भाव सर्वथा लुप्त हो जाते हैं।[2] अंत में पतिदेव की आँखें खुलती हैं और वे कहते हैं : "मैं फिर तुम्हें वही पहले की सी सलज्ज, नीचा सिर करके चलने वाली, पूजा करने वाली, रामायण पढ़ने वाली, घर का काम–काज करने वाली, चरखा कातने वाली, ईश्वर से डरने वाली, पति–श्रद्धा से परिपूर्ण स्त्री देखना चाहता हूँ। +++ मैं अब समझ गया कि उसी सादे पवित्र यौवन में वास्तविक सुख है।"[3]

प्राचीन भारतीय सामन्ती संस्कृति ने यदि स्त्री के समस्त अधिकारों को छीनकर उसे एक व्यक्ति, एक परिवार की इच्छाओं का दास बना दिया था तो आधुनिक पश्चिमी सभ्यता ने स्त्री–स्वाधीनता तथा समानाधिकार के नाम पर स्त्री को बाजार में बिकाऊ चीज **(Comodity)** मात्र बना दिया है। अपनी उन्माद (मानसरोवर, भाग २) कहानी में प्रेमचन्द ने इसी स्थिति का चित्रण किया है। 'उन्माद' में वे दिखाते हैं कि पश्चिमी सभ्यता में स्त्री

---

[1] प्राचीना के रूप में –
"जब मैं ससुराल आई, तो बिलकुल फूहड़ थी। +++ सिर उठाकर किसी से बातचीत न कर सकती थी। आँख अपने आप झपक जाती थीं। +++ उपन्यास, नाटक आदि के पढ़ने में आनन्द न आता था। फुर्सत मिलन पर रामायण पढ़ती। उसमें मेरा मन बहुत लगता था। +++ मैं दिन–भर घर का कोई–न–कोई काम करती रहती। और कोई काम न रहता, तो चर्खे पर सूत कातती।"
–मानसरोवर, भाग 7 पृ० 80

आधुनिका के रूप में –
"मैं अब नित्य श्रृंगार करती, नित्य नया रूप भरती केवल इसलिए कि क्लब में सबकी आँखों में चुभ जाऊँ! अब मुझे बाबूजी के सेवा–सत्कार से अधिक अपने बनाव–श्रृंगार की धुन रहती थी। +++ मेरी लज्जाशीलता की सीमाएँ विस्तृत हो गयीं। वह दृष्टिपात जो कभी मेरे शरीर के प्रत्येक रोएँ को खड़ा कर देता और वह हास्य–कटाक्ष, जो कभी मुझे विष खा लेने को प्रस्तुत कर देता, उनसे अब मुझे एक उन्मादपूर्ण हर्ष होता था।
वही, भाग 7 पृ० 89

[2] वही, भाग 7 पृ० 88
[3] वही, भाग 7 पृ० 93

का केवल व्यावसायिक महत्व रह गया है।[1] पूजीवादी समाज–व्यवस्था ने सामन्तवादी, पितृ–सत्तावादी भावुकतापूर्ण पारिवारिक सबधो का अत करके उन्हे रुपये–आने–पाई के हृदयहीन औन नग्न स्वार्थपूर्ण सबधो मे परिणत कर दिया है।[2] मार्क्स और एंगेल्स क शब्दो मे "पूँजीपति वर्ग ने पारिवारिक सबधों के ऊपर से भावुकता का पर्दा उतार फेका है और पारिवारिक सबधों को केवल पैसे के सबध मे बदल दिया है।"[3] प्रेमचद ने प्राचीन भारतीय सस्कृति के मुकाबले मे जहॉ आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का विरोध किया है, वहॉ वस्तुत उन्होने आधुनिक पूजीवादी समाज–व्यवसीा का ही विरोध किया है। यह बात दूसरी है कि ऐसा करते हुए प्रेमचद अनजाने ही प्राचीन भारतीय सस्कृति की पुनर्स्थापना का स्वप्न देखने लगे हैं। इसमे सन्देह नही कि पूजीवादी समाज व्यवस्था के मुकाबले मे प्राचीन सामन्ती समाज–व्यवस्था अधिक उदार ओर मानवीय थी, किन्तु स्पष्ट है कि उसकी पुनर्स्थापना **(revival)** असभव ही नही अनावश्यक भी है। प्रेमचद का आदर्शवाद इस बात मे है कि वे पूजीवाद का विरोध करते हुए उसके स्थान पर सामन्तवाद को पुन स्थापित करने का स्वप्न देखते थे।

प्रेमचद की सामाजिक कहानियो पर विचार करते हुए उनकी उन कहानियो को भी नही छोडा जा सकता, जिनमे वेश्या–समस्या पर विचार किया गया है। इस सदर्भ मे हम उनकी तीन कहानियो का उल्लेख करना चाहेगे – 'वेश्या' (मानसरोवर, भाग 2), 'दो कब्रे' (मानसरोवर, भाग 4) तथा 'आगा–पीछा' (मानसरोवर, भाग 4)। पहली कहानी 'वेश्या' एकदम साधारण कहानी है, जिसमे कहानीकार ने वेश्या समस्या जैसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक समस्या को एक रईसजादे (सिगारसिह) के सुधार की गौण तथा अमहत्त्वपूर्ण व्यक्तिगत समस्या के परिपार्श्व मे देखने का प्रयास किया है। स्वभावत कहानी मे वेश्या–समस्या गौण और रईसजादे को वेश्या (माधुरी) के चॅगुल (?) से बचाने की समस्या प्रमुख हो गई है। माधुरी के अतिरिक्त कहानी के सभी पात्र निर्जीव पुतले मात्र है। सिगारसिह के नाम माधुरी का पत्र वर्त्तमान पुरुष–प्रधान समाज व्यवस्था पर एक तीखा

---

[1] मनहर के लिए इगलैंड एक दूसरी ही दुनिया थी जहॉ उन्नति के मुख्य साधनो म एक रूपवती पत्नी का होना भी था। अगर पत्नी रूपवती है चपल ह, वाणी कुशल है, प्रगल्भ है तो समझ लो कि उसके पति का साने की खान मिल गयी अब वह उन्नति क शिखर पर पहुॅच सकता है। मनोयोग और तपस्या के बूते पर नही पत्नी के प्रभाव आर आर्कषण के बूते पर।

[2] कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा – पत्र, पृ० ३७ (चौथा हिदी सस्करण)

[3] वही, पृ० ३८

व्यग्य है।[1] इस पत्र मे माधुरी ने पुरुषो पर यह आरोप लगाया है कि वे स्त्रियो को न केवल वेश्या बनने पर विवश करते हैं, वरन् उन्हे मृत्यु–पर्यन्त वही घृणित और नारकीय जीवन बिताने पर भी मजबूर करते है। एक बार वेश्या हो जाने पर स्त्री को हमेशा के लिए 'नारीत्व के पवित्र मदिर' से बहिष्कृत कर दिया जाता है। यही नही, उसकली सतान को भी पतित, कलकित और अपवित्र समझा जाता है। इस प्रकार वेश्याओ की लडकियो को अपनी बहू–बेटी बनाने से इनकार करके पुरुष वेश्या–प्रथा को हमेशा के लिए जीवित रखने का प्रयत्न करते है। 'दो कब्रे' और 'आगा–पीछा' कहानियो मे प्रेमचन्द ने वेश्याओ की लडकियो के नुर्वास **(Rehaboilitation)** की इसी समस्या को उठाया है। 'दो कब्रे' की सुलोचना और 'आगा–पीछा' की श्रद्धा वेश्या–पुत्रियॉ है किन्तु उनकी शिक्षा–दीक्षा और पालन–पोषण सर्वथा भिन्न वातावरण तथा परिस्थितियो मे होता है। वे सभी दृष्टियो से 'नारीत्व के पवित्र मदिर' मे प्रवेश पाने तथा समाज के सम्मानित सदस्य बनने की हकदार है, किन्तु वर्त्तमान समाज–व्यवस्था उन्हे फिर भी सदेह की दृष्टि से देखती है। प्रोफेसर रामेन्द्र ('दो कब्रे) और भगतराम एम० ए० ('आगा–पीछा') जैसे उच्च शिक्षा – प्राप्त पुरुष भी अपने मन से इस सदेह को नही निकाल पाते। सुलोचना मे काफी विद्रोहात्मकता है। वह अपने पति रामेन्द्र से स्त्री – पुरुष की समानता पर वाद–विवाद भी कर लेतली ह, किन्तु कुल मिलाकर वह एक भावुक लडकी है। यही कारण है कि वह अपनी समस्या का समाधान मृत्यु मे खोजती है। रामेन्द्र के विपरीत सुलोचना के पिता कुँवर साहब एक उदार स्वच्छ और निर्मल चरित्र है। वेश्या–समस्या पर उनके विचार प्रेमचद के ही विचार है। व मानते है कि आदमी मजबूर होकर ही बुराई के रास्ते पर चलता है। वे कहते है ''चोर केवल इसलिए चोरी नही करता कि चोरी में उसे विशेष आनन्द आता है, बल्कि केवल इसलिए कि जरूरत उसे मजबूर करती है। ++++ जिदा रहने के लिए आदमी सब कुछ कर सकता

---

[1] सरदार साहब! मे आज कुछ दिनो क लिए यहॉ से जा रही हूँ, कब लोटूगी, कुछ नही जानती। जा इसलिए रही हूँ कि इस बशर्मी बहयाई की जिन्दगी से मुझे घृणा हो रही है ओर घृणा हो रही है उन लम्पटो से, जिनके कुत्सित विलास का मैं खिलाना थी ओर जिनमे तुम मुख्या हो! तुम महीनो से मुझपर सोने और रेशम की वषा कर रहे हो, मगर मैं तुमसे पूछती हूँ उससे लाख गुने साने ओर दस लाख गुने रेशम पर भी तुम अपनी बहन या स्त्री को इस रूप के बाजार मे बेठने दोगे? यह उन गीदडो आर गिद्धो की मनोवृत्ति है जो किसी लाख को देखकर चारो ओर से जमा हा जाते हैं और उसे नोच–नोचकर खाते हैं। यह समझ रखो, नारी अपना बस रहते हुए कभी पेसो के लिए अपने को समर्पित नहा करती। यदि वह ऐसा कर रही है ता समझ लो कि उसके लिए और कोई आश्रय, ओर कोई आधार नही है और पुरुष इतना निर्लज्ज है कि उसकी दुरवसाी से अपनी वासना तृप्त करता ह आर इसके साथ ही इतना निर्दय कि उसके माथे पर पतिता का कलक लगाकर उसे उसी दुरवस्था मे मरत दखना चाहता है। क्या वह नारी नही है? क्या नारीत्व के पवित्र मन्दिर मे उसका स्थान नही है? लेकिन तुम उसे उस मन्दिर मे घुसने नही देते।'

–मानसरावर, भाग 2 पृ० 56–57 (सातवॉ सस्करण, 1957)

है। जिदा रहना उतना ही कठिन होगा, बुराइयॉ भी उसी मात्रा मे बढेगी, जितना ही आसान होगा, उतनी ही बुराइयॉ कम होगी। हमारा यह पहला 'सिद्धान्त होना चाहिए कि जिदा रहना हरेक के लिए सुलभ हो।"[1]

'प्रेम–पचीसी' सग्रह मे एक अत्यन्त ही मार्मिक एव व्यग्यपूर्ण लघु कथा 'ब्रह्म का स्वॉग' है, जिसमें सामाजिक समानता, राष्ट्रीय ऐक्य और आर्थिक साम्य का स्वॉग भरने वाले हमारे राष्ट्रीय नेताओ की कथनी और करनी के विभेद की पोल खोली गई है। प्रेमचन्द अपने युग के राष्ट्रीय नेताओ की असलियत से अच्छी तरह परिचित थे। वे जानते थे कि ये नेता समानता की दुहाई अपने राजनीतिक पभाव को बढाने तथा शासको और जनता को भुलावे मे रखने के लिए ही देते है।[2] प्रस्तुत कहानी मे प्रेमचद के व्यग्य मे एक नई प्रखरता और पैनापन दिखाई देता है।

यधपि 'प्रेम–प्रसून' (सन् **1924**) सग्रह का प्रकाशन 'प्रेम–पचीसी' (सन् **1923**) के एक प्रकाशन के एक वर्ष पश्चात् हुआ था, किन्तु उसकी रचनाओ मे प्रेमचन्द की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चेतना का वह रूप नही मिलता जो 'प्रेम–पचीसी' की कहानियो मे दिखाई देता है। 'प्रेम–प्रसून' मे प्रेमचन्द की कुछ अतिशय भावुकतापूर्ण कहानियॉ सकलित हे। 'यही मेरी मातृभूमि है' एक ऐसी ही कहानी है। इस कहानी का मुख्य प्रतिपाद्य यह है कि पश्चिमी सभ्यता के आक्रमण के कारण भारतीय सस्कृति नष्ट होती जा रही है और हिन्दुस्तान 'हिन्दुस्तान' न रहकर 'यूरोप' या 'अमेरिका' बनता जा रहा है। साठ साल के बाद अमेरिका से स्वदेश लौटने वाला प्रवासी भारतीय यहॉ की दशा देखकर बरबस कह उठता हे

"यह योरप है, अमरीका है, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि नही है–कदापि नहीं।"[3]

हिन्दुस्तान लौटने पर जिन–जिन बातो को देखकर प्रवासी भारतीय पश्चात्ताप के ऑसू बहाता है, उनमे से कोई भी ऐसी बात नही है जो पाठको को यह विश्वास दिला सके कि हिन्दुस्तान 'हिन्दुस्तान' न रहकर 'यूरोप' या 'अमेरिका' हो गया है। इनमे सन्देह नहीं कि

---

[1] मानसरावर भाग 4 पृ० 46

[2] यह भेद सदा रहा है और रहेगा। में भी राष्ट्रीय ऐक्य का अनुरागी हूँ। समस्त शिक्षित समुदाय राष्ट्रीयता पर जान देता ह। किन्तु कोई स्वप्न मे भी कल्पना नही करता कि हम मजदूरो या सेवा–वृत्तिधारियो का समता का स्थान देगे। हम उनमे शिक्षा का प्रचार करना चाहते हैं। उनको दीनावस्था से उठाना चाहते हैं। यह हवा ससार भर म फली हुई है। इसका मर्म क्या है यह दिल म सभी समझते हैं चाह कोइ खोलकर न कहे। इसका अभिप्राय यही है कि हमारा राजनतिक महत्व बढे, हमारा प्रभुत्व उदय हा हमार राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव अधिक हो, हमे यह कहने का अधिकार हो जाय कि हमारी ध्वनि केवल मुट्ठी भर शिक्षित वर्ग ही की नही वरन् समस्त जाति की सयुक्त ध्वनि है, ।'

–प्रेम–पचीसी, पृ० 45–46

[3] प्रेम–प्रसुन पृ० 93 (बनारस, 1956)

अग्रेजो के आगमन के पश्चात् भारतीय सस्कृति मे निश्चित परिवर्तन–परिवर्द्धन हुआ है, किन्तु इस परिवर्तन–परिवर्द्धन पर ऑसू बहाने की कोई आवश्यकता नही है। अतिशय भावुकतापूर्ण प्रलापो के कारण प्रस्तुत कहानी की समस्त प्रभावात्मकता नष्ट हो गई है। 'यही मेरी मातृभूमि है' यद्यपि 'प्रेम–प्रसून' (सन् **1924**) मे सग्रहित है, किन्तु लगता है कि यह प्रेमचन्द की एकदम आरभिक कहानियो मे से है। यहॉ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रेमचन्द के विभिन्न कहानी–सग्रहो मे सकलित कहानियो को उसी काल की रचना नही माना जा सकता, जिस काल मे वह सग्रह प्रकाशित हुआ था।

'प्रेम–प्रसून' मे जहॉ 'यही मेरी मातृभूमि है' जैसी शुद्ध भावुकतापूर्ण कहानी है, यहॉ 'मृत्यु के पीछे' जैसी यथार्थोन्मुख कहानी भी है। 'मृत्यु के पीछे' एक ऐसे ईमानदार, सत्यनिष्ठ और न्यायपरायण पत्रकार की कहानी है, जो धन और श्रम के वर्त्तमान सघर्ष मे श्रमजीवियो का साथ देता है।[1] यह कहानी वास्तव मे स्वय पत्रकार प्रेमचन्द के सघर्षमय जीवन की ही गाथा है। इस कहानी को पढकर उन कठिनाइयो और यन्त्रनाओ का स्मरण हो आता है, जो 'हस' को जीवित रखने के लिए प्रेमचन्द ने झेली थी। ईश्वरचन्द की मृत्यु पर प्रेमचन्द ने जो पक्तियॉ लिखी है, उन्हे आज का आलोचक स्वय प्रेमचन्द के सदर्भ मे दोहरा सकता है – "उनका सारा जीवन सत्य के पोषण, न्याय की रक्षा और अन्याय के विरोध मे कटा था। अपने सिद्धान्तो के पालन मे उन्हे कितनी ही बार अधिकारियो की तीव्र दृष्टि का भाजन बनना पडा था, कितनी ही बार जनता का अविश्वास, यहॉ तक कि मित्रो की अवहेलना भी सहनी पडी थी, पर उन्होने अपनी आत्मा का कभी खून नही किया। आत्मा के गौरव के सामने धन को कुछ न समझा।"[2]

'प्रेम–प्रसून' सग्रह मे ही एक कहानी है 'लाग–डॉट', जिस पर महात्मा गाधी के सहयोग–आदोलन का अत्यन्त गहरा प्रभाव है। कहानी–कला की दृष्टि से 'लाग–डॉट' को एक उच्च कोटि की रचना नही माना जा सकता। इसका महत्त्व असहयोग–आदोलन के युग की विभिन्न हलचलो के विश्वसनीय चित्रण के कारण है, कला की दृष्टि से नही। इस

---

[1] दश मे धन और श्रम का सग्राम छिडा हुआ था। ईश्वरचन्द्र की सदय प्रकृति ने उन्हे श्रम का सपक्षी बना दिया था। धनवादियो का खडन और प्रतिवाद करते हुए उनके खून मे गरमी आ जाती थी, शब्दा स चिनगारियॉ निकलने लगती थी, ।'
– प्रेम–प्रसून, पृ० 83

[2] प्रम–प्रसून पृ० 85

कहानी मे प्रेमचन्द बताते है कि स्वराज्य का अर्थ क्या है और उसकी प्राप्ति के उपाय क्या हे? प्रेमचन्द कहते है "अपने घर का बना हुआ गाढा पहनो, अदालतों को त्यागो, नशेबाजी छोडो, अपने लडको को धर्म–कर्म सिखाओ, मेल से रहो–बस, यही स्वराज्य है। जो लोग कहते है कि स्वराज्य के लिए खून की नदी बहेगी, वे पागल है–उनकी बातो पर ध्यान मत दो।"[1] गाधी के असहयोग–आदोलन ने भारत की शत–सहत्र ग्रामीण जनता के राजनीतिक ज्ञान की ही वृद्धि नही की थी, बल्कि उनमे अन्याय और अत्याचार–प्रतिकार की चेतना को भी विकसित किया था–यह इस कहानी से स्पष्ट हो जाता है।[2]

डॉ० राजेश्वर गुरू ने सन् **1920** से **1930–32** तक की प्रेमचन्द की कहानियो को विकास–युग की रचना माना है। इस युग को प्रेमचन्द की कहानियो का स्वर्ण–युग भी कह सकते है, क्योकि इसी युग मे उनकी कतिपय श्रेष्ठ यथार्थोन्मुख कहानियो का प्रणयन हुआ था। प्रेमचन्द की राजनीतिक कहानियो का सग्रह 'समर–यात्रा' भी इसी काल मे प्रकाशित हुआ था। गाधीजी के असहयोग–आदोलन तथा सविनय अवज्ञा–आदोलन के युग की विभिन्न गतिविधियो का जितना सूक्ष्म और यथार्थ चित्रण इस सग्रह की कहानियो मे हुआ है, वह प्रेमचन्द के अन्य किसी कहानी–सग्रह मे नही मिलता।

'समर–यात्रा' कहानी को एक सीमा तक इस सग्रह की प्रतिनिधि कहानी माना जा सकता है। आलोचक नन्ददुलारे वाजपेयी 'समर–यात्रा' को कहानी' न मानकर 'एक दिन की घटना–श्रृङ्खला' और 'समय की सीधी पगडडी पर घटनाओ की परेड' मात्र मानते है।[3] 'समर–यात्रा' सग्रह की अन्य कहानियो के सबध मे भी किसी हद तक यही बात कही जा सकती है। कहानी के परपराभुक्त तत्त्वो की दृष्टि से हो सकता है कि 'समर–यात्रा' कहानी को एक सफल कलाकृति न माना जाय, किन्तु यह स्पष्ट ह कि केवल तत्त्वो के यान्त्रिक और रूढिग्रस्त आधार पर प्रेमचन्द के कथा–साहित्य का सही मूल्याकन नही किया जा

---

[1] प्रम–प्रसून पृ० 100

[2] चाधरी के उपेदेश सुनने के लिए जनता टूटती थी, लोगो को खडे होने का जगह न मिलती। दिनो–दिन चौधरी का मान बढने लगा। उनके यहाँ नित्य पचायतो और राष्ट्रोन्नति की चर्चा रहती। जनता को इन बातो मे बडा आनन्द और उत्साह होता। उसक राजनीतिक ज्ञान की वृद्धि होती। वह अपना गौरव और महत्व समझने लगी उसे अपनी सत्ता का अनुभव होने लगा। निरकुशता और अन्याय पर अब उसकी त्योरियाँ चढने लगी। उसे स्वतत्रता का स्वाद मिला। घर की रूई, घर सूत घर का कपडा घर का भोजन, घर की अदालत न पुलिस का भय न अमलो की खुमशाद सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करने लगी। कितनो ही ने नशेबाजी छोड दी ।"

– प्रेम–प्रसून, पृ० 103

[3] प्रमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ० 189

सकता। कोई भी महान् एव युग–प्रवर्त्तक साहित्यकार परपरा से चले आ रहे साहित्य के मानदण्डो के आधार पर अपनी रचनाओ की सृष्टि नही करता। अपनी रचनाओ के द्वारा वह साहित्य के नए मान और नए तत्त्व भी स्थापित करता है। प्रेमचन्द की 'समर–यात्रा' एक ऐसी ही कहानी है। इसमे सदेह नही कि प्रस्तुत कहानी मे सामयिक राजनीतिक हलचलो का अत्यन्त प्रत्यक्ष चित्रण हुआ है, किन्तु केवल इसीलिए तो उसके 'कहानीत्व' से इनकार नही किया जा सकता। 'समर–यात्रा' कहानी की सबसे बडी उपलब्धि इस बात मे है कि उसमे प्रेमचन्द को तत्कालीन वातावरण के निर्माण मे अद्‌भुत सफलता मिली है। नोहरी का विलक्षण और प्रेरक चरित्र इस कहानी की दूसरी बडी विशेषता है। नोहरी के चरित्र मे तत्कालीन भारत की विद्रोही आत्मा सजीव–साकार हो उठी हे। राष्ट्रीय नेता के रूप मे महात्मा गाधी की सबसे बडी विशेषता यह थी कि वे अपने कार्यक्रमो एव आदोलनों के प्रति देश की आम जनता मे एक अपूर्व उत्साह का भाव उत्पन्न करने मे सफल हो सके थे। इस क्षेत्र मे गाधीजी की सफलता और उनके पूर्ववर्त्ती नेताओ की असफलता का रहस्य भी यही हे। 'समर–यात्रा' की नोहरी और कोदई पराधीन भारत की उस अशिक्षित, सामाजिक–धार्मिक अधविश्वासो मे जकडी तथा पारस्परिक फूट और वैमनस्य के शाप से ग्रसित ग्रामीण जनता के प्रतिनिधि है, जो शताब्दियो तक दमन और शोषण को चुपचाप सहने के बाद गाधी की प्रेरणा से विदेशी साम्राज्यवाद को चुनौती देने के लिए कटिबद्ध हो रही थी। नगरो की राजनीतिक हलचलो से दूर रहने विदेशी साम्राज्य के जूए से मुक्ति पानी हं। 'समर–यात्रा' की नोहरी कहती हे "अब तो उस जोर–जुलुम का नाश होगा–हम और तुम क्या अभी बूढे होने जोग थे? हम पेट की आग ने जलाया है। बोलो ईमान से, यहॉ इतने आदमी है, किसी ने इधर छ· महीने से पेट–भर रोटी खाई है? घी किसी को सूॅघने को मिला है? कभी नीद–भर सोये हो? जिस खेत का लगान तीन रूपये देते थे, अब उसी के नौ–दस देते हो। क्या धरती सोना उगलेगी? काम करते–करते छाती फट गयी। हमी है कि इतना सहकर भी जीते हैं। दूसरा होता, तो या तो मार डालता, या मर जाता। धन्य हैं महात्मा और उनके चेले कि दोनो का दु:ख समझते हैं, उनके उद्धार का जतन करते हैं! और

तो सभी हमे पीस कर हमारा रक्त निकालना जानते है।"[1] लाल पगडी के नाम से ही जिन गॉव वालो की रूह फना होती थी, वे ही अब इतने निडर और निर्भय हो गए हैं कि एक मामूली बूढी किसान–स्त्री भी साम्राज्य की सपूर्ण शक्ति के प्रतीक पुलिस दरोगा को ललकार कर कह सकती है " नोहरी पीछे से आकर बोली – क्या लाल पगड़ी बॉधकर तुम्हारी जीभ भी ऐठ गई है? कोदई क्या तुम्हारे गुलाम है कि कोदइया – कोदइया कर रहे हो। हमारा ही पैसा खाते हो और हमी को ऑखे दिखाते हो? तुम्हे लाज नही आती?"[2] "बुढ़िया लाठी टेककर दरोगा की ओर घूरती हुई बोली – x x x तुम, जो घूस के रूपये खाते हो, जुआ खेलाते हो, चोरियॉ करवाते हो, डाके डलवाते हो, भले आदमियो को फॅसाकर मुट्ठियॉ गर्म करते हो और अपने देवताओ की जूतियों पर नाक रगड़ते हो, तुम इन्हे बदमाश कहते हो।"[3]

गाधीजी मानते थे कि विदेशी साम्राज्य के विरूद्ध हमारी लडाई न्याय और सत्य की लडाई है, धर्मयुद्ध है, अत उसमे हमारे साधन भी सत्य और न्यायपूर्ण होने चाहिए। साध्य और साधनो की एकता का सिद्धान्त गाधीवाद का आधारस्तभ है। 'समर–यात्रा' का नायक कहता है "हम न्याय और सत्य के लिए लड रहे है, इसलिए न्याय और सत्य ही के हथियारो से हमे लडना है। हमे ऐसे वीरो की जरूरत है, जो हिसा और क्रोध को दिल से निकाल डाले और ईश्वर पर अटल विश्वास रखकर धर्म के लिए सब कुछ झेल सके।"[4]

इस सग्रह की कहानियो की एक सामान्य विशेषता यह है कि उनमे प्रेमचन्द ने विदेशी साम्राज्य के निरकुश और निर्मम दमन का लोमहर्षक तथा खून खौला देने वाला वर्णन किया है। इन कहानियो मे प्रेमचन्द ने प्रेमशकर, विनय, चक्रधर, अमरकात आदि उच्च–मध्यवर्गीय नेताओ की कहानी नही, अपितु भारत की शत–सहस्र जनता के बलिदानो और वीरता की गाथा कही है। प्रस्तुत सग्रह की कहानियो मे एक और सामान्य विशेषता

---

[1] समर–यात्रा पृ० 132–33 (छठवॉ सस्करण, 1958)
[2] वही पृ० 135
[3] वही पृ० 136
[4] समर–यात्रा, पृ० 134

और समानता यह पाई जाती है कि उन सभी मे भारत की सघर्षशील स्त्रियो के अद्भुत जीवट और साहस का चित्रण किया गया है। 'जेल', 'पत्नी से पति', 'शराब की दूकान', 'जुलूस', 'आहुति', 'अनुभव', 'समर–यात्रा' इत्यादि इस सग्रह की अनेक कहानियो मे हम स्त्रियो को राष्ट्रीय आदोलन मे आगे बढकर भाग लेते और पुरूषो का नेतृत्व करते देखते है। 'जेल' की मृदुला मे हम अद्भुत राजनीतिक चेतना, सगठन और नेतृत्व की शक्ति एव भारत के जागृत नारीत्व के दर्शन पाते हैं।

प्रेमचन्द के दब्बू–से–दब्बू और बडे–से–बडे राजभक्त पात्रो मे भी राष्ट्रीय गौरव और आत्म–सम्मान की बहुत सजग भावना मिलती है। 'पत्नी से पति' के मिस्टर सेठ और 'इस्तीफा' के बाबू फतहचन्द प्रेमचन्द के ऐसे ही चरित्रो मे से है। वे अपने अग्रेज अफसरो से अपमान करवाकर चुपचाप नही बैठते।[1] यहॉ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अपने अग्रेज अफसरो के प्रति मिस्टर सेठ और बाबू फतहचन्द का हिसक व्यवहार गाधी–दर्शन के विपरीत है। गाधी–दर्शन किसी भी परिस्थिति मे हिसा के प्रयोग की आज्ञा नही देता। वह अन्यायी, अत्याचारी या अपमानकर्ता को प्रेम की शक्ति से जीतने का सदेश देता है। गाधी–दर्शन प्रेम का दर्शन है, घृणा या क्रोध का दर्शन नही।

'आहुति' कहानी मे प्रेमचन्द ने स्वराज्य के सबध मे अपनी कल्पना व्यक्त की है। प्रेमचन्द इस सबध मे पूर्णत निर्भ्रान्त थे कि स्वराज्य प्राप्त हो जाने पर जमीदार, व्यापारी, वकील आदि का शोषण समाप्त हो जाएगा। वे मानते थे कि विदेशी के स्थाप पर स्वदेशी का, जॉन के स्थान पर गोविन्द का राज्य हो जाना ही स्वराज्य नही है। नामो या व्यक्तियो का बदल जाना मात्र ही स्वराज्य नही है। 'आहुति' की रूपमणि कहती है ''अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढा–लिखा समाज यो ही स्वार्थान्ध बना रहे, तो मै कहूगी, ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा। x x x

---

[1] (क) 'लकिन मिस्टर सेठ भी मजबूत आदमी थे। यो वह हर तरह की खुशामद किया करते थे लेकिन यह अपमान स्वीकार न कर सके। उन्होने रूल को तो हाथ पर लिया और एक डग आगे बढकर ऐसा घूँसा साहब के मुँह पर रसीद किया कि साहब की ऑखो के सामने ॲधेरा छा गया। वह इस मुष्टिप्रहार के लिए तैयार न थे। उन्हे कई बार इसका अनुभव हो चुका था कि नेटिव बहुत शान्त दब्बू और गमखोर होता है। विशेषकर साहबो के सामने तो उसकी जबान तक नही खुलती। कुर्सी पर बेठकर नाक का खून पोछने लगा।

– समर–यात्रा पृ० 42

(ख) साहब ने बनावटी हॅसी हॅसकर कहा – वेल बाबूजी, आप बहुत दिल्लगी करता ह। अगर हमन आपको बुरा बात कहा ह तो हम आपसे माफी मॉगता है।

फतहचन्द–(डडा तौलकर) नही कान पकडो।

'साहब आसानी से इतनी जिल्लत न सह सके। लपककर उठे और चाहा कि फतहचन्द के हाथ से लकडी छीन ले, लेकिन फतहचन्द गाफिल न था। साहब मेज पर से उठने भी न पाये थे कि उसने डडे का भरभूर और तुला हुआ हाथ चलाया।

कम–से–कम मेरे लिए तो स्वराज्य का यह अर्थ नही है कि जॉन की जगह गोविन्द बैठ जाय।"[1] रूपमणि की यह घोषणा सिद्ध करती है कि गाधी–युग की विभिन्न हलचलो और गाधीजी के विभिन्न कार्यक्रमो से प्रभावित होते हुए भी प्रेमचन्द महात्मा गाधीसहित काग्रेस के अन्य सभी नेताओ से बहुत आगे बढे हुए थे। 'जुलूस' कहानी मे भी इसी तथ्य को प्रकट किया गया है। 'जुलूस' का मैकू इस रहस्य से परिचित है कि पूर्ण स्वराज्य के जुलूस मे नगर का एक भी 'बडा आदमी' नजर क्यो नही आत? वह कहता है "बडे आदमी क्यो जुलूस मे आने लगे, उन्हे इस राज मे कौन आराम नही है। बॅगलो और महलो मे रहते है, मोटरो पर घूमते है, साहबो के साथ दावते खाते है, कौन तकलीफ है? मर तो हम लोग रहे है, जिन्हे रोटियो का ठिकाना नहीं। इस बखत कोई टेनिस खेलता होगा, कोई चाय पीता होगा, कोई ग्रामोफोन लिये गाना सुनता होगा, कोई पारिक की सैर करता होगा, यहॉ आये पुलिस के कोडे खाने के लिए?"[2]

'समर–यात्रा' सग्रह मे ही एक कहानी है 'कानूनी कुमार', जिसमे प्रेमचन्द ने केवल कानून की सहायता से ही समाज–सुधार करना चाहने वालो पर एक करारा व्यग्य किया है। कहानी के अत मे कानूनी कुमार की पत्नी कहती है "मै यह नही कहती कि सुधार जरूरी नही है। मै भी शिक्षा का प्रचार चाहती हूँ, मै भी बाल–विवाह बन्द करना चाहती हू बीमारियॉ न फैले, लेकिन कानून बनाकर, जबरदस्ती यह सुधार नही करना चाहती। लोगो मे शिक्षा और जागृति फैलाओ, जिससे कानूनी भय के बगैर यह सुधार हो जाय।"[3] प्रेमचन्द की इस कहानी पर महात्मा गाधी के विचारो का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है। केवल कानून के द्वारा या केवल शिक्षा और जागृति के द्वारा कोई भी सुधार नही किया जा सकता। कानून तथा शिक्षा और जागृति एक–दूसरे के पूरक है, अत· इनके सम्मिलित प्रयत्नो से ही समाज–सुधार का काम पूरा किया जा सकता है।

---

[1] समर–यात्रा पृ० 110
[2] समर–यात्रा पृ० 83
[3] समर–यात्रा पृ० 29

'समर–यात्रा' सग्रह की एक कहानी 'ठाकुर का कुऑ' मे प्रेमचन्द ने अछूत–समस्या को उठाया है। 'ठाकुर का कुऑ' प्रेमचन्द की कुछ श्रेष्ठ यथार्थवादी कहानियो मे से है। कहानीकार ने किसी आदर्श की स्थापना अथवा अछूतो की दशा सुधारने के लिए अपनी ओर से कोई सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयत्न नही किया है। वह एक छोटी किन्तु मार्मिक घटना को सक्षेप मे प्रस्तुत–भर कर देता है। घटना इस तरह प्रस्तुत की गई है कि कहानी का अत होते–होते वर्त्तमान सामाजिक वैषम्य तथा अछूतो के प्रति सवर्णो का अन्याय पूरी तीव्रता के साथ उभरकर पाठको के मानस–चक्षुओ के समक्ष सजीव हो उठता है।

अछूत–समस्या के विभिन्न पहलुओ को लेकर प्रेमचन्द ने कई कहानियॉ लिखी है, यथा 'दूध का दाम' (मानसरोवर, भाग 2), 'सद्गति' (मानसरोवर, भाग 4), 'मदिर' (मानसरोवर, भाग 5) आदि। प्रेमचन्द के अछूत चरित्रो मे भी पर्याप्त विद्रोहात्मकता तथा सामाजिक अन्याय के प्रति तीव्र आक्रोश का भाव मिलता है। 'ठाकुर का कुऑ' की गगी और 'मदिर' की सुखिया की विद्रोहात्मकता सूचित करती हे कि अब यह अन्यायपूर्ण समाज–व्यवस्था – जिसमे बीमार जोखू को गदा और बदबूदार पानी पीना पडता है, जिसमे सुखिया अपने मरणासन्न पुत्र के लिए मदिर मे जाकर प्रार्थना भी नही कर सकती – ज्यादा दिनो तक नही चल सकती। गगी जानती है कि गॉव मे जितने भी बडे आदमी हैं, सब–के–सब चोर, बेईमान, धोखेबाज, जुआरी, घी मे तेल मिलाने वाले और दूसरे की स्त्रियो को बुरी निगाह से ताकने वाले है।[1] गगी या सुखिया के विपरीत 'सद्गति' के दुखी चमार मे अपनी वर्त्तमान अवस्था के प्रति असतोष या विद्रोह का भाव बिल्कुल नही है। यह ठीक है कि स्वय दुखी चमार मे अपनी दशा के प्रति किसी प्रकार का असन्तोष नही है, किन्तु उसकी मृत्यु के द्वारा प्रेमचन्द अपने पाठको के मन मे वर्त्तमान समाज–व्यवस्था के प्रति घृणा एव आक्रोश का भाव उत्पन्न करने मे सफल हो सके है। सद्गति' को हम प्रेमचन्द की श्रेष्ठ यथार्थवादी कहानियो मे रख सकते है।

पडे–पुजारी तथा ब्राह्मण वर्ग के हथकण्डो का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द की लेखनी मे एक अजीब पैनापन, तीव्रता, सजीवता और व्यग्यतात्मकता – जिसमेयत्र–तत्र हास्य का पुट भी मिला रहता है – आ जाती है। प्रस्तुत कहानी के पडितजी के चरित्र–चित्रण मे भी

---

[1] गगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबन्दियो और मजबूरियो पर चोटे करने लगा – हम क्यो नीच हैं और य लोग क्यो ऊँच हैं? इसलिए कि ये लोग गले मे तागा डाल लेते हैं! यहॉ तो जितने हैं एक–से–एक छटे ह। चारी ये करे, जाल–फरेब ये करे, झूठे मुकदमे ये करे। x x \ इन्ही पडितजी के घर मे तो बारहो मास जूआ होता है। यही साहूजी तो घी मे तेल मिलाकर बेचते हैं। ग ग ग कभी गॉव मे आ जाती हूँ, तो रस–भरी ऑखो से देखने लगते हैं।"

यह बात देखी जा सकती है। 'सद्गति' के पडित घासीराम का परिचय प्रेमचन्द इन शब्दो मे देते है "पडित घासीराम ईश्वर के परम भक्त थे। नीद खुलते ही ईशोपासना मे लग जाते। मुँह—हाथ धोते आठ बजते, तब असली पूजा शुरू होती, जिसका पहला भाग भग की तैयारी थी। उसके बाद आध घण्टे तक चन्दन रगडते, फिर आइने के सामने एक मिनके से माथे पर तिलक लगाते। चन्दन की दो रेखाओ के बीचमे लाल रोरी की बिन्दी होती थी। फिर छाती पर बाहो पर चन्दर की गोल—गोल मुद्रिकाएँ बनाते। फिर ठाकुरजी की मूर्ति निकालकर उसे नहलाते, चन्दन लगाते, फूल चढाते, आरती करते, घटी बजाते। दस बजते—बजते वह पूजन से उठते और भग छानकर बाहर आते। तब तक दो—चार जजमान द्वार पर आ जाते। ईशोपासना का तत्काल फल मिल जाता। वही उनकी खेती थी।"[1] प्रेमचन्द की यह विशेषता उनकी अनेक कहानियो मे लक्षित की जा सकती है, यथा 'मनुष्य का परम—धर्म', 'गुरूमत्र', 'सत्याग्रह' (मानसरोवर, भाग 3), 'निमन्त्रण' (मानसरोवर, भाग 5), 'सवा सेर गेहूँ' (मानसरोवर, भाग 4), 'मोटेराम की डायरी' (कफन) आदि।

कहानीकार प्रेमचन्द के यथार्थवाद का चरम विकास उनकी 'कफन' तथा 'पूस की रात' कहानियो मे मिलता है। 'कफन' और 'पूस की रात' मे प्रेमचन्द की कहानी कला का भी चरम विकास दिखाई देता है। इन कहानियो की विशेषता यह है कि इनमे व्यजना के माध्यम से प्रस्तुत करने मे सफल हो सका है। वर्त्तमान समाज—व्यवस्था पर जितना चुभता हुआ व्यग्य प्रेमचन्द की 'कफन' कहानी मे मिलता है, वह सभवत· उनके पूरे साहित्य में नही मिलेगा। इस कहानी के द्वारा प्रेमचन्द दिखाते है कि घीसू और माधव की अकर्मण्यता, बेईमानी, निठल्लेपन और हैवानियत की जिम्मेदारी पूरी समाज—व्यवस्था पर है, व्यक्तिगत रूप से घीसू और माधव पर नही। कहानी का स्वर विषादात्मक होते हुए भी उसका अतिम प्रभाव विषादात्मक नही पडता।

'कफन' और 'पूस की रात' की महत्ता इस बात मे है कि इन कहानियो में प्रेमचन्द ने सामाजिक यथार्थ के ऊपर किसी वादगत सिद्धान्त को प्रमुखता देने का प्रयास नही किया

[1] मानसरावर भाग 4 पृ० 19

है। प्रेमचन्द की कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं, जिनमे किसी विशिष्ट वाद को कहानी का जामा पहनाने का अथवा सिद्धान्त को साहित्य के ऊपर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया है।

''पूस की रात'' मे दिखने वाली कला–व्यर्थता या कलाविहीनता उस कहानीपन से अलग है जिसका प्रचार छठे–सातवे दशको मे मध्यवर्गीय आग्रहो के शिकार लेखको ने किया, जिसके प्रभाव मे बद होकर निजबद्ध रचनाकार ने उद्देश्यपरकता और प्रतिबद्धता पर चोट की। ''पूस की रात'' की ताकत का स्रोत उसका आतरिक अनुशासन, उसका कलात्मक सतुलन आदि नही है कि बाद के लेखक इन, ''गुणो'' को आत्मसात करके ''कालजयी'' कृतिया लिख सके। ''पूस की रात'' का स्रोत है लेखकीय समझ, जिसके दो पक्ष है। पहला वह जिसे लेखक ने अपने परिवेश को गहरी आलोचनात्मकता से परख से हासिल किया है, ओर जिसका सबध तीसरे–चौथे दशको की तीव्र तथा सघन राजनीतिक–वैचारिक प्रक्रिया से हे। प्रेमचद मे सदा एक भोलापन सक्रिय रहा जिसके अधीन उन्हे एक वक्त सुधारवाद अच्छा लगा, और दूसरे वक्त गाधीवादी विचार पसद आया। शायद ही कोई लेखक इतनी सरलता से एक समकालीन नेता के चितन को अपनी रचना की बनावट मे, अपने पात्रो की सवेदना ओर चारित्रिकता मे स्थापित करने का निर्णय लेता। 'भोलापन'' और ''सरलता'' उस लेखकीय ईमानदारी तथा गभीर मानवीय प्रतिबद्धता को व्यक्त करने के लिए अतिशय सामान्य शब्द है जो प्रेमचद मे भी थी। फिर भी, इनकी एक अहमियत है। प्रेमचद के लिए ये ऐसे गुण बन कर उभरे इनके सहारे लेखक ने बरसो, बल्कि दशको तक अस्पष्ट एव सास्कृतिक माहौल की प्रकृति का आकलन किया। और जब इतिहास की विभिन्न स्पष्ट तथा अस्पष्ट एव सूक्ष्म अवस्थाओ के अतर्गत, ऐतिहासिक प्रक्रिया के दौरान माहौल की प्रकृति मे कमजोरिया नजर आने लगी तो उक्त सरलता क कारण ही प्रेमचद ने अपनी विचारधारा, अपने समाज–सिद्धातो पर सदेह करके उनसे उत्तरोत्तर मुक्त होने की प्रक्रिया मे प्रवेश किया। ''पूस की रात'' की ताकत तथा अपील का सबध इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया से है।

प्रेमचद की लेखकीय समझ के दूसरे पक्ष का सबध उस रचनागत वास्तविकता से है जिसके अतर्गत रचनाकार अपनी कृति के भीतर स्थितियो, पात्रो, समस्याओ, प्रश्नो आदि से होने वाले सार्थक द्वद्व मे हिस्सा लेता है। स्थिति के तर्क मे बध कर विभिन्न पात्र अपने मानसिक–नैतिक स्तर के अनुसार व्यावहारिक निर्णय लेते है, जिनका असर फिर से स्थिति पर होता है। समाज–सापेक्ष महत्वपूर्ण लेखन मे पात्रो, स्थितियो की मूर्तता एव स्वतत्रता को

पहचाना–स्वीकारा जाता है। इससे जाग्रत सृजनशीलता की बदौलत मानव जीवन और अनुभव के इतने आयाम खुल सकते है कि कृति मे चित्रित एक विशेष स्थिति अपने तथा पहले के वक्त पर ही नही, आने वाले समय की अनेक सच्चाइयो पर भी टिप्पणी बन जाती है। ''पूस की रात'' मे उत्पादक वर्ग के विकास की, उसकी प्रगति की कोई सभावना नजर नही आती, चूकि समाज–सबधो के केद्र मे शोषण और असमानता नियामक तत्व की भाति मोजूद है। यह सच्चाई कहानी मे पूरी शिद्दत के साथ विभिन्न वस्तुओ के (जिनमे निजी लेखकीय सोच भी महज एक इकाई के रूप मे शामिल है) टकराव के दौरान खुलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस कहानी मे प्रेमचद की निजी सोच निर्णायक–नियामक भूमिका कम–अज–कम सीमित अर्थ मे नही है – प्रेमचद अपनी सोच तथा अपनी राय को अनावश्यक महत्व नही देते, बल्कि रचना मे एक तरह की नाटकीयता पैदा करते हैं।

यहॉ इस सबध मे 'डामुल का कैदी' (मानसरोवर, भाग 2) का उल्लेख करना चाहेगे। 'डामुल का कैदी' मे प्रेमचद ने मजदूर–आदोलन का गाधीवाद रूप प्रस्तुत किया है। कहानी का आरभ यथार्थवादी स्तर पर होता है, किन्तु शीघ्र ही वह गाधीवादी हृदय–परिवर्तन और भगवद्भक्ति की भूलभुलैया मे खो जाती है।

कहानीकार की अपेक्षा उपन्यासकार प्रेमचन्द मे गाधीवादी सिद्धान्तो की अधिक सशक्त और सविस्तार अभिव्यक्ति मिलती है। यही कारण है कि एक–दो अपवादो को छोडकर कहानीकार प्रेमचन्द उपन्यासकार प्रेमचन्द की भॉति सूरदास, विनय, चक्रधर, अमरकात या प्रेमशकर जैसे गाधीवादी पात्रो की सृष्टि नही कर सके है।

चतुर्थ अध्याय :

प्रेमचन्द का कथा साहित्य और हिंदी आलोचना

प्रेमचन्द का कथा साहित्य और हिन्दी आलोचना

प्रेमचन्द हमारे आलोचको की सूझबूझ और क्षमता को परखने की कसौटी रहे है। एक हद तक शायद आज भी है। कोई आलोचक या सामान्य पाठक प्रेमचन्द को किस हद तक समझता है, यह बात इस तथ्य पर निर्भर करती है कि वह भारतीय समाज की बनावट और उसकी समस्याओ को किस हद तक समझता है। प्रेमचन्द का मूल्याकन और उनके महत्व की स्वीकृति इस बात पर निर्भर है कि प्रेमचन्द के आलोचक का नजरिया साहित्य के प्रति क्या है, कुल मिलाकर उसका विश्व–दृष्टिकोण क्या हे। प्रेमचन्द इसी अर्थ मे कसौटी रहे है और आज भी है।

प्रेमचन्द हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार और कहानीकार हैं और सभवत आज भी उनकी लोकप्रियता की सीमा को अन्य कोई कथाकार नही लॉघ सका है। स्वभावत उन पर बहुत बडी सख्या मे आलोचनात्मक पुस्तके लिखी गई और प्रकाशित हुई ह। आधुनिक युग मे किसी भी साहित्यकार पर सभवत इतना नही लिखा गया है जितना प्रेमचन्द पर।

प्रेमचन्द पर आरोप लगाने मे प० अवध उपाध्याय सबसे आगे थे, जिन्होने 1926 मे सरस्वती' और 'साहित्य–समालोचक' (भाग 2 भाग 3) मे इस आशय के लेख लिखे थे। सरस्वती' के सपादक श्री नाथसिह ने तो प्रेमचन्द पर अपने उपन्यास तक का प्लाट चुराने का हास्यास्पद आरोप लगाया था। प्रेमचन्द पर 'चोरी करने' का इल्जाम काफी पुराना हे। एक जमाने मे हिन्दी पत्र–पत्रिकाओ ने उन पर जेहाद बोल दिया था। 'सुधा', 'माधुरी', 'सरस्वती', 'साहित्य–समालोचक', 'भारत' (दैनिक) मे प्रेमचन्द की उपलब्धियो पर पानी फेरते हुए उन पर तरह–तरह के आरोप लगाये गये थे। इन आरोपो मे हिस्सा लेने वालो मे अवध उपाध्याय, जोशी बधु, ब्रजरत्न जैसे नामी–गरामी लेखक एव 'गुलाब' 'साहित्य–पाठक' जैसे छद्म नाम लेखक भी थे।[1] इतना ही नही 'मोटेराम शास्त्री' शीर्षक कहानी के लिए सन् 1929 मे प्रेमचन्द पर मुकदमा भी चलाया गया। इसी पृष्ठभूमि मे प्रेमचन्द को 'घृणा का प्रचारक' और ब्राह्मण विरोधी भी कहा गया था।

---

[1] रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, पृ० 34–35

जैनेन्द्र कुमार और अज्ञेय जैसे लोग प्रेमचन्द की आलोचना सीधे–साधे न करके ब्याजस्तुति को अपनाते है। वे उनकी निन्दा इस तरह करते है कि वह प्रशसा लगे और उनके महत्व को इस तरह नकारते है कि उनकी महत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। 'गबन' की आलोचना करते हुए जैनेन्द्र ने समस्याओ के 'सरल समाधान' को प्रेमचन्द का दोष भी माना है और उन पर वे मुग्ध भी हुए थे। इसी तरह उन्होंने 'गोदान' को इस आधार पर असफल माना है कि प्रेमचन्द ने उसमे होरी को 'कुछ तात्कालिक परिस्थितियो या व्यक्तियो' द्वारा प्रताडित दिखाया है, 'जैसे कि होरी शिकार हो और दूसरे उसके शिकारी।' यानी, बात साफ हो जाती है कि जैनेन्द्र भी साहित्य मे वर्ग–सघर्ष और किसी भी तरह के उत्पीडन का चित्रण करने के खिलाफ है। अज्ञेय प्रेमचन्द के साहित्य मे यह दोष दिखाते हैं कि उनके पात्र 'केवल एक परिपाटी के सॉचे मे ढली हुई छायाएँ मात्र हैं तथा उनका शिक्षित मध्यमवर्गीय या उच्चवर्गीय पात्रो का चित्रण सतही और अविश्वसनीय है। वे बडी उदारता से यह भी लिखते है कि 'प्रेमचन्द मे यह दोष अनुभव की सीमा का दोष है' और साथ ही यह दावा भी करते है कि 'आख्यानसाहित्य को हमने प्रेमचन्द से आगे बढाया है .
हम ज्यादा सफाई लाये है। प्रेमचन्द को 'आदर्शवादी' बताकर अज्ञेय जब यह लिखते है कि 'प्रेमचन्द का आदर्शवाद मानवता मे आसक्ति रखता है' तो डॉ० नगेन्द्र और जैनेन्द्र कुमार की तरह उनका आशय भी वर्ग–निरपेक्ष 'मानवता' से ही है।[1] अज्ञेय के समानधर्मा धर्मवीर भारती प्रेमचन्द पर 'शार्टकट' अपनाने का आरोप लगाते हुए अपनी 'दूरदृष्टि' का परिचय इस तरह देते है "जिस बिन्दु पर स्थित होकर हमने मनुष्य को समझने का प्रयास किया है, विश्व–उपन्यास की तुलना मे वह बिन्दु काफी सतही है। यह बात प्रेमचन्द के बारे मे भी उसी तरह लागू होती है, यह स्वीकार करने मे हमे कोई हिचकिचाहट नही होनी चाहिए।[2] लगभग यही स्थिति निर्मल वर्मा की भी है, जो यह मानते है कि प्रेमचन्द के पास उपन्यास का सही ढॉचा नही था। वस्तुत सभी तरह के पुरातनपथी, कलावादी और आधुनिकतावादी प्रतिगामियो को प्रेमचन्द–साहित्य अपना सबसे बडा शत्रु दिखाई देता है। प्रेमचन्द पर हमला किये बगैर साहित्य मे उनका निस्तार ही नही।

प्रतिक्रियावादी लेखको की तरह बहुत से 'प्रगतिवादी' लेखको ने भी प्रेमचन्द पर आक्षेप किये थे। डॉ० शर्मा के शब्दो मे 'बाये बाजू के लोग प्रेमचन्द पर आक्षेप कर रहे थे

---

[1] सच्चिदानद वात्सायन 'अज्ञेय' (हिन्दी साहित्य एव आधुनिक परिदृश्य), पृ० 12, 13 और 99

[2] आलोचना अक्टूबर 1954 सपादकीय

कि वे सुधारवादी है, होरी आखिर मे हार जाता है, क्रान्ति नही होती, वगैरह, वगैरह।' इस प्रवति को 'वामपथी अवसरवाद' बताते हुए डॉ० शर्मा ने 'प्रेमचन्द और उनका युग' के परवर्ती (1965) सस्करण मे लिखा है कि 'जब कुछ तथाकथित प्रगतिवादी लेखक हिन्दी–आलोचना के क्षेत्र मे अवतरित हुए तो उन्होने कभी विश्व–साहित्य के नाम पर, कभी साम्यवादी यथार्थवाद के नाम पर प्रेमचन्द की भर्त्सना आरम्भ की। जो काम दक्षिणपथी प्रतिक्रियावादी कर रहे थे, वही काम इन वामपथी अवसरवादियो ने किया।'[1] कहना न होगा कि प्रेमचन्द का महत्व उजागर करते हुए डॉ० शर्मा ने इन सभी प्रवृत्तियो से जमकर लोहा लिया और इन्हे निरस्त कर दिया।

मुल्कराज आनन्द ने यह लिखकर कि 'उत्तर भारत मे लगभग अटूट सामती परम्परा के दौरान सही अर्थ मे कोई उपन्यास लिखा नही गया' एक तरह से प्रेमचन्द के अस्तित्व को ही नकार दिया। उन्होने यह बात 'न्यू इडियन लिटरेचर' पत्रिका मे 1939 मे लिखी भी। इतना ही नही पत्रिका के इसी अक मे 'आन दी प्रोगेसिव राइटर्स मूवमेट' शीर्षक अपने लेख मे मुल्कराज आनन्द ने ढेरो देशी–विदेशी लेखको का उल्लेख करते हुए न केवल प्रेमचन्द का नाम छोड दिया था, बल्कि लखनऊ के सन् 1936 के प्रगतिशील लेखक सम्मेलन का जिसका सभापतित्व प्रेमचन्द ने किया था, कोई उल्लेख तक नही किया। शिवदान सिह चोहान प्रेमचन्द को मूलत गाधीजी के ही अनुयायी, बताकर सावधान करते है कि 'तत्काल प्रसिद्धि पा जाना कोई महानता का लक्षण नही है।' उनके मतानुसार 'प्रेमचन्द के अधिकतर उपन्यास कला की दृष्टि से . कमजोर और शिथिल है' तथा 'विश्व–साहित्य मे या भारतीय उपन्यास–साहित्य मे ही उन्होने कोई नया विकास किया हो, यह कहना कदाचित सभव नही है।' चौहान जी ने प्रेमचन्द के यथार्थवाद को 'प्रतिक्रियावादी', 'पूँजीवादी यथार्थवाद' और स्वय प्रेमचन्द को सुधारवादी कहा था।[2] इसी तरह हसराज रहबर ने भी प्रेमचन्द के यथार्थवाद को फ्लाबेयर मोपासॉ और जोला जैसे प्रकृतवादियो के समान बतलाते हुए 'तथ्यात्मक यथार्थवाद' कहा था।[3] उस समय के ज्यादातर 'प्रगतिवादी आलोचक और रचनाकार खुद को प्रेमचन्द से सैकडो कदम आगे समझते थे, जैसा कि 'हस' के एक लेख मे दावा भी किया गया था। इस उच्छेदवादी और सकीर्णतावादी रूझान की मिसाल आज भी मिल जाती है।

---

[1] प्रमचद ओर उनका युग, पृ० 56–57
[2] साहित्य की समस्याएँ – शिवदान सिह चौहान, पृ० 115–117
[3] प्रगतिवाद–पुर्नमूल्याकन' – हसराज रहबर, पृ० 59

सतुलित विवेचन की दृष्टि से प्रेमचन्द के सदर्भ मे डॉ०रघुवश का मत उल्लेखनीय है –

"प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा–साहित्य को प्राय किस्सागोई से रचना के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है, साथ ही उन्होने लोक–कथा के तत्वो का रचनात्मक उपयोग करने का प्रयत्न किया है और सबसे महत्वपूर्ण काम उन्होने यह किया कि जीवन के यथार्थ को कला के आधार के रूप मे प्रतिष्ठित किया। इनके पूर्ववर्ती हिन्दी कथाकारो ने व्यापक जीवन को समस्याओ के रूप मे ग्रहण किया था। उनके मन मे पहले समस्याएँ और आदर्श रहे। फिर इन मानदडो के आधार पर किसी जीवन–बिन्दु को नियोजित किया गया या यो कहिए कि इन सॉचो मे जीवन को बॉधा गया। प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम अपने चतुर्दिक के जीवन मे समस्याओ को देखा–परखा, फिर अपनी रचना मे जीवन के मध्य समस्याओ को घटित होते व्यजित किया। यही कारण है कि प्रेमचन्द की चारित्रिक उद्भावनाएँ अपने सहज रूप के साथ वर्ग–चरित्रो मे परिलक्षित होती हैं। फिर ये चरित्र मानवीय भावनाओ के स्तर पर प्रतिष्ठित है, जहॉ ये युग का अतिक्रमण भी कर जाते है।"[1]

प्रेमचद के जीवन–काल मे चला विभिन्न पत्र–पत्रिकाओ मे निदा अभियान

भारत मे अभिजात वर्ग ने साहित्य और कला को आनद से जोडा है, समाज से नही। अभिजात वर्ग साहित्य का उद्देश्य मात्र आनद मानता है। और उसका कोई सरोकार समाज से नही रखता। इस वर्ग की दृष्टि मे समाज से सराकार रखना–साहित्य मे प्रदूषण फेलाना है। जो वर्ण, धर्म को शाश्वत मानते है उस पर सामाजिक सरोकार रखने वाली रचनाएँ प्रहार करती है। प्रेमचद सामाजिक सरोकार के रचनाकार है। उनकी रचनाएँ सामती मूल्यो को चुनौती देती है, धर्म और सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न खडे करती हैं जिसमे परपरित मूल्यो पर चोट पडती है और उनका 'पैराडाइम' खिसकता है। इससे यह वर्ग तिलमिलाता है। प्रेमचद के जीवन काल मे चले निन्दा अभियान के पीछे अभिजात वर्ग की यही तिलमिलाहट है जो प्रेमचद के ऊपर तरह–तरह के लाछन लगाता है और उनकी रचना–दृष्टि पर कठोर प्रहार करता है। मार्क्स, गॉधी और अबेडकर से प्रभावित 'पैराडाइम'

---

[1] प्रमचन्द की कहानियॉ और परिप्रक्ष्य' डॉ०रघुवश

उन लोगो का साहित्य रचता है जो अभी तक समाज और साहित्य दोनो से बहिष्कृत थे। प्रेमचद पुराने साहित्यक 'पैराडाइम' पर गहरी चोट करते है। परम्परित मूल्यो का समर्थक तिलमिलाकर प्रेमचद पर वार करता है। इसकी शुरूआत अवध उपाध्याय के लेखो से होती है। वे जुलाई 1926 ई० से दिसम्बर 1926 ई० तक बराबर 'सरस्वती' मे प्रेमचद के खिलाफ लिखते रहे। कभी 'रगभूमि' को थैकरे के 'वैनिटी फेयर' की नकल कहा तो कभी 'प्रेमाश्रम' टाल्सटॉय के 'रिजरेक्शन' का। जब इतने से जी नही भरा तो बनारस के 'समालोचक' मे ओर कुछ अन्य पत्रो मे कही अपने नाम से तो कही छद्म नाम से यह कीचड उछालने का काम जारी रखा। 'कायाकल्प' को हाल केन के 'इटर्नल सिटी' की नकल कहा। 'कलम का सिपाही' मे अमृत राय ने विस्तार से इन निन्दा अभियानो का ब्यौरा दिया है (पृ० 360 से 367 तक)। प्रेमचद ने इन आरोपो का जबाब भी दिया। लेकिन असली जवाब स्वय अवध उपाध्याय का वह पत्र है जो मुशी जी के मरने पर अपने मित्र अन्नपूर्णानन्द को लिखा था—

'इस दु खद समाचार ने मेरे हृदय को मथ डाला, मै रो उठा क्योकि मेरे हृदय मे एक कसक रह गई। मैने प्रेमचद के सब ग्रथो का अध्ययन किया था और मै भली—भॉति उनके गुणो से परिचित था। वास्तव मे हिन्दी भाषा का एक स्तम्भ टूट गया, हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक उठ गया, आज हमारे उपन्यास—सम्राट का देहावसान हो गया। परन्तु उनकी अमर कीर्ति की ध्वजा सदा फहराती रहेगी। मै आज निस्सकोच भाव से कह रहा हूँ कि अपनी लेखनी के द्वारा आज तक हिन्दी का कोई भी दूसरा लेखक प्रेमचद की तरह प्रसिद्ध नही हो सका। भाषा प्रेमचद की दासी—सी बन गई थी। उसे वे जैसे चाहते थे नचाते थे। मानव हृदय का ज्ञान भी उन्हे बहुत था। मेरा पूर्ण विश्वास है कि उनकी कृतियो मे अमर साहित्य की सामग्री है।' (—'कलम का सिपाही', पृ० 367)।

जनवरी—फरवरी 1932 ई० मे 'हस' के आत्मकथाक को लेकर विवाद छिड गया। नन्ददुलारे वाजपेयी जो उसी साल एम० पास करके 'भारत' के सम्पादक बने थे, तरूवाई के आवेश मे प्रेमचद का जमकर विरोध किया। वाजपेयी जी ने कहा कि प्रेमचद का सबसे बडा दोष यही प्रोपेगेण्डा है। प्रेमचद ने जवाब मे कहा कि अगर प्रोपेगेण्डा न हो तो ससार मे साहित्य की जरूरत न रहे। जो प्रोपेगेण्डा नहीं कर सकता वह विचार शून्य है और उसे

कलम हाथ मे लेने का कोई अधिकार नही। यह बहस लम्बी चली और प्रेमचद जी ने भी भरपूर प्रत्युत्तर दिया। इस विवाद का वास्तविक पटाक्षेप 5 फरवरी 1959 को आकाशवाणी से बोलते समय नन्द दुलारे वाजपेयी के उस कथन से होता हे जहॉ वह याद करते है कि उन्होने 'भारत' मे प्रेमचद पर काफी तीखा लेख लिखा था, जिसे पढकर मुशी जी ने लिखा था– 'तारीफ तो बहुत से लोग करते है पर कमियो को दिखाने वाले नही मिलते। आपका मै शुक्रगुजार हूँ, आपने कई मानो मे मेरा उपकार किया।' ('कलम का सिपाही', पृ० 466 पर उद्धत)।

'सरस्वती' के सम्पादक ठाकुर श्रीनाथसिह ने प्रेमचद पर आगबबूला होकर लिखा– 'उपन्यास–सम्राट कहलवाने के रोगी और अपने बुजुर्ग होने की धाक जमाने वाले मुशी प्रेमचद आज लेखक से प्रकाशक भले ही बन गये हो, परतु सम्पादन–कार्य किस चिडिया का नाम है . . इसका उन्हे रत्ती भर भी ज्ञान नही। मुशी प्रेमचदजी का हम आदर करते है क्योकि हिन्दी के वे किसी समय वे एक ढगदार लेखक थे।' तीन महीने बाद उन्होने लिखा 'घृणा के प्रचारक प्रेमचद' और आरोप लगाया कि वे ब्राह्मणो के खिलाफ घृणा का प्रचार करते है। यह वाकया उस समय का है जब 'सद्गति' छपी थी। इस कहानी का हवाला देते हुए दिसम्बर 1933 की 'सरस्वती' मे 'घृणा के प्रचारक प्रेमचद' शीर्षक लेख मे ठाकुर श्रीनाथसिह ने लिखा– ग्राम्य जीवन का कितना अस्वाभाविक चित्रण है। ग्राम्य पडित चमारो से कितनी घृणा करते है आर उनकी स्त्रियॉ कितनी पत्थर हृदय होती हे, इसका कुछ ठिकाना नही है। इलाहाबाद जिले का गॉव–गॉव हमारा देखा है। हमने देहात मे एक भी पडित ऐसा नही देखा जो चमारो से इतनी घृणा करता हो और एक भी पडिताइन ऐसी नही देखी जो इस प्रकार पत्थरहृदय हो। . . खेद है प्रेमचद जी जैसे आदर्शवादी और राष्ट्रीयता का दभ भरने वाले लेखक ने भारत के ग्राम्य जीवन का ऐसा भद्दा चित्र उपस्थित किया, जो किपलिग के सिवा और किसी ने कभी नही किया।'

'प्रेमचद जी इधर बहुत दिनो से शहरो मे रह रहे है और उपन्यास और कहानियॉ लिखने के लिए विदेशी उपन्यासकारो की रचनाएँ बराबर पढते रहते हैं। यही कारण है कि वे भारतीय सस्कृति से दिन पर दिन दूर होते जा रहे हैं।' अत मे श्रीनाथ सिह ने लिखा

'प्रेमचद जी की रचनाओ से ऐसे सैकडो स्थल उद्धृत किये जा सकते हैं जहॉ उन्होने हिन्दुओ को, खासकर पडितो को, अत्यत ही घृणित रूप मे उपस्थित किया है। कहा जाता हे कि लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है। यदि प्रेमचद जी इस युग के प्रतिनिधि मान लिए जाएँ तो अब से पचास वर्ष बाद उनकी रचनाएँ जो पढेगे वे सन् 1932 के सामाजिक जीवन के बारे मे क्या कहेगे? यही न कि उस समय हिन्दुओ का, खासकर ब्राह्मणो का, जीवन घृणा का जीवन था। वे निर्दयी थे, जालिम थे, कट्टर थे, दयाहीन थे और पाखडी थे। पर क्या यह सत्य हे?'

मुशी प्रेमचद ने उसी महीने 'हस' मे इसका जवाब दिया – 'जीवन मे घृणा का स्थान'। इसमे उन्होने कहा कि घृणा का उद्देश्य ही यह है कि उससे बुराइयो का परिष्कार हो। पाखड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार और ऐसी ही अन्य दुष्प्रवृत्तियो के विरूद्ध हमारे अदर जितनी ही प्रचड घृणा हो उतनी ही कल्याणकारी होगी। जीवन मे जब घृणा का इतना महत्व है तो साहित्य कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता है।

इसके ठीक बाद ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' ने 'भारत' मे इन्ही आरोपो को दुहराते हुए प्रेमचद के खिलाफ एक लेख लिखा। प्रेमचद ने फौरन 'जागरण' मे इसका जवाब दिया (विस्तृत विवरण के लिए देखिये 'कलम का सिपाही', पृ० 500 से पृ० 503)। जाहिर हे इस तरह के निन्दा अभियानो का उद्देश्य प्रेमचद को नीचा दिखाना था। ये सारे आरोप व्यक्तिगत रागद्वेष से प्रेरित थे। इसी क्रम मे एक अन्य उल्लेखनीय नाम है रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख का जिन्होने पॉच–छ लेख विरोध मे लिखे तथा इसी तरह के आरोप लगाये। इस तरह के कीचड उछाल प्रयत्नो को आलोचना नही कहा जा सकता। और न तो इसका प्रेमचद के आलोचनात्मक मूल्याकन से कोई सबध है।

(क) प्रेमचंद के कथा साहित्य पर लिखी आलोचनाओ का विवरण

1. 'प्रेमचद की उपन्यास कला' (1933 ई०)– जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'

यह प्रेमचद पर पहली प्रगतिशील आलोचना पुस्तक है जो उनके जीवन काल (दिसम्बर 1933) मे प्रकाशित हुई थी। एक तरफ प्रेमचद के विरोधी आलोचक विभिन्न

पत्र–पत्रिकाओ मे उनके खिलाफ जहर उगल रहे थे, उस समय सहानुभूतिपूर्वक प्रेमचद–साहित्य का अध्ययन और मूल्याकन करना, एक बडी बात थी। इस पुस्तक मे ओपन्यासिक तत्त्वो– वस्तु–विन्यास, चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, भाषा–शैली, देश–काल और उद्देश्य के शास्त्रीय आधारो पर प्रेमचद के उपन्यासो को जॉचने–परखने का प्रयास किया गया है। यही नही इस पुस्तक मे प्रेमचद पर लगाये गये विभिन्न आक्षेपो का कडा प्रतिवाद भी किया गया है। प्रचलित आरोप था कि सामयिक समस्याओ का चित्रण करने वाला साहित्य स्थायी नही होता। इसका विरोध करते हुए झा ने कहा कि अपने समय का सच्चा चित्र खीचे बिना कोई भी कलाकार अपनी कला के द्वारा लोक धर्म का पालन नही कर सकता। अनेक रचनाकारो से प्रेमचद की तुलना करते हुए वे कहते है कि प्रेमचद के उपन्यास भारत की उन गभीर समस्याओ पर प्रकाश डालते है जिनका सबध एकमात्र भारत के हितो से नही, सारे ससार के हितो से है। इसी के अनुरूप वे प्रेमचद के उपन्यासो को भारतीय और विश्वसाहित्य के परिप्रेक्ष्य मे देखते है। डॉ० रामविलास शर्मा की यह टिप्पणी पुस्तक की महत्ता पर प्रकाश डालती है –

'जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' की पुस्तक 'प्रेमचद की उपन्यास कला' प्रेमचद पर, मेरी जानकारी मे, पहली आलोचना पुस्तक है, वह निश्चय ही प्रमचद के उपन्यासो पर ध्यान केन्द्रित करने वाली पहली पुस्तक है और प्रगतिशील दृष्टिकोण से प्रेमचद साहित्य का विश्लेषण करने वाली भी वह पहली पुस्तक है। 'प्रेमचद अपने कथा–साहित्य मे जो दृष्टि अपनाते है, उसी का प्रतिफलन झा की आलाचना है। इस प्रकार मूल कथा–साहित्य और उसकी आलोचना मे यहॉ जबर्दस्त सामजस्य है। यह इस पुस्तक का युगातकारी महत्त्व है।' ('प्रेमचद'–डॉ० रामविलास शर्मा, पृ०–16)।

2. 'प्रेमचद' आलोचनात्मक परिचय' (1941) तथा 'प्रेमचद और उनका युग (1952)'– डॉ० रामविलास शर्मा।

प्रेमचद को लेकर डॉ० शर्मा की दो पुस्तके हैं। पहली पुस्तक के बारे मे डॉ० शर्मा का कहना है कि उन्होने इस किताब मे मार्क्सवादी ढग से प्रेमचद का विश्लेषण करने की

कोशिश की है। मार्क्सवादी का अर्थ उनके अनुसार यह था कि प्रेमचद ने विभिन्न वर्गों, समाज के विभिन्न स्तरो, समाज के मुख्य शत्रुओ के बारे में जो कुछ लिखा है उस पर ध्यान केन्द्रित किया जाए। दूसरी पुस्तक के बारे मे वे कहते हैं : 'इसमे मैने जो रास्ता अपनाया है वह यह कि वर्गों का अलग–अलग विश्लेषण करने के बदले कृतियो का विश्लेषण किया जाए। पहली किताब मे मुझे यह कमी मालूम होती थी। उसमे वर्गों के बारे मे प्रेमचद की समझ की स्थिति तो मालूम हो जाती है लेकिन उनकी किसी कृति के बारे मे, उसकी सम्पूर्णता के बारे म, उनका कोई मूल्याकन नही होता।' इसलिए इस दूसरी किताब मे डॉ० शर्मा ने अपना विश्लेषण मुख्यतः प्रेमचद के उपन्यासो पर केन्द्रित किया है और उनका निष्कर्ष है 'मेने यह पाया कि उन्होने अपने उपन्यासो मे भारतीय समाज का गहरा विश्लेषण किया है ओर अपने हर उपन्यास मे उन्होने कोई नई जमीन खोजी है। इस क्रम मे समकालीन राजनीति और समकालीन साहित्य के लिए जो नतीजे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से निकलते है, उनको मैने रेखाकित किया है।' इन दोनो पुस्तको मे प्रेमचद को लेकर जो समझ बनती हे, वह एक अत्यन्त सतर्क और सजग लेखक की है जिसकी दृष्टि समाज की हर गतिविधि पर पैनी नजर रखे हुए हे। उसके उतार–चढाव, द्वन्द्व–सघर्ष को देख रही है और उसक साथ ही अपना विकास करती हुई क्रमश परिपक्व होती जा रही है।

प्रेमचद सबधी डॉ० शर्मा की आलोचना का प्रस्थान बिन्दु है उनका लेख 'प्रेमचद' जो 1941 मे लिखा गया था और उनकी पुस्तक 'परम्परा का मूल्याकन' मे सकलित है जिसकी मूल मान्यता है 'उन्होने बहुत पहले अनुभव किया था कि किसी समाज की सभ्यता उसकी भीतरी व्यवस्था पर निर्भर रहती है। उन्होने जिन सामाजिक कुरीतियो की आलोचना की हैं, उनकी जड भी उन्होने सामाजिक व्यवस्था में खोज निकाली है। इसीलिए प्रेमचद का विश्लेषण छिछला और सुधारवादी न होकर क्रान्तिकारी और सामाजिक व्यवस्था की जड पर आघात करने वाला हो जाता है।' समाज की समस्याएँ, उसके कारण, उन्हे बनाये रखने वालो के वर्ग स्वार्थ उनके सामने स्पष्ट थे।

डॉ० रामविलास शर्मा के प्रेमचंद सबधी विवेचन का महत्त्व यह है कि इस समर्थ कथाकार के वास्तविक रूप की पहचान सभव हो सकी अन्यथा इसके पूर्व डॉ० धर्मवीर भारती उनमे गहराई की कमी बता रहे थे और डॉ० नगेन्द्र वाणी के न्याय मदिर में दोयम

दर्जे के साहित्यकार होने का फैसला सुना रहे थे। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दो मे– "प्रेमचद पहले लेखक थे जिन्होने दिखलाया कि हिदुस्तान के स्वाधीनता आदोलन की रीढ यहॉ का किसान–आदोलन है। वह पहले लेखक थे जिन्होने जनसाधारण की शूरता, धीरता, त्याग और बलिदान के सद्‌गुणो का चित्रण करके हिन्दी साहित्य को वास्तविक जीवन के 'हीरो' दिए। प्रेमचद हिंदुस्तानी कौम की भीतरी एकता कायम करने वाली एक जबरदस्त ताकत थे, इस कौम को तोडने वालो के वह सबसे बडे दुश्मन थे। वह जाति को, पतन के गड्‌ढे मे ढकेलने वाले साहित्य के कटु समालोचक थे, वह हिदुस्तानी जनता के नए सास्कृतिक जागरण को प्रगट करने वाले प्रगतिशील साहित्य के अलबरदार थे।" ('प्रेमचद और उनका युग', भूमिका)।

3. प्रकाश चन्द्र गुप्त नया हिन्दी साहित्य (1946)

इसमे प्रेमचन्द पर तीन लेख है जो मामूली परिवर्तित रूप मे 'प्रेमचन्द कृतियॉ आर कला', 'प्रेमचन्द चिन्तन और कला' सकलनो मे भी छप चुके है। लेखो मे कोई मौलिक विचार दिशा दृष्टिगोचर नही होती। 'प्रेमचन्द की उपन्यास–कला' शीषर्क लेखक मे लेखक एक आध स्थलो पर आत्म–विरोधी बाते कह गया है।

4. 'प्रेमचन्द एक विवेचन' (1947 ई०) डॉ० इन्द्रनाथ मदान

स्वय लेखक के ही शब्दो मे "जिस वर्ग–सघर्ष को उन्होने (प्रेमचन्द ने) अपने उपन्यासो और कहानियो मे इतनी स्पष्टता से चित्रित किया ह, उसी वर्ग सघर्ष की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक मे उनकी कला का विवेचन और उनके मस्तिष्क का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। डॉ० मदान की इस आलोचना–कृति की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसका लेखक प्रेमचन्द के क्रान्तिकारी और प्रगतिशील स्वरूप को अकित करने मे सफल होकर भी कतिपय प्रगतिवादी आलोचको की भॉति एकपक्षीय नहीं हुआ है और आद्योपात

अपने दृष्टिकोण को सयत, उदार और वैज्ञानिक बनाए रखने मे सफल हो सका है। हिन्दी–आलोचना की वर्तमान स्थिति मे यह छोटी उपलब्धि नही है। प्रारम्भिक दो अध्यायो मे प्रेमचन्द–युग की परिस्थितियो और प्रेमचन्द के जीवन का अध्ययन प्रस्तुत करने के पश्चात् विद्वान लेखन ने क्रमश मध्यवर्ग, भूमिपति, उद्योगपति, किसान और अछूत आदि सामाजिक–आर्थिक (**Socio- Economic**) वर्गो के माध्यम से प्रेमचन्द के उपन्यासो को समझने–समझाने का एक विचारोत्तेजक प्रयास किया ह। परिशिष्ट मे प्रेमचन्द के दो महत्वपूर्ण पत्र दिए गए है।

5. 'प्रेमचन्द' (1948) तथा 'कलाकार प्रेमचन्द' : डाक्टर रामरतन भटनागर

डॉ० भटनागर की पहली पुस्तक शुद्ध छात्रोपयोगी, एक अध्ययन' श्रेणी का प्रयास है। उससे किसी प्रकार की मौलिकता की अपेक्षा नही की जानी चाहिए। प्रेमचन्द के कतिपय अन्य आलोचको की भॉति डॉ० भटनागर ने भी प्रेमचन्द के उपन्यासो का प्रकाशनकाल देते हुए आवश्यक सावधानी नही बरती है।[1] लाला श्री निवासदास कृत 'परीक्षा–गुरु' का समय भी गलत दिया गया है।[2]

पुस्तक विद्यार्थियो के लिए लिखी गई है। परीक्षापयोगी नोट्स के लेखको से मौलिक चिन्तन की न सही पर कम से कम इतनी अपेक्षा तो की ही जाती है कि वे सही तथ्य दे। डॉ० भटनागर की यह पुस्तक प्रेमचन्द आलोचना को किसी भी तरह आगे नही बढाती।

डॉ० भटनागर की दूसरी पुस्तक का स्तर पहली क मुकाबले काफी सन्तोषजनक है। 'कलाकार प्रेमचन्द' की सबसे कमजोरी उसकी भाषा है। अस्पष्ट और अव्यवस्थित भाषा उसके लेखक के अस्पष्ट और अव्यवस्थित चिन्तन को सूचित करती है।

---

[1] रगभूमि सन् 1925 (प्रेमचन्द – डॉ० रामरतन भटनागर पृ० 13
सन 1924 (वही पृ० 94)
निर्मला सन 1923 (वही, पृ० 14)
सन 1927 (वही पृ० 141)
गबन सन 1931 (वही, पृ० 13)
सन 1932 (वही, पृ० 135)
[2] " सबसे पहला उपन्यास स० 1943 मे लिखा गया । यह श्रीनिवासदास का परीक्ष–गुरू' वही, पृ० 200
" हिन्दी के पहले उपन्यास परीक्षा–गुरू (1886) से शुरू कीजिए । " वही पृ० 200

6. 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व' (1951 ई०) हसराज 'रहबर'

'श्री रहबर' की यह पुस्तक प्रेमचन्द के जीवन की घटनाओ के साथ उनके साहित्य का सामजस्य स्थापित करने का अपनी तरह का पहला प्रयास है। बचपन, स्कूल, विद्यालय, स्कूल–मास्टर, कानपुर मे, नया विवाह, इस्तीफा, घर मे, प्रकाशक, प्रेस, फिल्म आदि शीर्षको से पहली दृष्टि मे भ्रम हो सकता है कि यह प्रेमचन्द की शुद्ध जीवन–गाथा मात्र है। पर वास्तव मे यह जीवन के माध्यम से साहित्य तक और साहित्य के माध्यम से जीवन तक पहुँचने का प्रेमचन्द–आलोचना मे एक सर्वथा नवीन प्रयोग ह, जो निश्चय ही प्रेमचन्द और उनके साहित्यिक कृतित्व को और अधिक गहराई से समझने–समझाने मे हमारी सहायता करता है। जनवादी दृष्टिकोण से लिखी जाकर भी पुस्तक सकीर्ण मतवादी आग्रहो से मुक्त हे।

7. 'प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन' (1952) · नन्ददुलारे वाजपेयी

वाजपेयी जी की यह आलोचना–कृति प्रेमचन्द के साहित्य और उनकी विचारधारा को समझने का गभीर प्रयास नही है। ऐसा प्रतीत होता हे कि 'प्रेमचन्द' साहित्यिक विवेचन' की रचना एक विशिष्ट कक्षा के परीक्षार्थियो की आवश्यकताओ मे ध्यान मे रखते हुए की गई है। पुस्तक की विषय–सूची पर एक सामान्य दृष्टिपात इस धारणा की पुष्टि के लिए पर्याप्त है। प्रेमचन्द के उपन्यासो का विशिष्ट अध्ययन करते हुए लेखक ने जो 'पैटर्न' अपनाया है वह इस धारणा को बल प्रदान करता है। विद्यार्थियो की सुविधा के लिए ही और शायद अपनी सुविधा के लिए भी लेखक ने प्रेमचन्द के उपन्यासों के विशिष्ट अध्ययन को कथानक, कथानक–समीक्षा, चरित्र–चित्रण, विचार–विवेचन और कला–विवेचन जैसे उपशीर्षको मे बॉटा है। आरम्भ मे हिन्दी उपन्यास परम्परा पर एक सामान्य परिचयात्मक अध्याय भी इसी दृष्टिकोण से जोडा गया है। किन्तु वाजपेयी जी जैसे पुराने और मॅजे हुए आलोचक की लेखनी से प्रणीत होने के कारण पुस्तक शुद्ध छात्रोपयोगी प्रयास बनकर ही नही रह गई है, अनेक स्थलो पर उनके मौलिक चिन्तन की छाप देखी जा सकती है।

प्रेमचन्द पर वाजपेयी जी का एक लेख है जिसमे उन्होने प्रेमचन्द के पॉच–पॉच सौ पृष्ठो के उपन्यासो को पॉच पृष्ठो मे सक्षिप्त करने वाले आलोचको की कठोर भर्त्सना करते हुए उनकी इस क्रिया या कपालक्रिया को उपन्यास और उपन्यासकार दोनो के प्रति मर्मभेदी व्यग्य कहा है।[1] लगता है प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन' को लिखते हुए श्रीयुत नन्ददुलारे वाजपेयी को अपने इस लेख का स्मरण नही रहा।

नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रेमचन्द पर किये जाने वाले आक्षेपो को अप्रत्यक्ष समर्थन देते हुए आक्षेपकर्ताओ के आरोपो की जानकारी इस तरह दी है। आपको स्त्री चरित्रो का चित्रण करने मे सफलता नही मिली, आप अपने उपन्यासो के अत मे प्रचारक बन जाते हैं जिसमे पाठक कृत्रिमता का अनुभव करता है, आप ब्राह्मणो के विपक्षी हे, आपको भाषा का बहुत ही साधारण ज्ञान है। स्वय वाजपेयी जी के अनुसार 'हिन्दी का यह युग विचार की पूॅजी मे दिवालिया है और प्रेमचन्द जी भी इसके अपवाद नही हे। वे प्रेमचन्द की सीमाओ का उल्लेख करते हुए लिखते है कि 'प्रेमचन्दजी के मानसिक सघटन मे कल्पना को कोई स्थान नही प्राप्त है। कथानक का स्थूल रगरूप बनाने मे जितनी स्वल्प कल्पना चाहिए, बस प्रेमचन्द मे उतनी ही है।' इसके अलावा 'कल्पना के अभाव के साथ प्रेमचन्दजी मे तीव्र बोद्धिक दृष्टि और उसके फलस्वरूप निर्मित होने वाले व्यवस्थित जीवन–दर्शन का भी अभाव हे। प्रेमचन्दजी किसी तात्विक निष्कर्ष तक नही पहुॅचत।' कल्पना और जीवन–दर्शन के अभाव के अलावा बाजपेयीजी प्रेमचन्द पर सम सामयिकता का आरोप लगाते हुए व्यग्यपूर्ण लिखते है कि 'आज आप सामयिक पत्रो मे जो चर्चा मे पढ चुके हैं कल प्रेमचन्द जी की कहानियो मे उसे दुबारा पढिए। उपस्थित प्रसगो पर जो भावमय निबन्ध लिखे जाते है अथवा जो सपादकीय लेख छपते रहते है, प्रेमचन्द जी की कहानियॉ उन्ही का दूसरा रूप है।' निष्कर्षत वे प्रेमचन्द की 'सम्पूर्ण कृतियो मे एक अतर्निहित चेतनाधारा' का अभाव देखते हुए अपना फैसला सुना देते है कि 'घटना बाहुल्य और वर्णनो का अनावश्यक विस्तार उनमे बहुत अधिक है। इससे उनकी कला मे स्थूलता आ गई हे।' इसकी वजह वे बताते है कि चरित्र का निर्माण, सूक्ष्म मनोगतियो की पहचान और कला का सौष्ठव प्रेमचन्द जी मे उच्चकोटि का नही हो पाया, इसका कारण वही टेक या स्थूल आदर्शवादिता है। कुल

---

[1]"पर हम जिस रूप मे साहित्य और उसकी समीक्षा को समझते है उस रूप मे पॉच सा पृष्ठो के उपन्यास को पॉच पृष्ठो मे सक्षिप्त करने की क्रिया (या कपाल–क्रिया) उस उपन्यास और उपन्यासकार के लिए मर्मभेदी व्यग्य है।

हिन्दी साहित्य वीसवीशताब्दी, पृ० 83

मिलाकर बाजपेयी का मूल्याकन यह है कि 'कथानक चरित्र, विचारसूत्र, और कला की निर्मित मे प्रेमचदजी प्रथम श्रेणी के यूरोपीय औपन्यासिको की ऊँचाई पर नही पहुँचते'। 'हद तो तब हो जाती है जब वाजपेयी प्रेमचन्द पर हिन्दू साप्रदायिकता का आरोप लगाते हुए लिखते है कि "राष्ट्रीय आदोलन को शिथिल पडने पर सन् 24, 25, 26 मे प्रेमचन्दजी हिन्दू सघटन के नेता का रूप भी धारण कर चुके है।[1] बाद मे वाजपेयीजी ने इसमे से अपनी अनेक मान्यताओ पर परित्याग कर दिया, या यह कहना ज्यादा सही होगा कि परित्याग करने पर उन्हे विवश होना पडा, लेकिन फिर भी प्रेमचन्द का वास्तविक मूल्याकन कर पाने मे वे असमर्थ रहे।

8. 'प्रेमचन्द' (1952 ई०) डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित

इस पुस्तक मे डॉ० दीक्षित का प्रयास प्रेमचन्द को अधिक–से–अधिक मार्क्सवादी सिद्ध करना रहा है, हालॉकि वे यह भी स्वीकार करते है कि 'प्रेमचन्द सन् 1930 तक गॉधी जी के जीवन–दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित रहे। राजनीति के क्षेत्र मे गॉधी जी के कदम जिस गति से बढे प्रेमचन्द के कदम साहित्य के क्षेत्र मे बढ। ————––साहित्यकार का युग–पुरुष से प्रभावित होना बडा स्वाभाविक होता है।'[2] उनका कथन है –

''आज जैसे सघर्ष प्रधान ससार मे आध्यात्मिकता के लिए कोई स्थान नही है। इसी कारण प्रेमचन्द मार्क्स के वस्तुवादी दर्शन से बहुत प्रभावित थ।——–—— मार्क्स का भौतिक दर्शन एव निरोश्वरवाद प्रेमचन्द का परितोष करने मे सफल और समर्थ है। प्रेमचन्द के व्यत्तित्व मे वही दृढता और विश्वबधुत्व की भावना लहर ले रही हैं जो मार्क्सवादी विश्वासो के लिए आवश्यक है। (प्रेमचन्द, पृ० 21)

पुस्तक मे अनेक भूले भरी हुई है, जो दिखाती है कि आलोचक ने अपने कर्तव्य को कितनी जिम्मेदारी से निभाया है। यहॉ कुछ–एक ऐसी भूलो की ओर सकेत करना आवश्यक होगा। डॉ० दीक्षित के अनुसार प्रेमचन्द का 'प्रथम उपन्यास सेवासदन 1905 मे प्रकाशित हुआ था।[3] अगले ही पृष्ठ पर डॉ० दीक्षित एक और शोधपूर्ण घोषणा करते हैं। आर्य–समाज

---

[1] रामविलास शर्मा – पृष्ठ 35 प्रेमचन्द और उनका युग
[2] प्रमचन्द पृ० 21
[3] प्रमचन्द पृ० 163

के आन्दोलन से प्रभावित होकर प्रेमचन्द ने 'सेवासदन', 'बाजारे–हुस्न', और 'बेवा' की रचना की।[1] प्रेमचन्द के विद्यार्थी के लिए यह एक सर्वथा नई खोज है कि 'सेवासदन' और 'बाजारेहुस्न' प्रेमचन्द के दो अलग–अलग उपन्यास है।

इस प्रकार की गैरजिम्मेदारी से लिखी गयी पुस्तक के सहारे किसी भी साहित्यकार का सही और वैज्ञानिक अध्ययन नही किया जा सकता। डॉ० दीक्षित की यह पुस्तक प्रेमचन्द के पाठको को गुमराह करती है, प्रेमचन्द को समझने मे उनकी किसी प्रकार की सहायता नही।

9. 'प्रेमचन्द एक अध्ययन' (1961 ई०) . डॉ राजेश्वर गुरू

डॉ० गुरू के इस शोध–प्रबन्ध मे क्रमशः जीवन–सार, प्रेमचन्द के कुछ विचार, प्रेमचन्द–साहित्य की भूमिका और प्रेमचन्द–साहित्य का विश्लेषण तथा विकास–क्रम शीर्षको के अन्तर्गत प्रेमचन्द के जीवन, चिन्तन और कला का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आरभ म प्रेमचन्द के आलोचको का एक क्रमागत सक्षिप्त विवरण भी हे। पुस्तक पर सर्वत्र लेखक के अध्ययन और अध्यवसाय की स्पष्ट छाप हे। यद्यपि प्रमचन्द विषयक आलोचनात्मक कृतियो मे इसका महत्व निर्विवाद है, किन्तु उसके लेखक डॉ० गुरू का यह दावा स्वीकार नही किया जा सकता है कि यह प्रेमचन्द को 'एकदम नवीन दृष्टिकोण' से देखने का प्रयास हे।[2]

यदि ईमानदारी से देखे तो मानना पडेगा कि कम से कम अभी तक प्रेमचन्द का समग्र मूल्याकन नही हुआ है। केवल दो–चार अथवा दस–पन्द्रह आलोचनात्मक पुस्तके लिख देने के अतिरिक्त अभी तक प्रेमचन्द के सही और गभीर अध्ययन की दिशा में कुछ भी खास नही हुआ। डॉ० राम विलास शर्मा का प्रेमचद सबधी विशद अध्ययन और मूल्याकन इसका अपवाद है।

---

[1] वही पृ० 164

[2] प्रमचन्द एक अध्ययन, पृ० 19 (प्रथम सस्करण)

10. 'प्रेमचन्द और उनकी साहित्य–साधना' : डॉ० पद्मसिह शर्मा 'कमलेश'

प्रेमचन्द पर आए दिन प्रकाशित होने वाली आलोचनात्मक पुस्तक के समान डॉ० 'कमलेश' की यह पुस्तक भी प्रेमचन्द – आलोचना का परिमाण ही बढाती है, महत्व नही। डॉ० 'कमलेश' की इस पुस्तक मे कोई वैशिष्ट्य लक्षित नही होता। प्रेमचन्द के जीवन और साहित्य का यह अध्ययन बहुत ही असतुलित और सतही हे। पुस्तक मे कुछ ऐसी भूले रह गई है जो बरबस पाठक का ध्यान आकृष्ट कर लेती है। 'कर्मभूमि' पर विचार करते हुए कमलेश जी कहते है कजर जैसी जरायम पेशा कौम को भी इस कथा मे स्थान दिया गया हे।"[1] कहना न होगा कि 'कर्मभूमि' ही नही प्रेमचन्द के किसी भी उपन्यास मे कजर जाति का कोई वर्णन नही है। कहानियो मे भी 'प्रेम का उदय' ही प्रेमचन्द की ऐसी कहानी है जिसमे इस अपराधी जाति के जीवन की एक झॉकी प्रस्तुत की गई है।[2]

प्रेमचन्द के उपन्यासो का प्रकाशनकाल देते हुए भी कमलेश जी ने आवश्यक सावधानी नही बरती है। पृ० 52 पर प्रेमचन्द के 'निर्मला' रगभूमि' ओर 'गबन' उपन्यासो का समय क्रमश सन् 1923, 1925 ओर 1931 देते हे पर दो पृष्ठो के बाद इन्ही उपन्यासो का समय क्रमश सन् 1927, 1924 और 1930 दिया गया हे। इस प्रकार की भूलो को मामूली भूले कह कर नही टाला जा सकता, क्योकि ये आलोचक की गैरजिम्मेदारी ओर असावधानी को दर्शाती है।

11. 'प्रेमचन्द' . मदनगोपाल

सन् '44' मे लाहौर से प्रकाशित सवा सौ की इस अॅग्रेजी पुस्तिका मे प्रेमचन्द के जीवन और साहित्य के सभी पक्षो पर सूत्र रूप से विचार किया गया है। इसका विवेचन सकेतात्मक हो गया है। लेखक का दृष्टिकोण सुलझा हुआ ओर शैली रोचक हैं।

आरम्भ मे जाने या अनजाने की गई इस प्रकार की भूले ही आगे चलकर किसी साहित्कार के जीवन अथवा कृतित्व के सबंध मे गंभीर भूलो को प्रशस्त करती है। अतः इस विषय पर अधिक सचेत और सावधान रहने की आवश्यकता हे।

---

[1] प्रमचन्द आर उनकी साहित्य–साधना, पृ० 108

[2] मानसरोवर भाग 4 पृ० 133 (आठवॉं सस्करण 1958)

12. 'विश्लेषण' (1954 ई०)

'विश्लेषण' मे प्रेमचन्द की जीवनी और व्यक्तित्व पर इलाचद्र जोशी के दो लेख है। 'प्रेमचन्द की कला का मूल तत्त्व' शीर्षक से प्रेमचन्द की कतिपय तथाकथित कला–सबन्धी दुर्बलताएँ और खामियाँ गिनाई गई है, जबकि प्रेमचन्दजी का व्यंक्तित्व और साहित्य लेख मे जोशीजी ने 'कच्ची उम्र' और 'नए खून के जोश' मे व्यक्त प्रेमाश्रम विषयक अपने विचारो के लिए एक प्रकार से खेद प्रकट किया है। दोनो लेख वस्तुत एक दूसरे के पूरक हैं। अत उनका एक साथ ही अध्ययन किया जाना चाहिए। प्रेमचन्द पर जोशीजी का मुख्य आरोप यह है कि उन्होने अपने साहित्य मे 'सृष्टि के मूल मे यह जो सनातन नारी है उसके प्रति अवज्ञा प्रदर्शित की है।[1] उनका कहना है कि प्रेमचन्द ने 'पुरूष–प्रवृत्ति के रहस्य का परिचय अवश्य प्राप्त किया है, मूल प्रकृति जो नारी है उसकी आत्मा के भीतर उन्होने गहरी दृष्टि नही डाली है।[2]

अर्थात जोशीजी का तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द ने 'मूल प्रकृति' नारी का चीर हरण नही किया है, उसके अगो के उभार का उत्तेजक वर्णन नही किया है। उसकी आधा दर्जन प्रणय–लीलाओ का मासल वर्णन नही किया है, उसके अवैध गर्भपातो का सजीव चित्र नही खीचा है। मनोविश्लेषण और यथार्थवाद के नाम पर स्त्री–पुरूष के सबधो का वर्णन करने वाले उपन्यासकार को यदि प्रेमचन्द–साहित्य मे इस बात की कमी दिखती है तो ताज्जुब ही क्या?

13. चन्द्रबलीसिह · 'लोक–दृष्टि और हिन्दी साहित्य' (1956 ई०)

'प्रेमचन्द की परम्परा' शीर्षक से प्रो० सिह ने प्रेमचन्द की सामाजिक–राजनीतिक चेतना के विकास की एक सक्षिप्त रूपरेखा देते हुए वर्ग–सहयोग की मध्यवर्गीय सुधारवादी विचारधारा से वर्ग–सघर्ष के क्रान्तिकारी जीवन–दर्शन तथा उनकी यात्रा का एक विचारोत्तेजक विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रगतिवादी आलोचकों द्वारा प्रेमचन्द पर लिखित लेखो मे प्रो० सिह का लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

---

[1] विश्लेषण पृ० 50 (प्रथम सस्करण)
[2] वही पृ० 49

14. 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' : डॉ० महेन्द्र भटनागर

नागपुर विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत इस शोध–प्रबन्ध की मूल स्थापना यह है कि प्रेमचन्द का वैज्ञानिक अध्ययन और मूल्याकन उनके समस्यामूलक स्वरूप के विवेचन के आधार पर किया जा सकता है। इसमे सन्देह नही कि अपनी इस प्रति ख्याति द्वारा लेखक ने प्रेमचन्द के अध्ययन को एक नवीन दृष्टि प्रदान की है, पर आदि से अन्त तक प्रेमचन्द के एक ही पक्ष पर आग्रहपूर्ण इतना अधिक बल दिए जाने के कारण डॉ० महेन्द्र भटनागर का यह अध्ययन स्पष्टत उपन्यासकार प्रेमचन्द को उसकी सग्रता मे ग्रहण नही कर पाया है। इस पुस्तक की दूसरी बडी दुर्बलता यह है कि उसमे आवश्यकता से कही अधिक उद्धरण दिए गए हैं–—यहॉ तक कि इस विषय मे अनुपात का ध्यान नही रखा गया है। शोध–प्रबन्ध मे उदाहरणो का होना स्वाभाविक है, पर इतनी सख्या मे नही कि लेखक को 'अपनी बात' गौण बन जाए ओर 'उद्धरण' प्रमुख।

15. 'प्रेमचन्द उपन्यास और शिल्प' · हरस्वरूप माथुर

प्रस्तुत पुस्तक मे श्री माथुर ने औपन्यासिक तत्वा ओर शिल्प–विधान की दृष्टि से प्रेमचन्द के उपन्यासो और उनकी उपन्यास–कला का क्रमश विशिष्ट एव सामान्य अध्ययन प्रस्तुत किया है। लेखक किसी प्रकार के वाद–विवाद मे पडे बिना कथावस्तु, पात्र, देशकाल ओर उद्देश्य के आधार पर 'वरदान' से 'मगलसूत्र' तक प्रेमचन्द के औपन्यासिक कृतित्व का एक–एक करके विश्लेषण करता चला गया है। श्री माथुर के इस विश्लेषण मे स्वभावत कोई ताजगी अथवा विचारोत्तेजकता नही है। पुस्तक का महत्व किसी प्रकार की मौलिक उद्भावना के कारण नही अपितु उसके लेखक की सुलझी हुई शैली और बात को सीधे–सादे शब्दो में कह देने की क्षमता के कारण है।

16. 'कहानीकला और प्रेमचन्द' श्रीपति शर्मा

शर्माजी की यह पुस्तक एम० ए० की परीक्षा के लिए प्रस्तुत उनके विशेष निबन्ध का परिवर्द्धित और सशोधित सस्करण है, जिसमे उन्होने प्रेमचन्द की कहानियो पर विभिन्न दृष्टिकोणे से विचार–विमर्श किया है। कहानीकार प्रेमचन्द पर बहुत कम लिखा गया है। इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्व के साथ साहित्यिक महत्व भी कम नही है।

17. 'प्रेमचन्द उनकी कहानी कला' डॉ० सत्येन्द्र

अपनी इस पुस्तक मे सत्येन्द्र ने प्रेमचन्द की कहानियो को विविध आधारो पर वर्गीकृत करने का जो प्रयास किया है वह सर्वथा अवैज्ञानिक सदोष और उलझनपूर्ण है।

प्रेमचन्द का परिचय, प्रेमचन्द–काल का विवेचन तथा कहानी की परिभाषा और विकास मे आरम्भिक तीन अध्याय पुस्तक के सबसे कमजोर अग है। लेखक ने काव्यमयी भाषा का प्रयोग किया है। शैली मे स्पष्टता और ऋजुता नही है। आज के युग मे आलोचक का सबसे बडा दायित्व अपनी बात को सुलझे हुए ढग से स्पष्ट शब्दो मे प्रस्तुत करना होता है। यदि कोई आलोचक इस कसौटी पर खरा नही उतरता तो यह समझा जाता है कि आज के सघर्षमय युग मे उसे 'आलोचक' कहलाने का कोई हक नही है। आलोचक का काम प्रकाश देना होता है भूलभूलैया मे भटकाना नही।

लेख तथा सग्रह

(क) 'प्रेमचन्द चिन्तन और कला' . स इन्द्रनाथ मदान

प्रस्तुत सकलन मे प्रेमचन्द पर विभिन्न प्रतिष्ठित विद्वानो के उन्नीस लेख है, जिसमे से डॉ० मुन्शी राम शर्मा, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री प्रेमनारायण टडन, श्री विश्वम्भर (मानव) बाबूराव विष्णु पराडकर और डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा द्वारा लिखित

लेख प्रेमचन्द 'कृतिया और कला' सग्रह मे भी छप चुके है। शेष तेरह मे से दो स्वय लेखक महोदय के है। डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, श्री नन्द दुलारे वाजपेयी और श्री मन्मथनाथ गुप्त के लेख प्रेमचन्द लिखित उनकी पुस्तको – क्रमश 'प्रेमचन्द' , 'प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, और 'कथाकार प्रेमचन्द' – से अविकल उद्धृत किए गए है। विशेष उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण लेखो मे डॉ० मदान के अतिरिक्त डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० नगेन्द्र, श्री हसराज 'रहबर' और श्री गोपाल कृष्ण कौल के लेखो का नाम लिया जा सकता ह।

प्रेमचन्द 'चिन्तन और कला' मे एक लेख – जिसे लेख न कहकर प्रेमचन्द पर सक्षिप्त नोट कहना अधिक उपयुक्त होगा, श्री अमृतराय का भी है।

(ख) 'प्रेमचन्द और गोर्की' (1955) स० शचीरानी गुर्टू

प्रेमचन्द पर अब तक प्रकाशित सकलनो की तुलना मे 'प्रेमचन्द और गोर्की', सभी कोणो से प्रेमचन्द के जीवन और कृतित्व पर अधिक पूर्ण और वैज्ञानिक सकलन बना है। इसका एक कारण यह है कि लेखो के चुनाव मे सपादिका न अनुपात का पूरा ध्यान रखा हे। डॉ० नगेन्द्र और श्री बा० वि० पराडकर के लेखो को छोडकर एक भी लेख नही दोहराया गया है, जो स्पष्टत एक आदर्श और अनुकरणीय प्रवृति का द्योतक है। आरम्भ मे प्रेमचन्द के जीवन की एक सक्षिप्त रेखा, उसके कुछ महत्वपूर्ण पत्र और प्रेमचन्द–साहित्य की सूची सम्मिलित लगभग तीस वर्षो तक प्रेमचन्द के साहित्यिक उदयकाल से लेकर उनके देहावसान तक का प्रेमचन्द के साथ मित्रता ही नही अपितु सगे भाइयो सा सबध रहा। प्रेमचन्द के जीवन और साहित्यिक व्यक्तित्व, उनकी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक मान्यताएँ और जीवन–दर्शन समझने के लिए अकेले इस लेख का बहुत महत्व है। मुशीजी का यह लेख प्रस्तुत सकलन की रीढ की हड्डी है। अन्य महत्वपूर्ण लेखो मे श्री नरोनत्तमागर, प्रो० चन्द्रबली सिह, प्रो० रामकृष्ण शुक्ल, 'शिलीमुख', डॉ० नगेन्द्र श्री हसराज 'रहबर' श्री गोपालकृष्ण कौल, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी और श्री नरेश आदि के लेखो का उल्लेख आवश्यक है।

(ग) 'प्रेमचन्द के पात्र' . स० कोमल कोठारी और विजयदान देथा

किसी भी महान् साहित्यकार का सही और वैज्ञानिक अध्ययन उसके द्वारा सृजित पात्रो से ही किया जा सकता है। पात्रो के द्वारा ही सृष्टा अपने आपको अपनी कृति मे व्यक्त करता है। प्रत्येक महान् कलाकार की छोटी से छोटी चरित्र–सृष्टि के पीछे कोई न कोई सकेत, विचार या उद्देश्य अवश्य रहता है, वह यूँ ही निरूद्देश्य किसी पात्र की सृष्टि नही करता। पात्र ही वे जीवित उपकरण हो सकते है जिसके माध्यम उनके निर्माता और रचयिता तक पहुँचा जा सके। एक ही रामकथा कहने वाले बाल्मीकि, भवभूति, तुलसी, केवट, मैथिलीशरण गुप्त, निराला प्रभृति महाकवियो की पारस्परिक भिन्नता और अभिन्नता को उनके राम, सीता, लक्ष्मण, भरत आदि चरित्रो तुलनात्मक अध्ययन से जाना जा सकता है। अस्तु,

प्रस्तुत सकलन मे पात्रो के माध्यम से प्रेमचन्द के अध्ययन का प्रयास किया गया है। प्रेमचन्द पर प्रकाशित आलोचना पुस्तको मे इस सग्रह का स्थान और महत्व सबसे अलग ओर भिन्न प्रकार का है

(घ) 'प्रेमचन्द–स्मृति' (1959 ई०) : अमृतराय

प्रेमचन्द की तेईसवी स्मृति–वार्षिक अवसर पर प्रकाशित इस सकलन मे प्रेमचन्द के अतिम अपूर्ण उपन्यास 'मगलसूत्र' और सभवत अतिम लेख महाजनी सभ्यता' के अतिरिक्त 'हस' और 'जमाना' स्मृति अको मे प्रकाशित तथा समय–समय पर रेडियो से प्रसारित प्रेमचन्द से सबन्धित कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण सस्मरण सगृहीत किए गए है। प्रेमचन्द के जीवन के इन रोचक सस्मरणो की सहायता से हम उनके कृतित्व के अतरग मे और अधिक गहराई से झाक सकते है। सर्वश्री जैनेन्द्र कुमार, नन्ददुलारे वाजपेयी, मुहम्मद आकिल, रामवृक्ष बेनीपुरी, सुदर्शन आदि के सस्मरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रेमचन्द की विचाधारा के किसी एक पक्ष पर लिखित पुस्तकें

(क) 'शान्ति के योद्धा प्रेमचन्द' · अमृतराय

इस पुस्तिका के लेखक ने लगभग पचास पृष्ठो मे प्रेमचन्द को शान्ति का योद्धा सिद्ध करने का एक जोशीला कार्य किया है। पुस्तिका का स्वर प्रचारात्मक है, समीक्षात्मक नही। उनकी शैली गभीर समीक्षा कृतियो के अनुरूप नही हैं, स्थान–स्थान पर वह रिपोर्ताज की शैली के अत्यन्त निकट पहुँच जाती है।[1] 'शान्ति के योद्धा प्रेमचन्द' के लेखक की आलोचना शैली मे जोश अधिक है। कुल मिलाकर इस पुस्तिका को राजनीतिक 'पैम्फलेट' ही कहा जा सकता है, समीक्षा कृति नही।

(ख) प्रेमचन्द और ग्राम समस्या (1942)· प्रेमनारायण टडन

ग्राम समस्या के चिन्तन मे प्रेमचन्द ने सामाजिक यथार्थ को अपनी दृष्टिपथ से कभी ओझल नही होने दिया। सिद्धान्तत वे सामाजिक विकास क शान्तिपूर्ण विचारो मे विश्वास रखते थे, पर सामाजिक यथार्थ के प्रति उनकी इसी ईमानदारी के कारण उनके किसान जाने या अनजाने सघर्ष की क्रान्तिकारी डगर पर बढते दिखाई देते है। वर्तमान के प्रति असतोष और एक उज्जवलतर भविष्य की कामना ही देश और समाज मे क्रान्ति की जनक हुआ करती है और इसमे सदेह नही कि प्रेमचन्द के किसान के हृदय मे यह असतोष और कामना प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। यही कारण है प्रेमचन्द के किसान अपने शोषको के हृदय मे दया, सहानुभूति और मानवता की भावना जागृति होने की प्रतीक्षा मे हाथ पर हाथ धरे नही बैठे रहते। अपने स्वप्नो की प्राप्ति के लिए सगठित होकर सघर्ष करते हैं।

---

[1] शान्ति के योद्धा प्रेमचन्द, पृ० 3 (प्रथम सस्करण)

हिन्दी उपन्यास और कहानियों पर लिखित ग्रन्थों मे प्रेमचन्द की आलोचना

इस वर्ग के अन्तर्गत उल्लिखित पुस्तको का यद्यपि प्रेमचन्द आलोचना मे अपना महत्व है पर यहॉ उन पर विचार करना उचित न होगा।

स्वतन्त्र लेख, रिव्यू, भूमिका आदि–

(क) नन्ददुलारे वाजपेयी "हिन्दी साहित्य . बीसवी–शताब्दी"

इस पुस्तक मे प्रेमचन्द पर भी एक लेख है जिसमे वाजपेयी ने मुख्य रूप से प्रेमचन्द की साहित्य और कला–सबधी कतिपय दुर्बलताऍ दिखाई है। इस लेख मे बाजपेयी ने प्रेमचन्द पर कुछ ऐसे आक्षेप किए है जो भ्रामक ही नही सर्वथा बेबुनियाद भी हे।

उदाहरण के लिए उनके इस आक्षेप को ले सकत हे कि सन् 24, 25, 26 मे राष्ट्रीय आन्दोलन के शिथिल पडने पर प्रेमचन्द 'कायाकल्प' मे हिन्दू सगठन के नेता का रूप धारण कर लेत है। इस सबध मे वाजपेयी जी के शब्दा मे ज्यो का त्यो उद्धत करना अधिक उचित होगा ––

ख्वाजा हजन निजामी साहब ने दिल्ली की एक सभा मे प्रेमचन्दजी का सत्कार करते हुए कहा था कि जिस जमाने मे हिन्दू और मुसलमान गुमराह होकर मर रहे थे वहॉ पर हिन्दू–मुस्लिम नेता वैमनस्य की आग भडका रहे थे। उस जमाने मे प्रेमचन्दजी दर्द की कहानियॉ लिखकर राष्ट्रीय प्रीति का सन्देश सुना रहे थे। परन्तु ख्वाजा साहब ने प्रेमचन्दजी का 'कायाकल्प' उपन्यास नही पढा होगा। राष्ट्रीय आन्दोलन के शिथिल पडने पर सन् 24, 25, 26 मे प्रेमचन्दजी हिन्दू सघटन के नेता का रूप भी धारण कर चुके थे।

कहने की आवश्यकता नही कि वाजपेयी जी का यह फैन्टास्टिक आक्षेप स्वय आलोचक की सकीर्ण साम्प्रदायिक विचारधारा का परिचायक हं। वाजपेयी जी इस आक्षेप के द्वारा यह सिद्ध करना चाहते है कि प्रेमचन्द एक बहुत बडे आदर्शवादी थे। राष्ट्रीय आन्दोलन

के दिनों में उन्होंने राष्ट्रीय नीति का सन्देश सुनाया। राष्ट्रीय आन्दोलन के शिथिल पड़ जाने पर वे हिन्दू संघटन के नेता का रूप धारण कर अवतरित हुए। कहना न होगा कि प्रेमचन्द इस प्रकार की दुरंगी चालों से अनभिज्ञ थे।

हंस की आत्मकथांक को लेकर प्रेमचन्द और वाजपेयी में जो वाद–विवाद हुआ, वह भी पुस्तक में संग्रहीत है। यहाँ पर भी वाजपेयी जी ने प्रेमचन्द पर कतिपय आक्षेप लगाये हैं, जिनमें से सर्वप्रमुख यह है–

"प्रेमचन्दजी के उपन्यास उनकी प्रोपेगेण्डा–वृत्ति के कारण काफी बदनाम है। हिन्दी के बड़े–से–बड़े समीक्षक ने उसकी शिकायत की है। .... प्रेमचन्द को सभी समीक्षक जानते हैं कि उनका सबसे बड़ा दोष जो उनकी साहित्य कला को कलुषित करने में समर्थ हुआ है– यही प्रोपेगेण्डा है।"[1] वाजपेयीजी के इन लेखों में विवादजन्य आवेश, मानसिक असन्तुलन, बौखलाहट और व्यंग्य अधिक हैं, तथ्य और सच्चाई कम।

(ख) रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' : समाज और साहित्य

'अंचल' का प्रेमचन्द पर एक लेख है, जिसमें प्रेमचन्द को प्रगतिवादी दृष्टिकोण से समझने–समझाने का प्रयास किया गया है। उनके विचारों में बिखराव का कारण यह है कि लेखक के पास कहने को कोई नवीन बात नहीं है। इसलिए वे कहते हैं कि प्रेमचन्द यदि 'समस्याओं का मार्क्सवादी समाधान देते तो दुनिया के सबसे बड़े लेखक की महानता उन्हें मिलती।'[2] अंचल जी यह भूल जाते हैं कि समस्याओं को मार्क्सवादी समाधान देने मात्र से कोई बड़ा या महान् लेखक नहीं बन जाता, अन्यथा बाल्मिकि, कालिदास, भवभूति, तुलसी, सूर, रवीन्द्र, शेक्सपियर, गेटे, शेली, टालस्टाय, गोर्की आदि कभी महान् नहीं कहला सकते थे।

---

[1] वही, पृ० 91

[2] समस्या और साहित्य, पृ० 107

(ग) अमृतराय 'नयी समीक्षा'

प्रेमचन्द की क्रमश. नवी और ग्यारहवी वार्षिकी के अवसर पर लिखी गई दो टिप्पणियाँ इसमे सग्रहीत है– प्रेमचन्द और हमारा कथा–साहित्य तथा 'प्रेमचन्द एक परिचय'। दूसरी टिप्पणी 'प्रेमचन्द चिन्तन और कला' सग्रह मे भी छप चुकी है। दोनो टिप्पणियो का स्वर परिचयात्मक है, स्वभावत इनमे कोई मौलिकता लक्षित नही होती।

(घ) (अ) 'प्रगतिवाद की रूपरेखा' · मन्मथनाथ गुप्त

प्रेमचन्द की कला पर 'सरसरी दृष्टि' शीर्षक से गुप्तजी ने अपने 'कथाकार प्रेमचन्द' ग्रथ के निष्कर्षो को ही दोहराया है। प्रेमचन्द पर अपनी उक्त पुस्तक की भॉति प्रस्तुत लेख मे भी गुप्तजी को मुख प्रतिपत्ति होती है कि प्रेमचन्दजी 'गोदान' मे तो आत्म–सचेतन रूप से समाजवाद की ओर झुके है, 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रय', 'रगभूमि' आदि गॉधी युगीन रचनाओ मे भी उन्होने जो गाधीवाद की जय दिखाई है वह वस्तुत उसकी विजय न होकर पराजय हे।"[1] दूसरा लेख प्रेमचन्द के अन्तिम अपूर्ण उपन्यास 'मगलसूत्र' पर है। 'मगलसूत्र' पर प्रेमचन्द के आलोचको ने अपेक्षाकृत बहुत कम लिखा है। स्वभावत श्री मन्मथनाथ गुप्त के लेख पर विचार करते हुए 'प्रेमचन्द और गोर्की' मे सकलित 'मगलसूत्र' पर ही श्री हसराज 'रहबर' के लेख का स्मरण हो जाता है। दोनो लेखो पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तजी की अपेक्षा 'रहबर' का लेख अधिक सतुलित है। मन्मथनाथ गुप्त के लेख मे अनावश्यक विस्तार अधिक है, मतलब की बात कम। ग्यारह से लगभग छ. पृष्ठ तो उन्होने 'मगलसूत्र' की कहानी देने मे व्यय कर दिए हे। अनावश्यक विस्तार गुप्तजी की समीक्षा–शैली का मुख्य लक्षण और पहचान है, जिसे उनके 'कथाकार प्रेमचन्द' ग्रथ मे सबसे अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रस्तुत लेख मे भी उनकी वैसी प्रवृति का प्रसार मिलता है।

[1] प्रगतिवाद की रूपरेखा, पृ० 29 और 31 (दिल्ली, 1952)

(आ) 'साहित्यकला—समीक्षा' : मन्मथनाथ गुप्त

श्री मन्मथनाथ गुप्त के इस सग्रह मे भी प्रेमचन्द पर दो लेख है— 'प्रेमचन्द का सूत्र तथा प्रेमचन्द एक और विश्वास'। लेखो मे किसी प्रकार की मोलिकता या नवीनता नही है, क्योकि इसमे गुप्तजी ने अपनी 'कथाकार प्रेमचन्द' पुस्तक के विचारो को यहॉ तक कि शब्दो को भी बार—बार दोहराया है। स्वय लेखक इस तथ्य को स्वीकार करता है कि वह इस लेख मे कोई ऐसी बात कहने या प्रस्थापनाएँ करने नही जा रहा है जिसे वह 'कथाकार प्रेमचन्द' अथवा प्रेमचन्द सबधी अन्य आलोचनाओ में न कह चुका हो।

(ड) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र · 'हिन्दी का सामयिक साहित्य'

'प्रेमचन्द प्रवृतिया' शीर्षक से लगभग दो पृष्ठो मे मिश्रजी ने प्रेमचन्द की तीन—चार मोटी विशेषताए अतीत की अपेक्षा वर्तमान का चित्रण, ग्रामीण जीवन का चित्रण अभिरूचि, व्यापक और सूक्ष्म निरीक्षण, असाधारण घटनाओ का आदि का प्रयास किया है।

(च) प० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' 'शिलीमुखी' (स० प्रो० 'विजयेन्द्र' स्नातक)

'शिलीमुखी' मे प्रेमचन्द सबधी 6 लेख है, जिनमे से 'कायाकल्प' पर एक 'प्रेमचन्द ओर गोर्की' सकलन मे भी छप चुका है। 'विश्वास' और प्रेमचन्दजी का कौशल' दोनो लेखो मे लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि प्रेमचन्द की विश्वास और कौशल कहानियॉ (दे०—मानसरोवर 3) क्रमश हालकेन के 'इटर्नल सिटी' उपन्यास और मोपासॉ की 'नेकलेस' कहानी की नकल है।

प० 'शिलीमुख' मे स्वतत्र चिन्तन की पर्याप्त क्षमता है। यह उनके प्रेमचन्द सबधी इन लेखो से स्पष्ट हो जाता है। पर प्रेमचन्द को वे एक आलोचक की निष्पक्षता से नही परख सके है। प० 'शिलीमुख' के प्रेमचन्द सबंधी इन लेखो को हिन्दी मे पक्षपातपूर्ण आलोचना का ज्वलत उदाहरण माना जा सकता है। प्रेमचन्द के प्रति एक पक्षपातपूर्ण धारणा बनाकर चलने के कारण 'शिलीमुख' की प्रेमचन्द की प्रत्येक बात मे ब्राह्मण—विद्वेष और

साम्प्रदायिकता की गध आती है। उनके अनुसार 'ब्राह्मणे को उपहास्य और कुत्सित' दिखाने के उद्देश्य से ही प्रेमचन्द मोपासॉ की 'नेकलेस'(**The Diamond Necklace**) कहानी की नायिका (**Madame Loise**) जेविररीत अपनी कहानी की नायिका पडितानी माया से हार के चोरी चले जाने की झूठ बुलवाया। मोपासॉ की कहानी मे इस जरा से परिवर्तन के द्वारा प्रेमचन्द ने एक ढेले से दो शिकार किये हैं– एक तो अपनी चोरी पर पर्दा डाल लिया और दूसरे ब्राह्मणी नायिका की झूठ धूर्तता को दिखाया है।[1] इतना ही नही, आलोचक का यह दृढ विश्वास है कि इसी कहानी मे नही बल्कि "प्रेमचन्दर्जी के प्रत्येक ग्रथ मे जहॉ कही ब्राह्मणो का जिक्र आया है वहॉ उन्हे उपहास्य और कुत्सित ही दिखाने की चेष्टा की गई हे।"[2] 'प्रेमचन्द की कला' शीर्षक लेख मे भी आलोचक ने प्रेमचन्द पर अभियोग लगाया है कि 'ब्राह्मणो के सुधार का प्रेमचन्दजी ने ऐसा ठेका लिया है कि एक 'सेवासदन' को छोडकर सर्वत्र ही ब्राह्मण निन्दनीय और उपहास्य ठहराये गये है और उनको जूते लगवाये गये है।[3] इस प्रकार प्रेमचन्द सम्बन्धी अपनी सभी आलोचनाओ मे किसी न किसी रूप मे प्रेमचन्द ने ब्राह्मण–विद्वेष और मुस्लिम–पक्षपात की चर्चा करने के उपरान्त अन्त मे प० 'शिलीमुख' फतवा देते हुए कहते है कि प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानियॉ ''भिन्न–भिन्न समाजो का कोई हित–साधन करने मे सफल नही हो सकी हे, हॉ साम्प्रदायिकता के भावो को बढाने मे भले ही उन्होने सहायता पहुॅचाई हो।"[4] प्रेमचन्द पर आलोचक का एक दूसरा मुख्य अभियोग यह है कि धनी या विलासी समाज की आलोचना करते हुए वे टालसटॉय की भॉति हृदय की उदारता का निर्वाह नही करते–उनमे एक प्रकार का कट्रपन पाया जाता है।[5] प० 'शिलीमुख' के अनुसार व्यक्ति और समाज जन्य भेदो के रहते हुए किसी सामान्य सूत्र से आबद्ध एक व्यापक मानवता की भावना तो प्रेमचन्द मे मिलती ही नही, भारतीय समाज की कोई सामान्य भावना भी उनमे दृष्टिगोचर नही होती। समाज के प्रेमचन्द ने दो–दो करके स्पष्ट भेद और वर्ग बना दिए है–ग्रामीण और नागरिक, शिक्षित ओर अशिक्षित, हिन्दू और मुसलमान, किसान और जमीदार, अधिकारी और प्रजा आदि। प्रेमचन्द समाज के इन द्वन्द्वो को मिलाने या उनमें सहानुभूति कराने का कोई प्रयत्न नही

---

[1] शिलीमुखी, प० 95–96 (प्रथम सस्करण 1951)
[2] शिलीमुखी पृ० 96
[3] शिलीमुखी पृ० 42
[4] शिलीमुखी पृ० 113
[5] शिलीमुखी, पृ० 104

करते, मानो एकमात्र सघर्ष के लिए ही उनकी सृष्टि हुई हो।[1] यह कहने की आवश्यमकता नही कि प्रेमचन्द जैसे सहज मानववादी साहित्यकार मे साम्प्रदायिक कट्रता और किसी जाति विशेष के प्रति पक्षपात अथवा विद्वेष का प्रसार देखना स्वय अपने दृष्टि–दोष का परिचय देना और हृदयस्थ सकीर्ण साम्प्रदायिक एव जातीय भावनाओं को ही उजागर करना है। सभवत आलोचक महोदय यह भूल जाते हैं कि वर्ग–सघर्ष या वर्गवाद तो वर्तमान समाज–व्यवस्था के मूल मे ही निहित है–वह प्रेमचन्द की सृष्टि नही है और न ही उनका अभीष्ट। यदि जरा गहराई से देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि वर्गवाद, साम्प्रदायिक विद्वेष और जातीय कट्रता के प्रचारक प्रेमचन्द नही बल्कि खुद वे आलोचक है जो उन पर इस तरह के आरोप लगाते है। प्रेमचन्द और साम्प्रदायिकता मे उतना ही अन्तर है जितना कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव मे। प्रेमचन्द का तो एक ही ऐस समाज का सगठन है जिसमे साम्प्रदायिकता, जातीयता, वर्ग–सघर्ष, सामाजिक भेदभाव, धार्मिक अत्याचार और आर्थिक शोषण के लिए कोई स्थान नही होगा। प्रेमचन्द के जीवन आर साहित्य मे हमे मानवता को विभिन्न वर्गो मे बॉटने का प्रयास नही किया। उसे सुन्दर स सुन्दरतर, मगल से मगलतर, पूर्ण से पूर्णतर और अभिन्न से अभिन्नतर भविष्य की ओरे ले जाने का सदेश मिलता है।

प० 'शिलीमुख' के अतिरिक्त कुछ और व्यक्तियो ने भी श्री ज्योतिप्रसाद 'निर्मल', श्री श्रीनाथसिह आदि) प्रेमचन्द पर यह अभियोग लगाया था कि वे साहित्य मे घृणा का प्रचार करते है – ब्राह्मणो के प्रति अब्राह्मण वर्ग की घृणा और जमीदारो के प्रति किसानो की घृणा। इस आरोप का उत्तर देते हुए दिसम्बर 33 के लेख मे प्रेमचन्द ने जीवन मे घृणा का स्थान तथा साहित्य और कला मे घृणा की उपयोगिता शीषर्क टिप्पणियो मे घोषणा की थी कि "पाखड, धूर्तता, अन्याय, बलात्कार ऐसी ही अन्य दुष्टप्रवृतियो के प्रति हमारे अन्दर जितनी ही प्रचण्ड घृणा हो, उतनी कल्याणकारी होगी।[2] हम समझते हैं कि प्रेमचन्द पर घृणा के प्रचार का आरोप लगाने वाले आलोचको को इससे अधिक स्पष्ट और रचनात्मक उत्तर नही दिया जा सकता। यह नही भूलना चाहिए कि प्रेमचन्द की इस तथाकथित घृणा के मूल मे उनका वह प्रेम है जो बहुसख्यक अब्राह्मणो और किसानो से उन्हे था। अर्थात् उनकी घृणा का स्वरूप मूलतः रचनात्मक था, सहारात्मक नही। यहॉ पर यह सकेत कर देना जरूरी हैं कि प० शिलामुख के आक्रोश का वास्तविक कारण यह है कि प्रेमचन्द जमीदारी

[1]शिलीमुखी पृ० 101
[2] उक्त टिप्पणियो के लिए देखिए –हस दिसम्बर 1933 पृ० 73 से 75

प्रथा को नष्ट करना तथा अधिकारियो से अधिकार छीनना चाहते हैं। "प्रेमचन्द यह नही सोचते हैं कि इससे और अधिक पुष्ट और वाछनीय अवस्था वह है जिसमे जमीदार और अधिकारी सब सुख के साथ एक दूसरे के सहायक बन कर रह सके।"[1] स्पष्ट है कि शिलीमुख जी को वर्तमान अर्थ और समाज–व्यवस्था पर प्रेमचन्द के निर्मम प्रहार कतई पसन्द नही है। समाज की वर्तमान ढॉचे मे किसी प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्तन की तो बात ही क्या, वे उस साधारण सुधार की आवश्यकता भी नही समझते। उनके अनुसार 'ससार न कभी एकदम बुरा हुआ है और न कभी एकदम अच्छा ही। और न होगा।'[2] जो आलोचक यह मानकर चले है कि "जितने सुधार की इस ससार मे आवश्यकता है वह सब हो गया तो हमारा भूस्वर्ग निर्जीव, निरूद्योग, आनन्दविहीन हो जाएगा।"[3] वह निश्चय प्रेमचन्द साहित्य की मूल आत्मा जिसे जैनेन्द्र जी 'प्रेमचन्द–तत्व' कहते है के प्रवेषण मे कृतकार्य नही हो सकता। प्रेमचन्द अपने जीवन या साहित्य मे कभी भी यह आत्म–प्रवचना स्वीकार नही कर सके कि जो कुछ है सब ठीक है, कही कोई खराबी नही, कही कोई कमी नही।

पं० 'शिलामुख' के प्रेमचन्द–सबधी लेखो को प्रेमचन्द के विचारो तथा उनकी प्रणाली का स्पष्ट सस्कर्ता मानते हुए 'शिलीमुखी' के सपादक प्रो० विजयेन्द्र स्नातक अपने सपादकीय वक्तव्य मे कहते है कि इन्ही लेखो के प्रभावस्वरूप प्रेमचन्द के बाद के लेखो मे गभीरता, विवेचनात्मकता और परिष्कृति आई और इन्ही के कारण वे आदर्शवाद से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की ओर झुके। विद्वान सपादक का मत है कि इन लेखो मे वर्गवाद के विरूद्ध उठाई आवाज को भी प्रेमचन्द ने अपने लेखो मे प्रकारातर से स्वीकार कर लिया हे। यही कारण है कि उनके बाद के उपन्यासो 'गबन' और 'गोदान' मे वर्गीय कट्रता का वह रूप नही मिलता जो पहले के उपन्यासो मे पाया जाता हे।[4] यह बिल्कुल स्पष्ट हे कि आलोचक 'शिलीमुख' के प्रेमचन्द सबधी लेखो का यह विराट् स्तवन शुद्धरूपेण प्रशसात्मक हे, तथ्यात्मक नही। पहली बात तो यह है कि प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासो, कहानियो और लेखो 'कर्मभूमि', 'गोदान', 'मगलसूत्र', 'दो–बहने', 'कफन', 'महाजनी सभ्यता' मे तथाकथित वर्गवाद या वर्ग–सघर्ष की भावना उनकी आरम्भिक रचनाओ की तुलना मे किसी भी रूप मे कम प्रखर नही है। प्रेमचन्द मे वर्ग–सघर्ष की चेतना कम होने के बजाय निरन्तर विकसित

---

[1] शिलामुखी, पृ० 103–4

[2] शिलीमुखी पृ० 105

[3] शिलीमुखी, पृ० 112

[4] शिलीमुखी, सपादकीय पृ० 6–7

तथा प्रखर से प्रखरतर होती गई है और उसका चरमोत्कर्ष उनकी बाद की रचनाओ मे देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के मानसिक विकास की इस मजिल को झुठलाने का प्रयास सफल नही हो सकता। दूसरी बात यह है कि प्रेमचन्द के साहित्यिक व्यक्तित्व के विकास के साथ स्वभावत उनके लेखो और अन्य रचनाओ मे क्रमश आने वाली प्रौढता और विवेचनात्मकता तथा स्थूल आदर्शवाद से आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद की ओर उनकी क्रमिक विकास–यात्रा का श्रेय प० रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' अथवा दूसरे किसी आलोचक के दो–चार फुटकर लेखो को नही दिया जा सकता। ऐसा करना अवैज्ञानिक ही नही असाहित्यिक भी होगा।

(छ) कालिदास कपूर : 'साहित्यिक समीक्षा'

श्री कपूर के इस सग्रह मे प्रेमचन्द के 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रगभूमि' उपन्यासो पर तीन लेख है जो मामूली परिवर्तित रूप मे प्रेमचन्द कृतिया और कला सकलन मे भी प्रकाशित हो चुके है। इन लेखो को आरम्भिक प्रेमचन्द आलोचना का नमूना माना जा सकता हे।

(ज) विद्यानिवास मिश्र प्रेमचन्द कृत 'निर्मला' उपन्यास की भूमिका

लगभग बीस–बाइस पृष्ठो मे मिश्रजी ने न केवल प्रेमचन्द के 'निर्मला' उपन्यास परिचय देने का प्रयास किया है बल्कि उनके जीवन और समूचे कृतित्व को भी एक समुचित चित्र देने की कोशिश की है। विद्यानिवास मिश्र एक अच्छे निबधकार हैं। प्रस्तुत भूमिका का प्रेमचन्द जीवनी वाला आरम्भिक भाग, जिसमे लेखक के निबधकार को अभिव्यक्ति का उचित अवसर मिला है, अधिक सशक्त बन पडा है। पर उसका आलोचना वाला भाग एक 'स्केची' बनकर रह गया है।

कलम का सिपाही (1962)

प्रेमचद के जीवन और साहित्य को समझने की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। सर्जनात्मक रूप से लिखी गई प्रेमचद की यह जीवन गाथा उनके जीवन सघर्षो और वेचारिक दृष्टि को आलोकित करते हुए उनकी साहित्य–प्रक्रिया और तत्कालीन साहित्यिक–सामाजिक–राजनीतिक हलचलो पर भरपूर प्रकाश डालती है। इसके लेखक अमृत राय ने इसकी भूमिका मे लिखा है कि जब उन्होने प्रेमचद पर किताब लिखनी शुरू की तो कितनी बार हाथ–पैर फूल गए। समझ मे न आता था कि इसमे क्या लिखू, किताब आगे बढे तो कैसे? लेकिन पीडा और उद्वेग मे से अचानक एक गुर हाथ लगा– 'इस व्यक्ति के जीवन को उसके देश और समाज के जीवन से जोड कर तो देखो, तब सारे दरवाजे जेसे यकायक खुल गए और इस अतिसामान्य जीवन को नया आशय, एक नई अर्थवत्ता मिल गई'। प्रेमचद अपने समय और समाज से सम्बद्ध लेखक थे। उनके साहित्य मे उनके युग की साधारण–सी दीख पडने वाली समस्याएँ अपने पेचीदा रूप मे अभिव्यक्त हुई है। इसी कारण प्रेमचद के साहित्य की समझ भारतीय समाज की बनावट और उसकी समस्याओ की समझ पर निर्भर है। इस दृष्टि से प्रेमचद आलोचको की समझ, सूझ–बूझ ओर क्षमता की कसौटी बने हुए हैं। इसीलिए कहा गया है कि प्रेमचद के साहित्य की परख समालोचक के राजनीतिक सूझ–बूझ और उसके वैज्ञानिक दृष्टिकोण की परख है।

प्रेमचद का हिदुस्तानी से मतलब केवल सरल उर्दू से ह जिसे आसानी से हिन्दू और मुसलमान दोनो समझ सके। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिद' की भाषा नीति की तरह, जिसका उस समय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने विरोध किया था। प्रमचद का यह वक्तव्य उनके मतव्य को प्रकट करता है·––

'भाषा के विकास मे हमारी सस्कृति की छाप होती हं और जहॉ सस्कृति मे भेद होगा वहॉ भाषा मे भेद होना स्वाभाविक है। जिस भाषा का हम और आप व्यवहार कर रहे हे वह दिल्ली प्रान्त की भाषा है। .. मुसलमानो ने दिल्ली प्रान्त की इस बोली को, जिसको उस वक्त भाषा का पद न मिला था, व्यवहार मे लाकर उसे दरबार की भाषा बना दिया और दिल्ली के उमरा और सामत जिन प्रान्तों मे गए, हिदी भाषा को साथ लेते गए। उन्ही के साथ वह दक्खिन मे पहुँची और उसका बचपन दक्खिन में ही गुजरा...... आपको

शायद मालूम होगा कि हिदी की सबसे पहली रचना खुसरो ने की ह्वहै जो मुगलो से भी पहले खिलजी राज्य काल मे हुए।' (–'कलम का सिपाही', पृ० 588)। यह हिदी की कीमत पर उर्दू की वकालत है। प्रेमचद की रचनाओ के उर्दू से हिदी मे अनुवाद होने के अनेक आतरिक प्रमाण भी है। डॉ०गगाप्रसाद विमल ने भी स्वीकार किया है कि प्रेमचद का भाषा का ताना–बाना और मिजाज हिदी का न होकर उर्दू का है ('प्रेमचद',–गगाप्रसाद विमल, पृ० 63)।

नई कहानी : सदर्भ और प्रकृति (सन् 1965)

इस पुस्तक के सपादक श्री देवीशकर अवस्थी हैं। उन्होने कई विद्वानो के लेखो का सुदर सकलन किया है। श्री देवीशकर अवस्थी को 'नई कहानी सदर्भ और प्रकृति' (सन् 1965) मे मार्क्सवादी आलोचको के प्रेमचद सबधी मूल्याकन से कई तरह की शिकायते है। उनका कहना है कि इसमे केवल वर्ग सघर्ष के नजरिये से देखा गया है। डॉ० रामविलास शर्मा की पुस्तक 'प्रेमचद और उनका युग' का हवाला देते हुए देवीशकर अवस्थी कहते है कि वे (रामविलास शर्मा) एक–एक समस्या और समाधान को कच्ची–पक्की रोकडो मे खतियाते चलते है। पर प्रेमचद के एक भी उपन्यास (कहानियो की ओर तो उनका ध्यान गया ही नही) के रूपबध का विश्लेषण करते हुए उसकी आतरिक कलात्मक सत्ता, एकन्विति आदि के विश्लेषण की कोई चेष्टा को अपेक्षाकृत साधारण से उपन्यासो से भी छॉटकर अलग किया जा सकता है – प्रेमचद की महत्त इस सभी समस्याओ के लिए है या इन्ही को एक कलादृष्टि मे पिरोने के लिए? ('नई कहानी सदर्भ और प्रकृति', पृ० 13)।

नई कहानी के चर्चित आलोचक श्री अवस्थी प्रेमचद सबधी मार्क्सवादी आलोचना के अनतर्वस्तुवादी आग्रह को समीक्षा की विकृति मानते है। इस पुस्तक मे सग्रहित कुछ अन्य आलोचको ने प्रेमचद के मूल्याकन पर प्रश्नचिह्न लगाया, कुछ ने प्रेमचद सबधी मार्क्सवादी समीक्षा को अपर्याप्त माना, तो कुछ ने प्रेमचद की परपरा पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया। यद्यपि इस पुस्तक मे सदर्भ नई कहानी का है पर नई कहानी के बहाने प्रेमचद के साहित्य पर भी चर्चा हुई है और इसका प्रेमचद सबधी मूल्यांकन से गहरा सबध है। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'कहानी का माध्यम और आधुनिक भावबोध' नामक लेख मे लिखा है :– 'हृदय

परिवर्तन या सयोगो की कथा दुनिया मे सूक्ष्म मानवीय चरित्र की प्राय पूर्व निश्चित और स्थिर मानो पर स्थूल यथार्थवादी व्याख्या होती थी– मनुष्य देवता है, राक्षस है या देवता होने के उपक्रम मे राक्षस है। दो अतियो से बचने के लिए आदर्शोन्मुख यथार्थ के मध्यम मार्ग को भी अविष्कृत किया गया। पर इन सभी दृष्टियो मे सृजनात्मक सोपान पहले से स्थिर कर लिए गये थे . यह मानो जटिलता को जटिल स्तरो पर समझने के लिए न जाकर, जटिलता को सरल बनाकर समझने की कोशिश है और इस समझौते में यथार्थ की अच्छी पकड सभव नही।'

श्री निर्मल वर्मा ने लिखा – 'बीसवी शताब्दी मे साहित्य की जो विधा सबसे पहले अपने अतिम छोर पर आकर खत्म हो गई वह कहानी थी। चेखव की कहानी कहानी का अत है। आज प्रश्न चेखव की परम्परा को (इस अर्थ मे कि प्रेमचद सिर्फ एक छाया है – वह भी अप्रसागिक) आगे बढाने का नही है। वह अभी चेखव से भी बहुत पीछे है। जो सही मायने मे यथार्थवादी है उसके लिए यथार्थ हमेशा झाडी मे छुपा रहता है।' (उपर्युक्त, नई कहानी लेखक के बही खाते से' शीर्षक लेख)। प्रस्तुत सकलन मे डॉ० नामवर सिह और श्री राजेन्द्र यादव के लेख भी उल्लेखनीय है। जो प्रकारान्तर से नई कहानी के बहाने प्रेमचद के कथा ससार से सार्थक मुठभेड करते है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि प्रेमचद के जीवन को आधार बनाकर सबसे अधिक जीवनियाँ लिखी गई है। प्रेमचद की पत्नी शिवरानी देवी ने प्रेमचद घर मे' (1956 ई०) मे प्रेमचद के बचपन से लेकर अतिम समय तक के सघर्षमय जीवन को पूरी ईमानदारी एव सच्चाई के साथ अकित किया है। लेखिका ने उन प्रसगो को भी छिपाया नही है जिनसे प्रेमचद के जीवन की कोई दुर्बलता प्रकट होती हो। इसके साथ ही उन्होने पति से मतभेद के बिदुओ तथा विवाद को भी बिना किसी हिचक के व्यक्त कर दिया है। अमृतराय प्रेमचद विरोधी समकालीन आलोचको से सम्बद्ध प्रकरणो मे तटस्थ नही रह पाये हैं। अपनी सीमाओ के बावजूद यह कृति एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसको पढते समय उपन्यास जैसा आनद मिलता है और प्रेमचद का बहुमुखी सघर्षशील जीवन साकार हो उठता है। प्रेमचद के जीवन पर एक अन्य महत्वपूर्ण रचना मदनगोपाल कृत 'कलम का मजदूर' (1965 ई०) है जिसमे प्रेमचद की तेजस्वी छवि उभरती है। प्रेमचद के जीवन से सम्बद्ध सभी प्रकार की सामग्री की निष्ठापूर्वक खोज और तटस्थतापूर्वक जीवनी–लेखन के कार्य का श्रेय डॉ० कमलकिशोर गोयनका का है जिन्होने 'प्रेमचद विश्वकोश भाग–1 (1981 ई०) में प्रेमचद का प्रामाणिक

जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। लेकिन 'कलम का सिपाही' जहॉ एक सर्जनात्मक उपलब्धि है वहॉ यह पुस्तक सूचनात्मक और विवरणो की एक ढेरी बनकर रह गई है।

आस्था के चरण (1968 ई०)

(अ) विचार और अनुभूति तथा (आ) विचार और विवेचन

प्रेमचन्द पर डॉ० नगेन्द्र के दो लेख है 'वाणी के न्याय मन्दिर मे और प्रेमचन्द आस्था के चरण। ये दोनो लेख आस्था के चरण (1968) मे भी सग्रहीत है। दूसरा लेख 'प्रेमचन्द चिन्तन और कला' तथा प्रेमचन्द और गोर्की' सग्रहो मे भी छप चुका है। दोनो ही मे डॉ० नगेन्द्र की मूल स्थापना यह है कि प्रेमचन्द दूसरी श्रेणी के कलाकार है, प्रथम श्रेणी के नही। डॉ०नगेन्द्र के तर्को का (पैटर्न) लगभग वही है जो साहित्य अथवा लेखो मे शाश्वत ओर चिरन्तम सत्य के चित्रण के पक्षधर आलोचको तथा विचारको का सामान्यत होता है। जिन कारणो से डॅा० नगेन्द्र का मन प्रेमचन्द को प्रथम श्रेणी का सृष्टा–कलाकार मानने को प्रस्तुत नही है, वे सक्षेप मे इस प्रकार है – प्रेमचन्द साहित्य जीवन की व्यावहारिक समस्याओ का प्राधान्य है– अर्न्तजगत् की गहनतम् समस्याओ को प्रेमचन्द की व्यावहारिक दृष्टि ने यथेष्ट महत्व नही दिया है। अर्थात् प्रेमचन्द के साहित्य मे बाह्य जगत के द्वन्द्वो और भावनाओ का ही वर्णन है, अन्तर्जगत के द्वन्द्वो का नही। दूसरी यह कि प्रेमचन्द ने अपने युग की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक विषमता को जितना महत्व दिया है उतना युग की आध्यात्मिक विषमताओ को नही। बात यह है कि प्रेमचन्द मे सूक्ष्म चिन्तन और विश्लेषण–शक्ति का अभाव है। इनका विचार क्षेत्र विवेक स आगे नही बढता, चितन और गम्भीर दर्शन उसकी परिधि मे नही आते। इस सबका परिणाम डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार यह हुआ है कि प्रेमचन्द की विचार शक्ति सामयिक प्रश्नो तक ही सीमित रही है, चिरन्तन प्रश्नो तक नही पहुच सकी है।[1]

वाणी के न्याय–मन्दिर मे भी डॉ० नगेन्द्र ने अपनी इसी मान्यता को रोचक तथा नाटकीय शैली मे प्रस्तुत किया है।

---

[1] विचार आर विवेचन, पृ० 99–100 (द्वितीय सस्करण, 1952)

दोनो लेखो का आरम्भ दो पृथक स्थानो व भिन्न रूपो मे होता है पर अन्त पहुचते–पहुचते उनका स्वर घुल–मिलकर एकाकार हो जाता हे। तुलनात्मक दृष्टि से दोनो मे से 'विचार और विवेचन' वाला लेख ही अधिक सन्तुलित ओर महत्वपूर्ण है।

रीतिकाल के समर्थक आलोचक डॉ० नगेन्द्र प्रेमचन्द मे वर्ग–चेतना का अभाव और प्रेमचन्द साहित्य मे वर्ग–सघर्ष का निषेध मानते हुए लिखते है कि उनकी चेतना मानव के सभी भेदो से मुक्त थी और पूँजीवादियो और जमीदारो के प्रति भी वे निर्मम नही थे। सामाजिक और आर्थिक आवरण के नीचे आखिर पूँजीवादी भी तो मनुष्य हैं, जो उसी तरह दुख–दर्द के शिकार है, जिस तरह मजदूर।' प्रेमचन्द की व्यापक सहानुभूति को उनका 'सबसे प्रधान गुण' मानते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि 'शोषक और शोषित कोई भी उनकी सहानुभूति से वचित नही था।' उनके मतानुसार सघर्ष करना जीवन का ध्येय है, परन्तु वर्ग–सघर्ष को मानव के प्रति मानव के सघर्ष को एक सर्वग्रासी सत्य मानकर उसको आकर्षक रगो मे चित्रित करना और फिर सम्पूर्ण जीवन का उसी रग मे रगकर देखना घातक अतिवाद है, जिसको प्रेमचन्द ने सदा ही सतर्कता से बचाया है।' वे प्रेमचन्द की इस सतर्कता के प्रशसक है। डॉ० नगेन्द्र प्रेमचन्द पर 'दक्षिणपथी सुधारवाद' का सबसे फूहड ओर हास्यास्पद आरोप लगाते हुए लिखते है कि 'जनवाद के दो रूप हैं एक दक्षिण पक्ष का जनवाद, जो जागरणसुधारमूलक है, दूसरा वामपक्ष का जनवाद, जो क्रान्तिमूलक हे। अपने युग–धर्म के अनुकूल, युगपुरूष गाधी के प्रभाव मे, प्रेमचन्द ने जागरण–सुधारमूलक जनवाद को ही ग्रहण किया।' प्रेमचन्द की 'सीमाओ' का उल्लख करते हुए वे लिखते है कि प्रेमचन्द नैतिक मर्यादाओ की सीमाओ का अतिक्रमण कर मानवता के उस शुद्ध रूप का जो सत–असत् से परे है– शास्त्रीय शब्दावली मे मानव की उस शुद्ध–बुद्ध आत्मा का जो अपने सहज रूप मे गुणातीत है, साक्षात्कार करने मे असमर्थ है, आर आत्मा की पीडा, जो जीवन ओर साहित्य मे गभीर रस की सृष्टि करती है, उनके साहित्य की-मूल प्रेरणा कभी नही बन पायी।' डॉ० नगेन्द्र को यह शिकायत है कि प्रेमचन्द अपनी 'बहिर्मुखी' और 'सामाजिक जीवन पर ही केन्द्रित' दृष्टि तथा नीति और विवेक के प्राधान्य के कारण न तो 'प्राण–चेतना के आर–पार देख पाते है और न ही 'जीवन के अतल को स्पर्श कर पाते है।[1] फलत डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार प्रेमचन्द में विवेक की कमी है और उनकी साहित्य–रचना प्रथम श्रेणी की नही बल्कि दूसरे दर्जे की है।

---

[1] प्रेमचन्द ओर उनका युग राम विलास शर्मा, 41

प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान (1973)

कमलकिशोर गोयनका के इस शोध–प्रबन्ध मे भारतीय सस्कृति के आधार पर प्रेमचद के उपन्यासो की नई व्याख्या का प्रयत्न है। गोयनका के अनुसार 'प्रेमाश्रम' मे पाश्चात्य सस्कृति और भारतीय सस्कृति, पाश्चात्य शिक्षा और भारतीय शिक्षा, भौतिकवाद ओर अध्यात्मवाद का सघर्ष चित्रित किया गया है। इस तरह क निष्कर्षो से 'प्रेमाश्रम' मे प्रस्तुत किसान–जमीन्दार का सघर्ष ऑखो से ओझल हो जाता है। गोयनका ने लिखा है भारतीय सभ्यता आत्मा और आचार की सभ्यता है और उसमे नैतिक, आध्यात्मिक तथा हार्दिक गुणो की प्रधानता है। इसके विपरीत भौतिकता एव स्वार्थपरता पश्चिमी सभ्यता की आत्मा है जिसमें स्वार्थ, आडम्बर, शारीरिक बनाव–श्रृगार व्यवसाय, मानवीय गुणो की मनमानी व्याख्या आदि अनेक दुर्तलताएँ है। इस तरह गोयनका का मत है कि 'प्रेमाश्रम' अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के सघर्ष की कथा है। 'ज्ञानशकर पाश्चात्य जीवन मूल्यो की उपज है और प्रेमशकर भारतीय जीवन मूल्यो की।' (प्रेमचद के उपन्यासो का शिल्प – विधान, पृ० 182)। पाश्चात्य शिक्षा का प्रतिनिधि है ज्ञानशकर। अँग्रेजी शिक्षा–दीक्षा के कारण भारतीय जीवन मे बिखराव और परिर्वतन आ रहा ह। इन्ही सभावित परिर्वतनो को दिखाने के लिए प्रेमचद ने ज्ञानशकर की सृष्टि की है। इस तरह के विवेचनो का विरोध करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने ठीक लिखा है : 'प्रेमाश्रम मे विशुद्ध भारतीय शिक्षा – पद्धति का प्रतिनिधि कोई है ही नही, इसलिए उसमे भारतीय शिक्षा और पाश्चात्य शिक्षा की टक्कर के चित्रण की कल्पना करना व्यर्थ है।' (प्रेमचद और उनका युग, पृ० 191)। वस्तुत. सामतवाद के विरुद्ध क्रातिकारी अभियान चलाकर स्वाधीनता आदोलन को सफलता की मजिल तक पहुँचाया जा सकता था। गॉधी जी राजाओ आर जमीन्दारो को ट्रस्टी बनाकर उनसे समझौते का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। प्रेमचद की क्रातिकारियो से गहरी सहानुभूति थी जो समझौते का पुराना रास्ता छोडकर किसानो और मजदूरो के सगठन के आधार पर क्राति के नए रास्ते पर बढ रहे थे। क्राति का यह प्रभाव बलराज के चरित्र मे अभिव्यक्त हुआ है। गोयनका की यह राय सही है कि 'बलराज बोल्शेविक क्राति की उपज है, जो जमीन्दारो और सरकारी हाकिमो के अत्याचारों और शोषणो का समान रूप से विरोध करता है।' (उपर्युक्त, पृ० 182)। बलराज जिस उद्देश्य को यथार्थ जगत मे प्राप्त करना चाहता है, उसे

प्रेमशकर कल्पनालोक मे पाने की कोशिश करते हैं। इसको गोयनका ने गॉधीवाद और मार्क्सवाद का विरोध बना दिया है ओर उनका निष्कर्ष है कि 'पश्चिमी जीवन–दृष्टि, सस्कार और मूल्यो की अनिष्टकारिता और भारतीय जीवन–दृष्टि, सस्कार और मूल्यो की श्रेष्ठता दिखाना ही लेखक का उद्देश्य रहा है।' (उपर्युक्त, पृ० 218)। वस्तुतः 'प्रेमाश्रम' गॉधीवाद की विफलता चित्रित करने वाला उपन्यास है। यहॉ डॉ० रामविलास शर्मा का आकलन ज्यादा सटीक है –

'प्रेमाश्रम मे अध्यात्मवाद और भौतिकवाद की टक्कर नही है, भारतीय शिक्षा और पाश्चात्य शिक्षा की टक्कर नही है। यहॉ किसानो की टक्कर अॅग्रेजी राज से है, उसके अत्याचारी हाकिमो तथा उनके भरोसे किसानो को सतानेवाले जमीन्दारो से है।' (प्रेमचद और उनका युग, पृ० 197)।

'प्रेमाश्रम' जमीन्दार–किसान सघर्ष की कथा है, उसमे किसानो की दयनीयता और शोषण से भरी कहानी को प्रधानता दी गई है। साथ ही इस उपन्यास मे पुराने सस्कारो, धार्मिक रूढियो और अधविश्वासो के विरूद्ध अनेक सामाजिक स्तरो पर स्त्रियो और पुरुषो के सघर्ष को भी चित्रित किया गया हे।

अपनी दूसरी पुस्तक 'प्रेमचद अध्ययन की दिशाएँ' (1981) मे डॉ० गोयनका 'गोदान' पर विचार करते हुए कहते है कि 'होरी की मौत न तो हीरोइक है, न घनीभूत त्रासदी की अनुभूति दे पाती है। वह जिस शोषण और विषमता के चक्र मे पिसता रहा हे ओर जीवित रहते हुए धीरे–धीरे रिसता रहा है, यदि वह उन परिस्थितियो मे सघर्ष करते हुए मरता तब उसकी मौत उसके जीवन चरित्र को एक नये ही रग मे रग देती और उसकी मौत सूरदास के समान हीरोइक मौत बन जाती। इस स्थिति के बावजूद प्रेमचद ने होरी की मौत को भी सूरदास के समान गौरवान्वित करने की चेष्टा की है।' (पृ० 123–124)। गोयनका का विश्लेषण अपने विचारो के चौखटे मे प्रेमचद की रचनाओ को बॉधकर करता हैं जिससे निष्कर्ष प्रभावित होते है। प्रेमचद की रचनाओ की समाजवादी परिणति को वे अस्तित्ववादी बना डालते है। गोयनका के निष्कर्ष विवादास्पद है।

प्रेमचंद की उपन्यास यात्रा : नवमूल्याकन (1978)

डॉ० शैलेश जैदी का शोध–प्रबध एक तरह से कमलकिशोर गोयनका के विचारो से प्रभावित है। विवादास्पद निष्कर्ष इस पुस्तक की मुख्य विशेषता है। इसमे गोयनका की आग्रहपूर्ण दृष्टि का उल्लेख है। डॉ० जैदी के अनुसार 'प्रेमाश्रम' को कृषक जीवन का महाकाव्य कहना उसके फलक को सकुचित करना है। इस उपन्यास की मूलकथा किसान–जमीन्दार सघर्ष को लेकर नही रची गई क्योकि सघर्ष सभी जमीन्दारो के विरुद्ध नही है (उपर्युक्त, पृ० 165)। 'प्रेमाश्रम' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो जमीन्दार और कृषक वर्ग के मध्य होने वाले हिमालयी सघर्ष मे अपना स्थान बनाने की इच्छा रखता है। जेदी का निष्कर्ष है – 'प्रेमाश्रम मे भौतिकता पर आध्यात्मिकता की विजय स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है' (उपर्युक्त, पृ० 190)। इसी तरह 'गोदान' का विश्लेषण करते हुए जैदी कहते है – 'गोदन के लेखनकाल तक प्रेमाश्रम की दृष्टि मे आमूल परिवर्तन हो चुका था।' फिर अध्यात्म से समाजवाद तक की यात्रा अस्तित्ववाद नक जाकर सम्पन्न होती हैं। मोहभग, जीवन की व्यर्थता का अहसास, स्वय डॉ० शैलेश जैदी के शब्द है –

'उसके (होरी) के समक्ष अस्तित्व और मृत्यु मे से किसी एक को चुन लेने की स्वतत्रता है। होरी अस्तित्व को चुनता है इसलिए कर्म मे प्रवृत्त रहते हुए भी परतत्रता को झेलता है। अल्बर्ट थामू की दृष्टि मे मनुष्य के अस्तित्व की दुखद अर्थहीनता इसमे नही ह कि वह मृत्यु के समक्ष डटा रहता है, बल्कि इसमे है कि वह दुर्व्यवस्था, तर्कशून्यता एव अन्याय के मध्य जीता है और सब कुछ समझते हुए भी उससे निकलने मे स्वय को असमर्थ पाता है। गोदान का होरी कामू की पीढी का ही एक व्यक्ति ह जो यह जानती है कि ससार को बदल सकना उसके लिए सभव नही है।' (प्रेमचद की उपन्यास यात्रा नवमूल्याकन, पृ० 397)

समाजवादी यथार्थवाद की यह अस्तित्ववादी परिणति स्वय प्रेमचद के लिए भी अकल्पनीय रही होगी। इस तरह से जैदी प्रेमचंद को राष्ट्रीयता की जद से मुक्त करके अन्तर्राष्ट्रीय बना देते है स्वयं उनका कथन है : 'प्रेमचद ने रूसी उपन्यासकारों की भॉति अन्तर्राष्ट्रीयता और मानवतावाद की मनोवेदना को नैतिक सिद्धातो, विचारो और समाजवादी दृष्टिकोण के साथ जन्म लेने वाले पात्रो के माध्यम से प्रेमाश्रम में प्रत्यार्पित किया है, और

जीवन के उन आयामो के साथ उन्हे जोड दिया है जिनका सार्वभौमिक महत्त्व है। (उपर्युक्त, पृ० 189)। डॉ० जैदी ने सतही तुलनाएँ की है। कही रूसी, कही पश्चिमी लेखको का प्रभाव दिखाया जैसे कर्मभूमि मे टालस्टॉय के 'वार एण्ड पीस' से प्रेरणा ग्रहण की है, गोदान मे 'अन्ना कैरेनिना' से। रगभूमि मे साइलस मार्नर का आशिक प्रभाव देखा जा सकता है। निर्मला मे कायस्थो के नैतिक पतन का प्रलेख प्रस्तुत किया हे। फिर इस तुलना का स्वय खडन भी किया है –

'प्रेमचद की तुलना विश्व के प्रसिद्ध उपन्यासकारो टाल्सटॉय, गोर्की, शरतचन्द्र, ताराशकर, डिकेन्स, थैकरे आदि से करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु इस तुलना के सॉचे अपने मे दोषपूर्ण है। कारण यह है कि प्रेमचद ने हिदी उपन्यास को अलग से एक क्षितिज दिया है और यह क्षितिज विशुद्ध भारतीय रगो और रेखाओ के सम्मिश्रण से जीवन्त दिखाई देता है।' (उपर्युक्त, पृ० 499–500)।

प्रेमचद का प्रामाणिक जीवन प्रस्तुत करने के सिलसिले मे डॉ० जैदी ने प्रेमचद के व्यक्तिगत जीवन मे ताक–झॉक की है और व्यक्तिगत जीवन की बखिया उधेडी है। गोयनका और जैदी की बखियाउधेड आलोचनाओ का सूत्र प्रमचद के जीवन काल मे चले कीचड उछाल अभियानो से जुडता है जिससे साहित्य क्षत्र मे केवल गदगी फैलती है। व्यक्ति प्रेमचद के बारे मे गोयनका और जैदी के सनसनीखज विवरणो का एकमात्र उद्देश्य प्रेमचद के साहित्यिक कद को छोटा करना है।

उत्तरार्द्ध – प्रेमचद अक (अप्रैल 1980)

सव्यसाची के सम्पादन मे निकला यह प्रेमचद विशेषाक कई दृष्टियो से उल्लेखनीय हे। इसका महत्त्व इससे भी बढ जाता है कि इससे पूर्वाद्ध म 'दस्तावेज' शीर्षक के अन्तर्गत प्रेमचन्द के विभिनन अवसरो पर लिखे लेखो को सकलित किया गया है जो प्रेमचद के बारे मे एक समझ बनाने मे पाठक की सहायता करते हैं। प्रेमचद की चितन – यात्रा के साथ गुजरते हुए पाठक प्रेमचद के विचारो का साझीदार बनता हे तथा उस रचना सघर्ष का अनुभव करता है जो प्रेमचद उस दरम्यान कर रहे थे। इस दृष्टि से 'हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य', 'साम्प्रदायिकता और सस्कृति', 'जीवन और साहित्य मे घृणा का स्थान',

'साहित्य का उद्देश्य', 'पुराना जमाना – नया जमाना' और 'महाजनी सभ्यता' जैसे लेखो से प्रेमचद की रचना – प्रक्रिया और विचार दृष्टि पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। दूसरे खड 'पहचान और परख' मे डॉ० कुँवरपाल सिह, शिवकुमार मिश्र और चन्द्रभूषण तिवारी के विचारोत्तेजक लेख हैं जो प्रेमचद का मूल्याकन जनवादी दृष्टि से करते है। सुधीश पचौरी ने आधुनिक सवेदना की दृष्टि से और नमिता सिह ने प्रेमचद के भाषा सबधी विचारो का महत्त्व प्रकट किया है।

चन्द्रभूषण तिवारी का लबा निबध 'प्रेमचद की यथार्थवादी परम्परा और समकालीन कथा साहित्य' बडी बारीकी से प्रेमचद के रचना ससार का विश्लेषण करता है। इसके लिए उन्होने नलिन विलोचन शर्मा, इन्द्रनाथ मदान और चन्द्रबली सिह की आलोचनाओ का सदर्भ उठाया है और उसकी छानबीन की है। नलिन विलोचन शर्मा('हिन्दी उपन्यास : विशेषत: प्रेमचद') ने प्रेमचद – साहित्य के ढॉचे की बडी दाद दी है। इसे ही वे प्रेमचद की देन मानते है और इसे साहित्य के नवीनतम प्रयोगो मे मानते है और इसके लिए पश्चिम की कई आधुनिक शब्दावलियो का वे प्रयोग करते है। चन्द्रबली सिह ने बडी गभीरता के साथ इस तथ्य पर विचार किया है कि प्रेमचद के शुरु का मध्यवर्गीय दृष्टिकोण कैसे विकसित और रूपान्तरित होता गया है। इस तरह से हृदय परिवर्तन का आदर्श का सुधारवाद का वह सूत्र, जिसे प्रेमचद ने काफी मजबूती से पकड रखा था – बडी तेजी से खिसकता प्रतीत होता है और जीवन के अत मे अपने सपूर्ण अनुभवो के निष्कर्ष के रूप मे मानो प्रेमचद को यह स्वीकार करना पडता है कि 'आदर्श से काम नही चलगा'। यह प्रेमचद की वैचारिक परिणति उनकी रचना – प्रक्रिया के विश्लेषण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने आधुनिकता – बोध पर काफी विस्तार से काम किया है। बडे परिश्रम से उसके नये–पुराने सूत्रो को एकत्र किया है आर इस क्रम मे उन्होने कुछ नई उद्भावनाएँ भी की है, जैसे कि हिदी कथा – साहित्य मे आधुनिकता – बोध की शुरुआत, उपन्यास और कहानी दोनो मे प्रेमचद के आखिरी दौर की रचनाओ से हुई है, उपन्यास मे 'गोदान' से और कहानी मे 'पूस की रात' से। इसके लिए उनके पास एक ही तर्क है कि प्रेमचद ने इनके अत को खुला छोड दिया है। वैचारिकता या आदर्श और कल्पना का कोई वैसा आरोपण नही है जो उनकी आरभिक रचनाओं मे दिखता है। वस्तुतः यह आधुनिकता – बोध रचनाओ की राह से आया है जो जीवन–वास्तव के प्रति प्रेमचंद के बदले हुए रूख

या उनके परिवर्तित निष्कर्ष का है। यहाँ तक आते – आते आदर्शवाद या सुधारवाद बहुत छँट जाता है। चद्रभूषण तिवारी का यह निष्कर्ष उल्लेखनीय है –

'इतना तो स्पष्ट है कि परपरा स्वय मे कोई जड वस्तु अथवा अविचल स्थिति नही हे, वैसी कोई परम्परा प्रेमचद की स्वय स्वीार नही है। किसानो के प्रति पूरी हमदर्दी रखते हुए भी उनके शोषण तथा दमन के प्रसगो के खिलाफ उनके सघर्ष मे पूरी तरह उनका साथ देते हुए भी, प्रेमचद ने उनके भीतर के परपरागत सामती सस्कारो तथा उनसे उत्पन्न बहुत सारी मिथ्या धारणाओ की स्वय आलोचना की है, जो जीवन यथार्थ के सूत्रो को ढँकने मे मदद करती है। 'प्रेमाश्रम' से लेकर 'कर्मभूमि', 'गोदान' आदि सभी कृतियो मे उनकी यह आलोचना दिखाई देती है। एक बात और है – वे स्वय अपनी परपरा से भी सघर्ष करते है, अपनी पहले की मान्यताओ से, अपने प्रारभिक दृष्टिकोण से, सुधारवाद से, अपने आदर्श से।' (उत्तरार्द्ध, प्रेमचद अक, पृ० 62)

'हिन्दुस्तानी' – प्रेमचद स्मृति अक (जुलाई सन् 1980)

प्रेमचद शताब्दी वर्ष के अवसर पर हिन्दुस्तानी एकेडमी से निकलने वाली पत्रिका 'हिदुस्तानी' का प्रेमचद स्मृति अक जुलाई 1980 ई० मे प्रकाशित हुआ। इसमे प्रकाशित लेखो मे जिन विद्वानो के आलेख उल्लेखनीय हे उनके नाम हे – डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० जाफर रजा, विश्वम्भर 'मानव–, नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, उदय नारायण तिवारी ओर उर्मिलेश। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का आलेख सक्षिप्त कितु सारगर्भित है। डॉ० चतुर्वेदी के अनुसार, प्रेमचद मन को छूते है और झकझोरते भी है। हिदी क्षेत्र का समाज उनकी कृतियो मे पुनर्सृजित हुआ है। हिदी क्षेत्र के पाठक का मानस प्रेमचद की अनुभव बहुत रचनाओ से समृद्ध हुआ है। डॉ० चतुर्वेदी के अनुसार पाठक के लिए सरल प्रेमचद अपनी इसी अनुभव बहुलता के कारण आलोचक के लिए मुश्किल बनते है। डॉ० चतुर्वेदी का मत है कि गॉधी जी कि किफायतसारी का आदर्श प्रेमचद अपनी रचना – प्रक्रिया मे अपनाते है और भाषा के सत का सम्पूर्णत दोहन कर लेते है। फलत· आलोचक के लिए ऐसी भाषा छवियॉ या सकेत शेष नही बचते जिनके सहारे फिर वह उस रचना में आगे अर्थ का सवर्द्धन कर सके। विश्वम्भर 'मानव' ने प्रेमचद के प्रति हिदी आलोचको द्वारा किये गये अन्याय का प्रश्न उठाया

है। विशेष रूप से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी और नगेन्द्र के प्रेमचद सबधी मतो की आलोचना की है और इन आलोचको के पूर्वाग्रह को उजागर किया है। 'मानव' जी के अनुसार प्रेमचद ने एक ओर सामाजिक कुरीतियो और कुप्रथाओ, आर्थिक विषमता और शोषण तथा राजनीतिक अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध अपनी वाणी ऊँची की, दूसरी ओर उज्जवल चरित्रो के द्वारा जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यो से हमे अवगत कराकर, जीवन को जीने योग्य बनाया। हिदी के महान साहित्यकारो तुलसीदास ओर मैथलीशरण गुप्त के समान नेतिकता के वे प्रबल समर्थक है और उनकी सास्कृतिक दृष्टि बहुत स्वच्छ है। 'मानव' जी का कहना है कि प्रेमचद एक राष्ट्रवादी व्यक्ति थे और इस नाते राजनीति मे वे गॉधीवाद के प्रबल समर्थक थे। उनका कथा–साहित्य हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन का एक विशाल दर्पण है। अत मे 'मानव' जी का निष्कर्ष है– 'कुछ नये उत्साही समीक्षक तथ्यो को तोड–मरोडकर जो उन्हे साम्यवादी सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे है, वह उनकी भूल है। वे मूलत गॉधीवादी थे'। (उपर्युक्त, पृ० 10)। वस्तुत प्रेमचद का साहित्य अपने युग का जीवन्त इतिहास है। समय बीतने के साथ प्रेमचद की मूल्यवत्ता अधिक गहरी और अर्थवान होती जाएगी। सच तो यह है कि प्रेमचद को न तो गॉधी से जोडा जा सकता है और न ही मार्क्स से। समय की निरन्तरता मे वे गॉधी और मार्क्स–दोनो को छाडकर बहुत आगे बढ जाते है। दरअसल वे बहुत बडे मानवतावादी है।

प्रेमचंद : उर्दू–हिन्दी कथाकार (1983)

डॉ० जाफर रजा उर्दू के विद्वान आलोचक हैं। उनका यह शोध प्रबन्ध लीक से हटकर है। इसका महत्त्व इसलिए भी है कि उर्दू के विद्वान और प्रोफेसर प्रेमचद को किस नजरिये से देखते है। डॉ० रजा ने प्रस्तावना मे ही यह प्रश्न उठाया है कि प्रेमचद उर्दू के लेखक है या हिदी के? पूरी शोध–प्रक्रिया मे यह प्रश्न छाया हुआ है और विद्वान आलोचक ने तथ्यो के आलोक मे सत्य को तलाशने की कोशिश की हे। लेखक का अपना मतव्य है 'उसके विचार मे प्रेमचद मूल रूप मे उर्दू के लेखक हैं। अधिकाशतः उर्दू मे ही रचना करते थे। हिदी मे उनकी रचनाओं का अनुवाद भी अधिकतर दूसरो ने किया है। इसलिए साहित्य एव अनुसंधान के आधार पर यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हिंदी के लिए प्रेमचंद की

स्थिति वही है, जो किसी साहित्यकार को किसी अन्य भाषा मे रचनाओ के अनुवद प्रकाशित हो जाने से प्राप्त होती है' लेखक के मतव्य की पुष्टि फिराक गोरखपुरी के विचारो से भी होती है। अपने मत के समर्थन के लिए लेखक तथ्यो को टटोलता है। डॉ० गगाप्रसाद विमल और डॉ० कमलकिशोर गोयनका का वैचारिक समर्थन उसे इस सदर्भ मे मिलता है। लेखक का परिश्रम सराहनीय है। प्रेमचद के भाषा विषयक दृष्टिकोण को डॉ० जाफर रजा इस प्रकार स्पष्ट करते है –

'प्रेमचद ने भाषिक समस्या को राष्ट्रीय नेताओ की दृष्टि से देखा। वे भाषा शास्त्री न थे और न उन्होने उसके वैज्ञानिक पक्षो पर ही विचार किया था। भाषा उनके लिए अभिव्यक्ति का यत्र मात्र थी जो किसी रूप मे और किसी प्रकार प्रयुक्त की जा सकती थी। हिदुस्तानी को स्वीकार करने मे उन्हे एक प्रकार की व्यक्तिगत सुविधा थी कि नागरी तथा उर्दू लिपि मे एक ही भाषा का प्रयोग करने पर जनभाषा को मुखरित करने की अधिक सुविधा मिल सकती थी। अत उनकी रचनाओ से विभिन्न कालो मे भाषागत विभिन्न प्रवृत्तियॉ दिखाई पडती है। (प्रेमचद उर्दू – हिन्दी कथाकार', पृ० 289)

इसमे कोई शक नही कि प्रेमचद को हिदी तथा उर्दू दोनो भारतीय भाषाओ मे प्रेरणा–स्रोत की स्थिति प्राप्त है तथा उनकी रचनाएँ इन दोनो भारतीय भाषाओ के इतिहास मे अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रेमचद की रचनाओ का आधार भारतीय ग्राम्य जीवन हे, जिसकी अपनी मान्यताएँ हैं, अपनी विपत्तियॉ और उपलब्धियॉ हैं। शोषण हैं, दुर्भाग्य हे और इसे भाग्य कहकर सहने की शक्ति है। प्रेमचद ने भारतीय नगरो – उपनगरो को भी देखा था। वहॉ का औपचारिक जीवन, औद्योगिककरण, पश्चिमी प्रभाव और चमक–दमक देखकर प्रेमचद की ऑखे चौधिआई हुई थी। लेकिन नगरो के जीवन मे उन्होने अपने हृदय की धडकने नही सुनी थी। उन्होने नागरिक सभ्यता को भारतीय जीवन मे अभिशाप के रूप मे ग्रहण किया था। उन्हे इस जीवन से सहानुभूति नही, इसलिए उसमे उनका मन नही रमता। डॉ० रजा का कथन एकदम सही है कि 'इस ग्राम्य एव नागरिक जीवन के परिवेश को ध्यान मे रखे बिना प्रेमचद की भाषा नीति को भी नही समझा जा सकता।'

एक तरफ हिदी मे प्रेमचंद की भाषा शैली को लेकर आक्षेप किये जाते रहे हैं। दूसरी ओर उर्दू पक्ष से प्रेमचद की भाषा शैली को उर्दू मे इतना पसन्द किया जाता रहा है कि व्यग्यात्मक रूप मे उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए एक बार मौलाना शिबली ने कहा था – भारत मे आठ करोड मुसलमान बसते हैं लेकिन इनमे दम नही कि इस काफिर से उर्दू

जबान छीन ले। यह वही काफिर है, जिसको उर्दू दुनिया देखकर जीती है और जिस पर उसका दम निकलता है।

वस्तुत प्रेमचद ने अपनी रचनाओ मे जिस भारतीय जनमानस की भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, उसका रूप अखिल भारतीय है क्योकि प्रेमचद की भाषा बोलने वाले देश के किसी एक भाग तक सीमित न रहकर पूरे देश मे कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले हुए है।

डॉ० जाफर रजा के अनुसार प्रेमचद मूलत मानववादी, राष्ट्रवादी और भौतिकवादी थे। उन्होने क्रमबद्ध रूप से न तो मार्क्सवाद का अध्ययन किया था न उस पर विचार ही। परतु वे न्याय और अन्याय के सघर्ष मे न्याय के साथ तथा पूँजीपति और निर्धन के सघर्ष मे निर्धनके साथ दिखाई पडते है। प्रेमचद हरदम जनसाधारण के साथ है। उनका दृष्टिकोण आदर्शवादी और मानवतावादी है। ढहते सामतवाद के साथ उनकी सहानुभूति है पर पूँजीवाद जिस प्रकार से धन सचय करता है उसके वे खिलाफ है। सामतवाद मे धन के अपव्यय को शाहखर्ची माना जाता है जिसका सामाजिक–सास्कृतिक आधार है। उनकी रचनाओ से आभास मिलता है कि इतिहास के भौतिक विकास के विषय मे उनके विचार वर्तमान चितको से मेल नही खाते। नारी के अधिकारो एव दायित्व के विषय मे भी उनका दृष्टिकोण वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे सकीर्ण प्रतीत होता है। अत मे डॉ० रजा का निष्कर्ष है 'प्रेमचद को उनके युग की समस्याओ एव मान्यताओ से अलग करके देखने पर भ्रातिपूर्ण निष्कर्ष ही मिलेगे' (पृ० 297)। डॉ० जाफर रजा के इस निष्कर्ष से सहमति जताई जा सकती है –

'भारत जैसे–जैसे समाजवादी लक्ष्यो की ओर बढता जाएगा, प्रेमचद की रचनाओ का महत्त्व भी बढता जाएगा।'

प्रेमचंद की कहानियाँ : परिदृश्य और परिप्रेक्ष्य (1993 ई०)

सं० डॉ० राजेन्द्र कुमार

हिन्दी आलोचना में शिखडी के रूप में विख्यात डॉ० राजेन्द्र कुमार (यह कथन सुप्रसिद्ध कहानीकार कमलेश्वर का है) का लेखन वामपथी और 'अभिप्राय' नई समीक्षा का

है। उन्होने बडी कुशलता से प्रतियोगी छात्रो के लिए प्रेमचद की कहानियो के आलोचनात्मक मूल्याकन का सकलन तैयार किया है जो स्तरीय है और प्रेमचद के पाठको की समझ बढाने वाला है। इसमे एक तरफ डॉ० गगा प्रसाद विमल और डॉ० सत्य प्रकाश मिश्र के लेख है तो दूसरी तरफ डॉ० नन्दकिशोर नवल, सुरेन्द्र चौधरी और नीलकान्त के। सम्पादन और चयन अच्छा है। प्रेमचन्द के विशिष्ट उपन्यासो पर लिखित परीक्षोपयोगी पुस्तको पर यहॉ विचार करना उचित नही है। वस्तुतः इन्हे आलोचना की कोटि मे रखा ही नही जाना चाहिए। यह हिन्दी–आलोचना का दुर्भाग्य है कि प्रेमचन्द के उपन्यासो पर अभी तक जितने अध्ययन प्रकाशित हुए हैं, वे सब के सब बजारू नोट्स की शैली मे है। गोदान एक अध्ययन की समस्याएँ (1958 ई०) – डॉ० गोपाल राय एक उल्लेखनीय पुस्तक है।

दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचद (2000 ई०)

श्री सदानद शाही द्वारा सपादित यह सकलन दलित चेतना के सदर्भ मे प्रेमचद का मूल्याकन करता है। प्रेमचद दलित जीवन को हिन्दी साहित्य के केन्द्र मे लाने वाले पहले लेखक है। उनका कथा और विचार साहित्य हिदी क्षेत्र के दलित जीवन की त्रासदी का प्रामाणिक आकलन है। इस आकलन के मूल मे दलित जीवन स्थितियो को बदलने की चिन्ता भी है। इसलिए हिदी मे प्रेमचद ऐसे व्यक्तित्व के रूप मे दिखाई देते हैं, जिनसे दलित आदोलन की टकराहट अपरिहार्य है।

दलित का प्रश्न, वर्ण और जाति का प्रश्न, हिदी प्रदश के नवजागरण के एजेन्डे से छूट गया था। प्रेमचद ऐसे लेखक थे जो इतिहास द्वारा छोड दिये गये इस प्रश्न को अपने साहित्य के माध्यम से निरन्तर केन्द्र मे लाने के लिए यत्नशील रहे। आज हिंदी प्रदेश का दलित जागरण नवजागरण के दौरान छूट गए ऐतिहासिक प्रश्न का नवोन्मेष है। प्रश्न यह भी है कि क्या इस नवोन्मेष का प्रेमचद से कोई रिश्ता बनता है। 'दलित साहित्य की अवधारण और प्रेमचद' पुस्तक इस रिश्ते की पहचान के बहाने दलित साहित्य, उसके सौन्दर्यबोध तथा विश्व दृष्टि को समझने का एक प्रयत्न करती है।

डॉ० नामवर सिह, विजेन्द्र नारायण सिह और मैनेजर पाडेय के लेख अच्छे बन पडे है। 'दलित चेतना का यथार्थ' शीर्षक लेख मे श्री राजेन्द्र कुमार ने दलित आलोचना का पैरोकार बनते हुए, बडी निर्लज्जतापूर्वक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और रामस्वरूप चतुर्वेदी पर प्रहार किया है। मौका देखकर गिरगिट की तरह रंग बदलने वाले विद्वानो के कारण ही हिदी आलोचना का बेडा गर्क हुआ है। आलोचना की निष्पक्षता और गभीरता इस तरह के प्रयासो से दूषित होती है और वह पत्रकारिता के सनसनीखेज रूप के नजदीक पहुँच जाती है। इस दलित चेतना के थोथे शोर मे डा० नामवर सिह सुचिन्तित ढग से कहते हैं कि प्रेमचद के साहित्य मे दलित चेतना जिस रूप मे है, उसका ठीक–ठीक मूल्याकन होना चाहिए। स्वय उनके शब्दो मे – 'दलित साहित्य और प्रेमचद को गड्डमड्ड करने की कोशिश नही करनी चाहिए। दलित साहित्य की स्वायत्तता और स्वतत्रता का पूरा सम्मान किया जाना चाहिए। यह केवल सयोग नही कि प्रेमचद की पहली रचना भी दलित जीवन से सबधित है और अतिम रचना गोदान भी। सद्गति, ठाकुर का कुऑ, दूध का दाम जैसी कहानियॉ दलित जीवन की पीडा और सघर्ष व्यक्त करती है। विचार करना चाहिए कि इस दृष्टि से लिखी कहानियॉ जितनी मार्मिक हैं उतने उपन्यास नही। यह जरूर है कि रगभूमि का नायक अछूत है और गोदान मे मातादीन ब्राह्मणत्व का अतिक्रमण करता है। जब राष्ट्रीय एजेण्डा पर दलित मौजूद नही था, तब भी प्रेमचद दलित–जीवन की कहानी लिख रहे थे।' (पृ० 171)। डॉ० नामवर सिह के उपर्युक्त कथन से प्रेमचद – आलोचना का नया दरवाजा खुलता है।

जैसा कि डॉ० रामविलास शर्मा ने इसके बारे मे कहा है कि यह हिंदी मे बडे पैमाने पर लिखी हुई किसी भी साहित्यकार या अन्य महान व्यक्ति की पहली जीवनी है। प्रेमचद–साहित्य का अध्ययन करने वालो के लिए इसका महत्व कभी कम न होगा। प्रेमचद का व्यक्तित्व असाधारण था। ऐसे व्यक्ति की भीतरी पेचीदगियो को पहचानना आसान काम नही था। अमृत राय ने बडी कुशलता से इस कार्य को किया है। एक तरफ प्रेमचद पर किये गए आक्षेपो का उल्लेख काफी विस्तार से किया है तो दूसरी तरफ उनके समर्थन मे प्रकाशित होने वाले लेखो का हवाला बहुत ही कम है। इससे गलत तस्वीर सामने आती है। इसी तरह जैसा कि डॉ० शर्मा ने कहा है कि प्रेमचद के यथार्थ चित्रण की गहराई का एक बहुत बडा कारण उनकी पारिवारिक जीवन की पकड़ है। उनका एक भी ऐसा उपन्यास नही है जिसमे विभिन्न पात्रो के पारिवारिक जीवन का चित्रण न किया गया हो। प्रेमचंद की कला

की गहरी जडे इस पारिवारिक परिवेश मे हैं। "इसीलिए उनके जीवन चरित्र मे उस विघटन का चित्र आना जरूरी था और इस चित्र से उनकी पचीसो पारिवारिक जीवन सबधी कहानियो का सूत्र जोडना आवश्यक था। 'कलम का सिपाही' कहने से पारिवारिक जीवन के विघटन का मोहपूर्ण कितु यथार्थ चित्रण करने वाले प्रेमचद पाठक की दृष्टि से ओझल हो जाते है।" ('प्रेमचद और उनका युग'– डॉ० रामविलास शर्मा, पृ० 176–177)।

यहॉ यह उल्लेखनीय है कि प्रेमचद के जीवन को आधार बनाकर सबसे अधिक जीवनियॉ लिखी गई है। प्रेमचद की पत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचद घर मे' (1956 ई०) मे प्रेमचद के बचपन से लेकर अतिम समय तक के सघर्षमय जीवन को पूरी ईमानदारी एव सच्चाई के साथ अकित किया है। लेखिका ने उन प्रसगो को भी छिपाया नही है जिनसे प्रेमचद के जीवन की कोई दुर्बलता प्रकट होती हो। इसके साथ ही उन्होने पति से भतभेद के बिदुओ तथा विवाद को भी बिना किसी हिचक के व्यक्त कर दिया है। अमृतराय प्रेमचद विरोधी समकालीन आलोचको से सम्बद्ध प्रकरणो मे तटस्थ नही रह पाये है। अपनी सीमाओ के बावजूद यह कृति एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसको पढते समय उपन्यास जैसा आनद मिलता है और प्रेमचद का बहुमुखी सघर्षशील जीवन साकार हो उठता है। प्रेमचद के जीवन पर एक अन्य महत्वपूर्ण रचना मदनगोपाल कृत 'कलम का मजदूर' (1965 ई०) है जिसमे प्रेमचद की तेजस्वी छवि उभरती है। प्रेमचद के जीवन से सम्बद्ध सभी प्रकार की सामग्री की निष्ठापूर्वक खोज और तटस्थतापूर्वक जीवनी–लेखन के कार्य का श्रेय डॉ० कमलकिशोर गोयनका का है जिन्होने 'प्रेमचद विश्वकोश भाग–1 (1981 ई०) मे प्रेमचद का प्रामाणिक जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। लेकिन 'कलम का सिपाही' जहॉ एक सर्जनात्मक उपलब्धि है वहॉ यह पुस्तक सूचनात्मक और विवरणो की एक ढेरी बनकर रह गई है।

प्रेमचद के कथा साहित्य की आलोचना – प्रक्रिया

1926 ई० से अवध उपाध्याय के प्रेमचद विरोधी लेखो से जिस प्रेमचद विरोधी आलोचना की शुरुआत हुई उसे रामकृष्ण 'शिलीमुख', श्रीनाथ सिह, ज्योति प्रसाद 'निर्मल' आदि निन्दक आलोचको द्वारा विस्तार प्राप्त हुआ। इस विरोध की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति सर्वश्री रामचद्र शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, इलाचंद्र जोशी, नगेन्द्र, इन्द्रनाथ मदान,

रामस्वरूप चतुर्वेदी, कमल किशोर गोयनका और गिरिजा राय की आलोचनाओ मे होती है। दरअसल यह गैर मार्क्सवादी आलोचना है। प्रेमचद के समर्थन मे 1933 ई० मे लिखी पहली आलोचना पुस्तक श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' की है। यह समर्थन का स्वर डॉ० रामविलास शर्मा की आलोचना पुस्तक 'प्रेमचद' (1941 ई०) मे चरम पर पहुँचता है। यहाँ से मार्क्सवादी आलोचना डॉ० शर्मा के नेतृत्व मे प्रेमचद समर्थन मे लामबद हो जाती है। इसी समर्थन का विस्तार डॉ० शर्मा की प्रेमचद पर लिखी दूसरी पुस्तक 'प्रेमचद और उनका युग' (1952 ई०) मे फूटता है। अन्य मार्क्सवादी आलोचको सर्वश्री नामवर सिह, शिवकुमार मिश्र, रमेश कुन्तल मेघ, कुँवरपाल सिह, नन्दकिशोर नवल और मैनेजर पाडेय इस समर्थन को और व्यापक बनाते है। समर्थक आलोचना होने के कारण मार्क्सवादी आलोचक प्रेमचद के रचना ससार का सहानुभूतिपूर्व विश्लेषण करते हैं। सही अर्थों मे मार्क्सवादी आलोचक ही प्रेमचद के रचना ससार से सर्जनात्मक स्तर पर टकराते है ओर उसके वैशिष्ट्य को खोलते हे। प्रेमचद की महत्ता के उद्घाटन का श्रेय इन मार्क्सवादी आलोचको को जाता है।

प्रेमचद (1880–1936 ई०) के पूर्ववर्ती कथा साहित्य मे अजीबोगरीब घटनाओ के द्वारा कुतूहल और चमत्कार की सृष्टि रहती थी अथवा आर्यसमाज या अन्य सामाजिक आदोलनो से प्रभावित समाज सुधारो का प्रचार था। जीवन की सही अभिव्यक्ति का साधन साहित्य नही बन पाया था। प्रेमचद ने मनोरजन ओर प्रचार से ऊपर उठकर उपन्यास को जीवन की अभिव्यक्ति के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उनका साहित्य को जीवन के सीधे सम्पर्क मे लाने का प्रयास सराहनीय था। चारो फैले हुए जीवन और उसकी अनेक सामयिक समस्याओ–पराधीनता, जमीन्दारो–पूँजीपतियो और सरकारी कर्मचारियो द्वारा किसानो का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, गरीबी, अधविश्वास, अनमेल विवाह, साम्प्रदायिक वैमनस्य आदि को उठाया। उनके द्वारा ग्रामीण जीवन का इतना सच्चा और प्रभावशाली अकन हुआ है कि वैसा किसी दूसरे रचनाकार द्वारा नही सभव हो सका। महात्मा गॉधी से प्रभावित होने के कारण नही, अपनी मानवतावादी दृष्टि ओर राष्ट्रीय चेतना के कारण साम्प्रदायिक समस्या प्रेमचद की चिता का मुख्य विषय थी। नारी की पराधीनता और उसके अधिकारो के प्रति वे सचेत थे। अछूतो की समस्याओ को बार–बार अपनी रचनाओ मे तीखेपन के साथ उठाया हैं नये उद्योग–धधो के फैलने के कारण ध्वस्त होती ग्रामीण अर्थव्यवस्था उनकी चिता का कारण बनती है। उनका वैशिष्ट्य इस बात मे है कि सामयिक समस्याओ को आधार बनाने के बावजूद जीवन की सहजता को खंडित होने नहीं

दिया। उन्होने अपनी रचनाओ मे समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियो की सामान्य जिदगी को उसकी सम्पूर्ण मार्मिकता मे प्रस्तुत किया है। प्रेमचद की कहानियाँ अपने आसपास की जिदगी से जुडी हुई है और यही उनकी सफलता का रहस्य भी है। मार्क्सवादी आलोचक डॉ० कुँवरपाल सिह के शब्दो मे प्रेमचद की महत्ता उजागर होती है:–

'प्रेमचद हिदी साहित्य के युगप्रवर्तक लेखको मे हैं। कबीर, तुलसी और भारतेन्दु के बाद ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे प्रेमचद का ही नाम आता है। हिदी साहित्य का बीसवी शताब्दी मे बहुत विकास हुआ है। छोटे–बडे साहित्यकारो की बडी सख्या है और उनका विपुल साहित्य भी है। इतना सब होते हुए भी प्रेमचद के कधो से अधिक कोई हिन्दी साहित्यकार नही पहुँच पाया। प्रेमचद अपने युग मे जितने प्रासगिक थे, उससे अधिक आज हैं। भविष्य मे भी उनकी प्रासगिकता बढेगी कम नही होगी।' ('उत्तरार्द्ध', प्रेमचद अक, अप्रैल' 80, पृ० 44)।

आचार्य रामचद्र शुक्ल का चर्चित कथन कि जनता की चित्तवृत्तयो मे होने वाले परिवर्तनो का असर साहित्य के रूप और स्वभाव को परिवर्तित करता है– साहित्य का अनिवार्य सदर्भ समाज को बना देता है। जनता की चित्तवृत्तियो मे परिवर्तनो के भीतर से उमडती जनाकाक्षाओ को सशक्त ढग से मुखरित करने मे प्रमचद इतने सफल होते है कि उन पर तात्कालिकता और समसामयिकता की अभिव्यक्ति का आरोप लगता है। सरहपा के समय से ही जनभाषाएँ सस्कृत के एकाधिकार को चुनौती द रही हैं तथा जनाकाक्षाओ की सफल दुराग्रहो से उत्पन्न साम्प्रदायिक शक्तियो ने नवनिर्माण की प्रक्रिया से गुजर रही जन भाषा को दो फाड कर दिया – हिदी और उर्दू। प्रेमचद इस साम्प्रदायिक विभाजन को मिटाना चाहते थे। यह सच है कि सस्कत से हिदी को बहुत अधिक आतरिक और भाषिक ऊर्जा प्राप्त हुई पर उसने अतत. हिदी के हिन्दुस्तानीपन को निष्प्रभ कर दिया। प्रेमचद इस हिन्दुस्तानीपन को बनाये रखना चाहते थे। इसके लिए जबर्दस्त प्रयास भी किया। पर यह विडम्बना है कि उन्होने हिदी की जिस भाषिक क्षमता का अर्जन, उपयोग और सचय किया, वह हिदुस्तानीपन को बनाये रखने की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी होते हुए भी परवर्ती भाषिक विकास का आधार नही बन सका। छायावाद ने सस्कृतनिष्ठ शब्दावली के सहारे जो भाषिक क्षमता अर्जित की, उसके मूल मे नागर भाव ही अधिक सक्रिय था। प्रेमचद की सर्जनातमकता के केन्द्र मे नागर नहीं, गॉव का किसान है। रचनात्मकता का सारा ठाठ देशी है। विद्वानो ने उत्साह के अतिरेक मे गॉधीवाद और मार्क्सवाद की

प्रगतिशील चेतना को एक दूसरे की विरोधी मुद्रा मे आमने सामने खडा कर दिया। इसके पीछे राजनीतिक कारण थे। पर प्रेमचद साहित्य इसलिए भी महान है कि जीवन के सन्निकट होने के कारण प्रगतिशीलता के दोनो रूपो को एक दूसरे के विरोधी के रूप मे नही बल्कि पूरक रूप मे चित्रित करता है। यहाँ हिन्दी के यशस्वी उपन्यासकार अमृतलाल नागर को उद्धृत करना उपयुक्त होगा। उन्होने बँगला साहित्य के बकिम, रवीन्द्र और शरत् से प्रेमचद की तुलना करते हुए लिखा है– 'राजा, राजकुमार, बडे कुलीन ब्राह्मण और जमीन्दारो तक की बकिम के नायक बँधे रहे, रवि बाबू भी इस लीक से अधिक न हट पाये, शरत् अवश्य एक कदम आगे बढे। उन्होने अपने उपन्यास के नायक – नायिकाओ को बीसवी सदी के पहले दो दशको के पढे लिखे मध्यवर्ग मे प्रतिष्ठित किया। परन्तु प्रेमचद यही तक सीमित नही रहे। उनके कहानी–उपन्यासो की नायक – नायिकाएँ ठेठ जनजीवन से उठाकर साहित्य के सिहासन पर प्रतिष्ठित किये गये हे। साहित्य के नायक नायिकाओ की लम्बी विरासत वाले तख्ते ताउस पर होरी, घीसू, हल्कू, धनिया, सलोनी, काकी आदि प्रेमचद के दम पर बेझिझक बडी शान से बैठे और जमाने का सिर श्रद्धा से उनके आगे नत हो गया। इस दिशा मे प्रेमचद ने न केवल उर्दू और हिन्दी लेखको को ही नही बल्कि सारे भारतीय साहित्य को अभूतपूर्व गति दी। यही उनका बडप्पन ह। उन्होने भारतीय साहित्य के इतिहास को एक नया मोड दिया।'(समालोचक, नवम्बर 1959 ई०)।

प्रेमचद के कथा–साहित्य पर लिखी आलोचनाओ को मोटे तौर पर दो वर्गों मे बॉटा जा सकता है (i) प्रेमचद समर्थक आलोचना और (ii) प्रेमचद विरोधी आलोचना। इसी को यो भी विभाजित किया जा सकता है (i) मार्क्सवादी आलोचना और (ii) गैर मार्क्सवादी आलोचना। गैर मार्क्सवादी आलोचना का मूल स्वर प्रेमचद विरोधी है वही मार्क्सवादी आलोचना प्रेमचद साहित्य का पक्षधर है। ज्यादातर मार्क्सवादी आलोचक प्रेमचद के पक्ष मे लामबन्द है, एकाध शिवदान सिह चौहान जैसे अपवादो को छोडकर। इसी तरह साहित्य मे आशिक रूप से स्वीकृति पाई दलित आलोचना मे भी विरोध और समर्थन के दो खेमे देखे जा सकते है।

दलित आलोचना का बडा हिस्सा प्रेमचद का समर्थन करता है और उन्हे प्रासगिक और प्रामाणिक मानता है। दूसरा हिस्सा उन पर तरह तरह के आरोप लगाता है। इनके अनुसार प्रेमचद ने दलितों का मखौल उडाया है। वस्तुत दलित आलोचना का यह आरंभिक दौर है, इसलिए उसमे आवेश और उफान ज्यादा है। क्रमशः जब दलित आलोचना परिपक्व

और प्रौढ होगी तब प्रेमचद विषयक आलोचना मे गभीरता आएगी और सतहीपन खत्म होगा। अभी दलित आलोचना की इस सुगबुगाहट मे किसी दलित आलोचक का नाम इतना महत्त्वपूर्ण नही है कि उसका उल्लेख किया जाय।

राजनीति मे दलित चेतना के उभार के साथ हिदी मे दलित लेखन की पृष्ठभूमि बन चुकी है। अब दलित साहित्य आदोलन हिदी साहित्य के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। यह एक तरह से राजनीति के जातिवाद की साहित्य मे घुसपैठ ह जिसे छद्म प्रगतिशीलता के नाम पर बढावा दिया जा रहा है। फिर भी दलित आलोचना के मूलस्वर को पकडने के लिए सहानुभूति की अपेक्षा है ताकि प्रतिपक्ष के विचारो को उदारतापूर्वक समझा जाय। दलित आलोचना के पैरोकार श्री सदानन्द शाही का कथन इस सबध मे उल्लेखनीय है :–

'प्रेमचद दलित जीवन को हिदी साहित्य के केन्द मे लाने वाले पहले लेखक हैं। उनका कथा और विचार साहित्य हिदी क्षेत्र के दलित जीवन की त्रासदी का प्रामाणिक आकलन है। इस आकलन के मूल मे दलित जीवन स्थितिया को बदलने की चिता भी है। इसलिए हिदी मे प्रेमचद ऐसे व्यक्तित्व के रूप मे दिखाई देते हे, जिनसे दलित आदोलन की टकराहट अनिवार्य है। दलित का प्रश्न, वर्ण और जाति का प्रश्न हिदी प्रदेश मे नवजागरण के एजेन्डे से छूट गया था। प्रेमचद ऐसे लेखक थे, जो इतिहास द्वारा छोड दिये गये इस प्रश्न को अपने साहित्य के माध्यम से निरन्तर केन्द्र मे लाने के लिए प्रयत्नशील रहे।' (दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचद, भूमिका, पृ० 4)।

प्रेमचद – सहित्य की आलोचना प्रक्रिया पर डॉ० कमल किशोर गोयनका की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है –

'प्रेमचद की जीवित अवस्था मे 'सरस्वती', 'चॉद' मर्यादा', 'विश्वामित्र', 'विशाल भारत', 'स्वदेश', 'भारत', 'आज', 'हिन्दुस्तानी' आदि विभिन्न पत्रिकाओ मे उनके उपन्यासो पर स्वतत्र एव प्रवृत्तिपरक लेख प्रकाशित होते रहे, परन्तु इन आलोचनाओ के मूल मे या तो आलोचक का व्यक्तिगत राग–द्वेष था अथवा आलोचना के मनगढत एव अवैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर उनका मूल्याकन किया गया था। यहॉ तक कि युग के सर्वाधिक प्रबुद्ध समीक्षक श्री रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिदी साहित्य का इतिहास' मे उनके उपन्यासो की विस्तृत विवेचना के प्रति उपेक्षा भाव रखा और अपने सक्षिप्त विवेचन मे युग के कुछ अन्य आलोचको के स्वर मे स्वर मिलाते हुए उन्हे 'प्रचारवादी' घोषित कर दिया। इस प्रकार प्रेमचद का अपना काल उनके साहित्य के अवमूल्यन का काल है। प्रेमचद के

देहान्त के पश्चात उनकी महानता के गुणगान का ऐसा दौर शुरू हुआ कि जिन आलोचको ने उनकी जीवित अवस्था मे उनपर और उनके उपन्यासो पर गदे आक्षेप लगाये थे, वे भी प्रशसको की पहली पक्ति मे आ खडे हुए। (प्रेमचद के उपन्यासो का शिल्प विधान, प्रस्तावना)।

गैर मार्क्सवादी आलोचना मे प्रेमचद विरोधी स्वर दबे रूप मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के 'इतिहास' मे फूटता है। डॉ० समीक्षा ठाकुर का पर्यवेक्षण एकदम सही है कि यह विरोध का स्व 'इतिहास' के सशोधित सस्करण मे आकर तेज हो जाता है। शुरू मे प्रेमचद – साहित्य के प्रति जो आशसा का भाव था वह क्रमश. खत्म हो जाता है। लेकिन शुक्ल जी महान आलोचक है, इसलिए आलोचना की सर्जनात्मकता बनी रहती है। यह कही भी आक्षेपो या आरोपो–प्रत्यारोपो में नही परिणत होती। विरोध का स्वर पहले उपेक्षा और उदासीनता मे फूटता है। जहॉ समकालीन रचनाओ का उदारतापूर्वक विवेचन हुआ है वहॉ प्रेमचद को मात्र तीन–चार पृष्ठो मे समेट दिया है। प्रेमचद – साहित्य का यह सक्षिप्त विवेचन आचार्य शुक्ल की उपेक्षा और उदासीनता का सूचक हे। शुक्ल जी का दूसरा प्रहार प्रेमचद के राजनीति से सराबोर उपन्यासो और कहानियो पर है। प्रेमचद की राजनीतिक दृष्टि और उसके अकन पर शुक्ल जी प्रश्नचिह्न लगाते है।–

हमारे उपन्यासकारो को देश के वर्तमान जीवन के भीतर अपनी दृष्टि गडाकर आप देखना चाहिए, केवल राजनीतिक दलो की बातो को लेकर ही न चलना चाहिए। साहित्य को राजनीति के ऊपर रहना चाहिए, यदा उसके इशारो पर ही न नाचना चाहिए।(हिदी साहित्य का इतिहास, पृ० 536)

आचार्य शुक्ल की निष्कर्ष के रूप मे की गई टिप्पणी उल्लेखनीय है –

'सामाजिक और राजनीतिक सुधारो के जो आदोलन देश मे चल रहे है उनका आभास भी बहुत से उपन्यासो मे मिलता है। प्रवीण उपन्यासकार उनका समावेश और बहुत सी बातो के बीच कौशल के साथ करते है। प्रेमचद जी के उपन्यासो और कहानियो मे भी जहॉ राजनीतिक उद्धार या समाज सुधार का लक्ष्य बहुत स्पष्ट हो गया है वहॉ उपन्यासकार का रूप छिप गया है और प्रचारक का रूप ऊपर आ गया (उपर्युक्त, पृ० 542)।

प्रेमचद की दुनिया उन्नीसवी बीसवी सदी की एक जीवन्त और भरी पूरी दुनिया है। उसमे अनेक प्रकार के लोग विचरण करते है जो यथार्थ जगत के हैं। उनका कथा साहित्य राजनीतिक सामाजिक हलचलो का जीवन्त दस्तावेज है। प्रेमचद के माध्यम से साहित्य मे

यथार्थवाद का प्रवेश होता है जो प्राकृतवाद से भिन्न है। उनके सामाजिक सरोकार उनकी रचना–प्रक्रिया को यथार्थवादी और आधुनिक बनाते हैं। उनके द्वारा किया गया निर्धनता और बेबसी का चित्रण पाठको को झकझोर देता है।

गैर मार्क्सवादी आलोचना का सबसे तीखा स्वर आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी मे प्रकट होता है। वे कई तरह के आक्षेप और आरोप लगाते है । मसलन स्त्री चरित्रो का अकन करने मे सफलता नही मिली, उपन्यासों के अत मे प्रचारक बन जाते हैं, ब्राह्मणो के विद्वेषी है, भाषा का बहुत साधारण ज्ञान है। वे लिखते है कि प्रेमचद के मानसिक सघटन के कल्पना को कोई स्थान प्राप्त नही है। कथानक का स्थूल रगरूप बनाने मे जितनी स्वल्प कल्पना चाहिए बस प्रेमचद मे उतनी ही है। इसके अलावा कल्पना के अभाव के साथ प्रेमचद जी मे तीव्र बौद्धिक दृष्टि और उसके फलस्वरूप निर्मित होने वाले व्यवस्थित जीवन दर्शन का भी अभाव है। प्रेमचद किसी तात्विक निष्कर्ष तक नही पहुँचते। नन्ददुलारे बाजपेयी के प्रेमचद – विरोधी विचार उनकी पुस्तक 'प्रेमचद एक साहित्यिक विवेचन' मे तथा 'आधुनिक साहित्य' आर 'हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी' के एक –दो निबधो मे द्रष्टव्य है। पूर्वाग्रह और प्रेमचद – विरोध के कारण बाजपेयी जी की आलोचना अतिरजनापूर्ण हो गई है –

'प्रेमचद जी की कृतिया यथार्थवाद से बहुत दूर हं। शेली मे भी प्रेमचद जी तर्क प्रधान बौद्धिक शैली को छोडकर प्राय भावात्मक शैली को अपनाते है। उनकी दृष्टि भी भौतिकवादी नही है और न वे समाज का वह सॉचा ही अपने दृष्टिपथ मे लाते हैं, जिसका आधार मार्क्सवादी समाजवाद है' (आधुनिक साहित्य, पृ० 201)।

अत मे उनका निष्कर्ष द्रष्टव्य है –

"परन्तु केवल भाषा या शैली सम्बन्धी विशेषताओ विशेषताओ को लेकर किसी लेखक को यथार्थवादी नही कहा जा सकता। उसका जीवन दर्शन, चरित्र–चित्रण और कला की मुख्य प्रेरणा से ही उसकी परीक्षा होती है। इस दृष्टि से प्रेमचद जी यथार्थवादी नही हैं। उन्हे यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहना भी अस्पष्टता को ही बढाना है। यथार्थोन्मुख आदर्शवादिता से क्या तात्पर्य हो सकता है? साहित्य मे यथार्थवादी और आदर्शवादी रचना के दो अलग–अलग विभाग है" (उपर्युक्त, पृ० 193)।

श्री विश्वम्भर 'मानव' ने वाजपेयी जी के आरोपो का प्रत्याख्यान करते हुए 'हिन्दुस्तानी' के प्रेमचद स्मृति अक (जुलाई 1980) मे प्रकाशित 'प्रेमचद एक प्रतिवाद' शीर्षक निबध मे सही कहा है।—

'प्रेमचद जी का जीवन दर्शन भी वही है जो विश्व के सभी श्रेष्ठ साहित्यकारो का होता है अर्थात, मानवता का प्रचार। ससार मे सत् असत् का जो सघर्ष चल रहा है। उसमे वे सत् की प्रतिष्ठा और असत् का विनाश चाहते हैं। जीवन के यथार्थ पर उनकी पूरी दृष्टि है, लेकिन अत मे वे अपने कथानक को आदर्श की ओर मोड देते हैं, इसी से बहुत से विवेचको ने उनमे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के दर्शन किए है (हिन्दुस्तानी, प्रेमचद स्मृति अक, जुलाई 1980, पृ० 10)

गैरमार्क्सवादी आलोचना का दूसरा प्रतिष्ठित और मानक स्वर है डॉ० नगेन्द्र का, जिन्होने प्रेमचद को द्वितीय श्रेणी का कलाकार घोषित किया। उनका यह वक्तव्य काफी विवादास्पद बना। 'आस्था के चरण' मे 'प्रेमचद' शीर्षक लम्बा निबध प्रकाशित है। इसमे प्रेमचद के रचनात्मक कृतित्व का सहानुभूतिपूर्वक मूल्याकन करते हुए अत मे कहते हैं 'परन्तु फिर भी मेरा मन प्रेमचद को प्रथम श्रेणी का कलाकार मानने को प्रस्तुत नही है। उनका कथन है :—

'प्रेमचद के साहित्य मे इस प्रकार की घटनाएँ तथा पात्र अत्यत विरल हैं जो पाठक की अनुभूति को उत्तेजित कर उसके मन मे प्रखर चेतना उद्‌भूत कर सके। तीव्र अर्न्तद्वन्द के इसी अभाव के कारण वे आत्मा की गहराइयो मे नही उतरते—उतर भी नही सकते। आत्मा की पीडा, जो जीवन और साहित्य मे गभीर रस की सृष्टि करती है, उनके साहित्य की मूल प्रेरणा कभी नही बन पायी। वह उनके जीवन दर्शन के लिए अप्रसागिक थी। उन्होने जीवन की व्यवहारिक समस्याओ को सम्पूर्ण महत्त्व द डाला है। परतु जीवन मे तो उनसे गहनतर समस्याएँ भी है अर्न्तजगमत की समस्याएँ — जिन्हे प्रेमचद की व्यवहारिक दृष्टि ने यथेष्ट महत्व नही दिया। उनमे किसान जमीन्दार मजदूर पूँजीपति छूत अछूत शिक्षा अशिक्षा आदि बाह्य जगत के द्वदो का जितना विस्तृत और सफल वर्णन है उतना श्रेय और प्रेय, विवेक और प्रवृत्ति, श्रद्धा और क्रान्ति, कर्तव्य और लालसा आदि अंतर्जगत के द्वन्द्वो का नही। (आस्था के चरण, पृ० 457)।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार प्रेमचद के सम्पूर्ण साहित्य पर आर्थिक समस्याओं का प्रभुत्व है । विगत युग के सामाजिक राजनीतिक जीवन मे आर्थिक विषमताओं के जितने भी रूप

सभव थे, प्रेमचद की दृष्टि उन सभी पर पडी और उन्होने अपने ढग से उन सभी का समाधान प्रस्तुत किया है। पिछले युग की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक विषमताओ को उन्होने जितना महत्व दिया उतना महत्व उसकी आध्यात्मिक विषमताओ को नही दिया। परिणाम यह हुआ कि प्रेमचद की दृष्टि सामयिक समस्याओ तक ही सीमित रही है। इसलिए डॉ० नगेन्द्र का निष्कर्ष है 'चिन्तन और गभीर दर्शन उसकी परिधि मे नही आते। इसीलिए उनमे बौद्धिक सघनता और दृढता का अभाव है और उनके उपन्यासो के विवेचन आदि मे एक प्रकार का पोलापन मिलता है। विचारो की सघनता, जो गहन दार्शनिक विश्वास अथवा अविश्वास से आती है, उनमे नही है।' (उपर्युक्त, पृ० 458)। इसी आधार पर वे घोषणा करते है कि साधारण व्यक्तित्व कुल मिलाकर द्वितीय श्रेणी का व्यक्तित्व ही रहता है। महान होने के लिए असाधारणता अपेक्षित है। प्रेमचद पहली श्रेणी मे नही आते।

डॉ० नगेन्द्र ने प्रेमचद को द्वितीय श्रेणी का कलाकार सिद्ध करने के लिये जो कारण दिये है, वे मूलत निषेधात्मक है। यह सही है कि प्रेमचद की रचनाओ मे फ्रायड के मनोविज्ञान और कामग्रन्थियो का निदर्शन नही मिलता पर मानवीय अर्न्तद्वन्द्व का अभाव है— ऐसा नही कहा जा सकता। प्रेमचद के उपन्यासो मे महाकाव्योचित विस्तार है। ये अपने युग की राष्ट्रीय चेतना की सफल अभिव्यक्ति है। स्वाधीनता सघर्ष के अनेक पहलुओ को सफलतापूर्वक प्रतिबिबित करने के कारण उनकी रचनाएँ युग के इतिहास को जीवन्त ढग से प्रस्तुत करती है। इसी से उनके उपन्यासो को युग का दस्तावेज कहा गया है। उनकी रचनाओ का युग के दस्तावेज के रूप मे अध्ययन करने का श्रेय डॉ० इन्द्रनाथ मदान को जाता है। उन्होने प्रेमचद की रचनाओ का समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनकी पुस्तक 'प्रेमचद एक विवेचन' डॉ० मदान की आरभिक आलोचना कृति है, विवेचन पद्धति नवीन होने के बावजूद इसमे कच्चापन है और परिपक्वता का अभाव है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान के इस निष्कर्ष से प्रेमचद विरोध छलक पडता है 'उन्होने युग की गूढ समस्याओ का तो चित्रण किया, परन्तु वे उसकी उलझनो को पूरी तरह से समझ नही पाये .... वे और भी महान होते यदि उन्होने विकास के मार्गो को भी समझा होता।' ('प्रेमचंद चितन और कला', स० इन्द्रनाथ मदान, पृ० 104)। इस कथन पर डॉ० रामविलास शर्मा की टिप्पणी उल्लेखनीय है . — 'हर आदमी की समझ की सीमा होती है। प्रेमचंद की समझ की भी सीमा थी। यदि वाल्मीकि, होमर, शेक्सपियर थोडा और समझदार होते तो और भी महान होते। समझ की सीमा है, महत्ता की नहीं। लेकिन विद्वान आलोचक के विश्लेषण से यह

स्पष्ट नही होता कि विकास के वे मार्ग कौन से हैं जिनसे प्रेमचद अपरिचित थे।' ('प्रेमचद ओर उनका युग',पृ० 160)।

गैर मार्क्सवादी आलोचको मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पहले आलोचक है जिनकी आलोचना मे प्रेमचद साहित्य का समर्थन का स्वर फूटता है। प्रेमचद का महत्त्व शीर्षक लेख लिखकर प्रेमचद के क्रातिकारी महत्व का उद्घाअन किया। इस सदर्भ मे डॉ० नामवर सिह ने 'दूसरी परम्परा की खोज मे लिखा है –

'प्रेमचद का महत्व उनकी दृष्टि मे क्या था, इसका पता उनकी इस घोषण से चलता हे कि 'वे अपने काल मे समस्त उत्तरी भारत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार थे।' निश्चय ही यह घोषणा करते समय गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी उनके सामने रहे होगे, फिर भी यह उल्लेखनीय है कि उस समय शायद ही किसी ने इतने अकुण्ठ भाव से प्रेमचद के महत्व को पहचाना। द्विवेदी जी ही पहले आदमी हैं जिन्होने हिदी जगत को यह बतलाया कि 'वास्तव मे तुलसीदास और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद प्रेमचद के समान सरल और जोरदार हिन्दी किसी ने नही लिखी।' (दूसरी परम्परा की खोज, पृ० 48–49)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार –'दुनिया की सारी जटिलताओ को समझ सकने के कारण ही प्रेमचद सरल और निरीह थे। धार्मिक ढकोसलो को वे ढोग समझते थे पर मनुष्य को वे सबसे बडी वस्तु समझते थे। उन्होने ईश्वर पर कभी विश्वास नही किया फिर भी इस युग के साहित्यकारो मे और मानव की सद्वृत्तियो पर उनका अडिग विश्वास प्रेमचन्द का था वैसा शायद ही किसी और का हो। वे बुद्धिवादी थे और मनुष्य की आनन्दिनी वृत्ति पर पूरा विश्वास करते थे।' 'गोदान' के एक पात्र के माध्यम से प्रेमचद का मतव्य प्रकट हो जाता है – 'जो वह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो मुझे हँसी आती है। यह मोक्ष और उपासना अहकार की पराकाष्ठा ह जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहॉ जीवन है, क्रीडा है चहक है, प्रेम ह, वही ईश्वर है और जीवन को सुखी बनाना ही मोक्ष और उपासना है।' ऐसे थे प्रेमचद – जिन्होने ढोग को कभी बर्दाश्त नही किया, जिन्होने समाज को सुधारने के लिए बडी–बडी बाते सुझायी ही नही, स्वय उन्हे व्यवहार मे लाये, जो मनसा, वाचा एक थे, जिनका विनय आत्माभिमान का, संकोच महत्व का, निर्धनता निर्भिकता का, एकान्तप्रियता विश्वानुभूति का और निरीह भाव कठोर कर्तव्य का कवच था, जो समाज की जटिलताओं की तह में जाकर उसकी टीमटाम और भभ्भड़पन का पर्दाफाश करने में आनन्द पाते थे और जो दरिद्र किसान के अन्दर आत्मबल का

उद्घाटन करने को अपना श्रेष्ठ कर्तव्य समझते थे। जिन्हे कठिनाइयो से जूझने मे मजा आता था और जो तरस खाने वाले पर दया की मुस्कुराहट बिखेर देते थे। जो ढोग करने वाले को कसके व्यग्य बाण मारते थे और जो निष्कपट मनुष्यो के चेरे हो जाया करते थे। इस प्रकार हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अत्यत काव्यमयी शैली मे प्रेमचद के महत्व का उद्घाटन किया है।

आचार्य नलिन विलोचन शर्मा दूसरे महत्वपूर्ण गैर मार्क्सवादी आलोचक हैं जिनकी आलोचना का स्वर प्रेमचद के समर्थन मे फूटा है। उनके अनुसार प्रेमचद हिदी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक है। 'गोदान' के पहले तक के प्रेमचद हिदी उपन्यास के अतीत की चरम परिणति के पथ चिह्न है। प्रेमचद के विराट लेखन मे हिदी उपन्यास की विभिन्न धाराएँ मिलकर एक हो जाती है। 'गोदान' श्रेष्ठता का प्रतिमान है। इसका स्थापत्य कसा हुआ और विलक्षण है। इतने बडे पैमाने पर यथार्थ चित्रण किसी दूसरे भारतीय उपन्यास मे नही मिलता। हिदी उपन्यास के विकास क्रम मे प्रेमचद के महत्व को उजागर करने के साथ नलिनविलोचन शर्मा ने प्रेमचद की भाषा पर महत्वपूर्ण टिप्पणी की है। उनके अनुसार उन्होने देवकीनदन खत्री की भाषा की सरलता और सादगी को शैली की विशिष्टता मे रूपान्तरित और उन्नत किया। वस्तुत प्रेमचद की तरह मुहावरेदार, चलती, सरल और टकसाली भाषा दूसरे लेखक नही लिख पाये।

नई समीक्षा के समर्थ आलोचक डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी काव्यभाषा को केन्द्र मे रखकर चलने वाले हिदी के एकमात्र आलोचक है। प्रेमचद की भाषा पर की गई उनकी टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है –

'प्रेमचद अपनी रचना–प्रक्रिया मे भाषा का सपूर्णत दोहन कर लेते हैं, फलत. आलोचक के लिए ऐसी भाषा छवियॉ और सकेत नही बचते जिनके सहारे वह उस रचना मे आगे अर्थ का सवर्द्धन कर सके।' (हिदी गद्य विन्यास और विकास', पृ० 250)।

गैर मार्क्सवादी आलोचना मे प्रेमचद – विरोध का स्वर कही हल्का, कही तेज सुनाई पडता है। उदारता और सहानुभूतिपूर्वक किये गये विवेचनो मे भी यह विरोध भाव प्रच्छन्न रूप से झॉकता रहता है। यह विरोध की धारा आज भी गतिशील है। गैर मार्क्सवादी धारा का यह विरोध अपने चरम रूप मे डॉ० गिरिजा राय के 'साहित्य का नया शास्त्र' के 'उर्दू परम्परा और प्रेमचद' नामक अध्याय में दिखता है। उन्होंने तर्कों के आधार पर प्रेमचंद को उर्दू परम्परा का कथाकार घोषित किया .

'नन्द दुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा से लेकर इन्द्रनाथ मदान तक अनेक आलोचको के नाम गिनाए जा सकते हैं जिन्होने प्रेमचद के साहित्य पर बडी गहराई से विचार किया है। पर किसी ने प्रेमचद के उपन्यासो की जातीय चेतना की चर्चा नही की और न यह दिखाने की कोशिश की है कि प्रेमचद के उपन्यास हिदी साहित्य की जातीय चेतना की परिधि के बाहर पडते है। प्रेमचद मूलत उर्दू परम्परा के रचनाकार हैं। वे उर्दू से हिदी मे आये नही, अनुवादित किये गये है। केवल एक 'कायाकल्प' को छोडकर जो हिन्दी भाषा मे रचा गया है और प्रेमचद के उपन्यासो की परम्परा मे 'मिसफिट' है यही कारण है कि पूरे हिदी साहित्य के प्रवाह मे प्रेमचद की रचनाएँ रोडे की तरह अवरोध पैदा करती है। उनका अस्तित्व खटकता है, वे पूरी साहित्य धारा मे घुलकर समरस नही बन पाती, अलग सिर उठाये खडी रहती है।' (साहित्य का नया शास्त्र, पृ० 48)।

वस्तुत प्रेमचद न शुद्ध हिदी और न ही शुद्ध उर्दू, बल्कि आम बोलचाल मे प्रचलित हिन्दुस्तानी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप मे देखना चाहते थे। जनवादी और प्रगतिशील कथाकार होने के कारण उनके साहित्य मे भी भाषा का यह रूप प्रकट हुआ। मार्क्सवादी आलोचक डॉ० कुँवरपाल सिह की यह टिप्पणी प्रेमचद साहित्य की विकास प्रक्रिया प्रकाश डालती है –

'वे विभिनन समाज सुधार आदोलनो, आर्य समाज आदोलन, फिर गॉधीवादी दर्शन के प्रभाव से होते हुए मार्क्सवादी चेतना के बहुत करीब पहुँचते हैं जो उनकी दलित और शोषित जनता के प्रति गहन प्रतिबद्धता का प्रमाण है।' (उत्तरार्द्ध 13, डॉ० कुँवरपाल सिह, पृ० 11)।

समकालीन और परवर्ती रचनाकारो का एक वर्ग भी गेरमार्क्सवादी आलोचको के सुर मे सुर मिलाता है। प्रेमचद मे जैनेन्द्र ने समस्याओ के सरल समाधान का दोष देखा तो अज्ञेय प्रेमचद के साहित्य मे यह दोष दिखाते हैं कि उनके पात्र 'केवल एक परिपाटी के सॉचे मे ढली हुई छायाएँ मात्र है तथा उनका शिक्षित मध्यमवर्गीय या उच्चवर्गीय पात्रो का चित्रण सतही और अविश्वसनीय है। (आधुनिक हिदी साहित्य, पृ० 92–93)। इलाचद्र जोशी भी विरोधियों की कतार मे शामिल हैं। प्रेमचद पर जोशी का मुख्य आरोप यह है कि उन्होने अपने साहित्य मे 'सृष्टि के मूल में यह जो सनातन नारी है उसके प्रति अवज्ञा प्रदर्शित की है। उनका कहना है कि प्रेमचंद ने 'पुरुष प्रवृत्ति के रहस्य का परिचय अवश्य प्राप्त किया है, मूल प्रकृति जो नारी है उसकी आत्मा के भीतर उन्होंने गहरी दृष्टि नहीं डाली है'

(विश्लेषण, पृ० 49)। डॉ० धर्मवीर भारती प्रेमचद पर शार्टकट अपनाने का आरोप लगाते हैं 'जिस बिन्दु पर स्थित होकर हमने मनुष्य को समझने का प्रयास किया है, विश्व उपन्यास की तुलना मे वह बिदु काफी सतही है। यह बात प्रेमचद के बारे मे भी उसी तरह लागू होती है।' (आलोचना, जुलाई 1954, सपादकीय)। निर्मल वर्मा का तो यह मानना है कि प्रेमचद के पास उपन्यास का सही ढॉचा ही नही था। निर्मल वर्मा का विचार है कि साहित्य की गणना समाज सबधी अनुशासनो मे की जाती है, जबकि वह अपनी प्रकृति मे उनसे मूलत भिन्न है। वे साहित्य को मात्र भाषिक सरचना मानते है, इसीलिए यह प्रश्न उठाते हैं कि 'यथार्थवाद की समूची बहस जो प्रेमचद के नाम पर पिछले पचास वर्षो से हिदी मे चल रही है, क्या आज बिल्कुल अप्रासगिक नही हो गई है? (आदि, अन्त और आरभ, पृ० 121)। परवर्ती रचनाकारो मे फणीश्वर नाथ रेणु, नागार्जुन, मार्कण्डय, राजेन्द्र यादव और दूधनाथ सिह प्रेमचद की विरासत के दावेदार रहे है। इनकी कोशिश प्रमचद साहित्य के सही सदर्भ को उजागर करने की रही है।

मार्क्सवादी आलोचना की पृष्ठभूमि बनाने वाले आलोचको मे शिवदान सिह चौहान, प्रकाश चन्द्र गुप्त औरन राम विलास शर्मा के नाम प्रमुख है। मार्क्सवादी आलोचना के आरभिक आलोचक होने के नाते प्रकाश चद्र गुप्त ने प्रेमचद पर जो लिखा है, उसका स्वरूप परिचयात्मक है। शिवदान सिह चौहान ने ध्वसात्मक आलाचना ही लिखी है। जनवादी आलोचना की वास्तविक शुरूआत डॉ० रामविलास शर्मा के प्रमचद सबधी मूल्याकन से होती है। यह एक अजीब सयोग है कि मार्क्सवादी आलोचना की वास्तविक शुरूआत और प्रेमचद का सही मूल्याकन रामविलास शर्मा की पुस्तक 'प्रेमचद' (1941 ई०) से शुरू होता है। रामविलास जी ने प्रेमचद का मूल्याकन लीक से हटकर जनवादी आधार और मार्क्सवादी सदर्भो मे किया है। 'प्रेमचद' (1941 ई०) से मार्क्सवादी आलाचना का तेवर हिदी आलोचना मे देखने को मिलता है जो उसे कई अर्थो मे समृद्ध करता है। पहली बार कृतियो के पहचान और मूल्याकन का सदर्भ सामाजिक आधार बनता है।

डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार प्रेमचद का युग आदर्शवाद और रोमाटिसिज्म का था। उन पर उनके युग के आदर्शवाद की पूरी-पूरी छाप पडी थी परतु परिस्थितियॉ कुछ ऐसी थी जिनमे रहकर पूर्ण रूप से आदर्शवादी बनना उनके लिए संभव न था। भारत में उस समय किसान मजदूरो का एक दृढ़ आंदोलन चल रहा था जबकि [illegible] काग्रेस खद्दर और चर्खे को लेकर खेल कर रही थी। प्रेमचंद अपने युग के साथ थे और अपने युग

की उथल पुथल को उन्होने अपनी रचनाओं मे चित्रित किया है। प्रेमचद ने धर्म की सामाजिक भूमिका को दिखाया है। सामाजिक परिस्थितियो मे उलझे हुए मनुष्य के धार्मिक विचारो को बनते – बिगडते दिखाया है।

डॉ० शर्मा ने यह जोर देकर दिखाया है कि प्रेमचद ने अपने उपन्यासो मे सामाजिक सघर्ष के चित्र दिए है। 'प्रेमाश्रम' का आधार किसान–जमीन्दार का सघर्ष है, 'गोदान' की समस्या किसान – महाजन की है। 'कर्मभूमि' मे अछूत आदोलन और 'रगभूमि' मे नये उद्योग धधो से गॉवो मे परिवर्तन का चित्रण किया गया है। अपने युग की निर्धनता, दासता और पीडितो की आर्तवेदना को जैसा उन्होने अनुभव किया था, वैसा किसी दूसरे रचनाकार ने नही। डॉ० शर्मा के इस मूल्याकन से साहित्य का अनिवार्य सदर्भ समाज हो गया। दलितो, गरीब किसानो और मजदूरो की दुरवस्था पर ध्यान केन्द्रित करना प्रगतिशील साहित्य की मुख्य विशेषता बना। मार्क्सवादी आलोचना को उसके अतविर्रोधो से मुक्त कर डॉ० शर्मा ने उसे सही दृष्टि प्रदान की। स्वय उनके शब्दो मे 'परम्परागत आलोचना का मार्ग छोडकर मैने यह बताने का प्रयत्न किया था कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रेमचद का विश्लेषण किया जाय तो भारतीय समाज का एक भरा – पूरा चित्र उनके साहित्य मे उभर कर सामने आता है।'(प्रेमचद, पृ० 21)। ऊँच नीच के भेदभाव के प्रति प्रेमचद से अधिक सचेत और कोई हिदी लेखक नही था। समस्याओ का समाधान खोजने मे प्रेमचद आदर्शवाद की ओर झुकते थे पर किसानो की वास्तविक दशा का चित्रण करने मे वह यथार्थ को रग चुनकर पेश न करते थे। साहित्य मे जो प्रचलित यथार्थवाद है, उसकी प्रेमचद ने अनेक स्थलो पर निदा की है। इस प्रकार का यथार्थवाद मनुष्य की दुर्बलताओ का चित्रण है और यह मनुष्य को दुर्बलताओ की ही ओर ले जाता है।

साहित्य का ध्येय मनुष्य का पतन न होकर उत्थान है। प्रेमचद की यह मान्यता है। उनका विश्वास है कि मनुष्य कमजोरियो का पुतला है और उसकी कमजोरियों का चित्रण उसके लिए घातक हो सकता है, उनके आदर्शवादी दृष्टिकोण का मूल कारण है।

विदेशी सभ्यता ने महाजनी सभ्यता की जडे हमारे समाज मे मजबूती से जमा दी हैं और इसीलिए प्रेमचद उसका विरोध करते है। नई शिक्षा एक नई सभ्यता को पोषित कर रही है और इस सभ्यता की भित्ति स्वार्थ पर है। पुराने उद्योग–धधो को नष्ट कर महाजनी सभ्यता ने नये उद्योग–धधो का जाल बिछा दिया है।'रगभूमि' में या तो महाजन बनो या कर्जदार। किसान के जीवन के अनेक पहलू हैं। सामाजिक आचार–विचारों के निर्जीव

बधनो से वह बुरी तरह जकडा हुआ है। उसकी धार्मिकता और उसका अधविश्वास भी उसके शोषण का कारण है। उसके शोषक जमीन्दार और महाजन हैं। प्रेमचद ने बडी निर्ममता से इस शोषण तत्र को उघाडा है। डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार 'किसानों के चित्रण मे प्रेमचद हमे भारतीय जन आदोलन के बीचो–बीच ला खड़ा करते है। यही वह स्थल है जहॉ दमन अपने क्रूरतम रूप मे निसहाय निर्बल किसानो को चूर करता हुआ चलता है। यही वह प्रेरणा केन्द्र भी है जो समग्र जन आदोलन को बल देता है। किसानो का ही वह वर्ग है जिसके लिए आदोलन की समस्त शक्तियॉ एकत्र हो गतिशील होनी चाहिए। प्रेमचद ने गॉव का सारा वातावरण पाठक के आगे सजीव कर दिया है। (प्रेमचद, पृ० 92)।

राजनीतिक आदोलन का सबसे निर्बल रूप प्रेमचंद के सामने वह था जिसका सबध कौसिलो मे जाकर सुधार करने से था। प्रेमचद की क्रातिकारी मनोवृत्ति का इस बात से पता चलता है कि उन्होने कभी भी कौसिलो मे जाकर किसी रचनात्मक कार्यक्रम की सफलता मे विश्वास नही किया। इस तरह से प्रेमचद की पूरी नजर तत्कालीन समाज और उसकी राजनीतिक हलचल पर थी। इस प्रकार रामविलास शर्मा ने बडी बारीकी से प्रेमचद साहित्य का विश्लेषण पर उन तमाम पहलुओ को उभारा हे जिससे प्रेमचद एक महान कथाकार बनते है। डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद पहले लेखक थे जिन्होने दिखलाया कि हिदुस्तान के स्वाधीनता आदोलन की रीढ यहॉ का किसान आदोलन है। उन्होने जनसाधारण की शूरता, धीरता, त्याग और बलिदान आदि सद्‌गुणो का चित्रण कर हिदी साहित्य को वास्तविक जीवन के निकट लाए। वह पतनशील साहित्य के कटु आलोचक थे, हिदुस्तानी जनता के नए सास्कृतिक जागरण को प्रकट करन वाले प्रगतिशील साहित्य के अलबरदार थे। रचनाकार को जीवन सग्राम मे तटस्थ रहना चाहिए – प्रेमचद का साहित्य अपने जमाने के हिदुस्तान और उसके स्वाधीनता आदोलन का प्रतिबिब है। उसमे उस जमाने के सामाजिक जीवन की असगतियॉ झलकती हैं। डॉ० शर्मा का यह निष्कर्ष कि प्रेचद हिदुस्तान की नई राष्ट्रीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे – प्रेमचद आलोचना का प्रस्थान बिन्दु बन चुका है।

डॉ० रामविलास शर्मा के बाद डॉ० नामवर सिह दूसरे मार्क्सवादी आलोचक हैं जिन्होने प्रेमचद साहित्य की विशिष्टताओ को दिखाया है। वे प्रेमचद के पक्षधर आलोचक है। अपने बेबाक विश्लेषण से उन्होने प्रेमचद समर्थक पक्ष को मजबूत किया है। डॉ० नामवर

सिह के अनुसार बीसवी शताब्दी का कोई भी भारतीय लेखक गॉधीवाद और मार्क्सवाद से अछूता नही रह सकता। प्रेमचद पर गॉधीवाद के प्रभाव की बात जोर देकर कही जाती है, पर वे आरम्भिक दिनो मे भी गॉधीवादी नही थे। उन्होने समाज पर गॉधीवाद के प्रभाव का वर्णन किया है, उसमे अपनी आस्था नही दिखलाई है। उन्होने महात्मा गॉधी की अन्तरात्मा की आवाज, उनके अधविश्वासो तथा उनके सत्याग्रह, हृदय परिवर्तन और वर्ग सहयोग के सिद्धान्तो का लगातार विरोध किया है। उनके जिन उपन्यासो को गॉधीवाद से प्रभावित बताया जाता है उनमे भी गॉधीवाद की आलोचना है। महात्मा गॉधी समझते थे कि किसान ओर जमीन्दार लडेगे तो उससे आजादी की लडाई कमजोर होगी। प्रेमचद इस बात को नही मानते। उनके प्राय- हर उपन्यास मे किसान और जमीन्दार की टकराहट है। महात्मा गॉधी का रास्ता वर्ग सहयोग का है, प्रेमचद का विश्वास वर्ग सघर्ष मे है। इस तरह प्रेमचद के चित्रण और जीवन दृष्टि मे कोई अन्तर्विरोध नही है, गॉधीवाद ओर मार्क्सवाद को लेकर भी नही। उनकी जीवन–दृष्टि यथार्थ के गहन बोध से निर्मित ह। डॉ० सिह के अनुसार प्रेमचद किसान की छोटी महत्त्वाकाक्षा से सम्पूर्ण विश्व को देखते है। उनका यथार्थवाद किसानो के जीवन से उत्पन्न है। उन्होने किसानो के जीवन की सच्चाई दिखाई। अँग्रेजी हुकूमत सामतो के बल पर टिकी है इसलिए सामतो से लडाई छेडना जरूरी हे। वस्तुत प्रेमचद के लिए सामत विरोध साम्राज्यवाद विरोध था। डॉ० नामवर सिह के अनुसार प्रेमचद किसानो को हर तरह के शोषण से मुक्त करना चाहते थे। प्रेमचद अकेले लेखक हैं जिन्होने हर प्रकार के सम्प्रदायवाद का विरोध किया है। डॉ० नामवर सिह का निष्कर्ष है –

'कला और शिल्प की दृष्टि से भी प्रेमचद ने कम से कम बीस ऐसी कहानियॉ लिखी हे, जो बेजोड है जैसे ठाकुर का कुऑ, दूध का दाम, जुर्माना, कफन, पूस की रात। उनके उपन्यासो के गठन को ढीला ढाला बताया गया है, लेकिन कमजोरियो के बावजूद वे कलात्मक दृष्टि से ऊँचाइयो को छूते हैं। इस श्रेष्ठता का आधार है वास्तविकता की पहचार, जीवन्त चरित्रो का निर्माण, पात्रो के मानसिक गठन और व्यवहार की परख। केवल समकालीन विषयो पर लिखने के कारण उनका महत्त्व ऐतिहासिक होता, लेकिन उनका महत्त्व कलात्मक भी है।' (प्रेमचद और प्रगतिशील लेखन', स० विजय गुप्त)।

डॉ० रामविलास शर्मा और डॉ० नामवर सिह जैसे धुरधर मार्क्सवादी आलोचको के बाद मार्क्सवादी आलोचना की दूसरी कतार के आलोचको मे डॉ० शिव कुमार मिश्र, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, डॉ० कुँवरपाल सिह, डॉ० नन्द किशोर नवल और डॉ० मैनेजर पाडेय के

नाम उल्लेखनीय है। शिवकुमार सिह और डॉ० नवल की प्रेमचद पर एक–एक पुस्तक प्रकाशित है। कुँवर पाल सिह और मैनेजर पाडेय ने प्रेमचद से सबधित कई लेख लिखे है। रमेश कुन्तल मेघ ने प्रसगवशात प्रेमचद साहित्य की चर्चा आधुनिकता के धरातल पर की है जिसमे पर्याप्त मौलिकता है। शिव कुमार मिश्र ने डॉ० रामविलास शर्मा की मान्यताओ का भाष्य किया है। उनकी आलोचना मे किसी तरह का नयापन नही है और मौलिकता का अभाव है। इनकी आलोचना मार्क्सवादी कट्टरता से भरी हुई और अखबारीपन लिए हुए है।

प्रेमचद साहित्य मे आधुनिक सवेदना को रेखाकित करने वाले आलोचको मे डॉ० इन्द्रनाथ मदान, रमेश कुन्तल मेघ, सुधीश पचौरी, गगा प्रसाद विमल, कमल किशोर गोयनका और शैलेश जैदी के नाम लिये जा सकते हैं जिन्होने अस्तित्ववादी सदर्भों और अजनबीपन की दृष्टि से प्रेमचद के परवर्ती साहित्य (1930–1936) का मूल्याकन किया है तथा उसकी आधुनिकता को रेखाकित किया है। एक तरह से इन आलोचको ने आधुनिकता की शुरूआत प्रेमचद के परवर्ती साहित्य से मानी जाती है। उल्लेखनीय है कि इसी परवर्ती प्रेमचद साहित्य पर मार्क्सवादी आलोचना भी अपना दाव ठोकती है। सन् 1930 के बाद का प्रेमचद का लेखन इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो उठता है। यहॉ प्रेमचद एकदम सर्जनात्मकता के शिखर पर है। इस काल की रचनाओ का स्वर आधुनिक और मार्क्सवादी है। यो आधुनिकता और मार्क्सवाद मे अतर्विरोध नही – दोनो का गहरा जुडाव मनुष्य की नियति और स्थिति मे मुकम्मल बदलाव की आकाक्षा इस काल के प्रेमचद साहित्य का मुख्य स्वर है, जो एक तरफ आधुनिकता से जुडता है तो दूसरी तरफ मार्क्सवाद से। अगस्त 1979 ई० के 'आजकल' मे डॉ० विनय ने इसी आधार पर प्रेमचद के उपन्यासवो को अस्तित्ववाद से प्रभावित बताया है। उनका विचार है कि उनके उपन्यासो मे मानव मुक्ति की आस्था की अभिव्यक्ति और समाज के प्रति व्यक्ति के दायित्व की जो बात साइमन द बोउवा ने कही है, वह भी उनमे मिलती है और जीवन के दैनदिन सघर्षो से घनिष्ठ सम्बद्धता (जो कि अस्तित्ववादी विचार का विस्तृत रूप है) प्रेमचद साहित्य की धुरी है।

पंचम अध्याय :

ग़ैर मार्क्सवादी आलोचना : विरोध का स्वर

रामचन्द्र शुक्ल
नन्द दुलारे वाजपेयी
इलाचन्द्र जोशी
हजारी प्रसाद द्विवेदी
नगेन्द्र
नलिन विलोचन शर्मा
इन्द्रनाथ मदान
रामस्वरूप चतुर्वेदी

गैर मार्क्सवादी आलोचना : विरोध के स्वर

रामचन्द्र शुक्ल

प्रेमचद के कथा साहित्य का विवेचन आचार्य रामचद्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सन् **1929** ई० और सशोधित सस्करण सन् **1940** ई०) मे किया है। आचार्य शुक्ल का 'इतिहास' उनकी साहित्य– साधना की चरम परिणति है। हिदी साहित्य के ज्ञानकोश के रूप मे चर्चित यह ग्रन्थ एक साथ इतिहास भी है और आलोचना भी, हिदी जाति की चित्तवृत्ति का सचित प्रतिबिम्ब भी और हिदी भाषा की मूल प्रकृति का मानक भी।

आचार्य रामचद्र शुक्ल इतिहास के क्रमिक अध्ययन मे सबसे पहले उपन्यास विधा पर टिप्पणी करते है। – 'वर्तमान जगत मे उपन्यासो की बडी शक्ति है'। फिर वे कहते है कि द्वितीय उत्थान के भीतर बगला से अनूदित अथवा उनके आदर्श पर लिखे गये उपन्यासो मे देश की सामान्य जनता के गार्हस्थ्य और पारिवारिक जीवन के बडे मार्मिक और सच्चे चित्र रहा करते थे। प्रेमचद जी के उपन्यासो मे भी निम्न और मध्य श्रेणी के गृहस्थो के जीवन का बहुत सच्चा स्वरूप मिलता है (हिन्दी साहित्य का इतिहास–पृ० 537)। बगला लेखको की अनुवादित रचनाओ मे जातीय रूपो का विविधता मे अकन हुआ है और पात्रो के गठन मे जन सामान्य के विभिन्न रूपो का सन्तुलित चित्रण मिलता है– शरतचद्र एव टैगोर के उपन्यास इसके सशक्त उदाहरण है। उपन्यास की सर्जन–प्रक्रिया मे प्रेमचद भी तत्कालीन भारत के दलित–शोषित तथा मध्यवर्ग के पात्रो को अपनी रचनाओ के केन्द्र मे रखते हैं क्योकि प्रेमचद ने समाज की विभीषिकाओ को स्वय देखा एव भोगा था। अभावो के विभिन्न रूपो से रूबरू हुए थे, जीने के लिए जीवन भर आर्थिक सघर्ष किया था। मूलभूत वस्तुओ के अभाव का गहरा अनुभव था। इसलिए गरीबी और दुःख की परिभाषा के लिए उन्हें किसी पाठशाला का अनुसरण नही करना पड़ा। यही कारण है कि प्रेमचंद ने अपने उपन्यासो मे अनुभव की ऑच मे तपे हुए मध्य और निम्न वर्ग के पात्रो की स्थितियो का सजीव चित्रण किया है।

आचार्य रामचद शुक्ल के अनुसार – "तृतीय उत्थान का आरम्भ होते – होते हमारे हिदी साहित्य मे उपन्यास का यह पूर्ण विकसित और परिष्कृत स्वरूप लेकर स्वर्गीय प्रेमचद जी आए। द्वितीय उत्थान के मौलिक उपन्यासकारो मे शील–वैचित्र्य की उद्‌भावना नही के बराबर थी। प्रेमचद के ही कुछ पात्रो मे ऐसे स्वाभाविक ढॉचे की व्यक्तिगत विशेषताये मिलने लगी जिन्हे सामने पाकर अधिकाश लोगो को यह भासित हो कि कुछ इसी ढग की विशेषता वाले व्यक्ति हमने कही न कही देखे हैं। ऐसी व्यक्तिगत विशेषता ही सच्ची विशेषता है, जिसे झूठी विशेषता और कथित विशेषता दोनो से अलग समझना चाहिए" (हिन्दी साहित्य का इतिहास– पृ० 538-39)। तृतीय उत्थान का काल यथार्थवाद की प्रवृत्तियो को लेकर प्रकट हुआ, और इन भगिमाओ के सृजन मे प्रेमचद ने अपने पूर्ववर्तियो से इतर ऐसे पात्रो की रचना की कि जिसको देखकर पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह सभी जीवत है चाहे वह 'सेवासदन' की सुमन हो या 'प्रेमाश्रम' का मनोहर हो या फिर चाहे 'गोदान' की धनिया ही क्यो न हो, ये पात्र अपने वजूद की याद दिलाते रहते है।

डॉ० समीक्षा ठाकुर ने प्रेमचद के प्रति आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की बदलती धारणाओ के प्रति टिप्पणी की है कि "हिन्दी शब्द सागर की भूमिका, 'इतिहास का प्रथम सस्करण ओर सशोधित सस्करण' इतिहास के इन तीनो रूपो के अन्तर्गत प्रेमचद के विवेचन से यह सामान्य निष्कर्ष निकलता है कि प्रेमचद के प्रति आचार्य शुक्ल के मन मे प्रशसा का जो भाव आरम्भ मे था, उसमे क्रमश कमी आती गई और आलोचना का स्वर प्रखर होने लगा। हिन्दी शब्द सागर की 'भूमिका' मे उन्होने जिस उत्साह से प्रेमचद का स्वागत किया था, वह बाद के सस्करणो मे फिर दिखाई न पडा।" ('आचार्य रामचद शुक्ल के इतिहास की रचना–प्रक्रिया', लोकभारती प्रकाशन – 1996 ई०, पृ० 108)

आचार्य शुक्ल के अनुसार, "मनुष्य की अतः प्रकृति का जो विश्लेषण और वस्तु विन्यास की जो सहजता इनके उपन्यासो मे मिली, वह पहले और किसी मौलिक उपन्यासकार मे नही पायी गई थी। इनकी जैसी चलती और पात्रो के अनुरूप रूप बदलने वाली भाषा भी पहले नही देखी गई" (हिन्दी साहित्य का प्रथम सस्करण–पृ० 606)। प्रयोगशीलता एवम् रचना धर्मिता की दृष्टि से प्रेमचद उपन्यासो के माध्यम से दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति के अन्दर परिस्थितियों एव वातावरण की ऐसी, संकल्पना खड़ी करते हैं कि पाठक पढकर भाव विभोर हो जाता है।

आचार्य रामचद्र शुक्ल उपन्यास और कहानी के सन्दर्भ मे प्रेमचद को कहानीकार के रूप मे श्रेष्ठ समझते है। वे मानते हैं कि बडे उपन्यासो से भी सुदर और मार्मिक प्रेमचद जी की छोटी कहानियॉ (गल्प) होती हैं" (हिन्दी साहित्य का इतिहास–प्रथम स पृ० 606)। उदाहरण के रूप मे देखा जाय तो 'रगभूमि' का रचना ससार इतना बिखरा हुआ है कि उसकी सन्दर्भ कथाये अत तक एक सूत्र मे बॅध नही पाती है और मूल कथा चक्रो के सीमा से लेखक कट जाता है परन्तु 'पच परमेश्वर' या 'कफन' कहानी के शिल्प को देखकर प्रेमचद की सफलता का राज खुलता है।

अपने 'इतिहास' के प्रथम सस्करण मे शुक्ल जी आशसा के बाद यह टिप्पणी जोड देते है जो उनके परिवर्तित रूख का सकेत करता है:– "इनमे कुछ खटकने वाली बात यह मिलती है कि आख्यान समाप्तत होते–होते प्रेमचद जी की कलाकार (**Artist**) का रूप प्राय छिप जाता है और वे एक प्रचारक (**Propagandist**) के रूप मे सामने आ जाते है" (हिन्दी साहित्य का इतिहास प्र० स पृ० 606)। आचार्य जी की यह टिप्पणी सदैव प्रेमचद की कृतियो पर लागू नही होती। 'गबन' और 'गोदान' के परिप्रेक्ष्य मे क्रमश देवीदीन का स्वदेशी सम्बन्धी व्याख्यान, 'गोदान' मे प्रो० मेहता का नारी विषयक आख्यान काफी लम्बा एव उबाऊ लगता है, परन्तु विषय वस्तु की दृष्टि से यह जरूरी भी है कि श्रोताओ को उसकी पृष्ठभूमि से अवगत कराये नही तो सन्दर्भ अधूरा रह जाने का भय रहता है। वैचारिक स्थापनाओ की दृष्टि से प्रेमचद यहॉ अन्य उपन्यासकारो से समर्थ सिद्ध होते है। डॉ० कमलकिशोर गोयनका का यह कथन यहॉ उल्लेखनीय है – 'यहॉ तक कि युग के सर्वाधिक प्रबुद्ध समीक्षक आचार्य रामचद्र शुक्ल ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'हिदी साहित्य का इतिहास' मे उनके उपन्यासो की विस्तृत विवेचना के प्रति उपेक्षा भाव रखा, और अपने सक्षिप्त विवेचन मे युग के कुछ अन्य आलोचको के स्वर मे स्वर मिलाते हुए उन्हे 'प्रचारवादी' घोषित कर दिया।' ('प्रेमचद के उपन्यासो का शिल्प विधान', भूमिका)।

कहानी एव उपन्यास सम्बन्धी शुक्ल जी की टिप्पणी पर डॉ० समीक्षा ठाकुर असन्तोष प्रकट करती हुई लिखती हैं–"प्रेमचद के प्रचारक के रूप के प्रति शुक्ल जी की शिकायत इतनी बद्धमूल थी कि उन्होने सशोधित सस्करण मे भी इसे दोहराने के लिए अवसर निकाल लिया। वहॉ प्रसग है उपन्यासो मे सामाजिक और राजनीतिक सुधारो के आन्दोलनो के चित्रण का" ('आचार्य रामचद्र शुक्ल के इतिहास क्री रचना–प्रक्रिया' पृ०

108)। डॉ० समीक्षा ठाकुर का पर्यवेक्षण एकदम सटीक है कि जो उत्साह हिन्दी शब्द सागर की 'भूमिका' मे था वह सशोधित सस्करण मे आकर एकदम खत्म हो गया है।

प्रेमचद के उपन्यासो मे किसानो पर तअल्लुकेदारो के अत्याचार का चित्रण आचार्य शुक्ल को पसन्द नही आया। इस प्रकरण मे शुक्ल जी ने डेढ पृष्ठो का लम्बा उपदेश प्रेमचद के उपन्यासो के बारे मे दे डाला। व्यग्यात्मक लहजे मे शुक्ल जी कहते है– "तअल्लुकेदारो के अत्याचार, भूखे किसानो की दारूण दशा के बडे चटकीले चित्र उनमे प्राय पाये जाते है। इस सम्बन्ध मे हमारा केवल यही कहना है कि हमारे निपुण उपन्यासकारो को केवल राजनीतिक दलो द्वारा प्रचारित बाते ही लेकर न चलना चाहिए, वस्तु स्थिति पर अपनी व्यापक दृष्टि भी डालनी चाहिए" (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 643)। किसानो की दारूण दशा तथा अत्याचार सम्बन्धी वर्णन एव राजनीति से प्रेरित लेखो के विषण मे अभी तक यह स्पष्ट नही हो पाया है कि प्रेमचद ने किस भावना से प्रेरित होकर इसका अपनी रचनाओ मे वर्णन किया। यह प्रेमचद की सचमुच मे कमजोरी है अथवा आचार्य शुक्ल का पूर्वाग्रह यह फिलहाल अलग से शोध का विषय है। इस विषय मे डॉ० समीक्षा ठाकुर भी मौन है। लेकिन इसका जवाब छायावादी समीक्षक श्री विश्वम्भर 'मानव' ने 'प्रेमचद एक प्रतिवाद' शीर्षक लेख मे इस प्रकार दिया है–

'लेकिन ये शुक्ल जी ही थे जिन्होने प्रेमचद की राजनीतिक और सामाजिक चेतना को लक्ष्य करके उन्हे प्रचारक या 'प्रोपेगेन्डिस्ट' (**Propagandist**) कहा। कठिनाई यह है कि यदि लेखक अपने समय की परिस्थितियो का चित्रण नहीं करता, तो वह असामाजिक है, व्यक्तिवादी है, उसे युगबोध नही है और करता है, तो सुधारक है, प्रचारक है। शुक्ल जी एक तो प्रेमचद जी के समकालीन थे, अत उनके प्रति तटस्थ दृष्टि रखना कठिन था। दूसरे उनके सस्कार कुछ ऐसे थे कि छायावाद युग के किसी भी रचनाकार के प्रति, चाहे वह कवि हो या उपन्यासकार, वे न्याय नही कर पाये। अब तो धीरे–धीरे यह स्पष्ट हो रहा है कि आधुनिक साहित्य की आलोचना के लिए वे प्रामाणिक व्यक्ति नही हैं।' (–'हिन्दुस्तानी', प्रेमचद स्मृति अक, भाग 41, अक 3–4, पृ० 9–10)

नन्द दुलारे वाजपेयी

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का प्रेमचद विषयक विवेचन उनकी पुस्तक – "प्रेमचद: साहित्यिक विवेचन" मे सकलित है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के मतानुसार–"प्रेमचद जी के उपन्यासो मे सबसे प्रमुख विशेषता है उनकी आदर्शवादिता। चरित्रो और उनकी प्रवृत्तियो का निर्देश करने मे वे आदर्शोन्मुखी है। घटनावली का निर्माण और उपसहार करने मे आदर्श का सदैव ध्यान रखते हे उनकी दूसरी विशेषता ध्येयोन्मुखता है। उन्होने प्रत्येक उपन्यास मे जो सामाजिक या राजनीतिक प्रश्न उठाये है, उनका निर्णय भी हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। निर्णय का निरूपण करने के कारण प्रेमचद जी लक्ष्यवादी है और चरित्र तथा कथा के स्वरूप–निर्माण मे वे आदर्शवादी है" ('प्रेमचद· साहित्यिक विवेचन, पृ० 14–15)। प्रेमचद के उपन्यासो मे मानवतावाद से आदर्शवाद आया। उनके उपन्यासो मे प्रेम, सेवा और त्याग का ही आदर्श बारम्बार आता है, उन्होने मानव के हित और कल्याण को सर्वोपरि माना, उनकी सहानुभूति इतनी अधिक व्यापक थी कि प्रेमचद मे छोटे–बडे धनी, निर्धन, कुलीन–अकुलीन, पढे–लिखे व गॅवार सभी लोगो से उनकी सहानुभूति है। अत प्रेमचद ने अपने उपन्यासो मे चरित्र तथा स्वरूप–निमार्ण मे आदर्शवादी दृष्टिकोण को अपनाया। आदर्शवादी चित्रण से तात्पर्य है कि मानव की सद्वृत्तियो पर विश्वास रखकर साहित्य निर्माण करना। उनके समस्त साहित्य को देखकर यह विदित होता है कि प्रेमचद जी आदर्शवादी विचारधारा से प्रभावित थे। 'सेवासदन' की सुमन 'प्रेमाश्रम' का मनोहर, 'निर्मला' की निर्मला आदि पात्रो मे इसका प्रतिफलन देखा जा सकता है। वाजपेयी जी के मत का विरोध करते हुए कुछ आलोचकों ने इस बात की पुष्टि की है कि प्रेमचद जी स्वय आदर्श और यथार्थ के समन्वय मे विश्वास रखते थे। उनका मत है कि यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, विषमताओ और क्रूरताओ का नग्न चित्र होता है और इसी तरह यथार्थ मनुष्य को निराशावादी बना देता है। मानव चरित्र पर से उसका विश्वास उठ जाता है, उसे चारो तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। साहित्तय में तो अलग–अलग प्रयोजन हैं। यथार्थवाद हमारी आखे खोल देता है तो आदर्शवाद हमे आकर किसी मनोरम स्थान पर पहुँचा देता हैं। एक हमे जीवन और जगत की परिस्थितियो से परिचित कराता है, दूसरा हमारे यथार्थ के अभावों को भावभरी कल्पना

प्रदान करता है। अर्थात उच्चकोटि का साहित्य वही है जहॉ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। प्रेमचद आगे लिखते हैं यथार्थ को प्रेरक बनाने के लिए आदर्श और आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए, नग्न यथार्थ और नग्न आदर्श दोनो अतियॉ है। नग्न यथार्थ पुलिस की रिपोर्ट भर हो जाता हे। नग्न आदर्श प्लेटफार्म का फतवा। डॉ० महेन्द्र भटनागर ने आदर्शवाद की आलोचना करते हुए आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का समर्थन किया। डॉ० रक्षापुरी ने कहा है कि प्रेमचद ने यथार्थ की नीव पर आदर्श का भवन निर्मित करने का प्रयास किया है। डॉ० रामविलास शर्मा ने कहा कि प्रेमचद के साहित्य मे यथार्थवाद की धारा अधिक शक्तिशाली है। हसराज रहबर भी प्रेमचद को यथार्थवादी मानते है।

वाजपेयी जी अपने मत के समर्थन मे कहते हैं कि कोई कलाकार या तो यथार्थवादी हो सकता है या आदर्शवादी। ये दो परस्पर विरोधी विचारधाराये और शैलियॉ हैं, इनका मिश्रण किसी एक रचना मे सम्भव नही। साहित्यिक निर्माण मे यथार्थोन्मुख नाम की कोई वस्तु नही हो सकती। आदर्श और यथार्थ को मिलाने वाला कोई पृथकवाद नही है, यह तर्कसगत प्रतीत नही होता, क्योकि दो परस्पर विरोधी जीवन दर्शनो और कला परिपाटियो मे एकत्व की कल्पना कैसे की जा सकती है। वास्तव मे प्रेमचद अपने विचार और लेखन मे आदर्शवादी है। उनका चरित्र चित्रण, निर्माण और मनोवैज्ञानिक सद्वृत्तियो पर विश्वास रखकर साहित्य का निर्माण करना ध्येय है। इसका सशक्त उदाहरण 'गोदान' उपन्यास है।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "आदर्श और यथार्थ के मूल विरोध हैं। पहले का आधार भाववृत्ति दृष्टिकोण है और दूसरे के लिए वस्तुगत दृष्टिकोण अनिवार्य है, आदर्शवादी यथार्थवादी नही होगा। उसके लिए रोमानी होना सहज है, परन्तु यह भी अनिवार्य नही, वह कल्पना विलासी और स्वप्न दृष्टा न होकर व्यवहारिक जगत के नैतिक समाधान भी हो सकते है। प्रेमचद का आदर्शवाद इसी रूप मे है, वह रोमानी आदर्शवाद नही है। व्यवहारिक आदर्शवाद है परन्तु यथार्थवाद नही है क्योकि यह आवश्यक नही है जो रोमानी नही है वह यथार्थवादी ही हो" ('कृतिकार डॉ० नगेन्द्र' पृ० 139)। एक दृष्टि मे यह वाजपेयी जी का समर्थन ही है जो व्यवहारिक धरातल पर आदर्शवाद की प्रतिष्ठा है। प्रेमचंद साहित्य की सिद्धि इसी मे मानते है कि वह देश, जाति और समाज के कल्याण का माध्यम बने। प्रेमचद की उपन्यासकला का सामाजिक ध्येय–न्याय, समता और नीति के आदर्शों से प्रेरित रहा हैं। प्रत्येक उपन्यास मे एक न एक सामाजिक ध्येय परिलक्षित होता है। उन्होंने प्रत्येक स्थान में

जो सामाजिक या राजनैतिक प्रश्न उठाये हैं उनका निर्णय भी हमारे सम्मुख हैं। उपन्यास के नामकरण, विषय, चयन, निष्कर्ष निर्धारण मे उनका उद्देश्य स्पष्ट है। 'वरदान' मे प्रेम और कर्तव्य की विजय दिखाई गई है। 'प्रतिज्ञा' मे विधवाओ की मुक्ति का सवाल उठाया गया है, इसी तरह से कहानियो मे जैसे 'बडे घर की बेटी', 'पच परमेश्वर', 'नमक का दारोगा', 'उपदेश' आदि मे कुछ न कुछ ध्येय अवश्य रहता है।

आचार्य रामचद्र शुक्ल के अनुसार "उनमे भी जहाँ राजनीतिक उद्धार या समाज–सुधार का लक्ष्य बहुत स्पष्ट हो गया है, वहाँ उपन्यासकार का रूप छिप गया है और प्रचारक का रूप उभर गया है" ('हिन्दी साहित्य का इतिहास'–पृ० **854**)। यहाँ वाजपेयी के मत का खण्डन शुक्लजी बहुत सहज रूप मे करते है और प्रेमचद की कृतियो के बारे मे यह सत्य भी है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार–"प्रेमचद के चरित्र वर्गगत जातिगत या प्रतीकात्मक होते है। जमीदार, किसान आदि मे अपने वर्ग की साधारण विशेषताओ का आरोप रहता है। आधुनिक व्यक्ति–चित्रण प्रणाली से वे दूर है। केवल कुछ पात्रो में स्वतत्र विशेषताओ का चित्रण किया गया है, वह भी परिस्थितियो के गहरे घात–प्रतिघात की भूमिका पर नही" (प्रेमचद साहित्यिक विवेचन पृ० **16**)। प्रेमचद के उपन्यासो और कहानियो मे तत्कालीन समाज के विभिन्न वर्गो का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र मिलते हैं– 'प्रेमाश्रम' उपन्यास मे ज्ञानशकर, प्रभाशकर, रायसाहब, कमलानद, जमीदार वर्ग के पात्र हैं। मनोहर कृषक वर्ग का प्रतीक है साथ ही बैरिस्टर इफनिअली के व्यक्तित्व मे वकील की एवम् प्रेमनाथ चोपडा मे डाक्टरो की सभी सामान्य विशेषताये मिलती हैं। डॉ० इन्द्रनाथ मदान वाजपेयी जी के विचारो का समर्थन करते हुए कहते हैं कि 'प्रेमचद का उद्देश्य चरित्र चित्रण न होकर सुधार करना है वे नैतिक समस्याओ मे अधिक रूचि लेते हैं, मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओ और असगतियो मे नही इसलिए उनके अधिकाश पात्र वर्ग विशेष के प्रतिनिधि या प्रतीक बनकर उभरे है।' परन्तु कुछ आलोचक इस विचार से सहमत नही हैं और उनका कहना है कि प्रेमचद स्थितियो को ध्यान मे रखकर अपने पात्रो का सृजन करते हैं और हृदय परिवर्तन की घटना मनोवैज्ञानिक को स्पष्ट भी कर देती हैं।

आचार्य नन्दरुलारे वाजपेयी के अनुसार– " 'रगभूमि' लिखे जाने के समय गॉधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन पराकाष्ठा पर था। गॉधी जी के सामाजिक, राजनीतिक तथा आदर्शमूलक विचारों से यह उपन्यास प्रभावित है। सूरदास नामक अन्धापात्र भारतीय ग्रामीण

जीवन का प्रतीक है तथा गॉधीवादिता मे पगा हुआ है। वह अन्धा निर्बल होने पर भी निष्ठावान है" (प्रेमचद साहित्यिक विवेचन पृ० 190)। यह सत्य है कि रगभूमि के समय गॉधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन चरमोत्कर्ष पर था, और इसमे प्रेमचद खुलकर गॉधीवाद का प्रचार करते नजर आते हैं और सूरदास पराधीन होते हुए भी स्वतत्रता के लिए अनवरत सघर्ष करता है और भारतीय (स्वतत्रता) जीवन का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है। साधनहीनता और शारीरिक रूप से अक्षम होने के बाद भी गॉधी के सत्य अहिसा का अनुकरण करते हुए अपनी जमीन छुडाने के सघर्ष मे मारा जाता है परन्तु अपने आदर्शों को नही छोडता है। सूरदास मे गॉधी जी द्वारा प्रतिष्ठित आशावादिता और अजेयता भी सूरदास के जीवन मे सन्निहित है। विरोधी भावो तथा गुणो का समन्वय होने के बावजूद सूरदास एक श्रेष्ठ चरित्र है। गोदान के रचनाकाल तक आते–आते प्रेमचद का मोह गॉधीवाद से भग हो जाता है।

डॉ० राजेश्वर गुरू लिखते है कि " प्रेमचद का आदि गान्धीवाद है और उनका अन्त साम्यवाद।" यह सत्य है कि प्रेमचद गॉधीवादी नही थे, परन्तु वे उनके हृदय परिवर्तन को मानते थे और सत्य, अहिसा, सेवा, त्याग की बातो को अपनी कृतियो मे रखने मे सकोच नही करते थे।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार– "बडे–बडे जीवन चक्रो को हाथ मे लेना, पेचीदा भाव धाराओ और सास्कृतिक परिवर्तनो के फलस्वरूप उठी हुयी जटिल समस्याओ का निरूपण करना, व्यक्ति, देश और जाति के जीवन के वृहद छाया आलोको को उद्घाटित कर सकना, साराश यह है कि जीवन के गहरे आर बहुमुखी घात–प्रतिघातो और विस्तृत जीवन दशाओ मे पद–पद पर आने वाले उद्वेलनो को चित्रित करना, उन्हे सम्हालना ओर अपनी कला मे उन सबको सजीव करना गुप्त (मैथिलीशरण गुप्त) और प्रेमचद के साहित्य सीमा के बाहर है" ('जयशकर प्रसाद'–भूमिका)। प्रमचद का जीवन दर्शन वही है जो विश्व के सभी श्रेष्ठ साहित्यकारो का होता है अर्थात मानवता का प्रचार। ससार मे सत–असत का जो सघर्ष चल रहा हैं उसमे वे सत् की प्रतिष्ठा और असत का विनाश चाहते हैं। जीवन के वृहत घात–प्रतिघातो को उनके उपन्यास रगभूमि, कर्मभूमि तथा गोदान मे स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। वाजपेयी जी ने एक आरोप प्रेमचद की रचनाओं पर यह भी लगाया है कि जीवन के प्रति उनकी कोई दृष्टि नही उभरती। आशय यह है कि उनका अपना कोई जीवन–दर्शन नहीं है।

विश्वम्भर 'मानव' इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि "जीवन के यथार्थ पर उनकी पूरी दृष्टि है, लेकिन अन्त मे वे अपने कथानक को आदर्श की ओर मोड देते हैं, इसी से बहुत से विवेचको ने उनमे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के दर्शन किए हैं। हिन्दी के महान् साहित्यकारो मे तुलसीदास और मैथिलीशरण गुप्त के समान नैतिकता के वे प्रबल समर्थक है और उनकी सास्कृतिक दृष्टि बहुत स्वच्छ है। यहॉ इस बात को हम पूरे विश्वास के साथ फिर दुहराना चाहते हैं कि प्रेमचद जी एक राष्ट्रवादी व्यक्ति थे और इस नाते राजनीति मे वे गॉधीवाद के प्रबल समर्थक थे। उन्होने अपने हित को राष्ट्रीय हित से एकाकार कर लिया था। उनका कथा–साहित्य हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलनो का एक विशाल दर्पण है। इस राष्ट्रीय चेतना का विश्व–मानवतावाद से कोई विरोध नही है। कुछ नये उत्साही समीक्षक तथ्यो को तोड–मरोडकर जो उन्हे साम्यवादी सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे है, वह उनकी भूल है। वे मूलत गॉधीवादी थे" ('हिन्दुस्तानी', प्रेमचद स्मृति अक 3-4, भाग 41, प्रेमचद एक प्रतिवाद पृ० 10)।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार–"कायाकल्प भारत वर्ष के आध्यात्मिक उत्कर्ष, योगियो के अलौकिक–कार्यो आदि के आधार पर बना है। इस उपन्यास को प्रेमचद जी की सामान्य उपन्यास धारा से अलग टूटी हुई एक स्वतन्त्र कृति मानना पडता है। यद्यपि सामाजिक चित्रण और समस्याये इसमे भी है, पर इसमे अलौकिक चमत्कारो की योजना एक नवीन वस्तु है जो प्रेमचद जी की साधारण प्रवृत्तियों से मेल नही खाती" (प्रेमचद साहित्यिक विवेचन पृ० 18–19)। कायाकल्प प्रेमचद जी की एक प्रयोगवादी रचना सी प्रतीत होती है। अलौकिकता और रहस्य के नवीन तत्व इसमे मिलते हैं। नायक चक्रधर को भी धार्मिकता अथवा साधुता की ओर उन्मुख किया है। घर छोडकर चले जाने वाला चक्रधर एक प्रकार का वैराग्य ही ग्रहण कर लेता है। आरम्भ मे प्रेमचद जी बडी स्वाभाविक रीति से बढते प्रतीत होते है, किन्तु अनायास ही अलौकिकता भरे चमत्कार दिखा कर प्रेमचद ने इसके ढॉचे मे कृत्रिमता पैदा कर दी है। साथ ही घटनाओ और पात्रो को भली–भॉति लेखक सॅभाल नही पाता और सयोग तथा परिस्थिति पर अवलम्बित कथानक गिरता–पडता आगे बढता है। प्रेमचद जी को कायाकल्प के प्रयोग में सफलता नही प्राप्त हुई।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार– "केवल भाषा या शैली सम्बन्धी विशेषताओ विशेषताओ को लेकर किसी लेखक को यथार्थवादी नहीं कहा जा सकता। उसका जीवन

दर्शन, चरित्र–चित्रण और कला की मुख्य प्रेरणा से ही उसकी परीक्षा होती है। इस दृष्टि से प्रेमचद जी यथार्थवादी नही हैं। उन्हे यथार्थोन्मुख आदर्शवादिता से क्या तात्पर्य हो सकता है? साहित्य मे यथार्थवादी और आदर्शवादी रचना के दो अलग–अलग विभाग हैं" (प्रेमचद–साहित्यिक विवेचन पृ० 21)। प्रेमचद यथार्थ तथा आदर्श को लेकर अपनी रचनाओ का सृजन करते है और दोनो के समन्वय को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का नाम देते हैं, साहित्य मे यह अभी तक प्रतिवाद के रूप मे माना जाता है परन्तु प्रेमचद का प्रयोग काफी हद तक सफल भी होता है। परन्तु अन्तिम समय की रचनाओ मे यह मोहभग हो जाता है। 'कफन' ओर 'गोदान' इसका सशक्त उदाहरण है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार– "प्रेमचद क अन्तिम उपन्यास 'गोदान' के सम्बन्ध मे यह प्रश्न अवश्य उपस्थिति होता है कि उसे आदर्शवादी किस आधार पर कहे। गोदान मे समस्या के निर्णय का कोई प्रयत्न नही है, परन्तु चरित्र निमार्ण और कथानक के विकास–क्रम मे प्रेमचद जी भारतीय किसान के आदर्श–स्वरूप को भूले नही है। उपन्यास का नायक होरी सारी बाधाओ और सकटो के सहते हुए भी अपने मूल आदर्श का विस्मरण नही कर सका है। वह अन्तत आदर्शवादी है" (प्रेमचदः साहित्यिक विवेचन पृ० 22)। गोदान उपन्यास का कथानक एक सीदे–सादे कथानक पर आधारित हे। वह ग्रामीण जीवन के दैन्य और सामाजिक वैषम्य को प्रदर्शित करता है। होरी का युग भारतीय राष्ट्र नव जागृति की अगडाइयॉ लेकर उठ रहा है, उसके जीवन मे वैयक्तिक सघर्ष है। परन्तु वह उस पर विजय पाने की कामना लेकर दैन्य और दुख भोगता रहता है आर उसका जीवन नवजागृति का सपना देखते–देखते जीवन से पलायन कर जाता है इसलिए यह कोरा आदर्शवाद गोदान मे जगह–जगह प्रतिबिम्बित होता है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार– " प्रेमचद जी पात्रो का निमार्ण करने मे जितने कुशल है उतने उनका निर्वाह करने मे नही। कई पात्रो को बीच मे ही अस्वाभाविक अकाल मृत्यु का शिकार बनना पडता है" (प्रेमचद· साहित्यिक विवेचन पृ० 18)। प्रेमचद ने पात्रो की वर्गगत प्रवृत्तियो का चित्रण ऐसे कौशल से किया है कि अन्य उपन्यासकार वहॉ तक पहुॅच नही पाये। गतिशीलता और जीवन सघर्ष की दृष्टि से प्रेमचद के उपन्यासो के पात्र बहुत अधिक प्रभावोत्पादक है। उनके उपन्यासो मे चरित्र चित्रण की प्रधानता है, घटनाये गौण रूप से आती हैं, प्रत्येक पात्र का कथानक मे योग आवश्यकतानुसार ही रहता है। वह कथा–विकास में अपना योग देकर डट जाते हैं, जैसे– 'सेवा–सदन उपन्यास में

पूर्वार्द्ध मे सुमन की कहानी को प्रमुखता देने के पश्चात उत्तरार्द्ध मे शान्ता की कहानी को प्रमुखता देते है। इसी प्रकार उन्होने 'गोदान' मे भी दो पात्रो होरी और धनिया को कथानक मे आद्यन्त बने रहने देते है। बाकी सभी पात्रो को घटनानुसार उपस्थित करते हुए भी दूसरा रास्ता दिखा देते है।

आलोचको ने प्रेमचद के सन्दर्भ मे कहा है कि वे समस्याओ को यथा सम्भव ओपन्यासिक कला के भीतर रखने और सुलझाने मे प्राय पात्रो को अपनी इच्छानुसार मोड लेते है। यही कारण है कि कुछ आलोचक उनके पात्रो को कठपुतली पात्र की सज्ञा देते हैं। अर्थात उनका चरित्राकन बडा दुर्बल है। उनके पात्र स्थान–स्थान पर लेखक की इच्छानुसार कठपुतली की तरह नाचने लगते है। अत उनके चरित्रो मे मानव मनोविज्ञान का दोष आ जाता है, क्योकि मनुष्य का मन इतना सरल नही होता जा सुगमता से अपनी इच्छानुसार मोडा जा सके, विशेष परिस्थितियो मे अथवा लम्बा समय निकालने के बाद भी चरित्र परिवर्तन कभी–कभी सम्भव होता है। अत प्रेमचद के पात्र कही–कही पर निसन्देह निर्जीव से लगते है।

मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार "किसी चरित्र को आकस्मिक तौर पर बदल डालने, घटनाओ मे चरित्रो का बौना बना डालने, यथार्थ से शुरू कर आदर्श पर पहुँचने के लिए कई पात्रो की हत्या कर डालने आदि के आरोप उन पर लगाये गये" (कथाकार–प्रेमचद, पृ० 135)। रगभूमि का सूरदास अतिश्योक्ति के सहारे और प्रेमचद की कलम के बल पर खडा हे। 'गबन' मे आदर्श की बेदी पर यथार्थ की बलि चढा दी गयी। अत. प्रेमचद की महानता चरित्राकन मे दृष्टिगोचर नही होती। अत· उनके उपन्यासो को व्यक्ति चरित्र के उपन्यास कहना उनके महत्व को कम करना है।

प्रेमचद अपने कलात्मक उद्देश्य मे एक सफल कथाकार हैं क्योकि अपने पूर्ववर्ती कथाकारो की भॉति उन्होने शिल्प विधान मे किसी परम्परा का अनुकरण नही किया बल्कि अपने शिल्प विधान को स्वय रचा और अपनी रचनाओ मे आदर्शोन्मुखी–यथार्थवाद को प्रमुखता दी जो समकालीन साहित्य मे क्रातिकारी साबित हुआ। यह सत्य है कि प्रेमचद की रचनाओ मे उद्देश्यवाद या ध्येयवाद की प्रधानता है परन्तु कुछ पात्रों के चरित्र मे वर्गगत एव जातिगत के मोह से वे मुक्त नहीं हो पाते हैं और अनावश्यक पात्रो को हटाने के लिए जैसा कि आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने दिखाया हैं, वे ऐसे पात्रो की हत्या या आत्म–हत्या कराने

से नही चूकते। यदि इसमे सफलता नही मिलती है तो वर्तमान आन्दोलनो मे अपने पथ–प्रदर्शक गॉधी जी का लेबल लगा कर कथा की इति श्री कर देते हैं।

इलाचन्द्र जोशी

इलाचद्र जोशी ने प्रेमचद के जीवन काल मे उनकी रचनाओ पर विरोध मे लेख लिखे थे। उनमे कुछ जवानी का जोश ज्यादा था। बाद मे उनकी पुस्तक 'विश्लेषण' (1948 ई०) मे प्रेमचद पर लिखे उनके दो लेख सकलित हे। इनमे उन्होने गभीरतापूर्वक प्रेमचद के साहित्य पर विचार किया है और कई जगह अपनी असहमतियॉ प्रकट की हैं। प्रेमचद साहित्य की आलोचना–प्रक्रिया मे जोशी जी के मूल्याकन का अपना महत्त्व है।

इलाचद जोशी के अनुसार प्रेमचद की रचनाएँ पुरूष प्रधान हैं। उनकी कला का असाधारण पौरूष अपनी अदम्य तीव्रता से पाठक समाज का चकित कर देता है। राष्ट्र, मानवतावाद, विश्वविजय, विश्वमैत्री, सभ्यता और सस्कृति क विभिन्न छायात्मक आदर्शों के पीछे सनातन पुरूष भटकता फिरता है। पुरूष की प्रवृत्ति सदव बाह्य केन्द्रित रही है। नारी की प्रवृत्ति केन्द्रोन्मुख है। नारी मूल सत्ता के केन्द्र को अनत काल से जकडे हुए है। प्रेमचद ने पुरूष प्रवृत्ति के रहस्य का परिचय अवश्य प्राप्त किया है। पर मूल प्रकृति नारी की आत्मा के भीतर उन्होने गहरी दृष्टि नही डाली है। नारी सारी सृष्टि के मूल मे है। प्रेमचद ने अपने लेखन मे नारी तत्त्व की उपेक्षा की हे। उनके नायक अनेक दुर्बलताओ का सामना करते हुए छायात्मक आदर्शों के पीछे मर मिटते है। कोई राष्ट्रीयता के पीछे पागल होता है तो किसी को नैतिक आदर्शों की धुन होती है। अपने इन चरित्रो का चित्रण प्रेमचद ने सुदर रूप से किया है। विश्व के वात्याचक्र के मैदान मे उनके पुरूष पात्र अनत कीर्ति के लिए लडते चले जाते है। पर उनके अतरतम के किसी कोने मे जो अत्यत सुकुमार भाव छिपे हैं, उन्हे प्रेमचद ने छुआ तक नही। सृष्टि के मूल मे यह जो सनातन नारी हे उसके प्रति प्रेमचद ने अवज्ञा प्रदर्शित की है। समस्त श्रेष्ठ रचनाकारो ने नारीत्व के शाश्वत भाव को अपनाया है। रामायण के केन्द्र में सीता और महाभारत के केन्द्र मे द्रौपदी है। विश्व साहित्य की महान कृतियॉ सनातन नारीत्व से ओतप्रोत रही है।

इलाचद्र जोशी का आरोप है कि प्रेमचद ने अपने स्त्री चरित्रो को वैयक्तिक रूप नही दिया है। वे सब एक मूर्तिमान भाव हैं, विशेष आदर्शों के काल्पनिक प्रतीक हैं। उनके सुख–दुख उनकी अन्तरात्मा से नही स्फुटित हैं। यही कारण है कि प्रेमचद के उपन्यासो की दुनिया महिलाओ को एकदम विजातीय और कल्पित मालूम होती है। प्रेमचद की राष्ट्रीयता से भाराक्रान्त रचनाओ मे नारी के सत्तात्मक सुख–दुख की अवहेलना की गई है। इलाचन्द्र जोशी का कहना है कि प्रेमचद के उपन्यासो का मूलगत दोष यह है कि उनकी रचनाओ के पीछे आभ्यतरिक अनुभूति नही, बाह्य चक्रो की प्रेरणा है। 'रगभूमि' की सोफिया के चरित्र मे उनके अनजाने मे पौरूष भाव आया है। उसका हृदय मातृत्व की ऑच मे नही तपा है। उसका सुख सत्तारहित और दुख असत्य है। उसकी सहानुभूति मे नारी की सम्वेदना का कोई आभास नही झलकता है। वह एक आकाशचारिणी पक्षी है जो पृथ्वी के निवासियो पर दो–चार बूँद ऑसू गिराने का शौक रखती है। ऐसा लगता हे जैसे रगमच पर पात्र अभिनय कर रहे है। जीवन्तता का अभाव है। प्रेमचद के नारीपात्र राष्ट्रीय आदोलन मे भाग लेने वाली कठपुतलियो के सिवा कुछ नही है। नारी हृदय की अतलव्यापी मार्मिक वेदना वह नही प्रस्फुटित कर पाये है। जोशी जी के शब्दो मे, 'प्रेमचद की कला मे मस्तिष्क का चमत्कार है, हृदय का नही। जहॉ मानव हृदय की सुकुमार भावनाओ के प्रस्फुटन का अवसर आया हे, वहॉ प्रेमचद की कलम रूक गई है। वस्तुत प्रेमचद के पात्र जीवित हाड–मास के व्यक्ति नही, नैतिक आदर्शो के मूत्तिमान प्रतीक है। 'रगभूमि' का सूरदास कल्पित आदर्शो का कठपुतला है, वास्तविक जगत का सजीव पात्र नही। होरी के चरित्र मे उसके अतर्द्वन्द्वो का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। इलाचद्र जोशी का निष्कर्ष हैः–

'प्रेमचद जी की कला मे स्थान–स्थान पर रसावेग अवश्य दृष्टिगोचर होता है। पर वह रसावेग भी कल्पना के दबाव से उत्पन्न होता है। वह उनका हृदयानुभूति जीवित सत्य नही है।'

जोशी जी 'सेवासदन' को एक सफल रचना मानते है। जोशी जी के अनुसार 'सेवासदन' पहला उपन्यास था जिसमे हिदी उपन्यास को बाजारू दुनिया से ऊपर उठाकर साहित्य के स्तर पर खडा किया। पर इसके बाद प्रेमचंद रस–रचना छोडकर तत्त्वालोचन मे लग गए। जोशी जी की दृढ मान्यता है कि नारी की मूल शक्ति से प्रेरित हुए बिना किसी भी यथार्थ सर्जनात्मक साहित्य की प्राण–प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। यद्यपि वे समसामयिक निन्दको को लताडते हैं तथा प्रेमचद की महत्ता बताते हैं कि उन्होंने ऐय्यारी–तिलिस्मी

उपन्यासो की बाढ से हिन्दी साहित्य का उद्धार किया। उनके अनुसार प्रेमचद के द्वारा हिदी कथा–साहित्य को प्रौढता प्राप्त हुई। प्रेमचद की भाषा की जोशी जी प्रशसा करते हैं कि उन्होने मुहावरेदार और रोजमर्रा की भाषा का सुन्दर प्रयोग किया। सस्कृत के तत्सम शब्दो से दूर रहे और तद्भव शब्दो का प्रचुर प्रयोग किया।

हजारी प्रसाद् द्विवेदी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शोध और आलोचना का क्षेत्र प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य रहा है। साहित्य की दूसरी परम्परा के खोजी प्रतिष्ठापक विद्वान होने के कारण उनका जोर लोकमत और लोक परम्परा पर ज्यादा रहा है। वाममार्ग और तान्त्रिक धारा के विवेचक विद्वान के रूप मे उनकी ख्याति रही है। तत्रों के कारण उनकी नारी विषयक दृष्टि विशिष्ट रही है और रवीन्द्र नाथ ठाकुर के प्रभाव के कारण साहित्य के मानवतावादी पक्ष पर उनका बल रहा है। आलोचक और निबधकार के अलावा उनकी ख्याति एक उपन्यासकार के रूप मे भी रही है जिसमे उन्होने तत्रो की विशिष्ट दृष्टि को व्यजित किया है। आधुनिक काल उनकी आलोचना का केन्द्र कभी नही रहा। आधुनिक साहित्य के विवेचन से उनकी अरूचि का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। फिर भी उनकी पुस्तक "हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास" मे प्रेमचद विषयक विचार मिलते है। प्रस्तुत सस्करण 1952 ई० का है जिस पर यह विवेचन आधारित है।

प्रारम्भिक युग के हिन्दी उपन्यासो मे कल्पना, रोमास, ऐय्यारी, तिलस्मी तथा ऐतिहासिक रूप मिलते थे। इनमे कच्चेपन के साथ–साथ प्रौढता का नितान्त अभाव था एवम् इनका विषय आदर्शवाद के रग मे भी रगा होता था। ये उपन्यासकार झोपडियो मे रहकर गगन चुम्बी प्रासादो का भी स्वप्न देखते थे और मखमली फर्श पर लगे हुए सोफो पर बैठने वाली नायिका उनके पात्रो मे प्रमुख रहती थी। प्रेमचद ने रगीन कल्पना को छोडकर यथार्थ को गहराई से पकडा और उसे अभिव्यक्ति देना अपने उपन्यास का लक्ष्य बनाया। हजारी प्रसाद द्विवेद्वी के अनुसार– "प्रेमचद ने अपने उपन्यासों और कहानियो को मानव जीवन का यथार्थ चित्रण ही कहा है।" (हिन्दी साहित्य . उद्भव और विकास– पृ० स० 225)।

प्रेमचद को हिन्दी–उर्दू दुनिया मे जबर्दस्त लोकप्रियता मिली, उसका कारण यही है कि उन्होने जनता के बीच से पात्रो को उठाया और उनकी विश्वसनीय तस्वीर खीची। जनता से गहरे लगाव के कारण वे इतने जनप्रिय हुए कि तुलसीदास के बाद कोई दूसरा साहित्यकार उनके समान नही पैदा हुआ। प्रेमचद की लोकप्रियता का आलम यह था कि उनके जीवन काल मे ही उनकी रचनाओ के अनुवाद विदेशी भाषाओ मे होने लगे थे। साहित्य मे उपेक्षित और पीडित जनता की प्रामाणिक तस्वीर पेश करने और उसकी जबर्दस्त पक्षधरता के कारण उनकी लोकप्रियता बढती गई। प्रेमचद के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित कहा है –

'प्रेमचद शताब्दियो से पीडित, पददलित और अपमानित कृषको की आवाज थे, वे पर्दे मे कैद, पद–पद पर लाछित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबर्दस्त वकील थे, गरीबो और बेकसो के महत्त्व के प्रचारक थे। अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकाक्षा, दुख–सुख और सूझ–बूझ जानना चाहते है तो प्रेमचद से उत्तम परिचायक आपको नही मिल सकता। झोपडियो से लेकर महलो तक, खोमचे वालो से लेकर बैको तक, गॉव से लेकर धारा सभाओ तक, आपको इतने कौशलपूर्ण और प्रामाणिक भाव से कोई नही ले जा सकता।' ('हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास' पृ० **266**)।

हिन्दी के सर्वप्रथम यथार्थवादी उपन्यासकार होकर भी प्रेमचद ने थोडा आदर्श को लेकर अपने उपन्यासो एव कहानियो मे महलो मे न जाकर सबसे पहले गॉव की झोपडियो की ओर गये और झोपडियो मे पडी आत्माओं को, फटेचिथडो के रूप मे उनके सरल और स्वाभाविक, सौन्दर्य का वर्णन किया जो वासना रहित था और इन लोगो मे उन्होने प्रेम की पीर महसूस की। ऐसा लगता है कि परिस्थितियो ने प्रेमचद को उत्पन्न किया था और उनका घायल हृदय सामाजिक–आर्थिक दशा को देखकर व्याकुल हो गया तथा उन्होने इसी दीन–हीन लोगो को ही अपना आदर्श चुना। डॉ० द्विवेदी जी के मत की पुष्टि डॉ० रामविलास शर्मा ने भी की है–

डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार "प्रेमचंद के कथा साहित्य में यथार्थ की धारा ही अधिक शक्तिशाली है।" (प्रेमचद· आलोचनात्मक परिचय पृ० स० **14**)। प्रेमचद धर्म को झूठा आडम्बर मानते थे और इसकी इन्होने अपने सभी उपन्यासों एवम् कहानियों में निन्दा की है तथा इसके उच्चतम बिन्दु को प्रेमचंद मानवता की श्रेष्ठतम सेवा मानते थे।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार प्रेमचद "धार्मिक ढकोसलो को ढोग समझते थे, पर मनुष्यता को वे सबसे बडी वस्तु मानते थे। प्रेमचद शताब्दियो से पद्दलित, अपमानित और शोषित कृषको की आवाज थे, पर्दे मे कैद, पद–पद पर लाक्षित और असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे।" (हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास–पृ० स० 229)। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रेमचद मानवतावादी लेखक थे और अपने उपन्यासो मे दमन के मूलभूत कारणो के विश्लेषण का प्रयास किया है। प्रेमचद ने रूढियो के विरूद्ध आवाज उठाई, और सुधारवादी पात्रो के माध्यम से कहलवाया है कि सामाजिक सस्थाये एव नियम मानव कल्याण के लिए बनाये गये हैं, मानव उनके लिए नही। प्रेमचद ने अपने उपन्यासो मे पीडित मानवता के पक्ष मे आवाज बुलन्द की है तथा शोषको ओर अत्याचारियो के खिलाफ गहरा आक्रोश व्यक्त किया है। 'उपन्यास' नामक निबन्ध के प्रारम्भ मे प्रेमचद कहते है कि– "मै उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र समझता हूँ। मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यो को खोलना ही उपन्यास के मूल तत्व ह।" (प्रेमचद कुछ विचार, पृ० स० 38)। डॉ० द्विवेदी जी क मत की पुष्टि करते हुए डॉ० नगेन्द्र प्रेमचद को मानवतावादी लेखक मानते है। उन्होने कहा है– "प्रेमचद के जीवन दर्शन का मूल तत्व है मानवतावाद"। प्रेमचद ने अपनी सभी कृतियो मे अत्याचार और अमानुषिक व्यवहार करने वाले लोगो के प्रति रोष तो व्यक्त किया ही है साथ ही उनका अत तक हृदय परिवर्तन कराने मे वे सफल होते है। डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार– "प्रेमचद का मानवतावाद मनुष्य की तरफदारी करने वाला मानवतावाद है, वह अमानुषिक भावनाओ को देखकर चुप नही रहता।" (प्रेमचद और उनका युग– पृ० स० 151)। प्रेमचद ने पूर्ववर्ती उपन्यासकारो से भिन्न एक नये मार्ग का अनुसरण नारी चित्रण मे किया है। इसके पहले इतना विशद विवेचन नही हुआ था। नारी को यह प्रताडना समाज की रूढियो से तथा आर्थिक दुरवस्थाओ के कारण मिलती है। इसके उदाहरण 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन' तथा 'निर्मला' मे देखे जा सकते हैं। निर्मला उपन्यास की प्रमुख पात्र की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए प्रेमचद कहते है कि "निर्मला की दशा उस पखहीन पक्षी की सी हो रही थी, जो सर्प को अपनी ओर आते देखकर उडना चाहता है पर उड नही सकता, उछलता और गिर पडता है" ('निर्मला' पृ० 76)। इस प्रकार प्रेमचद ने अपने उपन्यासों में ऐसी नारियों का चित्रण किया है जो परिस्थितियो मे जकड़ी भारतीय आदर्श नारी के रूप में समाज की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व बलिदान कर देती है। दूसरी ओर प्रेमचंद की बाबू वर्ग की

नारियॉ स्वाभिमानिनी एव विद्रोही है। परिस्थितियो की विषमता ने उनके पॉव बॉध दिये है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का प्रेमचद के बारे मे यह दृष्टिकोण अक्षरश सत्य है कि 'वकील का काम जिरह द्वारा सत्य का उद्घाटन करना होता है।' प्रेमचद ने नारी जीवन की समस्याओ को उठाकर समाज मे नारी की स्थिति पर प्रकाश तो डाला ही साथ मे उनकी प्रगति का पथ भी प्रशस्त किया। प्रेमचद का नारी विषयक दृष्टिकोण बहुत ऊँचा है,। प्रेमचद ने एक शहरी पात्र मि० मेहता से इसका स्पष्टीकरण करवाया है– "स्त्री पृथ्वी की भॉति धैर्यवान है, शक्ति सम्पन्न है, सहिष्णु है, पुरूष मे नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी मे पुरूष के गुण आ जाते है तो वह कुलटा हो जाती है" ('गोदान' पृ० 217)। एक स्थान पर मि० मेहता कहते है कि "नारी धरती के समान है, जिसमे मिठास भी मिल सकती है, कड़ुवापन भी, उसके अन्दर पडने वाले बीज मे ऐसी शक्ति है" ('गोदान', पृ० 249)। प्रेमचद का नारी विषयक दृष्टिकोण पुरूष प्रधान समाज द्वारा किये जाने वाले अत्याचारो पर करारी चोटे करता है।

प्रेमचद अतीत की कथा न कहकर विषय का आधार वर्तमान जीवन की समस्याओ को बनाते है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "प्रेमचद ने अतीत के गौरवगान का पुराना राग नही गाया। और न ही भविष्य की हैरत अगेज कल्पना ही की, वे ईमानदारी के साथ वर्तमान काल की अवस्था का विश्लेषण करते है" (हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास– पृ० स० 215)। यह सच है कि प्रेमचद समकालीन जयशकर 'प्रसाद' ने अपनी कृतियो मे अतीत का गौरवगान एव भारत की गरिमामय सस्कृति का वर्णन किया है परन्तु प्रेमचद उनकी तरह अतीत मे विचरण न करके वर्तमान की समस्याओ से टकराते है। वही रचनाकार सफल भी होता है जो तत्कालीन समस्याओ और ज्वलन्त प्रश्नो को लोगो के समक्ष प्रस्तुत करे, हो सके तो उसका वैसानिक या नैतिक हल भी पेश करे। प्रेमचद ने यह सब किया और पाठको के दिलो पर अधिकार किया। प्रेम विषयक दृष्टिकोण मे प्रेमचद ने अपने पूर्ववर्तियो (उपन्यासकारों) को काफी पीछे छोड दिया। उनका प्रेम वासना रहित है और उसमे त्याग एव पवित्रता की खूशबू आती है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– "प्रेमचद के मत से प्रेम एक पावन वस्तु है। वह मानसिक गन्दगी को दूर करता है, मिथ्याचार को हटा देता है और नई ज्योति से तामसिकता का ध्वस करता है" (हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास पृ० 229)। प्रेम के विषय मे कथाकार प्रेमचद के उज्जवल विचार हैं। प्रेमचद के अनुसार यह प्रेम ही है जो

मनुष्य को सेवा और त्याग की ओर अग्रसर करता है। जहाँ सेवा और त्याग नही वहाँ प्रेम नही, वासना का प्राबल्य है। सच्चा प्रेम सेवा और त्याग मे ही अभिव्यक्ति पाता है, अत प्रेमचद का पात्र जब प्रेम करता है, तब वह सेवा की ओर अग्रसर होने लगता है। इसमे वह अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है। प्रभुसेवक से बातचीत करते हुए 'रगभूमि' की सोफिया कहती है– " प्रेम और वासना मे उतना ही अन्तर है जितना कचन और कॉच मे। प्रेम की सीमा भक्ति से मिलती है, और उसमे केवल मात्रा का भेद रहता है। भक्ति मे सम्मान का और प्रेम मे सेवा भाव का आधिक्य होता है" (रगभूमि भाग 1– पृ० 145)।

डॉ० नामवर सिह ने 'दूसरी परम्परा की खोज' (1982 ई०) मे लिखा है, 'फक्कडपन का यह नशा उन दिनो द्विवेदी जी पर इस हद तक चढा था कि अप्रत्याशित रूप से प्रेमचद मे भी उन्हे अपना एक समानधर्मा दिखायी पड गया। प्रेमचद की मृत्यु के तीन वर्ष बाद नवम्बर 1939 ई० की 'वीणा' मे उन्होने 'प्रेमचद का महत्त्व' शीर्षक लेख प्रकाशित किया (बाद मे यह 'विचार और वितर्क'(1945 ई०) मे सकलित हुआ), जिसमे बडी आत्मीतया के साथ वे 'गोदान' के एक मौजी चरित्र मेहता का यह कथन उद्धत करते हैं मैं भूत की चिता नही करता, भविष्य की परवाह नही करता। भविष्य की चिन्ता हमे कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड देता है। हममे जीवनी शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य मे फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढियो और विश्वासो तथा इतिहास के मलबे के नीचे दबे पडे हैं। उठने का नाम ही नही लेतें। वह सामर्थ्य ही नही रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव धर्म को पूरा करने मे लगानी चाहिए थी, सहयोग मे, भाईचारे मे, वह पुरानी अदावतो का बदला लेने और बाप–दादो का ऋण चुकाने की भेट हो जाती है।' प्रेमचद के सदर्भ मे द्विवेदी जी के फक्कडपन का वह क्रातिकारी पहलू प्रकट होता है जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति कबीर की समीक्षा मे होती है। प्रेमचद का महत्त्व उनकी दृष्टि मे क्या था, इसका पता उनकी इस घोषण से चलता है कि 'वे अपने काल मे समस्त उत्तरी भारत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार थे।' उस समय शायद ही किसी ने इतने अकुण्ठ भाव से प्रेमचद के महत्त्व को पहचाना। द्विवेदी जी ही पहले आदमी हे जिन्होने हिन्दी जगत को यह बतलाया कि 'वास्तव मे तुलसीदास और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद प्रेमचद के समान सरल और जोरदार हिन्दी किसी ने नहीं लिखी।' ('दूसरी परम्परा की खोज', पृ० 48–49)।

प्रेमचद के बारे मे लिखते समय द्विवेदी जी प्राय उसी शब्दावली का प्रयोग करते हैं जो आगे चलकर कबीर के लिए काम आई। आचार्य द्विवेदी के अनुसार दुनिया की सारी जटिलताओ को समझ सकने के कारण ही प्रेमचद सरल ओर निरीह थे। धार्मिक ढकोसलो को वे ढोग समझते थे पर मनुष्य को वे सबसे बडी वस्तु मानते थे। उन्होने ईश्वर पर कभी विश्वास नही किया फिर भी इस युग के साहित्यकारो मे और मानव की सद्वृत्तियो पर उनका अटूट विश्वास था। मूलत वे बुद्धिवादी थे। 'गोदान' मे एक पात्र के मुँह से मानो वे अपनी बात कहते है.– 'जो वह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो मुझे हॅसी आती हे। यह मोक्ष और उपासना अहकार की पराकाष्ठा है जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है।' प्रेमचद ने ढोग को कभी बर्दाश्त नही किया, समाज को सुधारने के लिए बडी–बडी बाते सुझायी, स्वय उन्हे व्यवहार मे लाये। उनका कथन है, 'जो ज्ञान मानवता को पीस डाले, ज्ञान नही कोल्हू है।' वे समाज की जटिलताओ की तह मे जाकर उसकी टीमटाम और भब्भडपन का पर्दाफाश करने मे आनद पाते थे और दरिद्र किसान के आत्मबल का उद्घाटन करना अपना श्रेष्ठ कर्तव्य समझते थ। उन्हे कठिनाइयो से जूझने मे मजा आता था और तरस खाने वाले पर दया की मुस्कुराहट बिखेर देते थे।

आचार्य द्विवेदी के अनुसार प्रेमचद मानवातावादी लेखक हैं। अपनी रचनाओ मे वे यथार्थवादी धारा के प्रबल समर्थक है। साथ ही वे मनुष्यता को सबसे ज्यादा महत्त्व देते है तथा नारी जाति की विडम्बना को उजागर करते हैं। मध्यकालीन साहित्य के अध्येता का यह विवेचन प्रेमचद के कथा–साहित्य को एक अलग नजरिये से देखता है जिसमे एक तरह का नयापन है।

नगेन्द्र

'रस सिद्धान्त' के चर्चित आलोचक डॉ० नगेन्द्र ने 'आस्था के चरण' (**1968** ई०) नामक पुस्तक के एक लबे निबन्ध मे प्रेमचद विषयक विवेचन किया है। डॉ० नगेन्द्र का प्रेमचद के विषय मे यह विचार अति महत्वपूर्ण है कि प्रेमचद ने साहित्य को समग्ररूप मे देखा और चित्रित किया अर्थात साहित्य को किसी खानो मे या बाद मे न बॉटकर एक उद्देश्यपूर्ण रचना की सृष्टि की है और यही समग्र दृष्टि महान् साहित्यकार का मौलिक लक्षण है।

डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार "प्रेमचद का सबसे प्रधान गुण है, उनकी व्यापक सहानुभूति। उनके व्यक्तित्व का मानव पक्ष अत्यन्त विकसित था। भारत की दीन–दुखी जनता, गॉव के अपढ और भोले किसान और शहर के शोषित मजदूर, निम्नवर्ग के असख्य श्रम–श्रान्तवर्ग और वर्ण व्यवस्था के शिकार नर–नारी तो उनके विशेष स्नेह भाजन थे ही, परन्तु उनके अतिरिक्त अन्य वर्गों के प्राणी भी, उच्चवर्ग के राजा, उद्योगपति, जमींदार और हुक्काम, उधर मध्यमवर्ग के व्यवसायी, नौकरी पेशा लोग, समाज के पुराण पन्थी, पडित–पुरोहित भी उनकी सहानुभूति से वचित नही थे। ('आस्था के चरण'–पृ० 451)। प्रेमचद के साहित्य–अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने उपन्यास एव कहानी को अवास्तविकता तथा अतिरजना के आकाश से उतार कर यथार्थ और रागात्मक सम्बन्ध की ठोस भूमि पर प्रतिष्ठित किया। प्रेमचद का उद्देश्य अपने युग के समाज का एक व्यापक चित्र प्रस्तुत करना है, इसलिए उन्होने तत्कालीन समाज के विभिन्न वर्गों तथा उनकी विशेषताओ को ही अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रेमचद के उपन्यासो एव कहानियो मे तत्कालीन समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र मिलते हैं। ये धर्म के ठेकेदार पात्र, महन्त, पुजारी, पण्डे है जो तत्कालीन समाज के कर्मकाण्डो, अन्धविश्वासो की आड मे समाज को गर्त मे ढकेलते है। अछूतो के प्रति प्रेमचद को सहानुभूति हे, सुखिया चमारिन का बच्चा बीमार है वह मन्दिर मे ठाकुर जी का दर्शन करना चाहती हं ताकि उसका बेटा ठीक हो जाये। लेकिन धर्म के ठेकेदार पुजारी एव अन्य भक्त उसको मना करते हैं, तब सुखिया विद्रोही स्वर मे कहती है– "मेरे दर्शन कर लेने भर से ठाकुर जी को छूत लग जायेगी। पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है। पारस लोहा नही हो सकता। मेरे छूने से ठाकुर जी अपवित्र हो जायेगे, मुझे बनाया तो छूत नही लगी" ('मन्दिर'– मानसरोवर भाग 5, पृ० 12)। प्रेमचद का युग कृषक एव जमीदार के अत्याचारो के पीडित था, दूसरी ओर महाजन जोक की तरह उसका शोषण कर रहा था। 'गोदान' के प्रमुख पात्र होरी की विवशता देखी जा सकती है। मध्यवर्ग की विवशता एवम् यथार्थ से प्रेमचद भली–भॉति परिचित थे, और इसका जीवन्त उदाहरण 'गबन' है, जो एक दर्पण सदृश्य है, हमारी झूठी सस्कृति, फटीचर बाबू वर्ग के लोगो के आडम्बर और प्रेम का मार्मिक अकन एवम् काले धब्बो को प्रेमचद ने अपनी तूलिका से गहराई मे जाकर चित्रित किया है। डॉ० त्रिभुवन सिह, नगेन्द्र के विचारो से सहमत नहीं है– "मुख्यतः मध्यवर्ग जिनकी आर्थिक नींव अत्यन्त खोखली है, आभूषण प्रेम के कुपरिणामो से इतना पीड़ित हैं कि इसका अस्तित्व ही कभी–कभी सन्देहास्पद हो जाता

है" ('हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद'–पृ० 196)। प्रेमचद ने अपने उपन्यासो मे पाप पर प्रहार किया है और गॉधी जी से प्रभावित होने कारण पापी से घृणा का सिद्धान्त नकारते है। 'सेवासदन' का पद्म सिह कहता है– "हमे उनसे घृणा करने का (वेश्याओ से) कोई अधिकार नही है, यह उनके साथ घोर अन्याय होगा, यह हमारी ही कुप्रथाऍ हैं जिन्होने वेश्याओ का रूप धारण किया" ('सेवासदन'–पृ० 148)।

डॉ० नगेन्द्र प्रेमचद को एक साधारण व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति मानते थे और उनके जीवन को एक सन्त तथा फकीर से सुशोभित करते हैं एवम् जीवन मे अवैध कमाई तथा धन के लालची रूप मे न पडने की प्रशसा करते हैं। प्रेमचद ने अपने वास्तविक जीवन मे लोभ के चक्कर मे न पडकर कभी भी अपने आदर्शों को नही छोडा और न ही कभी अपने सिद्धान्तो को छोडा। 'गोदान' मे गोविन्दी अपने पति खन्ना से कहती है – "सत्य पुरुष धन के आगे सिर नही झुकाते। वह देखते है तुम क्या हो। अगर तुममे सच्चाई है, त्याग है, पुरुषार्थ है तो ये तुम्हारी पूजा करेगे" ('गोदान' – पृ० 397) आर्थिक दशा एवम् अनमेल विवाह की कथा कहने मे प्रेमचन्द अत्यन्त माहिर हैं। 'निर्मला' उपन्यास इसका सजीव उदाहरण है। प्रेमचन्द के साहित्य मे काम को तिरस्कार होते हुए भी कभी कभी प्रतिपाद्य विषय का स्थान पा गया है, परन्तु प्रेमचन्द के समकालीन हिन्दी के उपन्यासकार इसमे लिप्त पाये गये है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार – "ये उपन्यास सभी निभ्रान्ति रूप से किसी न किसी आदर्श को लेकर चलते है। इनकी घटनाऍ नैत्विक और यथार्थ है परन्तु उनका नियोजन एक विशेष आदर्श के अनुसार किया गया है" ('आस्था के चरण' पृ० 455–456)। वास्तव मे हिन्दी साहित्य मे प्रेमचन्द यथार्थवादी उपन्यासकार के रूप मे दृष्टिगोचर होते है। प्रेमचन्द अपने उपन्यासो की शुरुआत स्वाभाविक एवम् यथार्थवादी दृष्टि से करते हैं परन्तु अन्त तक जाते – जाते उनकी दृष्टि आदर्शवादी हो जाती है। सभी दुष्ट पात्रो का ह्दय परिवर्तन हो जाता है जिससे आदर्श की सृष्टि होती है। उनके कथा साहित्य का पूर्वाद्ध अत्यन्त यथार्थवादी और उत्तरार्द्ध आदर्शवादी हो जाता है। प्रेमचद का आदर्श उपयोगिता का शत–प्रतिशत पहलू रखता है। प्रेमचन्द लिखते हैं– "साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्श को उपस्थित करना है, जिसे पढकर हम जीवन मे कदम – कदम पर आने वाली कठिनाइयो का सामना कर सके" (हस – जनवरी 1935)। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओ मे समाज की सभी अच्छी–बुरी विषयक बातों की ओर सकेत किया है। इसमें सबसे प्रमुखता

वह विवाह को देते हैं। विवाह को प्रेमचन्द एक पवित्र बधन मानते हैं और इसे तोडने के पक्षधर तो वे थे ही नही। एक कहानी के माध्यम से अपनी बात भी उनका कथन है:–

'मेरा मन प्रेमचंद को प्रथम श्रेणी का कलाकार मानने को प्रस्तुत नही है। अर्न्तद्वन्द्व के अभाव के कारण वे आत्मा की गहराइयो मे नही उतरते। प्रेमचद का विचार–क्षेत्र विवेक से आगे नही बढता। चिंतन और गभीर दर्शन उसकी परिधि मे नही आते। इसीलिए उनमे बोद्धिक सघनता और दृढता का अभाव है और उनके उपन्यासों के विवेचन आदि मे एक प्रकार का पोलापन मिलता है। वास्तव मे, ये साधारण व्यक्तित्व के सहज अभाव है। साधारण व्यक्ति कुल मिलाकर द्वितीय श्रेणी का व्यक्तित्व ही रहता है। प्रेमचद पहली श्रेणी मे नही आते।' ('आस्था के चरण', पृ० 457)। नगेन्द्र अन्तर्द्वन्द्व विषयक धारणा तो अस्वीकार करते ही है, साथ प्रेमचद मे विवेक के कारण गहराई का अभाव पाते हैं। चितन और गम्भीर दर्शन उनकी परिधि मे नही आते। इसलिए उनमे बौद्धिक सघनता और दृढता का अभाव भी पाते है। इसी कारण उनके उपन्यासो मे पोलापन मिलता हें। इसके साथ ही वे प्रेमचद मे साधारण व्यक्तित्व का सहज अभाव पाते है। उनका रचनाकार द्वितीय श्रेणी का है। इसलिए प्रेमचद पहली श्रेणी मे नही आते है। सच तो यह है कि प्रथम और द्वितीय श्रेणी के भेद का दो कथाकारो की तुलना मे कोई विशेष महत्व नहीं रखता। क्योकि प्रत्येक कथाकार विशेष वातावरण, विशेष परम्पराओ और विशेष परिस्थितियो की उपज होता है। डॉ० नगेन्द्र, प्रेमचद मे आध्यात्मिकता और नैतिकतावादी दृष्टि को पलायन का आधार नही मानते है, क्योकि कफन' उनकी यथार्थवादी कहानी है। इसमे भी आस्था का सकेत है।

डॉ० नगेन्द्र के विचारो का विरोध करते हुए विश्वम्भर 'मानव' कहते हैं– "डॉ० नगेन्द्र ने प्रेमचद जी को द्वितीय श्रेणी का कलाकार सिद्ध करने के लिए जो कारण दिये है वे मूलत· निषेधात्मक है। प्रथम यह कि उनकी रचनाओ मे अन्तर्द्वन्द्व का अभाव है, क्या यह बात 'सेवासदन' की सुमन, 'रगभूमि' की सोफिया और विनय तथा 'प्रेमाश्रम' की गायत्री आदि के चरित्र को लेकर कही जा सकती है? गोदान में होरी जब रूपा के विवाह में दो सौ रूपये लेता है, तो दरिद्रता की विवशता में, यह एक प्रकार से लडकी बेचना है। उस समय उसके हृदय की व्यथा क्या किसी से कम है? कमी शायद यह है कि इन पात्रो का अन्तर्द्वन्द्व, फ्रायड के मनोविज्ञान के, जिसके डॉ० नगेन्द्र विशेषज्ञ हैं, अनुकूल नहीं है। दूसरी कमी बतायी है चिंतन और गम्भीर दर्शन की और उसके आधार पर बौद्धिक सघनता और दृढता को। बौद्धिकता का नारा पश्चिम का दूसरा नारा है। इसमें पहले तो यह सोचना

चाहिए कि प्रेमचद का जो रचना ससार है, अर्थात देश के सामान्यजन का, उसमे बौद्धिकता के उन्मेष के लिए कहॉ स्थान है? इस देश के अशिक्षित किसान और मजदूर और इसी स्तर के अन्य शोषित व्यक्तियो के जीवन मे गम्भीर दर्शन के विवेचन की गुजाइश कहॉ है? इतना तो सभी जानते है कि प्रेमचद गॉधीवादी थे और यदि गॉधी जी का कोई जीवन दर्शन नही था, तो प्रेमचद का भी नही था। गॉधी जी के विचारो का समर्थन प्रेमचद ने वृहत्तर आशय के लिए किया है। वह है मानवता की प्रतिष्ठा, जो एक अर्न्तराट्रीय मूल्य है। गॉधीवाद उनकी रचनाओ मे एक साधन ही है" ('प्रेमचद एक प्रगतिवाद'– पृ० **11**)।

डॉ० नगेन्द्र के प्रेमचद के कथा साहित्य मे पोलापन वाली टिप्पणी पर विश्वम्भर 'मानव' हस्तक्षेप करते हुए कहते है कि "प्रेमचद भारतीयता और विश्वमानवता के सच्चे प्रतिनिधि है। वे सभी दृष्टियो मे प्रथम श्रेणी के एक प्रतिभाशाली कलाकार है। ऐसी दशा मे यदि डॉ० नगेन्द्र को उनके विचारो मे पोलापन दिखाई देता है, तो इसे उनका दृष्टिदोष समझना चाहिए। ऐसी ही हल्की धारणा उन्होने 'प्रसाद' की कामायनी के सबध मे व्यक्त की थी। परन्तु आगे चलकर उसमे सुधार कर लिया।" (प्रेमचद एक प्रतिवाद–पृ० **11–12**, 'हिन्दुस्तानी', प्रेमचद स्मृति अक, जुलाई **1980**)।

प्रेमचद की महानता के कई कारण है। पहला यह कि उनकी रचनाओ का धरातल बहुत व्यापक है। वे एक युग और देश की वाणी है। अत उनमे महाकाव्य जैसा विस्तार पाया जाता है। वे अपने युग की राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक थे, अत उनके साहित्य मे वैसी ही गभीरता, उच्चाशयता और पवित्रता पाई जाती है। एक महान राष्ट्र के महान सघर्ष के अनेक पहलुओ को प्रतिबिम्बित करने के कारण, उनका साहित्य इस देश के इतिहास को जीवन्त ढग से प्रस्तुत करता है। अत वह इतिहास के रूखे तथ्यो की तुलना मे अधिक रोचक और स्थायी है। अपने देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियो का जैसा सही चित्र उन्होने अकित किया है, वैसा हिदी का दूसरा कोई कथाकार नही कर पाया। इस व्यापक विषय के अनुरूप ही उनकी ऐसी सहज, सरल और अनुपम है कि उसका अनुकरण करना असभव है। डॉ० नगेन्द्र ने प्रेमचद के सबध में बहुत हल्की धारणाऍ व्यक्त की हैं जो उनके पूर्वाग्रह की सूचक है। आलोचक का प्रेमचद को दोयम दर्जे का रचनाकार कहना स्वय आलोचक और उसकी आलोचना के लिए ज्यादा मौजूँ है। प्रेमचद का लेखन आकाश से नही टपका। वह समकालीन समाज के भीतर से आया है। उनकी रचनाओ की पारदर्शिता

इतनी अधिक है कि उसके भीतर से जीवन की गहराई बडी साफ दिखाई पडती है। उनके साहित्य मे ताजगी है, समय का ताप है जिसके भीतर पीडित समाज की व्यथा है।

नलिन विलोचन शर्मा

गैरमार्क्सवादी आलोचको मे आचार्य नलिन विलोचन शर्मा दूसरे महत्त्वपूर्ण आलोचक हे (हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद) जिनकी आलोचना का स्वर प्रेमचद के समर्थन मे फूटा है। उनकी आलोचना कृति 'हिन्दी उपन्यास विशेषत प्रेमचद' (**1968** ई०) प्रेमचद का सहानुभूतिपूर्वक विश्लेषण करती है, पर अब यह अनुपलब्ध हे। उनके प्रेमचद सबधी विचारो का बीज उनके लेख 'हिन्दी उपन्यास' मे द्रष्टव्य है जो 'हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियॉ' (दूसरा सस्करण, **1958** ई०) मे सकलित है। प्रस्तुत अध्ययन इसी पर आधारित है।

आचार्य नलिन विलोचन शर्मा के अनुसार हिदी उपन्यास का इतिहास हिदी भाषी क्षेत्र की सभ्यता और सस्कृति के नवीन रूप के विकास का साहित्यिक प्रतिफलन है। समृद्धि और ऐश्वर्य की सभ्यता महाकाव्य मे अभिव्यजना पाती है, जटिलता, वैषम्य और सघर्ष की सभ्यता उपन्यास मे। हिदी उपन्यास यदि आज पश्चिमी उपन्यासो के समकक्ष सिद्ध नही होते तो इसलिए कि हमारी वर्तमान सभ्यता अपेक्षाकृत पश्चिम के आज भी कम जटिल, कम उलझी हुई और कही ज्यादा सीधी–सादी है। हिदी उपन्यास की छोटी अवधि मे भी अग्रेजी या फ्रेच भाषा के उपन्यास के विस्तीर्ण इतिहास की विकास–प्रक्रियाओ की सक्षिप्त किन्तु पूर्ण रूपरेखा विद्यमान है।

नलिन विलोचन शर्मा का कथन है कि प्रेमचद हिदी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक है। 'गोदान' के पहले तक के प्रेमचद हिदी उपन्यास के अतीत की चरम परिणति के पथ चिह्न है। हिंदी उपन्यास के विकास की सीमा रेखाएँ अधिक नहीं हैं, मुख्यतया दो हैं और ये उपन्यासकार प्रेमचद मे निहित है– 'प्रेमचद उस शिखर के समान हैं जिसके दोनो ओर पर्वत के दो भागों के उतार–चढाव हैं।'

नलिन विलोचन शर्मा ने लिखा है कि 'हिदी का उपन्यास साहित्य वह पौधा था, जिसे अगर सीधे पच्छिम से नहीं लिया गया हो तो उसका बॅगला कलम तो लिया ही गया था। अपने आरभिक दिनो में उपन्यास मुख्यतः मनोरंजन का साधन था। उस समय वह

सामाजिक जीवन के सत्य का वाहक बन सकने के लिए भी प्रयास कर रहा था। प्रेमचद के पूर्व श्रीनिवास दास, बालकृष्ण भट्ट और राधाकृष्ण दास ने उपन्यास को मनोरजन के स्तर से ऊपर जरूर उठाया था, किन्तु उन्होने प्रेमचद को प्रभावित किया था (जैसा कि डॉ० रामविलास शर्मा ने 'भारतेन्दु युग' मे दिखाया है) यह उद्भावना निराधार है। नलिन जी के शब्द है –

'प्रेमचद के उपन्यासो मे हिन्दी उपन्यास की ये दोनो धाराएँ सहसा एक होकर अतिशय महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं। प्रेमचद के उपन्यास आपातत मनोरजन के साधन भी है ओर सत्य के वाहक भी। स्वय प्रेमचद के उपन्यासो मे भी 'गोदान' इसका अपवाद है– वह मात्र सत्य का वाहक है।' (उपर्युक्त, पृ० 23)।

आचार्य शर्मा के अनुसार प्रेमचद मे हिन्दी उपन्यास की क्षीण और लक्ष्यहीन धाराएँ सम्मिलित होकर महानद बनी और उनके जीवन काल मे ही वे अनेक मद–तीव्र धाराओ मे विभक्त भी हो गई। मुख्य धारा से हटकर स्वय प्रेमचद भी एक सर्वथा नवीन दिशा की ओर मुडे थे। यह उनका सबसे महत्त्वपूर्ण, मौलिक और महान प्रयास था। लेकिन इसमे प्रेमचद अकेले ही रह गए। उनके इस प्रयोग का अनुकरण दूसरे रचनाकारो ने नही किया जिस तरह उनके पूर्ववर्ती उपन्यासो का किया था। इस तरह 'गादान' हिन्दी की ही नही स्वय प्रेमचद की भी एक अकेली औपन्यासिक कृति है जिसका विराट विस्तार, तटस्थ यथार्थता और सरलता किसी दूसरे भारतीय उपन्यास मे नही दिखती।

उन्होने हिदी आलोचको के इस दृष्टिकोण की आलोचना की है कि 'गोदान' की कथावस्तु असम्बद्ध है। नलिन जी के अनुसार, 'वस्तुत' यही 'गोदान' के स्थापत्य की वह विशेषता है जिसके कारण उसमे महाकाव्यात्मक गरिमा आ जाती है। नदी के दो तट असम्बद्ध दीखते है पर वे वस्तुत. असम्बद्ध नही रहते– उन्ही के बीच से जल–धारा बहती है। इसी तरह 'गोदान' की असम्बद्ध–सी दीख पड़ने वाली दोनो कहानियो के बीच से भारतीय जीवन की विशाल धारा बहती चली जाती है। भारतीय जनजीवन का, जो एक ओर तो नागरिक है और दूसरी ओर ग्रामीण और जो एक साथ ही अत्यत प्राचीन भी है और जागरण के लिए छटपटा भी रहा है, इतने बड़े पैमाने पर इतना यथार्थ चित्रण हिन्दी मे ही क्यो, किसी भी भारतीय भाषा के किसी उपन्यास में नहीं हुआ है।' (उपर्युक्त, पृ० 24)। इस तरह 'गोदान' के स्थापत्य के वैशिष्ट्य को नलिन विलोचन शर्मा ने सर्जनात्मक स्तर पर

खोला है तथा बताया है कि यदि उसका स्थापत्य कृत्रिम होता तो भारतीय जीवन के वैविध्य को इतने विराट स्तर पर अकित करने मे सफल नही होता।

हिन्दी उपन्यास के विकास क्रम मे प्रेमचद के महत्त्व को उजागर करने के बाद आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने प्रेमचद की भाषा पर टिप्पणी की है। उनके अनुसार प्रेमचद के पूर्ववर्ती और समसामयिक उपन्यासकारो के लिए भाषा चुनौती के रूप रही है। इस समय तक ये रचनाकार अँग्रेजी गद्य की बारीकियो को समझ सकने मे असमर्थ थे। सस्कृत का मोह भी बाधा के रूप मे था। उस समय केवल अपवाद रूप मे देवकीनदन खत्री ने सरल भाषा मे लिखकर अपार लोकप्रियता प्राप्त की। इस सदर्भ मे नलिन जी के विचार महत्त्वपूर्ण है –

देवकीनदन खत्री की लोकप्रियता और सफलता की चाह रखने वाले लेखक यह नही समझते थे कि खत्री जी का रहस्य सुरग और लखलखा नही था बल्कि भाषा की वह सादगी थी जो अमोघ सिद्ध होती थी। प्रेमचद ने, जिन्होने अपने समय के असख्य युवको की तरह देवकीनदन खत्री की पुस्तके चाव से पढी थी, भाषा की इसी सादगी को शैली की विशिष्टता मे रूपान्तरित और उन्नत किया था। यह प्रेमचद के लिए तब सभव हुआ जब उन्होने उर्दू गद्य का आकर्षक दोष, जबानदराजी का मोह, कठिनता से, पर कठोरतापूर्वक, धीरे–धीरे बिल्कुल छोड दिया। 'गोदान' मे प्रेमचद की शैली उर्दू गद्य की अलकारिकता के निर्भीक से सर्वथा मुक्त हो गई है। 'गोदान' की महत्ता का, स्थापत्य कौशल के अतिरिक्त, शैली मुख्य कारण है।' (उपर्युक्त, पृ० 25–26)।

वस्तुत प्रेमचद की तरह मुहावरेदार, चलती, सरल आर टकसाली भाषा दूसरे लेखक नही लिख पाये। नलिन विलोचन शर्मा का उपर्युक्त प्रेमचद विवेचन सर्जनात्मक आलोचना का प्रतिमान प्रस्तुत करता है जो प्रेमचद के साहित्यिक महत्त्व को उद्घाटित करने के साथ ही समीक्षक की मौलिकता को भी प्रकट करता है।

इन्द्रनाथ मदान

डॉ० इन्द्रनाथ मदान की ख्याति आधुनिक समीक्षक के रूप में रही है। उपन्यास–आलोचना के क्षेत्र मे उन्होनें महत्त्वपूर्ण काम किया है। नई समीक्षा के सिद्धान्तों से

उनकी आलोचना प्रभावित रही है, पर वे उसके सैद्धान्तिक विवेचन मे नही उलझे हैं। उनका कार्य व्यवहारिक समीक्षा का है। 'कृति' की राह से गुजरने का नारा देकर उन्होने नई समीक्षा के सिद्धान्तो को व्यवहारिक रूप दिया। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि रचना का मूल्याकन इतर मापदडो या विचारधाराओ के आधार पर नही – कृति के आधार पर होना चाहिए। 'आज का हिन्दी उपन्यास' और 'हिन्दी उपन्यास एक नई दृष्टि' उनकी चर्चित कृतियॉ है। प्रस्तुत अध्ययन उनकी पुस्तक 'प्रेमचन्द एक विवेचन (सन् 1989 ई०)' पर आधारित है।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान का यह प्रेमचन्द विषयक विवेचन समाजशास्त्रीय परम्परा का हे। समीक्षक की यह स्पष्ट मान्यता है कि कोई भी लेखक चाहे वह कितना ही महान क्यो न हो, अपने समय की उपज होता है। यहॉ यह उल्लेखनीय है कि यह समीक्षक की आरभिक कृति है। इसमे कच्चापन बहुत है तथा प्रौढता का अभाव है।

साहित्य एक अविरल अखण्डित एव गतिशील प्रक्रिया है जिसे युगो के बधन मे बॉधना मुश्किल ही नही वरन असम्भव भी है परन्तु पठन–पाठन की सुविधा हेतु उसे एक युग विशेष का नाम देकर चिन्हित कर दिया जाता है। जब व्यक्ति स्वय उस युग विशेष को रेखाकित करे और कालजयी तथा प्रासगिक होने के लिए उसे युग विशेष का सहारा न लेना पडे। प्रेमचन्द के बारे मे यही सच है। सन् 1905 – 36 का समय इतिहास तथा साहित्य के लिए एक सक्रमण का दौर था जिसे विद्वानो ने प्रेमचद युग कहकर पुकारा हे। प्रसाद और निराला जैसे महारथियो से भिडने के साथ–साथ प्रेमचद को विदेशी साम्राज्यवादी ताकतो से भी लोहा लेना था। यह सामन्तशाही के पूँजीवाद मे बदलने का दौर था। इन समस्याओ से रुबरु होने के साथ एक ऐसा भूखा, टूटा एव निराश भारत उनके सामने विकराल मुँह खोले खडा था जो मानवीय सम्बन्धो से अधिक तवज्जो भूख को दे रहा था। तब ऐसे समाज के लिए कफन खींचने के अलावा शेष ही क्या था? प्रेमचद ने एक भावुक कलाकार की भाति यह रूप अपनी आखो से देखा तथा गम्भीर विचारक के मस्तिष्क से अनुभव किया। प्रारम्भिक कृतियो मे हालाकि इन्होने यथार्थ को छोडकर गॉधीवादी विचारधारा आरोपित करके कही जागीरदारो का ह्रदय परिवर्तन दिखाया है तो कही भूमिदान करवाया है और इस प्रकार समस्याओ का एक बनावटी हल निकाला है। इससे उनकी रचनाये कृत्रिम हो गयी हैं परन्तु 'गोदान' तक आते आते वे सचेत हो जाते हैं और जर्मन नाटककार बर्ट्रेन्ड रसेल की उक्ति उनके ऊपर सटीक बैठती है कि "वे लेखक महान होते

हे जो अपनी रचनाअे मे समस्याओ का अन्तर ढूँढ लेते है लेकिन उनसे भी महान तो वे लेखक होते है जो अपनी रचनाओ से समाज इतिहास के पाठको के सामने एक सवाल पैदा करते है।"

प्रेमचन्द के कथा साहित्य के सम्पूर्ण विवेचन को केन्द्र मे रखकर डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने प्रेमचन्द एक विवेचन मे कुछ प्रश्न उठाये हैं। विषय एव पात्रो को चिन्हित करने के लिए सुविधानुसार आठ स्तम्भो के रूप मे विभाजित प्रेमचद की कथागत मान्यताओ एवम् समस्याओ को स्पष्ट किया है। जो निम्नलिखित हैं –

1. मध्य वर्ग
2. भूमिपति
3. उद्योगपति
4. किसान और अछूत
5. किसान–होरी
6. कला और शिल्प विधान
7. कहानियॉ
8. सामाजिक उद्देश्य

प्रेमचन्द अपने अधिकतर उपन्यासो मे उस वर्ग पर अधिक ध्यान देते हैं जो अपने वर्ग से हट गया है साथ ही सामाजिक वातावरण की दृष्टि से सक्रमण का शिकार हो गया है।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार – "वास्तव मे यदि देखा जाये तो प्रेमचन्द महान् इसलिए है कि उन्होने किसानो के मानसिक गठन और मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को उस समय अत्यन्त विश्वास और उत्साह के साथ वाणी दी, जिस समय इस देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। सामती अर्थशास्त्र और सामती जीवन की पुरानी नीव–वह नीव जो युग –युग से दृढता पूर्वक ग्राम्य जीवन को सँभाले थी, विदेशी सत्ता और पूँजीवाद तथा दरिद्रता की बढती हुई कहर के विरुद्ध हुए राष्ट्रीय सघर्ष के इस युग मे हिल गई। उनके ग्रन्थों में आर्थिक शोषण और सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध कृषक वर्ग की पुञ्जीभूत घृणा और कटुता की झलक मिलती है – उनमे उस पूँजीवाद या पश्चिमी सभ्यता के बढते हुए प्रभाव के विरुद्ध निम्न मध्यवर्ग के विरोध और घृणा के भी दर्शन होते है, जो इस युग मे देश मे व्याप्त हो रही थी।" (पृ० **10–11**)। एक बड़े एवम महान लेखक

की विशेषता है कि वह तत्कालीन समाज मे व्याप्त घटनाओ को किस प्रकार आत्मसात करता है? अपनी रुढिवादिता के कारण मध्यवर्ग न केवल पुरानी परम्पराओ से अपनी पीछा छुडाने की कोशिश कर रहा था, बल्कि समय के साथ नये नये विचारो एव सघर्ष से भी गुजर रहा था। इन परिस्थितियो मे प्रेमचन्द की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। तत्कालीन समय मे घटित स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन (1920–1922) एव सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930–1932) ने प्रेमचद के मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोडा। यह सच है कि प्रारम्भिक आन्दोलन सुधारवादी होते हुए उसकी परिणति साम्यवाद एव समाजवाद की ओर उन्हे ले जाती है। इसे सामाजिक व्यवस्था ने मध्यवर्ग को पर्याप्त स्वतन्त्रता दे दी थी। इसके साथ ही नवीन सामाजिक व्यवस्था ने व्यक्ति के सोचने का दायरा बढाया तथा शिक्षितो के बीच भेदभाव तथा दूरियॉ कम की। अर्न्तजातीय विवाह तथा अधिक उम्र मे शादियो से लोगो के व्यवहार मे एक पवित्रावादी दृष्टिकोण एव देश प्रेम का रूप ले लिया। प्रेमचन्द की भूमिका यहॉ इसलिए प्रासगिक हो जाती है कि वे इस नये दल मे नैतिकता का प्रयोग चाशनी के रूप मे अपनी कृतियो के माध्यम से करने लगे। प्रेमचन्द ने आदर्श एव यथार्थ का प्रयोग करके स्वय अपने पाठक पदा किये। परन्तु सच यह है कि उनको पुण्य की अपेक्षा पाप शक्तिशाली दिखाई देता था। यही कारण है कि सत् एव असत् के बीच सघर्ष मे वे समन्वय द्वारा समझौतावादी दृष्टिकोण निकाल लेते थे। तत्कालीन राजनीति के क्षितिज पर गॉधी – इरविन समझौता (1932) यदि उनका जीवन दर्शन रहा हो तो इससे भी इकार नही किया जा सकता है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार –''यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय, समाजवाद और पूँजीवाद का समन्वय तथा क्रान्तिकारी विचारो और रुढिवादिता का समन्वय वे मौलिक तत्व थे, जिनसे उनका मस्तिष्क और कला अनुप्राणित थी। वे उपन्यास को जीवन का प्रतिबिम्ब और उसकी आलोचना समझते थे। वे जासूसी तथा प्रेम कथाओ की विधमता और लोकप्रियता पर खेद प्रकट करते थे।'' (पृ० 39)। इसमे कोई सदेह नही है कि प्रेमचद के पूर्व के कथा साहित्य मे जादू, आकर्षण एवं कौतूहलमय विषयो का समायोजन रहता था। प्रेमचन्द की दृष्टि मे साहित्य का उद्देश्य शुद्ध मनोरजन न होकर उसमे सुधारवादी दृष्टिकोण भी होना चाहिए। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य मे कथावस्तु पर विशेष ध्यान दिया है और प्रत्येक घटना को जीवन की हलचल से जोडने का प्रयास किया। चरित्र प्रधान उपन्यास लिखकर लोगों

के प्रेरणाश्रोत बने। साथ ही समकालीन लेखको के इन विषयो पर लिखने के लिए प्रेरित भी किया।

मध्यवर्ग के जीवन पर प्रेमचन्द द्वारा लिखे गये प्रमुख उपन्यास 'सेवासदन', 'वरदान', 'प्रतिज्ञा', 'निर्मला' एव 'गबन' है।

'सेवासदन' प्रेमचद का मध्यवर्ग पर लिखा गया प्रारम्भिक उपन्यास है। इसमे मध्यवर्ग की एक नारी की कहानी है जो अपने पति की सकीर्ण मानसिकता के कारण परित्यक्त कर दी जाती है। समय के थपेडे उसे वेश्या बनने के लिए मजबूर कर देते हैं। जिस पति ने उसे त्यागा है, वह अपनी पत्नी के वेश्या बनने की सोच मे साधू हो जाता है। पद्म सिह जो समाज का स्तम्भ है वह भी अपने किये कर्मो के प्रति नैतिक पाश्चाताप करता है। शेष कथा समाज के मध्यवर्ग के व्यक्तियो मे व्याप्त कुकर्मो एव नैतिक पतन पर प्रकाश डालती है। प्रेमचद की एक विशेषता है कि अपने सभी उपन्यासो मे ('गोदान' को छोडकर) एक सुधारवादी आश्रम की स्थापना करते है। प्रेमचद के समकालीन लेखक 'प्रसाद' भी अपने उपन्यासो मे समाज के बूढे या किसी मदिर के पुजारी को आदर्श रूप मे पेशकर आदर्श स्थापित करने की कोशिश करते है। निराला के उपन्यासो मे थोडा भिन्न नजारा नजर आता है और वह पात्रो की श्रेणी मे स्वय को पाते है, और अपनी बनाई परम्परा को वे खुद तोडते नजर आते है। परन्तु शरत्चन्द्र के उपन्यासो मे पात्रो का ईमानदारी से यथार्थ वर्णन मिलता है। प्रेमचद की दूसरी विशेषता यह है कि लगभग सभी कृतियो मे आदर्श एवम् यथार्थ को साथ–साथ लेकर चलते है एव जरूरत पडने पर दोनो को साथ–साथ मिलाकर उसका समन्वय करा देते है। परन्तु प्रमुखता आदर्शवाद की रहती है। यही कारण है कि 'सेवासदन' की मुख्य पात्र 'सुमन' प्रारम्भ मे वेश्या बनने पर झिझकती है। प्रेमचद का उमडता समाज सुधार उनके चरित्रो के सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। कथा के प्रारम्भ मे सुमन की जीवन सम्बन्धी कुछ मान्यताये थी परन्तु पीछे चलकर सुमन का चरित्र समाज सुधार की बलि चढ जाता है। तीसरी विशेषता के रूप मे प्रेमचद अनावश्यक पात्रो को हटाने के लिए या तो पात्रो को साधू बना देते है या फिर रहस्यमय रूप मे उसे आत्महत्या या हत्या के रूप मे पेश कर इति श्री कर देते है। सेवासदन के माध्यम से प्रेमचद समाज में व्याप्त बुराइयो का इतने सजीव ढ़ंग से वर्णन करते हैं कि मूल समस्या (वेश्याओं की) गौण एव सारहीन हो जाती है। इनके इस विचार से डॉ० इन्द्रनाथ मदान भी सहमत नहीं हैं और कहते हैं कि प्रेमचंद के पवित्रतावादी दृष्टिकोण के अनुसार बुराई मानव की प्रकृति में नहीं है

वरन इसके अकुर तत्कालीन वातावरण मे मिलते हैं। आश्वासन और सहानुभूति पाकर स्त्रियाँ पाप और घृणा के जीवन से बच सकती हैं। जिस बहुविवाह प्रथा की उपज यह वेश्यावृत्ति है उसकी लेखक ने अवहेलना कर दी है। 'वरदान' एक मध्यवर्ग से सम्बन्धित उपन्यास है परन्तु प्रेमचद इसमे सनसनीखेज घटनाओ मे बॅध से गये है। उपन्यास की मूलकथा प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व पर केन्द्रित है। 'प्रतिज्ञा' एक ऐसा उपन्यास हं जो 'प्रेमा' का परिवर्द्धित रूप हे। इस उपन्यास की मूलकथा विधवाओ के पुनर्विवाह की समस्या को लेकर बुनी गयी है। सुधारक प्रेमचद ने विधवाओ के जीवन को नष्ट करने वाली इस सामाजिक बुराई का भण्डाफोड किया है। इसका प्रमुख पात्र अमृतराय सगाई हो जाने के बावजूद एक विधवा से शादी करने का सकल्प करता है। पूर्वा नाम की एक लडकी रगमच पर प्रस्तुत की जाती है परन्तु एक बार समाज के दरिदो के हाथ बलात्कार के हादसे से बचने पर वह शादी करने का सकल्प त्याग देती है और अपने पूंव स्वामी की सेवा मे डूब जाती है। अमृतराय भी शादी की प्रतिज्ञा तोडकर विधवाओ की समस्याओ को सुलझाने मे जुट जाता है। प्रेमचद तो इसी ताक मे रहते है कि ऐसे लोगो को कोई तो आश्रय दे, और बीच–बीच मे इसका क्रियात्मक हल भी सुझाते रहते है। इसलिए 'प्रतिज्ञा' खूनी रिस्तो की अपेक्षा विधवाओ के उद्धार को प्रमुखता देता नजर आता है।

'निर्मला' उपन्यास के माध्यम से प्रेमचद समाज मे मध्यवर्ग व्याप्त दहेज प्रथा तथा अनमेल विवाह की समस्याओ को रेखाकित करते है। साथ ही तीन परिवारो की समानान्तर कथा कहकर उनकी बरिबादी का चित्रण किया है। इसमे कई प्रश्न उठाये गये है। चूकि यह दश प्रेमचद ने खुद झेला था इसलिए इसका अत उनके अपने विचार भी हो सकते है। उपन्यास के अन्त मे मरती हुई निर्मला कहती है– "मेरी लडकी की शादी किसी उचित व्यक्ति से की जानी चाहिए।" इसके साथ ही यह सन्देश भी दिया है, कि वह कोई व्यक्तिगत समस्या नही वरन यह सामाजिक रोग है, जिसका स्थाई समाधान होना चाहिए। 'गबन' 1930 मे लिखा गया एक मध्यमवर्गीय उपन्यास है। पति–पत्नी के आपसी सम्बधो पर जब अविश्वास एव व्यक्ति रोब जमाने की कोशिश करता है तो निश्चित है कि इसका परिणाम भी गम्भीर निकलता है। नवविवाहिता पत्नी को उपहार में गहनो के लिए इस उपन्यास का पात्र दफ्तर से रूपयो का गबन करता है और जानबूझकर इस जाल में फॅस जाता है। अत में एक वेश्या द्वारा सोने के हार को बेचकर को वह इस ऋण से उऋण होता है। वेश्या को जब प्रमुख पात्र की पत्नी द्वारा उसके त्याग की कथा मिलती है, तो शर्म से

वह आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार इसमे एक वेश्या का ह्रदय परिवर्तन भी दिखाया गया है। साथ ही पुरानी परम्परा को प्रेमचद यहाँ भी ढोते नजर आते हैं और जिन पात्रो से छुटकारा नही पाते उससे आत्महत्या करवा देते हैं। डॉ० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार– "प्रस्तुत उपन्यास मे यथार्थवाद की प्रवृत्ति उभर कर आई है। लेकिन उन्होने जीवन की आवश्यक बातो को भावुकता से ही अपनाया है। सामाजिक समस्याओ और पात्रो का चरित्र निरूपण करने मे वे भावुकता को नही छोड सके है। 'गबन' ऐसा गठा हुआ उपन्यास है, जिसमे थोथे आदर्शवाद से उत्पन्न अनावश्यक विवरणो से जानबूझ कर बचा गया है। इससे पता चलता है कि लेखक ने जीवन के समझने का एक सुन्दर और निजी ढग खोज निकाला है।" (पृ० 54)।

भूमिपति

प्रेमचद ने समाज की सामन्ती व्यवस्था को दो रूपो मे विभाजित किया है। प्रथम विभाजन मे उन्होने प्राचीन परम्परा से युक्त लोगो को रखा है जो रूढिवादी के कारण पतन की ओर अग्रसर हो रहे है। दूसरे वर्ग मे पूँजीवादी व्यवस्था वाले लोगो को रखा है जो दिनो दिन समृद्ध होते जा रहे है। इसी दूसरे वर्ग की व्याख्या प्रेमचद अपने कृषि जीवन पर आधारित उपन्यास 'प्रेमाश्रम' के माध्यम से करते हैं। इस उपन्यास मे औद्योगिक सभ्यता से पूर्व ग्रामीणो की आर्थिक सामाजिक दशा का सजीव चित्रण मिलता है। लखनपुर गॉव इस कथा का केन्द्र बिन्दु है। इसमे सरकारी कारिदो के माध्यम से जमीदार गॉव के लोगो को आतकित करते है, मनोहर एव उसका लडका बलराज इन लोगो से लोहा लेते हैं। कहानी का शिल्प बहुत विस्तार से है परन्तु इसमे अत्याचार एवम् शोषण के सभी रूप सामने नजर आते है। एक कारिन्दे की हत्या से वातावरण विषाक्त हो जाता है। इसमे हत्या करने वाला मनोहर भी स्वय को मार लेता है। प्रेमशकर गरीबो की सेवा का बीडा उठाता है। ज्ञानशकर जमीदारो के नवीनतम सस्करण के रूप मे है। वह स्वार्थी, लालची, विलासी एव क्रूर है। अत मे प्रेमशकर की ही विजय होती है। इसकी कथा की प्रकृति से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचद जीवन की सुन्दर व्याख्या एव परिवर्तन में विश्वास रखते हैं। लेकिन परिवर्तन मे तीव्रता इतनी अधिक होती है कि पाठक सहज रूप में इसे पचा नहीं पाता है। यह प्राकृतिक रूप से सच है कि हर दुष्ट व्यक्ति के मन में एक देवता होता है और इसी नाटकीयता से

प्रेमचद अपने पाठको के दिलो मे एक स्थाई स्थान बनाने मे सफल भी होते हैं क्योकि प्रेमचद समाज सुधारक होने के नाते अपने पाठको को समाज मे भेड के रूप मे छिपे भेडिए को दिखाना चाहते है। इस अच्छाई–बुराई के खेल मे वे सफल भी होते हैं। डॉ० इन्द्रनाथ मदान के अनुसार– "सडी–गली और कुरूप सामन्ती दुनिया की बुराइयॉ दिखाने मे प्रेमचद ने अपनी आत्मा की समस्त शक्ति लगा दी है और सामाजिक कल्याण के लिए इसका जितनी जल्दी खात्मा हो उतना ही अच्छा है। उनकी कला का उद्धेश्य शुद्ध रूप से सामाजिक है, क्योकि वह जमीदारो के शोषण के विरूद्ध जनता की चेतना जागृत करती हे।" (पृ० 73)।

उद्योगपति

यदि 'प्रेमाश्रम' को सामन्ती सभ्यता का महाकाव्यात्मक दस्तावेज है तो इसमें कोई शक नही कि प्रेमचद का 'रगभूमि' उपन्यास औद्योगिक सभ्यता का दस्तावेज है। जो निश्चित रूप से गॉव के सामाजिक–आर्थिक सम्बन्धो को नष्ट करता है।

'रगभूमि' की मूल कथा में दो सभ्यताओ की टकराहट को व्यक्त किया गया है। प्रथम लाभ एव प्रतियोगिता पर आधारित औद्योगीकरण की नई ताकतो का प्रतिनिधित्व करती है। दूसरी कथा पारस्परिक सहयोग एव पुराने मेल मिलाप के रूप मे प्रकट हुई है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र सूरदास पाण्डेपुर गॉव का निवासी है। प्रेमचद ने कोशिश की हे कि इसकी सघर्षकथा इसके बाहर भी रहे। इसमे जीवन के मनोवैज्ञानिक पक्ष को भी परिभाषित करने की चेष्टा की गयी है। उन्होने जीवन को रगमच एवम् खुद को एक खिलाडी कहा है जो अधे के रूप मे सूरदास है। जिसे उन्होने खेल का आदर्श खिलाडी साबित किया है तथा शेष खिलाडियो मे अन्य स्त्री पुरूष है। इसमे किसान और राजकुमार हे, पूँजीपति और मजदूर भी है, इसके साथ–साथ देशभक्त एवम् गद्दारो की भी भीड है। जॉन सेवक जो एक पूँजीपति है सूरदास की बजर भूमि पर सिगरेट की फैक्टरी लगाना चाहता है। पैतृक लगाव के कारण सूरदास इसे देना नही चाहता, उसे तरह–तरह के प्रलोभन दिये जाते है। परन्तु सूरदास चट्टान की तरह दृढ रहता है क्योंकि 'सूरदास' अपनी पुरखो की जमीन मे उनकी स्थाई स्मृति के लिए एक स्मारक बनवाना चाहता है। जॉन सेवक की इच्छा के अनुसार सरकारी कर्मचारी गॉव के लोगो पर कई तरह के अत्याचार

एवम् कानूनी कार्यवाही करके उसमे फैक्टरी बनाने मे सफल हो जाते हैं। एक बार फिर शोषण एव दमन का नगा नृत्य होता है। यहाॅ शहरी सस्कृति गॉव की सस्कृति से भारी पडती है। पर सूरदास की जमीन छिनने से गॉव के लोगो मे उसकी उसकी नैतिक विजय हो जाती है और लोग लामबन्द होकर उसके साथ सघर्ष मे साथ देते है। इस कथा के साथ ही साथ उपन्यास मे कई कथाये समानान्तर चलती रहती है। सोफिया–विनय, इन्दु एवम् जान्हवी की कथाये बहुत प्रभाव नही छोडती। यहाॅ लेखक का दृष्टिकोण मूलरूप से ओद्योगीकरण की बुराई को प्रस्तुत करना है और पूॅजीपतियो द्वारा मजदूरो की जो दुर्दशा की गयी है उसे इगित करते हुए प्रेमचद कहते हैं– "वे गन्दी, दुर्गन्ध युक्त और टूटी फूटी झोपडियो मे रहते है। उनको देखते ही उबकाई आती है। वे ऐसे कपडे पहनते हैं जिनसे हम जूते को भी साफ करना पसन्द नही करेगे। वे खाना ऐसा खाते हैं जिसे हमारा कुत्ता भी नही खाएगा। इतना होते हुए भी पूॅजीपति और उद्योगपति हिस्सेदारो को मुनाफ़ा देने के लिए उन्हे रोटी के टुकडो से भी वचित कर देते है।"(पृ० 85)।

मूलत 'रगभूमि' गॉधीवादी उपन्यास है और इसका नायक गॉधी के अहिसावादी सिद्धान्त का पक्षधर है। सत्याग्रहियो की भॉति सभी प्रकार के जुल्म सहता है तथा लाभ के लिए स्वप्न मे भी नही सोचता है। जिस पूॅजी के लिए समाज मे इतनी मारा–मारी तथा भ्रष्टाचार व्याप्त है उसे प्रेमचद क्रान्ति के माध्यम से न प्राप्त कराके नैतिकता एवम् अहिसात्मक रूप मे प्राप्त करने पर जोर देते हैं और कुछ हद तक इसमे सफल भी होते है।

किसान और अछूत

प्रेमचद द्वारा किसान और अछूत जीवन पर वैसे तो कई उपन्यास लिखे गये हैं परन्तु 'कर्मभूमि' अपनी सर्जनात्मक प्रस्तुति मे बेजोड है। सन् 1932 ई० का दौर, विश्व आर्थिक मन्दी के दौर से गुजर रहा था। भारत की राजनीति मे सविनय अवज्ञा का दौर चल रहा था। ऐसे समय मे किसानो की स्थिति सहज नही थी। 'कर्मभूमि' उपन्यास मे किसान नेताओ के दो रूप सामने आते हैं। आत्मानन्द एक उग्र नेता है जो किसान भी है। अमरकान्त समझौतावादी दृष्टिकोण का नेता है। जब अमरकान्त की मॉगे सरकार नही मानती तो वह आन्दोलन करता है। परन्तु सरकार के दमन एवम् अत्याचार ने ऐसी विषम स्थिति उत्पन्न की, उसी के आस–पास इसकी कथा केन्द्रित है। प्रेमचंद इस उपन्यास के

माध्यम से ग्रामीण जीवन और संस्कृति के नाश के चित्रों के क्रमिक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। उनका विचार है कि "पश्चिमी सभ्यता ग्राम्य सभ्यता एवं संस्कृति को नष्ट कितनी तेजी से पैर जमाती जा रही है। उससे किसान किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये हैं, फिर भी उजड़े हुए गाँव इतनी तीव्रता से अपनी शक्ति का संचय कर अपनी पुरानी संस्कृति को ग्रहण कर लेते हैं यह काबिले तारीफ है।" यह भी सत्य है कि लेखक चरित्र के विकास के लिए सदैव कर्म पर ध्यान कराता चलता है और कर्मभूमिरूपी युद्ध में वे उसी कर्मयोगी को सफलता भी दिलाते हैं। क्योंकि लेखक की दृष्टि में विषम परिस्थितियों में पराजित होते हुए जो जीता है वही इस संसार को बदलता भी है। डॉ० मदान भी लेखक के दृष्टिकोण से सहमत है और कहते हैं कि "कर्मभूमि का जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण एक योद्धा का है और लेखक ने इस महान् सत्य की खोज कर ली है कि विचारों और कार्यो में सामंजस्य होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो मनुष्य द्वन्द्व और संघर्ष से जो कि जीवन का मूल आधार हैं, दूर जा पड़ेगा और उसका जीवन व्यर्थ हो जायेगा। (पृ० 94)।

किसान–होरी

अपने पूर्ववर्ती किसान जीवन पर लिखे गये उपन्यासों की दशा में प्रेमचंद ने उनके चित्रण में दैवी प्रकोप तथा मानवीय अत्याचारों के रूप में चित्रण किया है। परन्तु 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद ने एक नया प्रयोग किया है। यहाँ पुरानी परम्परा में परिवर्तन करते हुए उन्होंने न तो सुधार आश्रमों की स्थापना की है और न ही अन्त में कोई समस्या का समाधान किया है। अन्तिम समय तक कथा को यथार्थवादी ढ़ाँचे में गढ़ने की कोशिश की। और एक स्थान पर अपनी नूतन विचार धारा को शहरी पात्र मेहता द्वारा कहलवा भी दिया है कि "जड़ पर जब तक कुल्हाड़े नहीं चलेंगें, पत्तियाँ तोड़ने का काम नहीं चलेगा।" यह किसान जीवन पर प्रेमचंद का पहला उपन्यास है जब हिन्दी कथा साहित्य में किसान का चित्रण एक व्यक्ति के रूप में किया गया है, हाँलाकि 'रंगभूमि' का अन्धा सूरदास भी एक सशक्त पात्र है परन्तु उसकी जमीन बंजर एवम् उसका पेशा भीख माँगना है। यहाँ होरी के चरित्र में तो ऐसा लगता है मानो प्रेमचंद ने अपनी समस्त कला उड़ेल दी है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान को तो होरी साक्षात् प्रेमचंद ही नजर आते हैं क्योंकि इसकी कहानी प्रेमचंद के अपने जीवन की कहांनी लगती है। यह एक ऐसे व्यक्ति की जीवन गाथा है जो शुरू से ही

आर्थिक कठिनाइयो एवम् दु:खो को झेलता रहा, परन्तु इतना होने पर भी वह मानवता और उदारता के उन तत्वो को सुरक्षित रखने मे सफल हुआ है जो उनके जीवन मे पथ प्रदर्शक का कार्य करते रहे है। 'गोदान' मे एक ऐसा किसान की करूण गाथा है जो समय के थपेडो से जूझता हुआ एक गाय को जीवन मे प्राप्त नही कर पाता है और अन्त मे मजदूर बनने पर विवश हो जाता है। शोषण की इस अटूट परम्परा मे होरी के जीवन का सारा रस निचुड चुका है। परिवर्तन के प्रति अनासक्त, गरीबी, भूख और दासता का आदी हो जाना, उसे पिछले जन्म के कर्म का प्रतिफल मानना, इसके साथ ही समाज मे अपने 'धरम' और 'मरजादा' की रक्षा के लिए अकेले लडाई लडना। इसी मानसिक अन्तर्द्वन्द्व मे उसका अन्त होता है। यदि एक वाक्य मे कहा जाय तो यह है कि वह पैदा हुआ, कष्ट भोगता रहा और मर गया। इस कारूणिक शोकगीत के विरूद्ध प्रेमचद का एक सदेश है। अपने अन्तिम उपन्यास 'मगलसूत्र' (अधूरा) मे प्रेमचद समाज के प्रति सचेत हो जाते हैं और कहते हे–"दरिन्दो (शोषक) के बीच मे उनसे लडने के लिए हथियार बॉधना पडेगा, उनके पजो का शिकार बनना देवतापन नही जान पडता है।" शायद इसे वास्तविक होरी की सज्ञा दी जाय तो अतिश्योक्ति नही होगी। प्रेमचद से पहले जयशकर 'प्रसाद' भी इसी तरह के विद्रोह और सघर्ष की बात ध्रुवस्वामिनी एवम् अपने अधूरे उपन्यास 'इरावती' के माध्यम से करते है।

कला और शिल्प विधान

यदि पाश्चात्य मानको के आधार पर प्रेमचद के उपन्यासो की समीक्षा की जाय तो इनमे अनेक कलात्मक त्रुटियां मिलेगी– प्रथम दोषपूर्ण शिल्पविधान और अति नाटकीय प्रसगो का आरोप भी लगता है। दूसरा आरोप घटनाओ के विचित्र सयोगो, असम्भव परिरिस्थितियो, स्थूल हास्य, लम्बे भाषणो और निरर्थक वर्णनो से भी नही बच सके हैं। तीसरा आरोप आदर्श एवम् यथार्थवाद के समन्वय को लेकर है क्योकि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को एक साथ कृति मे रखा ही नही जा सकता है। इन आरोपो–प्रत्यारोपो के बीच यदि प्रेमचद के वास्तविक जीवन दृष्टि पर नजर डाले तो यह सच है कि उनको विरासत मे ऐसा कुछ भी नही प्राप्त हुआ जिससे उनको प्रेरणा मिलती। उन्हे अपना शिल्प विधान स्वय मे रचना पडा। यह सच है कि प्रेमचद अपने जीवन के युवाकाल मे भारतीय एवम् पाश्चात्य लेखको को बडे चाव से पढ़ा करते थे और इसका सीधा सा अर्थ है कि इसने उनके जीवन मे कुछ

न कुछ प्रभाव अवश्य डाला होगा। यह महत्वपूर्ण है कि प्रेमचद की कला का मूल उद्देश्य न तो चरित्र–चित्रण है और न ही वस्तु सगठन वरन उनका मूल उद्देश्य सुधार करना है। और वे कथावस्तु को दो भागो मे विभाजित कर प्रथम मे जीवन की व्याख्या करते है, तथा दूसरे मे इसके परिवर्तन पर जोर देते है। यही परिवर्तन उनकी कृतियो का मुख्य आधार बनता है। वस्तु सगठन और चरित्र–चित्रण की प्राचीन प्रणाली से उबर नही पाते हैं। सामाजिक जीवन की आलोचना के चक्कर मे वे अपनी कला की बलि भी चढा देते है। आदर्श एवम् यथार्थवाद के बारे मे जो आरोप उन पर लगाये गये थे, उसे उन्होने प्रगतिशील लेखक सघ (1936 ई०) के अपने भाषण मे स्पष्ट करने की चेष्टा की ओर कहा कि "मनुष्य गुणो ओर अवगुणो का समूह है। यहॉ तक कि सूर्य मे भी धब्बे है। यथार्थवाद मे मानव की कमजोरियो का सच्चा चित्र है। यदि कोई लेखक इन कमजोरियो का चित्रण घृणित से घृणित रूप मे करेगा तो निश्चय ही मनुष्य की अच्छाई के प्रति विश्वास को तोडने का काम करेगा। फिर बुराइयो मे बुराइयो के अतिरिक्त और देखा ही क्या जा सकता है?।" इसी तरह से अपने एक मित्र को प्रेमचद जी ने आकाश मे उडती हुयी चिडिया की ओर इशारा करते हुय कहा कि "चिडियॉ तो आकाश मे उडती है परन्तु उसे दाने के लिए पृथ्वी पर तो आना ही पडेगा।" यही आदर्श एवम् यथार्थ उनके उपन्यासो एवम कृतियो का आधार है।

कहानियॉ

साहित्य जगत मे प्रेमचद पहले व्यक्ति है जो अपनी कहानियो के माध्यम से गॉव की ओर गये और सीधे–सादे ग्रामीणो के जीवन को जो घटनाहीन था कहानी का आधार बनाया। शायद इसी कारण से किसान का मन उनके लिए खुली हुयी किताब के समान है।

कहानी के इतिहासक्रम मे यदि झॉक देखा जाय तो प्राचीनता और नूतनता के विकास क्रम मे यह किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नही रही। भारतीय एव पाश्चात्य लोगो की दृष्टि मे इसकी मौखिकता ही मे दम था। मुद्रण के रूप मे आने पर इसके विषयवस्तु मे परिवर्तन होना लाजिमी था और विकास के क्रम मे यह कला का रूप पा गई। डॉ० इन्द्रनाथ मदान प्रेमचद की कहानियो के सक्षिप्त रूप से सहमत हैं और इसके लिए प्रेमचद की कहानी सम्बन्धी धारणा कि उपन्यास एव कहानी को दो रूप माना जाय मे अपनी कोई स्पष्ट धारणा नही व्यक्त करते। यदि प्रेमचद के वास्तविक जीवन को देखा जाय तो वे

पत्रकार और निम्न मध्यवर्ग से सम्बन्धित होने के नाते उपन्यास एव कहानी मे भेद से अनभिज्ञ नही थे। उपन्यास को वे उनके लिए उचित मानते थे जिनके पास पर्याप्त अवकाश हे। उनकी नजरो मे यह पूँजीपति वर्ग हो सकता है एवम् कहानी उनके लिए है जो जीवित रहने लिए सघर्ष कर रहे है। प्रेमचद अपनी कहानियो को चेखव एवम् मोपॉसा से प्रभावित होने के नाते दो भागो मे विभाजित करते है–

1 चरित्र प्रधान   2 घटना प्रधान कहानियॉ

कथावस्तु एवम् चरित्र–चत्रण मे उनकी कहानियो का उद्देश्य सामाजिक रहा है। परन्तु आरम्भिक कहानियो मे प्रेमचद चरित्र–चित्रण की अपेक्षा कथावस्तु पर विशेष ध्यान देते है। पचपरमेश्वर से लेकर कफन तक के पडाव मे प्रेमचद ने जीवन के कई उतार चढाव झेले थे। समय के बदलते काल चक्रो ने उन्हे आदर्शवादी से घोर यथार्थवादी बनने पर मजबूर कर दिया। इसलिए 'कफन' कहानी मे उन्होने भूख को मानवीय सम्बन्धो से बढकर रखा। यह तीन ऐसे पात्रो की कहानी है जो अपने–अपने वातावरण से नितान्त भिन्न है। घीसू एक व्यक्ति ही नही वरन् समाज का बहिष्कृत प्रतिनिधि भी है। इस कडी मे उसका लडका माधव सच्चा प्रतिरूप भी है। लेखक के अनुसार वे दोनो घोर आलसी है। घीसू का पीडित जीवन उसे भाग्यवादी और जीवन के कठोर दु:खो के कारण उसे उदासीन बना देता हे और इसके कारण वे दोनो आलसी हो जाते है वे बाहर न जाने के लिए आलू चुराते है। नैतिकता की दृष्टि मे उनका घोर पतन हो गया है। उनके सामने घोर श्रम करने वालो के पर्याप्त उदाहरण है। फिर भी वे लोग उनकी नजरो मे उतना नही पाते जितना कि मिलना चाहिए। इन उदाहरणो से उन दोनो ने तय किया कि यदि मेहनत करने से भी हम भूखे रहेगे तो इससे अच्छा है कि वे भूखे ही क्यो न मरे। रात–दिन अपना हाड–मॉस क्यों गलाए, यह सोचकर वे दोनो सन्तोष कर लेते है कि कम से कम उनका शोषण तो नही हो रहा। जीवन का यही दृष्टिकोण उन्हे काहिल, लापरवाह, पशु और ह्रदयहीन बना देता है। इसे भाग्य की विडम्बना ही कहा जायेगा कि बुधिया जो घर मे समृद्धि लायी वही प्रसव की वेदना मे छटपटा कर मर जाती है और इन दोनों मे से उसके पास कोई नही जाता है। कफन के पैसो से बाप–बेटा शराब पी लेते हैं और यह कहकर सन्तोष कर लेते हैं कि जिसे जीवन भर तन ढकने के लिए चिथडे भी नही मिल सके मरने पर नया कफन मिलना उसके साथ उपहास करना होगा। इस कहानी के माध्यम से प्रेमचद अपने वैयक्तिक जीवन मे गॉधीवादी परम्परा से विचलित नजर आते है। यह मोहभग की स्थिति है।

सामाजिक उद्देश्य

अपने पूर्ववर्ती लेखको की भॉति प्रेमचद ने पाठको के मनोरजन के लिए कहानी एव उपन्यास की रचना नही की, वरन जीवन सम्बन्धी जो गम्भीर समस्याये थी, उससे वे सर्जनात्मक स्तर पर टकराते है। वे ऐसी समाज व्यवस्था का ढॉचा खडा करना चाहते थे, जो समानता और भाईचारे पर टिका हो। प्रेमचद के उपन्यासो मे किसानो एव मजदूरो मे सामतो और जमीन्दारो के खिलाफ एक नैतिक विद्रोह मिलता है। 26 दिसम्बर 1934 मे बम्बई से डॉ० इन्द्रनाथ मदान के नाम लिखे पत्र मे प्रेमचद ने समाजवाद के प्रति अपनी अवधारणा स्पष्ट करने की कोशिश की है– "हमारा उद्देश्य जनमत तैयार करना है। इसलिए मै सामाजिक विकास मे विश्वास रखता हूँ। अच्छे तरीको के असफल होने पर ही क्रान्ति होती है। मेरा आदर्श है हरेक को समान अवसर का प्राप्त होना। इस सोपान तक बिना विकास के कैसे पहुँचा जा सकता है। इसका निर्णय लोगो के आचरण पर निर्भर है। जब हम व्यक्तिगत रूप से उन्नत नही है तब तक कोई भी सामाजिक व्यवस्था आगे नही बढ सकती। क्रान्ति का परिणाम हमारे लिए क्या होगा, यह सन्देहास्पद है। हो सकता है कि वह सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता को छीन कर तानाशाही के घृणित रूप मे हमारे सामने आ खडा हो। मै सुधार के पक्ष मे तो हूँ, उसे नष्ट करने के पक्ष मे नही। यदि मुझे यह विश्वास हो जाता और मै जान लेता कि नाश से हमे स्वर्ग मिलेगा तो मैने नाश की भी चिन्ता नही की होती।" (पृ० 137)।

इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचद मानव विकास का महत्त्व देते है और गॉधीवादी माडल का अनुसरण करते है। क्योकि उन्हे भय था कि पाश्चात्य देशो की भॉति यदि क्रान्ति हमारे यहॉ हुई तो उसका स्वरूप क्या होगा, सहज रूप मे अनुमान लगाया जा सकता है। यही कारण है कि प्रेमचद वैधानिक एव शान्तिपूर्ण उद्देश्यो क प्रति लोगो को अपनी कृतियो के माध्यम से सजग करते है। प्रेमचद की दृष्टि मे साहित्य के माध्यम से जीवन की गम्भीरतम समस्याओ के विरूद्ध जनमत तैयार करने मे सहायता तो मिलती ही है साथ ही मनुष्य एवम् समाज के सम्बन्धो का स्तर भी ऊँचा हो जाता है। इसलिए प्रेमचद ऐसे सौन्दर्य के पक्षधर नही थे जो देखने मे सुन्दर लगे, बल्कि ऐसे सौन्दर्य के पक्षधर थे जो जीवन के स्तर को ऊँचा उठा सके। यह पूर्णरूपेण सच है कि प्रेमचद धरती पर स्वर्ग बनाने की कल्पना मे असफल रहे परन्तु उन्होने उन सभी बुराइयो के विरूद्ध जेहाद अवश्य किया, जो

मनुष्य की उस नवीन समाज व्यवस्था का निर्माण करने से रोकती है, जिसमे कि सबको समान अवसर मिलता है। इन्ही सामाजिक सरोकारो से प्रेमचद का मन एव मस्तिष्क भरा हुआ था और इसी से उनकी कला अनुप्राणित थी।

इस प्रकार डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने प्रेमचद की रचनाओ की बखूबी चीर–फाड करके प्रेमचद के असली स्वरूप को उद्घाटित करने की कोशिश की है। उनके मतव्यो और विचारो को स्पष्ट किया है। और इसमे कोई शक नही कि इसमे वे एक हद तक सफल भी हुए है। यह एक तरह से प्रेमचद–साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन है। 'आमुख' मे ही आलोचक ने अपनी धारणा को प्रकट कर दिया है : 'कोई भी लेखक, चाहे वह कितना ही महान क्यो न हो, अपने समय की उपज होता है।' उसके अनुसार 'प्रेमचद की कृतियॉ इसलिए महत्त्वपूर्ण नही है कि उनमे किसानो और निम्न मध्यवर्ग के लोगो का वर्णन है बल्कि इसलिए भी कि उन्होने उनमे अपने युग की प्रतिगामी प्रवृत्तियो का भी विरोध किया है।' डॉ० इन्द्रनाथ मदान का यह समाजशास्त्रीय अध्ययन प्रेमचद के कथा–साहित्य का नये ढग से विवेचन करता है तथा उसे समझने मे सहायक है।

राम स्वरूप चतुर्वेदी

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी नई समीक्षा के समर्थ आलोचक है। काव्यभाषा के केन्द्र मे रखकर आलोचना करने वाले वे हिदी के एकमात्र आलोचक है। कविता को साहित्य की केन्द्रीय विधा मानने के कारण उनकी आलोचना के केन्द्र बिन्दु कविता है। फिर भी 'हिदी साहित्य और सवेदना का विकास' (**1986** ई०), 'गद्य की सत्ता' (**1977** ई०) तथा 'हिदी गद्य विन्यास और विकास' (**1996** ई०) मे उनका गद्य विषयक विवेचन मिलता है। गद्य की प्रधानता के इस युग मे गद्य की प्रकृति को समझने का उपक्रम उपर्युक्त रचनाओं मे किया गया है। गद्य – प्रक्रिया को समझने के प्रयास मे प्रेमचद पर एक छोटा सा अध्याय 'हिदी गद्य विन्यास और विकास' मे है। इसमे उनके प्रेमचंद सबधी विचारो की झलक मिलती है। प्रस्तुत अध्ययन उसी पर आधारित है।

डॉ० चतुर्वेदी के अनुसार प्रेमचद का रचनात्मक मूल्याकन कई कारणो से समस्या पैदा करता है। वे पाठक को जितना सहज है आलोचक को उतना ही मुश्किल। उनकी

कथा कृतियॉ घटना और अनुभव बहुल दोनो हैं। यही प्रेमचद आलोचक के लिए मुश्किल बनते है। (हिदी गद्य . विन्यास और विकास', पृ० 250)। आलोचक की कठिनाई का विश्लेषण करते हुए डॉ० चतुर्वेदी कहते हैं कि 'प्रेमचद अपनी रचना–प्रक्रिया मे भाषा का सपूर्णत दोहन कर लेते है, फलत आलोचक के लिए ऐसी भाषा छवियॉ और सकेत शेष नही बचते जिनके सहारे वह उस रचना मे आगे अर्थ का सवर्द्धन कर सके।'

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रेमचद और गॉधी के बीच समानता के सूत्रो को तलाशते है। उनका विचार है कि प्रेमचद गॉधी के सबसे निकट आते हैं। विचारधारा के स्तर पर वे गॉधी जी से प्रभावित रहे या फिर क्रमश दूर होते गये, यह एक स्थूल जानकारी की बात है। रचना के क्षण मे वे गॉधी के सबसे नजदीकी होते है। इसके लिए उन्होने 'किफायतसारी' को लिया है जो दोनो से विशेष रूप से जुडी है। गॉधी जी ने जीवन मे किफायतसारी का प्रयोग किया और प्रेमचद ने अपनी रचना–प्रक्रिया के केन्द्र मे किफायतसारी का गुण रखा। इसीलिए उनके यहॉ सामाजिक यथार्थ का चित्रण फैल कर उबाऊ नही बनता। 'फलत वे मजा लेकर यथार्थ का चित्रण नही करते, समूचे रचना विधान मे उसका उपयोग करते है' (पृ० 251)। प्रेमचद की भाषा के सबध मे डॉ० चतुर्वेदी की टिप्पणी उल्लेखनीय है –

'किफायतसारी का आदर्श जैसा प्रेमचद के यथार्थ चित्रण मे है उससे और गहरे धरातल पर उनके भाषिक विधान मे है। भाषा का सत अपनी रचना मे वे पूरी तरह से निचोड लेते है।' (पृ० 252)।

डॉ० चतुर्वेदी का निष्कर्ष है कि प्रेमचद का गद्य विलक्षण है। अॅग्रेजी बाइबिल की तरह एकदम सीधा–सरल, पूरा पारदर्शी और सर्जनात्मक।

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'हिदी गद्य विन्यास और विकास' लोकभारती प्रकाशन सस्करण 1996) मे प्रेमचद का विवेचन किया है। डॉ० चतुर्वेदी जी की प्रेमचद के कथा साहित्य पर की गई टिप्पणियो को दो भागो मे विभाजित किया जा सकता हे –

1. प्रेमचद का गद्य अॅग्रेजी बाइबिल की तरह सीधा – सरल पूरा पारदर्शी और सर्जनात्मक है।
2. **गॉधी के व्यवहारिक जीवन–दर्शन विशेषकर किफायतसारी के आदर्श का भाषिक–प्रक्रिया मे प्रतिफलन।**

किसी रचना की महानता उसकी सरलता मे छिपी होती है। यही उसकी लोकप्रियता कारण भी होता है जैसे गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमान'। यह एक तरफ सरल है और दूसरी तरफ लोकप्रिय। यही बात प्रेमचद के सबध मे लागू होती है। वे एक तरफ अत्यत सरल है दूसरी तरफ उतने ही लोकप्रिय। लेकिन यही सरलता और लोकप्रियता आलोचक के लिए कठिनाई पैदा करती है। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी इसे स्पष्ट करते हुए कहते है– "प्रेमचद का रचनात्मक मूल्याकन कई कारणो से समस्या उपस्थित करता है वे पाठक को जितना सहज हैं आलोचक को उतना ही मुश्किल। उनकी कथाकृतिया घटना ओर अनुभव बहुल दोनो है। यहाँ प्रेमचद आलोचक के लिए मुश्किल बनते है। यह स्थिति अपने मे विडम्बनापूर्ण है कि अनुभव बहुलता के जिस विशिष्ट गुण के लिए पाठक के रूप मे वह आभारी था, वही अनुभव बहुलता आलोचक के रूप मे उसके सामने एक सीमा बनाती हे" ('हिंदी गद्य विन्यास और विकास' पृ० 250)। प्रेमचद अपने सम्पूर्ण गद्य साहित्य मे जन सामान्य के जीवन से सम्बन्धित प्रश्नो को उठाते है आर एक – एक शब्द की रचना करते समय उसकी प्रतीको एवम् बिम्बो के माध्यम से व्याख्या भी करते चलते है – 'गोदान' मे होरी–धनिया के दाम्पत्य जीवन के अश को देखा जा सकता है – "वैवाहिक जीवन के प्रभात मे लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणो से रजित कर देती ह। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण–क्षण पर बगूले उठते है और पृथ्वी कॉपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है, और विस्तविकता अपने नग्न रूप मे सामने आ खडी होती है। उसके बाद विश्राममय सध्या आती है, शीतल और शात, जब हम थके हुए पथिको की भाति दिनभर की यात्रा का वृतान्त कहते और सुनते है, तटस्थ भाव से, मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे है, जहॉ नीचे का जनरण हम तक नही पहुँचता" (गोदान, पृ० 1028)।

द्वितीय प्रकरण मे चतुर्वेदी जी ने प्रेमचद के गॉधीवादी दर्शन विशेषकर उनके व्यवहारिक जीवन मे किफायतसारी की बात की है। यह प्रेमचद की रचनाओ मे बहुत गहरे स्तर पर व्याप्त है और उसे वे अत तक ईमानदारी से निभाते भी हैं। गॉधी जी के प्रेरक प्रसगो मे से है कि किफायतसारी। डॉ० चतुर्वेदी के अनुसार –"कुछ भी अनावश्यक रूप मे व्यय नही होना है, और छोटे से छोटे उपकरण का भी प्रयोग कर लिया जाना है – यह गॉधी जी का मूल मत्र था,अपने समय के लिए, देश की अर्थनीति के लिए और राजनैतिक शक्ति के लिए" (हिन्दी गद्य : विन्यास और विकास' पृ० 251)।

प्रेमचद अपनी रचनाओ मे भाषा की किफायतसारी का आदर्श रखते हैं और यहाँ वे गाँधी जी के सबसे निकट हो जाते हैं। भाषा की मितव्ययिता को ध्यान मे रखकर वे रचना–कर्म मे प्रवृत्त होते है और इसी के बल पर वे यथार्थ के फैलाव को नियत्रित करते है। प्रेमचद अपनी भाषा के बल पर पाठको को सम्मोहित करते चलते है परन्तु यही घटना आलोचक के लिए निरापद नही प्रतीत होती। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी जी इस ओर सकेत करते हुए लिखते हैं कि – "प्रेमचद अपनी रचना प्रक्रिया मे भाषा का सम्पूर्णत दोहन कर लेते है, फलत ऐसी भाषा छवियाँ, सकेत शेष नही बचते जिनके सहारे वह उस रचना मे आगे अर्थ का सवर्द्धन कर सके" (हिदी गद्य · विन्यास और विकास – पृ० 250)। लेखक अपनी रचना का सृजन करते समय अपने मन मे यह भाव नही रखता कि आलोचको की दृष्टि मे यह कैसी होगी। वह समाज का यथार्थ रचता है। चतुर्वेदी जी इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "महात्मा गाँधी बहुत बडे है, मनीषी है, पर रचनाकार का उनसे विशेष प्रयोजन सिद्ध नही होता। प्रेमचद बहुत बडे रचनाकार है, पर आलोचक का उनसे प्रयोजन सिद्ध नही होता। यद्यपि कि रचनाकार का पहला दायित्व तो पाठक के प्रति है, और वहाँ वे महान है। आलोचक अपनी चिता स्वय करेगा।" (हिदी गद्य विन्यास और विकास – पृ० 252)।

यदि भाषा और सवेदना के आधार पर मूल्याकन किया जाये तो प्रेमचद का 'गोदान' उपन्यास, 'कफन' कहानी और 'महाजनी सभ्यता' नामक निबध (तीनो गद्य रूप मे लिखे गये है) का शब्द चयन, वाक्य विन्यास और अर्थ प्रक्रिया मे एक दूसरे को छूते काटते चलते है। 'गोदान' की कथा मे असली गद्य होरी का है जो 'महाजनी सभ्यता' के निबध – गद्य से मेल खाता है। इस बिन्दु पर प्रेमचद का समूचा गद्य एकाकार हो उठता है।

षष्ठ अध्याय :

मार्क्सवादी आलोचना और प्रेमचन्द का रचना–संसार

रामविलास शर्मा

चन्द्रबली सिह

नामवर सिह

शिव कुमार मिश्र

रमेश कुन्तल मेघ

म क्र्सवादी आलोचना और प्रेमच· ः का रचना–संसार

प्रमुख आलोचक

रामविलास शर्मा

डॉ० रामविलास शर्मा प्रेमचन्द के पहले और विशिष्ट आलोचक हैं। इन्होने प्रेमचन्द पर अपनी पहली पुस्तक 'प्रेमचन्द' (1941 ई०) नाम से दूसरी पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनका युग' (1952 ई०) नाम से लिखा है। इन दोनो पुस्तको के सम्यक् अनुशीलन से स्पष्ट होता हे कि प्रेमचन्द का रचना काल 1901 से लेकर 1936 तक फैला हुआ है। उन्होने स्वय अपनी आरभिक रचनाओ के बारे मे लिखा है कि 1901 मे उनका पहला उपन्यास और 1904 मे दूसरा उपन्यास प्रकाशित हुआ था। 1907 से उन्होने कहानियॉ लिखनी शुरू की थी। डॉ० शर्मा के शब्दो मे 'प्रेमचन्द ने अपना साहित्यिक जीवन एक उपन्यासकार और आलोचक की हैसियत से शुरू किया था।' वे बताते है कि युद्ध–काल ही मे उन्होने अपना पहला महान उपन्यास 'सेवासदन' लिखा और युद्ध खत्म होने पर 'प्रेमाश्रम' पूरा किया। इस प्रथम महायुद्ध काल से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने से कुछ वर्ष पूर्व तक वे मृत्यु पर्यन्त सृजनरत रहे। यह युग भारत मे अग्रेजी राज के लगभग दो शताब्दियो के शोषण, दमन और विनाश की अधकारपूर्ण त्रासदी का आखिरी दौर था, जब हमारे देश की जनता राष्ट्रीय नवजागरण के फलस्वरून औपनिवेशिक दासता से आजादी के लिए जद्दोजहद कर रही थी। प्रेमचन्द के सम्पूर्ण रचनाकाल के समानातर कभी रूक–रूककर और कभी तेजी से यह स्वाधीनता सग्राम चलता रहा, जिसकी शुरूआत छोटे–मोटे सुधार आदोलनो के ठीक पहले रूप मे 19वी शताब्दी के अतिम दशको मे हुई थी। लेकिन इन आन्दोलनो के ठीक पहले सन् 1857 का 'गदर' हुआ था, जो हमारी जनता का विदेशी दासता से आजादी का पहला सगठित सशस्त्र प्रयास था। इस गदर की मुख्य शक्ति ब्रिटिश राज मे तबाह होते हुए किसान और सैनिक थे। ये सैनिक भी मूलतः वर्दीधारी किसान ही थे।

प्रेमचन्द के रचनाकाल के समानातर जो स्वाधीनता आदोलन चला उसकी मुख्य शक्ति भी ये ग्रामीण किसान ही थे। जैसे–जैसे इन ग्रामीण किसानो मे चेतना का प्रसार होता गया और वे स्वाधीनता आदोलन मे शामिल होते गये, वैसे–वैसे ही हमारा स्वाधीनता आदोलन अधिकाधिक व्यापक, शक्तिशाली और तीव्र होता गया। इस स्वाधीनता आदोलन की दो बडी लहरे, **1920** का असहयोग आदोलन और **1930** का सविनय अवज्ञा आदोलनो, प्रेमचन्द के रचनाकाल के दौरान सबसे महत्वपूर्ण दौर है। डॉ० शर्मा के शब्दो मे "यहॉ के सामाजिक जीवन मे **1920** और **1930** के आदोलनो से बडे–बडे परिवर्तन हुए। जो काम **100** उपदेशो से न होते, वे राजनीतिक आदोलन ने कुछ ही दिनो मे कर दिखाये। सदियो के सामाजिक बधन क्षणो मे टूट गये।स्वाधीनता आदोलन मे शामिल होने वाली जनता के हिस्से थे किसान, अछूत और स्त्रिया। कालातर मे नवोदित मजदूर वर्ग भी स्वाधीनता आदोलन का अग बनता गया। वस्तुतः किसान मजदूर और अछूत तथा स्त्रिया ही सर्वाधिक शोषण और दमन का शिकार बनी थी। इसलिए इनकी समस्याए ही उस युग की मुख्य समस्याए और फलत· स्वाधीनता आदोलन की मुख्य समस्याए थी। इनकी समस्याओ पर स्वाधीनता आदोलन के नेतृत्व ने जितना ध्यान दिया, आदोलन उतना ही शक्तिशाली बना। किसानो, अछूतो और स्त्रियो मे जागरण पैदा करना गाधीजी की सबसे बडी सफलता थी। गाधीजी ने यह बात भी बिलकुल ठीक समझी थी कि भारतीय समाज का मुख्य अतर्विरोध साम्राज्यवाद और समस्त भारतीय जनता के बीच है।

प्रेमचन्द ने भी साम्राज्यवाद और भारतीय जनता क बीच उस मुख्य अतर्विरोध को पहचाना और अग्रेजीराज के खिलाफ जनता के सघर्ष को अपने उपन्यासो और कहानियो की विषयवस्तु बनाया। उनकी महत्ता ये है कि उन्होंने गाधीजी और किसी भी अन्य नेता से पहले किसानो, अछूतों और स्त्रियो की समस्याओ को सही परिप्रेक्ष्य मे समझा और अपनी रचनाओ मे प्रतिबिबित किया। परवर्तीकाल मे उन्होने नवोदित मजदूर–वर्ग की ओर भी दृष्टिपात किया। इस तथ्य से उनका महत्व और भी बढ जाता है कि उन्होने विदेशी शोषको के अलावा भारतीय जनता के देशी शोषको का भी पर्दाफाश किया तथा इनके खिलाफ मेहनतकश जनता के संघर्ष को चित्रित किया। प्रगतिशील लेखक सघ के स्थापना सम्मेलन मे सभापति पद से दिये गये भाषण मे स्वय प्रेमचद ने कहा था कि साहित्यकार 'देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नही, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।' डॉ० शर्मा ने प्रेमचन्द–साहित्य के अपने विवेचन मे

अत्यत विस्तार से और बडे प्रामाणिक ढग से यह दिखाया है कि प्रेमचद किस तरह से अपने युग की समझौतापरस्त 'देशभक्ति' और सुधारवादी 'राजनीति' से आगे चलने वाली सच्चाई थे।

डॉ० शर्मा बताते है कि 'वह एक युग-निर्माता साहित्यकार थे, केवल साहित्य मे युग का नाम लेने वाले नही बल्कि अपने समय के सामाजिक को एक नयी गति और एक नयी दिशा प्रदान करने वाले।' जिस समय विधवा-विवाह को भी एक क्रातिकारी सुधार समझा जाता था, उस समय नारी मात्र की पराधीनता पर उन्होने 'सेवासदन' लिखा और वेश्यावृति के सामती आधार को उघाडकर पाठको के सामने रख दिया। जिस समय जलियॉवाला बाग ओर रोलट एक्ट से भारत का पददलित आत्म-सम्मान जाग उठा था, उस समय प्रेमचद ने 'प्रेमाश्रम' लिखकर किसानो पर अग्रेजी राज्य और उसके दलालो के अत्याचार दिखाकर बतलाया कि स्वाधीनता आदोलन को पूरी ताकत इनकी समस्याओ को लेकर आगे बढने से मिलेगी। जिस समय देश मे बडे पैमाने पर राष्ट्रीय आदोलन चल रहा था, प्रेमचद ने 'रगभूमि' मे दिखाया कि जनता अब भी लड रही है, वह हारी नही है, वह जीतेगी। 'गोदान' मे उन्होने पढे-लिखे नौजवानो और किसानो की एकता की तरफ सकेत किया और किसानो के महाजनी शोषण का चित्र खीचा, जिसे किसान-आदोलन मे तब जगह न दी गयी थी। उन दिनो जब मदिर-प्रवेश को अछूत-समस्या हल करने का सबसे बडा साधन माना जाता था, उन्होने 'कर्मभूमि' मे अछूत किसानो और खेत-मजदूरा की भूमि-समस्या पर दृष्टि केद्रित की और उसमे लगानबदी की लडाई को उनकी मुख्य लडाई बताया। प्रेमचद ने अपने उपन्यासो मे जो सघर्ष, स्वाधीनता आदोलन के जो रूप दिखाए, वे सब हमारे सामने आये। यह इस बात का सबूत है कि वह देशभक्ति और राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई थे।[1] डॉ० शर्मा ने अपनी गहन अतर्दृष्टि, सूक्ष्म विश्लेषण और समृद्ध कलात्मक विवेक के साथ प्रेमचद के इन सभी प्रमुख उपन्यासो का प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन किया है। लेकिन इस विवेचन पर विचार करने से पूर्व प्रेमचद की विचारधारा और उनकी कृतियो से उभरने वाले यथार्थवाद के स्वरूप पर विचार करना बेहतर होगा।

---

[1] उपर्युक्त पृ० 157-158

(क) प्रेमचद की विचारधारा और उनका यथार्थवाद–

किसी भी लेखक या कलाकार की विचारधारा पर विचार करते हुए दो दृष्टियो से विवेचन करना जरूरी होता है। एक तो उस लेखक या कलाकार द्वारा व्यक्त सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विचार यहाँ तक कि भाषा, साहित्य, सस्कृति और सौन्दर्यशास्त्रीय विचार भी। दूसरे उस लेखक या कलाकार की कृतियो मे से उभरने वाली विचारधारा। दोनो मे सगति एक सुखद सयोग होता है। लेकिन अक्सर दोनो के बीच एक तरह के द्वद्व का सृजनात्मक तनाव भी रहता है। बडे से बडा लेखक इसका अपवाद नही होता। इसकी सर्वोत्कृष्ट मिसाल बॉलजाक, टाल्सटॉय और गोर्की कहे जा सकते है। महान् लेखक अपनी रचनाओ मे अपनी विचारधारा के अनेक अतर्विरोधो का समाधान पा जाते है। इसलिए लेखक की घोषित विचारधारा की तुलना मे उसकी रचनाओ मे से उभरने वाले विश्व–दृष्टिकोण को अधिक विश्वसनीय माना जाता है। डॉ० शर्मा भी मानते है कि लेखक या कलाकार अपने विचारो को व्यक्त तो करता है, "किन्तु कलाकार केवल विचार नही देता, वह जीवन–चित्र देता हे। जो बात उसके विचारो से प्रकट नही होती वह उसके कथाचित्रो से प्रकट होती हे।[1] इसलिए राजशाही के समर्थक बॉलजाक अभिजात का पतन और उभरते हुए नए वर्गो की विजय चित्रित कर सके। इसीलिए तोल्सतोय अपनी 'निष्क्रिय प्रतिरोध' की धारणाओ के बावजूद रूसी जनता के सक्रिय प्रतिरोध के अनुपम चित्र दे सके तथा अपने निराशावाद और धर्मवाद के बावजूद लेनिन के शब्दो मे 'रूसी क्राति के दर्पण' बन सके। गोर्की अपने नये धर्मवाद और अस्पष्ट मानवतावाद के बावजूद समाजवादी यथार्थवाद के अग्रदूत बन सके। जार्ज लुकाच ने बॉलजाक के उपन्यास 'दि पीजेट्स' का विवेचन करते हुए लेखक की विचारधारा पर उसके विश्व–दृष्टिकोण की विजय इन शब्दो मे व्यक्त की है· "इस उपन्यास (दि पीजेट्स) मे बॉलजाक चाहते तो थे कि फ्रास के मरणोन्मुख भूस्वामी अभिजात वर्ग की त्रासदी को प्रस्तुत करे। लेकिन अपनी पूरी तैयारी और योजना के बावजूद इस उपन्यास मे बॉलजाक की सृजनात्मक प्रतिभा ने ऐसी दिशा ली जो उनके इरादे के विपरीत थी। बॉलजाक ने त्रासदी का चित्रण अवश्य किया लेकिन यह दुखान्त था अभिजात वर्ग की भू–सम्पत्ति का नही बल्कि छोटे किसान वर्ग की जोत का। इरादे और परिणाम के या दूसरे

---

[1] उपर्युक्त पृ० 164

शब्दो मे राजनीतिक विचारक बॉलजाक और "ला कामेडी ह्यूमेन के लेखक बॉलजाक के बीच का यह अतर ही कलाकार के रूप मे बॉलजाक की ऐतिहासिक महानता की कुजी है।[1] लेकिन इस तथ्य को नही भूलना चाहिए कि महान् लेखक इस फॉक के बावजूद महान् होता है, महानता के लिए यह फॉक, यह अतर्विरोध अनिवार्य नही होता।

प्रेमचद के समाज–दर्शन पर उनकी साहित्यिक सवेदना की निरतर विजय का इतिहास उनके विश्व–दृष्टिकोण के विकास का इतिहास है। वे आर्य समाज से शुरू करके प्रगतिशील लेखक सघ के स्थापना सम्मेलन की अध्यक्षता और 'महान सभ्यता' जैसे लेख तक पहुँचते है। डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद ने अपने साहित्य का उद्देश्य घोषित किया था–स्वतत्रता–प्राप्ति। वह स्वाधीनता–सग्राम के सैनिक साहित्यकार थे। इस दृष्टि से देखा जाय तो प्रेमचद मे वैसे अतर्विरोध नही थे, जैसे बॉलजाक या टाल्सटॉय मे। डॉ० नामवर सिह इसी तथ्य की ओर सकेत करते हुए कहते हैं कि 'प्रेमचद मे अतर्विरोध थे, पर उनके युग के अन्य लेखको, उदाहरणार्थ आचार्य रामचद शुक्ल और निराला से कम। उनमे अतर्विरोध अपेक्षाकृत कम ही नही है, बल्कि ऐसे अतर्विरोध भी नही है, जो भारतीय समाज मे बद्धमूल है। वे बताते है कि "प्रेमचद ने टालस्टॉय और गोर्की दोनो को पढा था। उन पर दोनो का प्रभाव देखा जाता है, लेकिन यह भुला दिया जाता है कि वे दोनो महान् लेखको के अतर्विरोधो से मुक्त थे।"[2] टाल्सटॉय का विकास उन्मुक्त जीवन–दृष्टि से धार्मिक आस्था की ओर हुआ था, जबकि प्रेमचद आर्य समाज से शुरू करके मार्क्सवादी लेखको द्वारा आयोजित प्रगतिशील लेखक सघ के सम्मेलन की अध्यक्षता तक पहुँचे थे। इसी तरह गोर्की समाजवादी यथार्थवाद के सस्थापको मे से थे, लेकिन वे लबे अर्से तक एक नये ईश्वर की तलाश मे रहे, जिसके चलते लेनिन को उनका विरोध करना पडा था। प्रेमचद मे इस तरह का कोई अतर्विरोध नही मिलता। ऐसे नहीं, लेकिन फिर भी कुछ अतर्विरोध तो प्रेमचद मे भी थे ही। डॉ० शर्मा ने अपने विवेचन मे उनका उल्लेख भी किया है।

प्रेमचद का न तो व्यक्तित्व बहुत सरल और समतल था और न ही उनका साहित्य। प्रेमचद के अतर्विरोधो का अस्तित्व स्वीकार करते हुए डॉ० शर्मा इस तथ्य की ओर भी सकेत करते है कि 'हर आदमी मे अतर्विरोध होते है।' अतर्विरोध न हो तो उनका व्यक्तित्व गतिशील न होकर स्थिर और जड हो जाये। जब अंतर्विरोध एक हद तक सतुलित रहते हैं

---

[1] जार्ज लकाच 'यूरोपियन रियलिज्म' (मर्लिन) पृ० 21

[2] जनयुग (प्रेमचद विशेषाक), 23 मार्च, 1980

तब वे गतिशीलता प्रदान करते है, जब उनका असतुलन सीमा पार कर जाता है, तब व्यक्तित्व भीतर से टूट जाता है।[1] प्रेमचद की विचारधारा निरतर विकासशील दिखायी देती है। वे जिस बुलदी पर पहुँचते है वहाँ अनेक अतर्विरोधो और असगतियो को पार करते हुए पहुँचते है। अपने जीवन के अतिम दौर मे वे मार्क्सवाद और कम्युनिस्ट आदोलन के एकदम करीब थे। सोवियत सघ और विश्व–शाति से प्रेम तथा मजदूर–किसान एकता के बल पर एक नये स्वाधीन समाजवादी भारत का स्वप्न उनमे साफ तौर से झलकते है। लेकिन ये सब बाते बहुत धीरे–धीरे स्पष्ट होकर सामने आयी है।' डॉ० शर्मा के अनुसार वह एक तरफ धार्मिक अधविश्वासो के कट्टर आलोचक थे, दूसरी तरफ पुनर्जन्म, भूत–प्रेत और भाग्य पर विश्वास की ओर भी झुकते थे। प्रेमचद के व्यक्तित्व के ये अतर्विरोध भारतीय समाज की तत्कालीन परिस्थियो से उत्पन्न होते है। इसी तरह वे प्रेमचद के साहित्य सबधी विचारो मे भी कतिपय असगतियो की ओर सकेत करते है। मिसाल के लिए प्रेमचद द्वारा मनोभावो को अपरिवर्तनशील मानना और अपने एक निबध मे 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को निरापद बतलाना। ऐसी धारणा के सबध मे डॉ० शर्मा ने लिखा है कि स्वय प्रेमचद का समूचा साहित्य इस धारणा का खडन करता है। प्रेमचद के विचार–जगत और उनके कथा–साहित्य मे ऐसा द्वद्व तो मिलता है, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि "इस द्वद्व को वह विचार–जगत मे उतना हल नही कर पाये जितना अपने कथा–साहित्य के रचनात्मक ससार मे।"[2] स्वय डॉ० शर्मा के विवेचन से पता चलता है कि कैसे प्रेमचद धीरे–धीरे अपने विचार–जगत मे भी इस द्वद्व को सफलतापूर्वक हल कर रहे थे।

साहित्य की व्याख्या करते हुए प्रेमचद ने लिखा था कि 'साहित्य का आधार जीवन है। इसी नीव पर साहित्य की दीवार खडी होती है। उसकी अटारियाँ मिनार और गुबद बनते है, लेकिन बुनियादी मिट्टी के नीचे दबी पडी है। अपने 'जीवन मे साहित्य का स्थान' शीषर्क इस निबध मे उन्होने 'साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है' घोषित करके यह भी लिखा है कि साहितकार बहुधा अपने देश–काल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश मे उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश–बधुओ के कष्टो से विकल हो उठती है और अपनी इस मार्मिक

---

[1] प्रेमचद और उनका युग', पृ० 185
[2] उपर्युक्त पृ० 140

अनुभूति की व्यापकता के कारण "वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।"[1] इसी निबध मे प्रेमचद ने भावो के परिमार्जन को वाछनीय बताकर न केवल मनोभावो की परिवर्तनशीलता स्वीकार की है, बल्कि उसे 'वाछनीय' भी माना है।

अपने लखनऊ वाले अध्यक्षीय भाषण मे प्रेमचद ने साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' बताकर एक ओर जहॉ रीतिवादी सस्कारो का खडन किया था, वही दूसरी ओर रहस्यवाद और भाववाद पर भी चोट की थी। स्वय प्रेमचद के शब्दो मे 'कला नाम था और अब भी है सकुचित रूप–पूजा का, शब्द–योजना का, भाव–निबधन का। उसके लिए कोई आदर्श नही है, जीवन का कोई ऊँचा उद्देश्य नही है– भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म और दुनिया से किनाराकशी उसकी सबसे ऊँची कल्पनाएँ है।' इसके विपरीत वे घोषित करते है कि 'मुझे यह कहने मे हिचक नही कि मैं और चीजो की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ।' इसलिए वे सुदरता की कसौटी बदलने का आवाहन करते है। उन्ही के शब्दो मे 'हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमे उच्च चितन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन मे सच्चाइयो का प्रकाश हो–जो हममे गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नही, क्योकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।' डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद का यह भाषण उनके निबधो और भावनो मे ही श्रेष्ठ नही था। हिन्दी और उर्दू मे प्रगतिशील साहित्य पर जितने भाषण और निबध लिखे–पढे गये है, सभी मे उसका अन्यतम स्थान है। इस भाषण मे अनेक सामती और पूँजीवादी साहित्य–सिद्धान्तो के साथ ही 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त का भी जोरदार खडन मिलता है।

डॉ० शर्मा बताते है कि भारतेन्दु से लेकर प्रेमचद तक हिदी–साहित्य की परम्परा मे यह बात ध्याान देने की है कि हमारे साहित्यकार पत्रकार भी थे। प्रेमचद की पत्रकारिता का मूल्याकन करते हुए वे कहते है कि यह पत्रकारिता एक सजग और लडाकू पत्रकारिता थी, जो देश–विदेश के घटना–क्रम मे दखल देती थी, जनता के जीवन और साहित्यकार के परस्पर सबध को मजबूत करती थी। जब गाधीजी ने बिहार मे आये भूकप का कारण पाप 'को बतलाया तो प्रेमचद ने 'हस' मे सपादकीय टिप्पणी लिखकर इस अधविश्वास का विरोध किया और कहा कि "भूकप किसी पाप–पुण्य के कारण नही हुआ, वह प्रकृति की एक लीला

---

[1] प्रेमचद मगल–सूत्र व अन्य रचनाएँ पृ० 185, 188 एव 190

है और भूगर्भ की वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक परिणाम है।"[1] 'प्रेमाश्रम' मे उन्होने अन्याय का दमन करने मे सत्याग्रह के सिद्धात को भ्रातिपूर्ण ही सिद्ध नही किया था, दुखरन भगत से शालिग्राम की बटिया भी फिकवा दी थी। इसी उपन्यास मे उन्होने रूसी, बलगारी क्रातियो की सूचना ही नही दी थी, बल्कि फरवरी 1919 के 'जमाना' मे अपने एक लेख मे यह भी लिखा था कि आने वाला जमाना अब किसानो और मजदूरो का है। दुनिया की रफ्तार उसका साफ सबूत दे रही है। पाठको को रूसी क्राति का परिचय देने के बाद उन्होने लिखा था कि "इकलाब से पहले कौन जानता था कि रूस की पीडित जनता मे इतनी ताकत छिपी हुई है? अपने इसी लेख मे वे भारत की परिस्थिति का उल्लेख करते हुए कहते है कि "क्या यह शर्म की बात नही कि जिस देश मे नब्बे फीसदी आबादी किसानो की हो उस देश मे कोई किसान–सभा, कोई किसानो की भलाई का आदोलन, कोई खेती का विद्यालय, किसानो की भलाई का कोई व्यवस्थित प्रभाव न हो।"[2] किसानो के प्रति यह भाव हम प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचद शुक्ल और निराला मे भी पाते है।

प्रेमचद ने जनता को प्रथम समाजवादी क्राति से परिचित ही नही कराया था, बल्कि 'जमाना' के सपादक दयानारायण निगम को 1919 मे यह भी सूचित किया था कि ' मै अब करीब–करीब बोल्शेविक उसूलो का कायल हो गया हूँ।' निगम जी को ही एक पत्र मे उन्होने लिखा था कि "मै तो उस आने वाली पार्टी मेबर का हूँ जो कोतहुन्नास (छोटे लोगो) की सियासी तालीम को अपना दस्तूर उल–अमल बनाये।"[3] प्रेमचद ने 'सोवियत रूस मे प्रकाशक और रूसी साहित्य और हिदी' जैसी टिप्पणियॉ लिखकर समाजवादी क्राति के बाद सोवियत सघ मे आये परिवर्तनो से जनता को परिचित कराया था। अपनी दूसरी टिप्पणी के अत मे उन्होने लिखा था कि 'जिन लेखको ने रूस को उस मार्ग पर लगाया, जिस पर चलकर आज वह दुखी ससार के लिए आदर्श बना हुआ है, उनकी रचनाएँ क्यो न आदर पाएँ? प्रेमचद ने अमेरिका मे कृषक विद्रोह के बारे मे, युद्ध के खिलाफ, जापानी सैनिकवाद के खिलाफ और फासीवाद–हिटलरवाद के खिलाफ टिप्पणियॉ और लेख लिखकर अपनी अतराष्ट्रीय समझ का परिचय दिया है। इसके अलावा उन्होने भारतीय जनता की गरीबी, उसके साम्राज्यवादी शोषण, अग्रेजीराज के दमन और प्रेस–सेसरशिप के खिलाफ भी निरतर लिखा था।

---

[1] हस', (जनवरी, 1934)
[2] विविध प्रसग' (खण्ड–1), पृ० 268
[3] चिटठी–पत्री (खण्ड 1), पृ० 93 एव 130

अपने अतिम लेख 'महाजनी सभ्यता' मे उन्होने पूँजीवादी महाजनी सभ्यता का बडी निर्ममता के साथ पर्दाफाश करते हुए सोवियत सघ की समाजवादी व्यवस्था के बारे मे लिखा था, 'परन्तु अब एक नयी सभ्यता का सूर्य सुदूर पश्चिम मे उदय हो रहा है, जिसने इस नारकीय महाजनवाद या पूँजीवाद की जड खोद कर फेक दी है' और इसी नयी सभ्यता ने व्यक्ति–स्वातत्र्य के पजे, नाखून और दॉत तोड दिये है। उसके राज्य मे अब एक पूँजीपति लाखो मजदूरो का खून पीकर मोटा नही हो सकता। उसे अब यह आजादी नही कि अपने नफे के लिए साधारण आवश्यकता की वस्तुओ के दाम चढा सके, दूसरे अपने माल की खपत कराने के लिए युद्ध करा दे, गोला–बारूद और युद्ध–सामग्री बनाकर दुर्बल राष्ट्रो का दमन कराये।' सोवियत सघ की समाजवादी व्यवस्था का सबध भारत से जोडते हुए इस लेख का समापन प्रेमचद इस प्रकार से करते है, "जो शासन–विधान और समाज–व्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है, वह दूसरे देशो के लिए भी हितकर होगी। हॉ, महाजनी सभ्यता और उसके गुर्गे अपनी शक्ति भर उसका विरोध करेगे, जन–साधारण को बहकावेगे, उनकी ऑखो मे धूल झोकेगे, पर जो सत्य है एक न एक दिन उसकी विजय होगी और अवश्य होगी।"[1] यह लेख प्रेमचद ने अपनी मृत्यु से कुछ ही दिन पूर्व लिखा था, जो हस के सितम्बर 1936 के अक मे छपा था।

प्रेमचद ने इन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आर साहित्य–सम्बन्धी विचारो के साथ ही डॉ० शर्मा ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाया है कि प्रेमचद ने अग्रेजी भाषा के प्रभुत्व को साम्राज्यवादी प्रभुत्व का ही अटूट अग बताते हुए लिखा था कि 'अग्रेजी राजनीति, का व्यापार का, साम्राज्यवाद का हमारे ऊपर जैसा आतक है, उससे कही ज्यादा अग्रेजी भाषा का है। अग्रेजी राजनीति से, व्यापार से, साम्राज्यवाद से तो आप बगावत करते है, लेकिन अग्रेजी भाषा को आप गुलामी के तौक की तरह गर्दन मे डाले हुए है। 'प्रेमचद हिन्दी–उर्दू को एक भाषा मानते थे और उन्होने धर्म को भाषा का आधार मानने के अवैज्ञानिक सिद्धात का खडन किया था। डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद ने अपने अमल से दिखलाया कि साहित्य का जातीय रूप समृद्ध करने से, उसमे जनवादी विचारो का समावेश करने से, भाषा की समस्या हल करने मे मदद मिलती है। प्रेमचद की इस विविधतापूर्ण और विराट विचार–जगत के साथ उनके कथा–साहित्य को मिलाकर देखने से उनकी जो मुकम्मिल तस्वीर उभरती है, उससे डॉ० शर्मा का यह कथन एकदम सही प्रतीत होता है कि

---

[1] मगल–सूत्र व अन्य रचनाएँ, पृ० 195–97

"प्रेमचद का व्यक्तित्व असाधारण था। उन्होने न केवल हिदी–उर्दू मे, वरन् समग्र भारतीय साहित्य मे एक जबर्दस्त क्राति की। भारत के बाहर यदि रूस, ब्रिटेन या फ्रास के कथाकारो को ले तो किसानो के जीवन का चित्रण करने मे उनका सानी नही है।"[1] इस कथन से प्रेमचद की महानता और उनके वैशिष्ट्य की झलक भली–भॉति मिल जाती है।

डॉ० शर्मा ने 'प्रेमचद और उनका युग' के तीसरे सस्करण (1965) मे 'समस्याएँ' शीर्षक जो नया अध्याय जोडा उसमे प्रेमचद, टाल्सटॉय पथ और गाधीवाद की चर्चा की गयी है। इसमे मुख्य समस्या यह है कि 'प्रेमचद, महात्मा गाधी, टाल्सटॉय इनकी विचारधारा का आपस मे क्या सबध है?' डॉ० शर्मा के अनुसार ऊपर से देखने पर इन तीनो की विचारधारा मे बडा गहरा सबध लगता है, क्योकि गांधीजी टाल्सटॉय से प्रभावित थे और प्रेमचद पर गाधीजी के जीवन और विचारधारा का प्रभाव होना ही चाहिए। टाल्सटॉय और गाधीजी के विचारो का विस्तार से परिचय देने के बाद डॉ० शर्मा बताते हैं कि कथाकार टाल्सटॉय धर्माचार्यों के कटु आलोचक हैं, वह नारी की गरिमा के चितेरे है, वह रूसी जनता के सक्रिय प्रतिरोध का अनुपम चित्र खीचने वाले कलाकार है। इससे वह गाधीजी और प्रेमचद दोनो के बहुत निकट है। राजनीति से पराडमुख, स्त्री पराधीनता के हामी, धर्म के समर्थक, अहिसावाद के पुजारी विचारक टाल्सटॉय से गाधीजी काफी दूर है, प्रेमचद और भी दूर। डॉ० शर्मा के अनुसार गाधीजी का सकारात्मक पहलू यह था कि वे अपने अहिसावाद के कारण करोडो आदमियो को राजनीतिक जीवन मे खीच लाये और उनकी विचारधारा और कार्यनीति का प्रतिक्रियावादी पक्ष वह है जहॉ वह किसानो को सामतविरोधी सघर्ष से रोकते है तथा इसके अलावा गाधीजी मजदूर–सघर्ष को भी शक की निगाह से देखते थे। इसके विपरीत प्रेमचद इस सघर्ष को रोकना तो दूर, उनका स्वागत करने वाले लेखक थे। यह गाधीवाद और प्रेमचद–साहित्य का मुख्य भेद है। डॉ०शर्मा के शब्दो मे 'प्रेमचद–साहित्य मे किसानो की सीधी टक्कर अग्रेजीराज से कम होती है। उनकी सीधी टक्कर होती है महाजनो, सूदखोरो, जमीदारो और पडे–पुरोहितो से। अग्रेजीराज इनके सहायक के रूप मे आता है। प्रेमचद की बहुत बडी विशेषता यह है कि वे भारतीय समाज के अदरूनी सघर्ष को समझते थे, उस पर पाठको का ध्यान केन्द्रित करते थे, इस सघर्ष से साम्राज्य विरोधी सग्राम का सबध जोडते थे।' वे आगे लिखते हैं कि 'सामत–वर्ग की सबसे निर्मम आलोचना भी प्रेमचद ने की है। वह न केवल मजदूर–वर्ग की हिमायत करते थे वरन् अपने को भी

---

[1]प्रमचद और उनका युग पृ० 181

मजदूर कहते थे।' इसके साथ ही वे इस महत्वपूर्ण तथ्य को भी रेखाकित करते हैं कि प्रेमचद की विचारधारा पर भौतिकवाद का गहरा असर था।"[1] इस तरह, अपनी विकास यात्रा के अतिम चरण मे वे कम्युनिस्टो के बहुत करीब चले आये थे।

अमृतराय–लिखित प्रेमचद की जीवनी 'कलम का सिपाही' की आलोचना करते हुए डॉ० शर्मा ने लिखा है कि प्रेमचद का 'साहित्य–सृजन अधिकतर सोवियत क्राति के बाद के युग मे हुआ जब हमारे राष्ट्रीय आदोलन पर समाजवादी विचारधारा का गहरा असर पडा। कितु सन् 1917 से पहले और बाद को उन्होने जो साहित्य रचा, उसके सूत्र अलग न होकर आपस मे जुडे हुए है। उन्होने रूढिवाद के विरोध मे अपना सघर्ष पहले से ही आरभ कर दिया था, उस सघर्ष मे विकास हुआ, किन्तु उसका सुत्रपात सन् 1917 से पहले ही हो चुका था।' प्रेमचद के अपने सपूर्ण मूल्याकन का जैसे निचोड प्रस्तुत करते हुए डॉ० शर्मा ने उनके विश्व–दृष्टिकोण के बारे मे लिखा है कि "प्रेमचद जिस विचार–भूमि से समाज के भीतरी द्वद्व को देखते थे, वह साधारण खाते–पीते किसान की हैं। जिदगी ने उन्हे देहात के सर्वहारा वर्ग के नजदीक ला पटका। उनकी विचारधारा पर सर्वहारा वर्ग न केवल देहाती, वरन् शहरी सर्वहारा वर्ग की नयी चेतना का रग भी चढा हुआ हे।"[2] डॉ०शर्मा ने यात्रिक ढग से प्रेमचद के 'वर्ग का निर्धारण' करके कोई फैसला सुना देने की बजाय यह सही खाका खीचा है।

मानव–सभ्यता के उषाकाल से ही मनुष्य ने यथार्थ के प्रति अपनी सहज स्वाभाविक रूझान का परिचय दिया है। लेकिन 'यथार्थवाद' का आदोलन 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से अस्तित्व मे आया। इस दृष्टि से होमर, शेक्सपियर, सर्वेतीस या बाल्मीकी, तुलसी और कबीर आदि का कृतित्व यथार्थ के प्रति परिष्कृत और स्वाभाविक कलात्मक अभिरूचि तो प्रदर्शित करता है लेकिन ये महान रचनाकार 'यथार्थवाद' के किसी आदोलन के अग नही थे। मार्क्सवादी साहित्य–चितन मे इस क्लासिकल साहित्य के सश्लिष्ट और स्वत· स्फूर्त यथार्थवाद के अलावा यथार्थवाद की दो कोटियॉ बतलायी गयी है आलोचनात्मक यथार्थवाद ओर समाजवादी यथार्थवाद। मिसाल के लिए बॉलजाक, टाल्सटॅाय, चेखव और गोगोल आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकार माने जाते हैं और गोर्की को समाजवादी यथार्थवाद का अग्रदूत कहा जाता है। डॉ० शर्मा ने प्रेमचद को न तो आलोचनात्मक यथार्थवादी कहा है

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 165, 166 एव 187
[2] उपर्युक्त पृ० 187

ओर न ही उन्हे समाजवादी यथार्थवाद का रचनाकार माना है। स्वय उन्ही के शब्दो मे "प्रेमचद बहुत—सी असगतियो के बीच से गुजरते हुए क्रातिकारी यथार्थवाद की तरफ आ रहे थे—एक ऐसे यथार्थवाद की तरफ, जो जीवन का सही चित्र देते हुए पाठक मे अपने जीवन की परिस्थितियो को बदलने की, एक नया जानवादी और स्वाधीन जीवन—निर्माण करने की प्रेरणा भी दे।"[1] अपने 'प्रेमचद और यथार्थवाद' शीर्षक निबध मे डॉ० शर्मा ने प्रेमचद के सघर्षशील नायको को 'पाजीटिव हीरो' कहा है।"[2] 'पाजीटिव हीरो' की यह अवधारणा समाजवादी यथार्थवाद का अभिन्न अग मानी जाती है।

डॉ० शर्मा के उपर्युक्त विवेचन से ऐसा आभास मिलता है कि प्रेमचद का 'क्रातिकारी यथार्थवाद' समाजवादी यथार्थवाद की ओर तेजी से अग्रसर एक ऐसा नया यथार्थवाद है जो आलोचनात्मक यथार्थवाद की सीमाओ को बहुत पीछे छोड चुका है। डॉ० शर्मा द्वारा किये गये प्रेमचद के समग्र मूल्याकन से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। इस प्रकार हम देखते है कि प्रेमचद—साहित्य की व्यावहारिक आलोचना के क्रम मे ही डॉ० शर्मा अत्यत महत्वपूर्ण सैद्धातिक निष्कर्ष भी देते है। यह बात उचित भी है, क्योकि मूल्याकन के प्रतिमान न तो बने बनाये ढॉचे की तरह होते है और न ही ऐसे हो सकते हे। वे स्वय उस सृजनात्मक साहित्य के भीतर से उभरते हैं जिसका मूल्याकन किया जाता हे। प्रेमचद के यथार्थवाद पर विचार करते हुए डॉ०शर्मा ने यथार्थवाद की जिस नयी कोटि क्रातिकारी यथार्थवाद को सूत्रबद्ध किया है, वह मार्क्सवादी आलोचना और सौन्दर्यशास्त्र के शस्त्रागार मे एक नया अस्त्र है, एक नया सर्जनात्मक और क्रातिकारी योगदान है।

प्रेमचद को प्राय स्वाधीनता आदोलन का कथाकार कहा जाता है। इसका श्रेय डॉ० रामविलास शर्मा के प्रेमचद—मूल्याकन को ही है। डॉ०शर्मा ने प्रेमचद के उपन्यासो का मूल्याकन करते हुए एक ओर जहॉ उनकी मूल अतर्वस्तु को उभारकर सामने रखा है, वही दूसरी ओर वे उनका संबध उस समय चल रहे भारतीय जनता के बेमिसाल राष्ट्रीय स्वाधीनता सग्राम से भी जोडते है। उपन्यासो मे केद्रीय समस्या को सामने लाते हुए वे उस समस्या और उससे सबधित लोगो, वर्गो, समुदायो की सामाजिक स्थिति पर इस तरह रोशनी डालते है कि स्वाधीनता आदोलन मे शामिल विभिन्न वर्गो और समुदायो को अपनी वर्गीय और सामाजिक स्थिति का भी उससे सबंध जुड जाता है। उपन्यास की विषय—वस्तु

---

[1] उपर्युक्त पृ० 137–138
[2] रामविलास शर्मा, कथा विवेचना और गद्यशिल्प, पृ० 13

चाहे जो हो, उसकी केंद्रीय समस्या चाहे जो हो, लेकिन प्रेमचद जैसे अपने प्रत्येक उपन्यास की गाथा स्वाधीनता आदोलन की पृष्ठभूमि पर ही चित्रित करते हैं। उनके हरेक उपन्यास की कथा के भीतर से आजादी की लडाई का सुनहरा तार उवश्य झिलमिलाता हुआ गुजरता है, जैसे उसके चित्रण के बगैर प्रेमचद उपन्यास लिख ही नही सकते थे।

डॉ० शर्मा द्वारा किया गया प्रेमचद के अलग–अलग उपन्यासो का विश्लेषण इसी तथ्य को रेखाकित करता है। 'सेवासदन' की नारी मुक्ति की समस्या, 'प्रेमाश्रम' की लगान की समस्या, 'रगभूमि' की जमीन समस्या, 'कर्मभूमि' की अछूत किसानो और खेतमजदूरो की भूमि–समस्या तथा 'गोदान' की महाजनी–जमीदारी कर्ज की समस्या इन सभी का सबध स्वाधीनता आदोलन से जाकर जुड जाता है। इसके लिए प्रेमचद के अलग–अलग उपन्यासो के डॉ०शर्मा द्वारा किये गये मूल्याकन का विवेचन कुछ विस्तार से करने को जरूरत है।

'सेवासदन'

प्रेमचद का हिन्दी मे प्रकाशित पहला उपन्यास 'सेवासदन' है। डॉ० शर्मा ने इस उपन्यास से हिन्दी उपन्यासो मे एक नये यथार्थवाद का आरभ माना है।"[1] इस उपन्यास के सदर्भ मे दो तरह के भ्रम प्रचलित रहे है। पहला यह कि प्रेमचद के इस उपन्यास से पहले देवकीनदन खत्री के तिलिस्मी और ऐय्यारी उपन्यासो के अलावा हिन्दी मे और कुछ नही था। दूसरा यह कि 'सेवासदन' की कहानी मुख्यत. वेश्या–जीवन की कहानी है। डॉ० शर्मा के अनुसारन ये दोनो ही बाते गलत है।

पहली बात के सदर्भ मे डॉ० शर्मा बताते है कि 'सेवासदन' से पहले हिन्दी कथा–साहित्य की एक परपरा कायम हो रही थी जिस पर ध्यान देने से 'सेवासदन' उसी का एक अगला बढा हुआ कदम मालूम होता है। डॉ० शर्मा के अनुसार 'भारतेन्दु युग के बहुत से निबध चरित्र–चित्रण और कथोपकथन की दृष्टि से उपन्यास की सीमा को छूते हुए दिखायी देते है। खासकर उनके व्यग और हास्य मे, सजीव शैली में और सामाजिक समस्याओ की छानबीन मे प्रेमचद के उपन्यासों से बहुत बडी समानता दिखाई देती है।' इस प्रसग मे भारतेन्दु युग के लेखको के उपन्यास की सीमा को छूने वाले कुछ निबंधों का

---

[1] रामविलास शर्मा, प्रेमचद और उनका युग पृ० 35

उल्लेख करने के बाद बताते हैं कि "वर्तमान समाज मे शिक्षा की बिडबना, धार्मिक पाखड द्वारा समाज–सुधार का विरोध, अग्रेज शासको द्वारा जनता का उत्पीडन इन निबधो के विषय है।"[1] प्रेमचद के कथा–साहित्य मे भी घूम–फिरकर मुख्यत यही विषय आते हैं।

उपन्यास की सीमा छूने वाले निबधो के अलावा भारतेन्दु युग मे ऐसे सामाजिक उपन्यासो का भी सूत्रपात हो चुका था जो भाषा और चरित्र–चित्रण की स्वाभाविकता मे अपनी उपदेशात्मकता के बावजूद आकर्षित करते हैं। इन सामाजिक उपन्यासो की परपरा के सपन्न धरातल से ही प्रेमचद ने अपने उपन्यासो का उठाया था। डॉ०शर्मा ने इन तथ्यो को रेखाकित करने के बाद ही विस्तार से इस उपन्यास का विवेचन करते हुए यह दिखलाया है कि प्रेमचद किस नये यथार्थवाद का सूत्रपात कर रहे थे। डॉ० शर्मा के अनुसार "बीसवी सदी के भारतीय समाज मे धीरे–धीरे एक परिवर्तन हो रहा था। साम्राज्यवादी सामती जुए के नीचे जनता कसमसाने लगी थी और समाज का सबसे दलित अग नारी राष्ट्रीय पराधीनता और घरेलू दासता, दोनो मे पिसती हुई नारी स्वाधीनता के लिए हाथ फैलाने लगी थी। प्रेमचद ने सबसे पहले इस परिवर्तन को देखा, उसका स्वागत किया था उसे बढावा दिया था।"[2] यही वह नया यथार्थवाद था जिसका चित्रण प्रेमचद जैसी तीक्ष्ण अर्तदृष्टि और अपूर्व कलात्मक क्षमता के साथ उनसे पहले ही नही उनके बाद भी किसी अन्य लेखक ने नही किया।

प्रेमचद का यह नया यथार्थवादी दृष्टिकोण और उसे चित्रित करने की उनकी कलात्मक क्षमता ही उनकी लोकप्रियता का सबसे बडा आधार है। भारतेन्दु युग के निबधो ओर उपन्यासो के पढने वाले बहुत थोडी सख्या मे थे। चद्रकाता और 'तिलिस्म होशरूबा' क पढने वाले लाखो थे। प्रेमचद ने इन लाखो पाठको को सेवासदन का पाठक बनाया, यह उनका युगान्तरकारी काम था। डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद ने 'चद्रकाता' के पाठको को अपनी तरफ ही नहीं खीचा, चद्रकाता मे अरूचि भी पैदा की, जन–रूचि के लिए उन्होने नये माप–दड कायम किये और साहित्य के नये पाठक–पाठिकाएँ पैदा की। यह उनकी जबरदस्त सफलता थी। प्रेमचद की इस सफलता के पीछे उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण के साथ ही लगभग डेढ दशक का उपन्यास–लेखन का उनका सृजनात्मक अभ्यास भी था। 'सेवासदन' उनका पहला हिन्दी उपन्यास है पर वह एक मॅजी हुई कलम की रचना है।

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 30
[2] उपर्युक्त पृ० 37

दूसरी समस्या का सबध उपन्यास की अतर्वस्तु से है। डॉ० शर्मा के अनुसार 'सेवासदन' की अतर्वस्तु वेश्या–जीवन का चित्रण नही बल्कि भारतीय नारी की पराधीनता ओर उसके खिलाफ सघर्ष का चित्रण करना है। डॉ० शर्मा लिखते हैं कि "प्रेमचद ने किस तरह तमाम पुरानी सास्कृतिक परपराओ को तोडते हुए वर्तमान समाज मे नारी की पराधीनता को अपने निष्ठुर और वीभत्स रूप मे चित्रित किया है, इस पर सहसा विश्वास नही होता।"[1] नारी की पराधीनता के खिलाफ सघर्ष मे प्रेमचद के साथ ही डॉ० शर्मा तमिलनाडु के महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती और तेलुगु साहित्य के भारतेन्दु वीरेशलिगम् को भी याद करते है। वे इस तथ्य को रेखाकित करते है कि प्रेमचद नारी के आदर और सम्मान की समस्या को तीखेपन से और बार–बार पाठको के सामने लाते हैं। उपन्यास की नायिका सुमन के बारे मे वे लिखते है कि "हिन्दी कथा–साहित्य की वह पहली नारी है जो आत्म–सम्मान की रक्षा के लिए सघर्ष की डगर पर पॉव उठाती हैं।"[2] वस्तुत· यही एक नया यथार्थवाद है जिसका सूत्रपात हिदी उपन्यास–साहित्य मे प्रेमचद ने किया था।

डॉ० शर्मा ने भारतीय नारी की पराधीनता की समस्या की अतर्वस्तु का सूत्र पकड कर ही 'सेवासदन' के कथानक का सूक्ष्म विश्लेषण किया ह। इस अतर्वस्तु के निर्वाह के लिए ही प्रेमचद ने अन्य समस्याओ के साथ वेश्या जीवन की समस्या को भी उठाया ह। डॉ० शर्मा बताते है कि प्रेमचद ने विस्तार से दिखलाया हं कि इस समाज–व्यवस्था मे सपत्ति के रक्षक सदाचार की आड मे वेश्यावृत्ति को प्रश्रय ही नही देते, वेश्याओ को जन्म भी देते है। प्रेमचद ने सामाजिक सबधो की छानबीन कितनी गहराई से की हैं, यह इसी से जाहिर होता है कि उन्होने वेश्यावृत्ति की मूल प्रेरक शक्तिया को कठघरे मे खडाकर दिया है जहॉ से उपन्यासकार और पाठको की नजर बचाकर भाग जाना उनके लिए सभव नही हे। दहेज, अनमेल विवाह, पति का सदेह, घर से निकालना आँर वेश्या की देहरी। मानो इस विवाह प्रथा और वेश्यावृत्ति मे कोई अन्योन्याश्रय सबध हो कि एक होगी तो दूसरी होगी ही। ओर जिस समाज मे विवाह का मतलब कन्या–विक्रय हो, उससे वेश्यावृत्ति कौन उठा सकता है?[3] सुमन और भोली के माध्यम से प्रेमचद ने इसी कटु वास्तविकता का तीखा अहसास कराया है।

---

[1] उपर्युक्त पृ० 32
[2] उपर्युक्त पृ० 41
[3] उपर्युक्त, पृ० 38

इसके साथ ही प्रेमचद ने गॉवो का चित्रण करते हुए वहा प्रचलित मध्यकालीन सस्कारो और सामती कुप्रथाओ का चित्रण भी पूरी निर्ममता के साथ किया है। डॉ० शर्मा ने उपन्यास के उन अशो को उद्धृत किया है, जहाँ प्रेमचद ने वर ढूँढने वाले के आने पर गॉवो मे आयी तब्दीलियो का वर्णन किया है। डॉ० शर्मा लिखते हैं कि "सामती सस्कारो का कैसा अनुपम चित्रण है। रोज खेतों मे काम करने वाले किसान क्यो हल नही छूते? पानी भरने वाली स्त्रियॉ क्यो कुएँ पर नही जाती? इसलिए कि समाज मे इज्जत उनकी होती है जो अपने हाथ से काम नही करते, जिनकी स्त्रियॉ दूसरो से काम कराने मे अपना गौरव समझती है। उन्ही जागीरदारो, जमीदारो और महतो की नकल करते हुए मेहनती किसान मेहनत के काम को छिपाना चाहते है। इस समाज मे मेहनत की इज्जत नही होती, क्योकि मेहनत करने वाला आजाद नही है। अपनी मेहनत का फल वह खुद नही पाता बल्कि समाज के 'प्रतिष्ठित' लोग पाते है।"[1] प्रेमचद गॉवो और ग्रामीण जनता से प्रेम करते थे, उनकी गरीबी, अशिक्षा और कुरीतियो से नही। वे गॉवो को बदलना चाहते थे।

प्रेमचद ने जैसे ग्रामीण जनता की कुरीतियो और सामती सस्कारो पर चोट की है, वैसे ही, बल्कि उससे भी बढकर, उन्होने शहरी शिक्षित मध्यमवर्ग, राजनेताओ, सेठो–महाजनो, मुल्ला–मौलवियो और पडो के पाखड और कुसस्कारो और कुसस्कारो पर चोट की है। इस तथ्य की ओर सकेत करते हुए डॉ० शर्मा ने दोनो जगह प्रेमचद द्वारा अलग–अलग शैली अपनाने का उल्लेख किया है। वे लिखते है कि "शहर के पढे–लिखे कायरो और गॉव के इन अनपढ किसानो का चित्रण करते हुए प्रेमचद की शैली बदलती जाती है। उनकी सहज सहानुभूति किसानो के साथ है, जा अपनी अशिक्षा और कुसस्कारो के लिए खुद जिम्मेदार नही है। इसलिए उनकी शैली परिहास का पुट लिए है। शहर के पढे–लिखे दहेज–प्रेमी ऑखे हाते हुए भी अधे है, इसलिए वहाँ प्रेमचद की शैली व्यगपूर्ण और मर्म पर चोट करने वाली होती है।"[2] इसी तरह डॉ० शर्मा प्रेमचद की कला का एक अन्य पहलू उनके चरित्र–चित्रण की क्षमता मे दिखलाते है। वे लिखते है कि "प्रेमचद ने सुमन को एक सॉचे मे ढली हुई सुन्दर मूर्ति की तरह पाठक के सामने नही रख दिया। उनके चरित्र–चित्रण मे एक मौलिकता है जो उनकी कला की सबसे बडी विशेषता है। वह यह है कि वे परिस्थितियो के उतार–चढाव के साथ अपने पात्रों के चरित्र मे भी

---

[1] उपर्युक्त पृ० 34–35
[2] उपर्युक्त, पृ० 35

उतार–चढाव दिखाते है। सुमन जैसे–जैसे कठिनाइयो का सामना करती है, वैसे–वैसे उसका व्यक्तित्व निखरता है।"[1] डॉ० शर्मा के अनुसार सुमन से ही प्रेमचद के उन नारी–पात्रो का लबा सिलसिला शुरू होता है जो अपने रोष से पुरूषो को चुनौती देती है और समाज मे मनुष्य का दर्जा हासिल करने के लिए सघर्ष करती है। इससे पहले किसी स्त्री ने अपने पति से नही कहा था कि "क्या तुम्ही मेरे अन्नदाता हो? जहॉ मजूरी करूगी, वही पेट पाल लूँगी।"[2] इसलिए, इस उपन्यास से ही प्रेमचद के इस नये यर्थाथवाद का आरम्भ होता है।

डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद का कथानक सीधा–सादा नही बल्कि सामाजिक जटिलताओ की तरह वह भी जटिल होता है। इस समूची जटिलता को पूरी सादगी के साथ प्रस्तुत करना ही प्रेमचद की कला है। प्रेमचद के कथोपकथन की स्वाभाविकता की प्रशसा करने के साथ ही डॉ०शर्मा इस तथ्य की ओर भी ध्याान दिखाते हैं कि प्रेमचद ने सुमन को मुख्य पात्र बनाकर भी सारी दृष्टि उसी पर केन्द्रित नही रखी। वे बताते है कि प्रेमचद पाठक को मूलकथा, उसकी समूची पृष्ठभूमि के साथ सुनाना चाहते थे, इसलिए 'सेवासदन' मे महत रामदास भी है, जिनका सारा कारोबार बॉके बिहारी के नाम पर चलता है। उसमे म्युनिसिपैलिटी के सदस्य भी हैं जो अपनी सजी हुई शब्दावली से जाहिर कर देते है कि वे सत्य से कितनी दूर हैं। उसमे वकील समाज–सुधारक, वक्ता, पत्रकार, मल्लाह, गृह–स्त्रियॉ, वेश्याऍ सभी कुछ है, इतना कुछ कि एक उपन्यास मे तब तक किसी ने न दिया था और अब तक भी कम ही ने दिया है। डॉ० शर्मा अपने विवेचन के अत मे यह महत्वपूर्ण सकेत भी देते है कि 'सेवासदन' मे ही प्रेमचद के आगामी उपन्यास 'प्रेमाश्रम' की सूचना मिल जाती है, क्योकि शोषण और अत्याचार के खिलाफ उठते हुए किसान प्रेमचद की निगाह मे चढ चुके थे। यह बात उन्होने इस उपन्यास के किसान पात्र चेतू को ध्यान मे रखकर कही है। यह सकेत–सूत्र पकडना डॉ० शर्मा जैसी सूक्ष्म अतदृष्टि वाले आलोचक से ही सभव था।

उपन्यास के अत मे सेवासदन नामक आश्रम बनवाकर प्रेमचद जो सुधारवादी समाधान देने का प्रयास करते हैं, उसे डॅा० शर्मा ने उपन्यास का निर्बल अश माना है। वे इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हैं कि नारी स्वाधीनता की समस्या देश की आम

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 41
[2] प्रेमचद' सेवासदन', पृ० 36

राजनीतिक और सामाजिक समस्याओ का ही एक अग है तथा देश मे पूर्णत स्वाधीन जनतत्र कायम हुए बगैर इस समस्या के समाधान मे ऐतिहासिक सीमाएँ बाधक थी। डॉ० शर्मा के अनुसार "पहले महायुद्ध के दिनो मे स्वाधीनता आदोलन असगठित और कमजोर था। इसलिए प्रेमचद उसे चित्रित नही कर सके। वे समाज की प्रगति रोकने वाली शक्तियो को देख रहे थे लेकिन पुरानी व्यवस्था को बदलने वाली शक्तियॉ उनके सामने तब मैदान मे आयी न थी।"[1] इस ऐतिहासिक सीमा के बावजूद यथार्थ–जीवन का कलात्मक चित्राकन करने मे यह उपन्यास अत्यत सफल सिद्ध होता है। इस उपन्यास और इसके माध्यम से प्रेमचद के युगातरकारी महत्व की ओर डॉ० शर्मा ने ही सर्वप्रथम ध्यान दिलाया था। उनके इस विवेचन की खूबी यह है कि वे प्रेमचद का मूल्याकन उन्हे उनकी पूर्ववर्ती परपरा के साथ जोडकर करते है और फिर यह रेखाकित करते हैं कि प्रेमचद ने जिस नये यथार्थवाद का सूत्रपात किया वह नया किस अर्थ मे है और उसकी मौलिक तथा क्रातिकारी विशेषताएँ क्या है।

'प्रेमाश्रम'

यह उपन्यास प्रथम महायुद्ध के बाद के दौर की रचना है, हालॉकि इसका प्रकाशन असहयोग आदोलन के बाद 1922 मे हुआ था। प्रेमचद इसमे किसानो की बेदखली और इजाफा लगान की समस्या पर अपना ध्यान केद्रित करते है। वस्तुत जबर्दस्त किसान सघर्षों की शुरूआत उनके इसी उपन्यास मे दिखायी देती है। डॉ० शर्मा के अनुसार यह उपन्यास 'किसान जीवन का महाकाव्य है', जिसमे "उस जीवन का एक पहलू नही दिखाया गया, वह एक विशाल नदी की तरह है जिसमे मूल धारा के साथ आस–पास के नालो का पानी, जड से उखडे हुए पुराने खोखले पेड और खेतो का घासपात भी बहता हुआ दिखाई देता है।"[2] वे आगे लिखते है कि "प्रेमचद हमे ठेठ किसानो के बीच ल जाते है। उनके अलाव, उनके खेत और ताल, उनके अखाडे और लावनी–खयाल, उनके अधविश्वास और नये जीवन के कसमसाते हुए भावाकुर 'प्रेमाश्रम' मे सब–कुछ सजीव है, उसके पृष्ठों मे इतिहास जी रहा है। प्रेमचद किसानो की प्राचीन परपराएँ दिखाते हैं तो यह भी कि कहॉ उनकी कडियॉ टूट

---

[1] प्रमचद और उनका युग पृ० 40
[2] उपर्युक्त पृ० 48

रही है।"[1] इसलिए डॉ० शर्मा ने 'प्रेमाश्रम' को हिदी का पहला 'हीरोइक' उपन्यास भी कहा है, जिसमे मेहनतकश किसान जनता के शौर्य की गाथा महाकाव्यात्मक उदात्तता और विराट फलक पर चित्रित की गयी है।

'प्रेमाश्रम' के प्रकाशन के पच्चीस साल पहले उडिया मे फकीर मोहन सेनापति ने किसान–समस्या पर 1897 मे 'छमाण आठ गुठ' (छै बीघा जमीन) नामक उपन्यास लिखा था। लेकिन प्रेमचद और उनके 'प्रेमाश्रम' का महत्व यह कि इस उपन्यास के माध्यम से उन्होने इस सच्चाई को प्रकट किया कि "राष्ट्रीय स्वाधीनता का आदोलन तभी सफल हो सकता था जब वह करोडो किसान की अपनी मॉगो का आदोलन बन जाये। वह जानते थे कि किसानो के आदोलनो से स्वाधीनता का आदोलन कमजोर न पडेगा। बल्कि उसे विजय की मजिल तक ले जाएगा। हिन्दुस्तान की सामती ताकते विदेशी प्रभुत्व का आधार थी, इसलिए प्रेमचद के लिए आजादी का मतलब था, इस आधार को खत्म करना।"[2] डॉ० शर्मा ने इसलिए यह लिखा है कि अग्रेजी साम्राज्यवाद और जमीदारो–जागीरदारो के आपसी सबध समझे बिना 'प्रेमाश्रम' की रचना न हो सकती थी। 'प्रेमाश्रम' की कला का विवेचन करते हुए डॉ० शर्मा ने बताया है कि इसे 'उपन्यास–रचना के साधारण नियम तोडकर रचा गया है।' इस अर्थ मे कि कोई एक व्यक्ति इस उपन्यास का नायक या नायिका नही है। डॉ० शर्मा के अनुसार "प्रेमचद ने बेगार करने वाले, हल जोतने वाले, प्लेग और सरकार का मुकाबला करने वाले किसानो को नायक बना दिया। मनोहर, बलराज, कादिर, दुखरन, आदि इस उपन्यास के हीरो है। ये नयी तरह के नायक हैं–गुण आर अवगुण दोनो से विभूषित।

लखनपुर का गॉव –सक्षेप मे इस उपन्यास का नायक है, ज्ञानशकर, गौसरवॉ, कचहरी–कानून और पुलिस की जमात खलनायक है।"[3] इस तरह से यह उपन्यास अपनी विषयवस्तु मे ही नही, रूपविधान मे एक नया प्रयोग था।

इसके बाद डॉ० शर्मा यह सवाल उठाते हैं कि 'प्रेमाश्रम' की कला किस बात मे है? कथा गढने मे, कथोपकथन मे, चरित्र–चित्रण मे? उनके मतानुसार, इन सबमें भी लेकिन इन सबसे अलग भी। उस कला का विश्लेषण उपन्यास के इन अगो का अलग–अलग विवेचन करने से भी नही हो सकता। वह कला जीवन का सम्पूर्ण चित्र देने मे है, उस चित्र से जीवन को एक नयी गति देने मे है। डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद की कला उपन्यास की

---

[1] उपर्युक्त पृ० 56–57
[2] उपर्युक्त पृ० 46
[3] उपर्युक्त पृ० 47

चित्रमयता मे है, क्योकि वह जो कुछ करना चाहते हैं, चित्रो के माध्यम से ही कहते हैं। वे लिखते है कि 'प्रेमचद की कला इस बात मे है कि वे हिन्दुस्तान के बढते हुए किसान का चित्र खीच सके है। घटनाएँ साधारण है लेकिन उनसे वह अपने पात्रो का पुरानापन और नयापन, उनको पीछे ठेलने वाली और आगे बढाने वाली विशेषताएँ प्रकट करते हैं। पहाड की तस्वीर खीचना आसान है, नदी के बहाव को चित्रित करना मुश्किल है। प्रेमचद ने यथार्थ के बहाव को पकड लिया है। उसे उन्होने भावी पीढियो के लिए 'प्रेमाश्रम' मे सुरक्षित कर दिया है।"[1] डॉ० शर्मा बताते है कि प्रेमचद की कला उनकी सजीव शब्दावली और वर्णन की काव्यमयता मे प्रकट होती है।

इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचद ने **1920** मे ही यह निष्कर्ष दे दिया था कि "सत्याग्रह मे अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धात भ्रातिपूर्ण सिद्ध हो गया।"[2] प्रेमचद इस नतीजे पर इसलिए पहुँच सके क्योकि उनके यथार्थवादी दृष्टिकोण का यही तर्कसगत परिणति है। उपन्यास मे प्रेमशकर की नीति भी किसानो को दमन और तकलीफ से नही बचा सकी। इसलिए डॉ० शर्मा ने इस उपन्यास को दुखात कहा है। सत्याग्रह को अन्याय और दमन के खिलाफ व्यर्थ बतलाने के साथ ही इस उपन्यास मे प्रेमचद यह भी सकेत देते है कि अन्याय और दमन को कैसे जड से समाप्त किया जा सकता है। उपन्यास मे बलराज किसानो से कहता है कि "तुम लोग तो ऐसी हँसी उडाते हो मानो काश्तकार कुछ होता ही नही, वह जमीदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है, लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमे लिखा है कि रूस देश मे काश्तकारा ही का राज है, वह जो चाहते हे करते है। उसी के पास कोई और देश बलगारी है। वहॉ अभी हाल की बात हैं, काश्तकारो ने राजा को गद्दी से उतार दिया और अब किसानो और मजूरो की पचायत राज करती है।[3] डॉ० शर्मा के अनुसार बलराज को प्रेमचद ने हिन्दुस्तान के जागरूक किसान नौजवानो का प्रतिनिधि बनाया है। इसी तरह बलराज की मॉ बिलासी भी जुझारूपन मे 'सेवासदन' की सुमन से कई गुना आगे है।

डॉ० शर्मा ने प्रेमचद के जीवन–दर्शन को गहरा यथार्थवादी और उनके दृष्टिकोण को सुलझा हुआ बताया है। वे लिखते हैं कि प्रेमचद का गभीर चितन, उनके ऊँचे विचार, एक नयी मनुष्यता, एक नयी नैतिकता का चित्रण करने मे प्रकट होते हैं, जो हिन्दुस्तान के

---

[1] उपर्युक्त पृ० 56–67
[2] प्रमचद 'प्रेमाश्रम' पृ० 248
[3] उपर्युक्त पृ० 53

किसानो मे किरण की तरह फूट रही थी। इस घटना का अतर्राष्ट्रीय महत्व था।' अग्रेजीराज और उसके दलाल सामतो–जमीदारो के खिलाफ भारत के किसानो का सघर्ष अपने बेहतर भविष्य के लिए ही तो था ही, वह सघर्ष शाति और स्वाधीनता के लिए लडे जा रहे साम्राज्यवाद विरोधी विश्व सघर्ष का भी अग था। डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद हिन्दी के पहले लेखक थे जिन्होने अतराष्ट्रीय महत्व का ऐसा उपन्यास लिखा था। वे इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाते है कि इस उपन्यास ने स्वाधीनता आदोलन को दृढ करने के लिए उसे एक नयी गति देने मे, किसान समस्या की आजादी की मूल–समस्या के रूप मे स्वीकार करने मे बहुत बडा काम किया है। ऐसा सामाजिक महत्व बिरले ही उपन्यासो का होता हे।"[1] डॉ० शर्मा ने 'प्रेमाश्रम' की आलोचना दो बातो के लिए की है। पहली यह है कि ज्ञानशकर–सबधी कथा को जितना विस्तार दिया गया हे, वह अनावश्यक साबित होता है और उससे उपन्यास की मूल कथा का प्रभाव काफी कम हो जाता है। लेकिन ज्ञानशकर के चरित्र–चित्रण मे वे 'अद्‌भुत कौशल' देखते हैं और उसे वे प्रेमचद के 'तमाम खलपात्रो का सिरमौर' बताते है। दूसरे, वे इस बात के लिए प्रेमचद की आलोचना करते हैं कि सत्याग्रह को भ्रातिपूर्ण कहकर भी प्रेमचद काल्पनिक समाधान देने लगते हैं। डॉ० शर्मा के अनुसार 'प्रेमाश्रम' का समाधान 'सेवासदन' के काल्पनिक समाधान से भी कमजोर है। इसलिए वे प्रेमशकर को उपन्यास का सबसे निर्जीव पात्र मानते हैं। लेकिन ये कमिया उपन्यास की मुख्य कथा और उसके क्रातिकारी निष्कर्षो को बहुत प्रभावित नही करती। डॉ० शर्मा ने अपने विवेचन के माध्यम से इन्ही सकारात्मक पहलुओ के महत्व को अत्यत खूबसूरती के साथ उभारा है।

'प्रेमचद और उनका युग' पुस्तक के 'जागीरदारी सभ्यता के ध्वसावशेष' नामक लेख मे बताया है कि "समाज के जाल मे मोटी–मोटी गाठो से बॅधे छोटे और बडे जमीदार है जिनका निर्धन वर्गो से निकट का सबध है और जो नयी महाजनी सभ्यता के सम्पर्क मे आकर एक नया रूप धारण कर चुके हैं। जागीरदारी सभ्यता की देन के साथ नयी अग्रेजी सभ्यता से भी उन्होंने अपने मतलब की बहुत सी बाते ग्रहण की है, जिससे वह एक नई और विचित्र सभ्यता के निदर्शन हो गये है। प्रेमचद ने रायसाहब का जो चित्र बनाया है उनसे मिलते–जुलते माडल आज की सामाजिक व्यवस्था मे पचासो देखने को मिलते है। पहली बात देखे तो रायसाहब धार्मिक व्यक्ति हैं, दूसरे वे राजनीतिक आदोलनो मे भाग लेने

---

[1] 'प्रेमचद और उनका युग' पृ० 58

से उनका अपने आसामियो मे कद ऊँचा हो गया है परन्तु बेगारी एव वसूली का कार्य यथावत चलता रहता है थोडी बहुत जो कमी ठोस बची थी उसे साहित्य एव सगीत ने पूरी कर दी थी। 'प्रेमाश्रम' मे जमीदारी के विविध रूप मिलते है दो पात्र ज्ञानशकर और प्रभाशकर नई पीढी का प्रतीक है। कितना बुरा हाल है इस पुरानी सभ्यता का जो परिवर्तन की मार को सह पायी। हाकिम–जमीदार और किसान सम्बधी स्तम्भ मे शोषण का केन्द्र किसान जीवन ही रहता है और हाकिम–जमीदार इसके शोषक है।

डॉ० रामविलास शर्मा ने बताया है कि किसानो के चित्रण मे प्रेमचद हमे भारतीय जन आदोलनो के बीचो बीच ला खडा करते है। यही वह स्थल है जहॉ दमन अपने क्रूरतम रूप मे निसहाय निर्बल किसानो को चूर करता हुआ चलता हं। यही वह प्रेरणा का केन्द्र भी हे जो समग्र जन आदोलनो को बल देता है। किसानो का ही वह वर्ग है जिसके लिए आदोलन की समस्त शक्तियॉ एकत्र ही गतिशील होनी चाहिए। इस वर्ग के चित्रण मे प्रेमचद ने 'प्रेमाश्रम' उपन्यास लिखा जिसमे ज्ञानशकर, गौसखॉ तथा मनोहर के विविध रूपो का अकन हुआ है। ज्ञानशकर लगान बदी अपने आसामियो पर लगाता है। करिदा गौरखॉ उसे बसूलने के लिए जाता है न मिलने पर तरह–तरह के कष्ट किसानो को दिये जाते है। हाकिम –ज्वालासिह किसानो का पक्ष लेते है परन्तु दैवी कष्ट से किसानो को उबारने वाले तो बाद मे जमीदार ही होते है इसी से हारकर प्रभाशकर कहता है कि "परिश्रमी तो इससे अधिक कोई ससार मे न होगा मितव्ययिता मे, आत्मसयम मे, गृहप्रबध मे वे निपुण है, उनकी दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नही, बल्कि उन परिस्थितियो पर है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है।" इन शब्दो को पढकर क्या यह अनुमान नह लगाया जा सकता कि यह उपन्यास बीसवी शताब्दी की अमानुषिक कहानी के साथ–साथ इक्कीसवी शताब्दी की भी कहानी कहता है।

'निर्मला', 'गबन' और 'कायाकल्प'

प्रेमचद के दो बडे उपन्यासो 'प्रेमाश्रम' और 'रगभूमि' की रचना के बीच की कालावधि मे हमे उनके तीन उपन्यास 'निर्मला', 'गबन' और 'कायाकल्प' मिलते हैं। इनमे भी 'गबन' ही उनका चर्चित उपन्यास है। शेष दोनो उपन्यास प्रेमचद के प्रमुख उपन्यासो की

तुलना मे साधारण कोटि के हैं। शायद इसीलिए कई आलोचक इस बीच के रचनाकाल को एक बडी कृति की रचना का पूर्वाभ्यास भी मानते है। लेकिन डॉ० शर्मा का महत्व यह है कि वे 'निर्मला' और 'कायाकल्प' जैसे प्रेमचद के प्राय· साधारण समझे जाने वाले उपन्यासो मे से भी ऐसे असाधारण पहलुओ को उजागर करते है जिनका यथार्थवाद की दिशा मे प्रेमचद के भावी विकास मे असंदिग्ध महत्व है।

'निर्मला' मे भी प्रेमचद ने 'सेवा–सदन' की तरह नारी समस्या पर ही अपना ध्यान केद्रित किया है। डॉ० शर्मा के अनुसार 'सेवा–सदन' की तुलना मे 'निर्मला' की कहानी का क्षेत्र सकुचित है। लेकिन इसके साथ ही वे इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाते है कि कई जगह इसके स्थल सेवा–सदन से ज्यादा करूण और मर्मस्पर्शी हैं। इस उपन्यास मे भी 'सेवा'–सदन' की तरह दहेज के अभिशाप, अनमेल विवाह और इनसे उत्पन्न नारी दासता की भयावह परिस्थितियो का यथार्थवादी ढग से चित्रण किया गया है। पर निर्मला मे वह तेवर नही है जो सुमन मे थे। इसलिए उसके घुटते रहने स इस उपन्यास की त्रासदी और भी गहरी हो जाती है। इसके साथ ही डॉ० शर्मा एक अन्य तथ्य को भी रेखाकित करते हैं। वे लिखते है कि "एक ट्रैजिक पात्र और है, मसाराम। यह एक नयी तरह का पात्र है, जिसे प्रेमचद ने अपने उपन्यास मे जगह दी है। हिदी कथा–साहित्य मे वयस्क स्त्री–पुरूषो की समस्याओ पर काफी लिखा गया है, लेकिन स्कूली उम्र के लडको की तरफ कलाकारो का ध्यान कम गया है।"[1] इस दृष्टि से यह उपन्यास विशिष्ट है।

डॉ० शर्मा ने एक और दृष्टि से भी इस उपन्यास को अत्यत महत्वपूर्ण और विशिष्ट माना है। वह यह कि यह उपन्यास 'प्रेमचद के कथा–साहित्य के विकास मे एक मार्ग–चिन्ह हे। यह पहला उपन्यास है जिसमे उन्होने किसी सेवा–सदन या प्रेमाश्रम का निर्माण करके पाठक को झूठी सात्वना नही दी।' इसी क्रम मे आगे वे लिखते हैं कि "निर्मला और मसाराम मे काफी निष्क्रियता है, सुमन की तरह वे अन्याय का प्रतिकार करने नही बढते। फिर भी यथार्थवाद को लाने और पुष्ट करने मे 'निर्मला' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह उपन्यास असहयोग आदोलन की असफलता के बाद लिखा गया था और जाहिर करता है कि किस तरह हिदी लेखक कल्पित समाधानो से सतुष्ट न होकर यथार्थ जीवन का सामना करने के लिए आगे बढ रहे थे।"[2] डॉ०शर्मा का यह स्पष्ट मत है कि प्रेमचंद द्वारा इस उपन्यास मे

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 64
[2] उपर्युक्त पृ० 65

यथार्थवाद का पूर्ण निर्वाह किये जाने के बावजूद यह यथार्थवाद उनका 'क्रातिकारी यथार्थवाद' नही है।

'कायाकल्प' की डॉ० शर्मा ने भी कठोर आलोचना की है। लेकिन वे इस ओर भी सकेत करते है कि इस उपन्यास मे दो वर्गो की कहानी है– किसानो की दूसरी तरफ रानियो जागीरदारो और हिसक अग्रेजी राज की। उनके मतानुसार कथा का जो भाग जगदीशपुर की रानी देवाप्रिया के 'कायाकल्प' से सबधित है, वह चमत्कारो से भरा हुआ है और प्रेमचद की कलम भी इसमे जान नही डाल सकी। लेकिन इसके साथ ही वे इस तथ्य की और भी ध्यान दिलाते है कि इस उपन्यास के जोरदार हिस्से वे हैं जहाँ प्रेमचद ने हाड–मास के आदमियो के इसी जीवन पर दृष्टि केद्रित करके उनके चरित्र की अच्छाइयो–बुराइयो को चित्रित किया है। यह विवेचन डॉ०शर्मा की द्वद्वात्मक विश्लेषण दृष्टि का प्रमाण है। 'कायाकल्प' का वैशिष्ट्य रेखाकित करते हुए वे लिखते है कि "प्रेमचद ने जनता पर दमन होते पहले भी दिखाया था। इस उपन्यास मे वह एक नयी चीज दिखाते है– जनता दमन से आतकित न होकर उसका मुकाबला करने बढती है। और वह सफल हो सकती है अगर चक्रधर जैसे लोग आकर अग्रेजो और राजाओ की रक्षा न करने लगे।"[1] प्रेमचद ने एक साधारण और आलोचको द्वारा प्राय उपेक्षित उपन्यास मे से इस महत्वपूर्ण असाधारण निष्कर्ष को सामने लाना डॉ०शर्मा की सूक्ष्म अर्तदृष्टि और पैनी सूझबूझ का परिचायक है।

'कायाकल्प' के विवेचन के क्रम मे और विशेष रूप से उसकी आलोचना करते हुए डॉ०शर्मा ने प्रेमचद की शक्ति–सामर्थ्य और उनकी सीमा, दोनो के बारे मे सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किये है। वे लिखते है कि इस उपन्यास से पता चलता है कि 'प्रेमचद की कलम की ताकत यथार्थ जीवन को ऑकने से पैदा हुई थी। उनकी कला इसलिए प्रभावशाली थी कि वे अपनी ऑखो से देखी हुई सच्चाई को चित्रित करते थे। जहाँ गलत आदर्शो या विचारो के प्रभाव से उन्होने यह रास्ता छोड दिया, वही उनकी कला प्रभावहीन हो गयी और उनकी कलम का जादू उड गया।"[2] डॉ० शर्मा का यह निष्कर्ष प्रेमचद के विकास को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सामान्य से विशिष्ट का सूत्रीकरण और विशिष्ट के माध्यम से सामान्य निष्कर्ष देना यह दोहरी यात्रा किसी साधारण आलोचक के बस की बात नही है।

---

[1] उपर्युक्त पृ० 78
[2] उपर्युक्त, पृ० 74

डॉ० शर्मा मे हमे यह विशेषता दिखायी देती है जो एक आलोचक के रूप मे उनकी महानता की सूचक है।

उपर्युक्त दोनो उपन्यासो के बीच की रचना प्रेमचद का बहुचर्चित उपन्यास 'गबन' है जो कई मामलो मे उनके अन्य उपन्यासो से अलग है। वैसे तो 'सेवासदन' और 'निर्मला' की तरह इस उपन्यास मे भी प्रेमचद ने अपना ध्यान शहरी मध्यवर्ग पर ही केन्द्रित किया है, लेकिन इस उपन्यास की मुख्य समस्या नारी पराधीनता नही है। इस उपन्यास का वैशिष्ट्य यह है कि प्रेमचद ने इसमे नारी समस्या का व्यापक चित्र बनाने के साथ–साथ इस समस्या को हिन्दी साहित्य मे पहली बार देश की स्वाधीनता की समस्या से भी जोड दिया है। इसलिए डॉ० शर्मा उपर्युक्त तथ्य को रेखाकित करने के साथ ही यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष भी देते है कि 'निर्मला' के बाद 'गबन' हिन्दी साहित्य के यथार्थवाद मे एक और आगे बढा कदम है। वह जीवन की असलियत की छान–बीन और गहराई से करता है, भ्रम के पर्दे को उठाता है, नये रास्ते ढूँढने के लिए वह जनता को नयी प्रेरणा देता है।"[1] इस उपन्यास का महत्व यह है कि इसमे प्रेमचद अग्रेजीराज, और दलालो और स्वाधीनता आदोलन के पाखडी नेताओ का तो पर्दाफाश करते ही है, अपनी दूरदृष्टि से वे आजादी के बाद भारत के पूँजीवादी शासको के कुकृत्यो की ओर भी सकेत कर देते है।

उपन्यास का एक अत्यत तेजस्वी पात्र है देवीदीन। वह 'बडे–बडे देशभक्तो के देश का उद्धार करने के खोखले दावो की खिल्ली उडाते हुए उन्हे फटकारता है, 'अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे। पहले अपना उद्धार तो कर लो। गरीबो को लूटकर बिलायत का घर भरना तुम्हारा काम है।' यही देवीदीन काग्रेसी जलसो मे खूब उछल–कूदकर भाषण देने वाले एक साहब बहादुर से कहता है कि 'साहब' सच बताओ, जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन–सा रूप तुम्हारी ऑखो के सामने आता है? तुम भी बडी–बड़ी तलब लोगे, तुम भी अग्रेजो की तरह बगलो मे रहोगे, पहाडो की हवा खाओगे, अग्रेजी ठाट बनाये घूमोगे, इस सुराज से देश का क्या कल्यान होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई–बदो की जिदगी भले आराम और ठाट से गुजरे, पर देश का तो कोई भला न होगा। 'देवीदीन के माध्यम से मानो प्रेमचद ही यह भविष्यवाणी करते हैं कि "अभी तुम्हारा राज्य नहीं है, तब तो तुम भोग–विलास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज हो जायगा, तब तो तुम गरीबो को

[1] उपर्युक्त पृ० 73

पीसकर पी जाओगे।"[1] प्रेमचद का यह भविष्य–कथन आज पूरी बेरहमी के साथ ही साबित हो रहा है। उनके यथार्थवाद की यही महत्ता है।

इस देशभक्ति और तेजस्वी पात्र के बारे मे डॉ०शर्मा ने लिखा है कि 'देवीदीन भारत के उन साधारण जनो का प्रतिनिधि है जो जनता से दगा करने वाले नेताओ की असलियत पहचान गये है जो एक आजाद, सुखी जिदगी हासिल करने के लिए नया रास्ता ढूँढ रहे है।' इसलिए वे देवीदीन को भविष्य–दृष्टा और जमाने को गहराई से देखने वाला व्यक्ति कहते है। वे इस तथ्य की ओर भी सकेत करते है कि प्रेमचद ने इस उपन्यास मे देवीदीन के मुँह से पहले–पहल मजदूरो की सच्ची हालत का वर्णन कराया है। देवीदीन के शब्दो मे– "उसकी जूट की मिल है। मजूरो के साथ जितनी निर्दयता इसकी मिल मे होती है, और कही नही होती। आदमियो को हटरो से पिटवाता है, हटरो से। चरबी मिला घी बेचकर लाखो काम लिये। कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे तो तुरत तलब काट लेते है।[2] हिन्दी कथा साहित्य मे उस समय यह एक बिल्कुल नयी बात थी और डॉ०शर्मा ने इसे एकदम ठीक रेखाकित किया है।

देवीदीन और उसकी पत्नी की तरह ही जालपा भी ऐसी देशभक्त नारी है जो अपने पति द्वारा मुखबिर बनकर झूठी गवाही देने और क्रातिकारियो को सजा दिलाने पर न केवल उसे फटकारती है बल्कि उससे नाता तक तोड लेती है। जालपा रमानाथ से कहती है कि "मै औरत हूँ। अगर कोई धमकाकर मुझसे पाप कराना चाहे, तो चाहे उसे न मार सकूँ, अपनी गर्दन पर छुरी चला दूँगी। क्या तुममे औरतो के बराबर हिम्मत नही है?"[3] डॉ० शर्मा लिखते है कि "जालपा भारत का उगता हुआ नारीत्व है। वह भविष्य के तूफानो की अग्रसूचना है। उसने वर्तमान की राह पर मजबूती से पाव रखा है और भविष्य की तरफ वह निश्शक दृष्टि से देखती है। वह एक नयी आग है, जो झूठी सस्कृति के कागजी फूलो को भस्म कर देती है।"[4] प्रेमचद की खूबी यह है कि उन्होने जेवरो से प्रेम करने वाली साधारण गृहणी से लेकर कलकत्ता जाकर क्रातिकारियो की पक्षधर और उनके परिवार वालो को सेवक के रूप मे जालपा के चरित्र का विकास यात्रिक ढग से नहीं बल्कि सहज और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप मे दिखाया है। डॉ० शर्मा के अनुसार जालपा का चरित्र जितना

---

[1] प्रमचद 'गबन', पृ० 152
[2] उपर्युक्त पृ० 143
[3] उपर्युक्त, पृ० 241
[4] प्रेमचद और उनका युग' पृ० 70

महान है उतना ही रमा का हल्का और घृणित। वे बताते है कि रमानाथ शहरी मध्यम वर्ग की कमजोरियो का प्रतीक है। सच्चाई और आत्मसम्मान से ज्यादा महत्व उसकी नजरो मे झूठी मान–मर्यादा का है। उसके पतन का इतिहास इस झूठी मर्यादा वाले समाज के पतन का इतिहास है। लेकिन रमानाथ मे कायरता और दगाबाजी जैसे अनेक दोषो के अलावा कही इसानियत के अकुर भी दबे पडे थे। देवीदीन, उसकी बुढिया पत्नी और सर्वोपरि जालपा के प्रभाव से उसके सद्‌गुण उभर आते हैं। इसमे जोहरा भी सहायक बनती है। डॉ०शर्मा के अनुसार उसके चरित्र मे काफी परिवर्तन होता है। प्रेमचद की कला और मनोविज्ञान की बारीकी इस बात मे दिखायी देती है कि वह उसे न तो पहले राक्षस बनाकर खडा करते है और न बाद मे उसे देवता बनाते हैं। डॉ० शर्मा से पहले अन्य कोई भी आलोचक न तो प्रेमचद की कला मे ऐसी बारीकियॉ दिखला सके और न ही प्रेमचद के उपन्यासो की अतर्वस्तु पकड कर उसका ऐसा सटीक विश्लेषण कर सके।

'रगभूमि' रूस मे जब 1905 की क्राति विफल हो गयी थी और जारशाही दमनचक्र बेहद तेज हो उठा था, उसी समय 1907 मे गोर्की का उपन्यास 'मॉ' प्रकाशित हुआ था, जिसकी नायिका पेलागेया निलावना ब्लासोवा 'मॉ' कहती हे, "सच्चाई को तो खून की नदियो मे भी नही डुबोया जा सकता बेवकूफो, तुम जितना अत्याचार करोगे, हमारी उतनी नफरत बढेगी। और एक दिन यह सब तुम्हारे सिर पर पहाड बनकर टूट पडेगा।"[1] और यह पहाड शोषण और दमन पर टिकी हुई दुनिया के सिर पर 1917 की अक्टूबर क्राति के रूप मे टूट पडा। गोर्की ने सघर्ष के लिए उद्वेलित करने वाली और हृदयस्पर्शी जनसघर्ष के चित्रो से भरपूर ग्रह अद्वितीय कृति 1905–1907 के पस्ती और निष्क्रियता भरे दौर मे लिखी थी। लेनिन पहले व्यक्ति थे जिन्होने इस पुस्तक का महत्व पहचान कर गोर्की से इसके बारे मे कहा था कि इस रूस की जनता को इस समय ठीक इसी की जरूरत है। लेनिन के शब्दो मे यह एक "जरूरी किताब है। बहुत से मजदूरो ने क्रातिकारी आंदोलन मे सजग रूप से नही, स्वत स्फूर्त ढग से भाग लिया था। अब 'मॉ' पढकर उन्हे बडा लाभ होगा। बहुत समयानुकूल पुस्तक है।"[2] यहॉ यह भी स्मरणीय है कि लेनिन ने आगे चलकर 1905 की विफल क्राति को अक्टूबर क्राति का 'ड्रस–रिहर्सल' कहा था। प्रेमचद ने भी 'रगभूमि' की रचना असहयोग आदोलन की विफलता के बाद 1925–26 में की थी, जब

[1] मैक्सिम गोर्की मॉ पृ० 472
[2] प्रो० बोरीस वूर्सोव लिखित मॉ' की प्रस्तावना, पृ० 5–6

स्वाधीनता आदोलन पस्ती और निष्क्रियता के दौर से गुजर रहा था। यह अकारण नही है कि इस उपन्यास का नायक अधा सूरदास प्रेमचद के सभी नायको मे सबसे ज्यादा जुझारू, तेजस्वी और जीवट वाला पात्र है। 'माँ' के अतिम पृष्ठ पर निलोवना व्लासोवा के मर्मभेदी उद्बोधन की तरह ही 'रगभूमि' के आखिरी हिस्सो मे सूरदास मरने से पहले कहता है "हम हारे तो क्या, मैदान से भागे तो नही, रोये तो नही, धाँधली तो नही की। फिर खेलेगे, जरा दम ले लेने दो, हार–हारकर तुम्ही से खेलना सीखेगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी।"[1] इसे 'भारत की अजेय जनता का स्वर' बताते हुए डॉ०शर्मा लिखते है कि यह सन् 1920 और 1930 के बीच का उपन्यास है जब हिदुस्तान मे बडे–बडे नेताओ की तरफ से राष्ट्रीय आदोलन का सचालन न हो रहा था। डॉ०शर्मा से पहले और किसी का भी ध्यान इस तथ्य की ओर नही गया था और इसलिए उनसे पहले कोई अन्य आलोचक इस उपन्यास की इस विशेषता को नही पहचान सका था। डॉ०शर्मा के शब्दो मे "रगभूमि सन् 1920 और 1930 के आदोलनो के बीच हिन्दी–प्रदेश की रगभूमि है। इसमे राजा, ताल्लुकेदार, पूँजीपति, अग्रेज–हाकिम, किसान, मजदूर–हिन्दुस्तानी जीवन की एक विशद झाँकी देखने को मिलती हे। नायकराम का हास्य, सोफिया की सरलता, विनय का साहस, राजा महेन्द्र प्रताप की धूर्तता, जॉन सेवक की स्वार्थपरता, धीरपाल का साहस, सूरदास की दृढता पाठक के हृदय पर गहरी छाप छोड जाते है। अभी तक प्रेमचद के किसी भी उपन्यास मे इतने अविस्मरणीय पात्र एक साथ न आये थे। यह उनके बढते हुए कौशल का परिचय था।"[2] प्रेमचद की भविष्य को भेदने वाली अर्तदष्टि का परिचय देते हुए उन्होने लिखा था कि 'रगभूमि' उपन्यास सन् 1930 का आदोलन छिडने के पहले लिखा गया था। प्रेमचद ने मानो भविष्य की ओर देखते हुए तमाम हिन्दुस्तान की जनता की तरफ से अग्रेजीराज को चुनौती देते हुए सूरदास से कहलाया था– 'फिर खेलेगे, जरा दम ले लेने दो।' प्रेमचद ने भारतीय जनता की इसी जिजीविषा ओर सघर्षशीलता को बडे सधे हुए कलात्मक अदाज मे चित्रित किया है। 'रगभूमि' की कहानी सूरदास द्वारा अपनी और पाडेपुर गॉव की जमीन के लिए किये जाने वाले सघर्ष की कहानी हे। जॉन सेवक, म्युनिसिपैलिटी के प्रधान राजा महेद्र प्रताप सिह और अग्रेजीराज के प्रतिनिधि क्लार्क की मदद से यह जमीन कौडियो के मोल खरीद कर वहॉ सिगरेट बनाने का कारखाना खोलना चाहते है।

---

[1] प्रमचद 'रगभूमि' पृ० 558

[2] प्रेमचद और उनका युग, पृ० 84

सूरदास इस कारखाने का भी विरोध करता है। अनेक आलोचक भ्रमवश सूरदास और प्रकारांतर से उसके सृष्टा प्रेमचंद को इसी आधार पर उद्योगीकरण का विरोधी समझने लगते हैं। अंग्रेजीराज के हिमायती पूँजीपति और ताल्लुकेदार सिगरेट का कारखाना लगाकर देश के उद्योगीकरण में क्या योगदान देते? इस प्रसंग में डॉ० शर्मा ने लिखा है कि "राजा महेंद्र प्रताप सिंह जैसे सामंतवादी लोग जॉन सेवक के सहायक हैं। उसकी औद्योगिक क्रांति से इनका बाल भी बाँका नहीं होता, बल्कि वे इस नयी लूट–खसोट में भी शरीक होना चाहते हैं। जॉन सेवक की औद्योगिक क्रांति से नुकसान होता है केवल किसानों का। प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में बड़ी खूबी से दिखलाया है कि ऐसे पूँजीपति, जिनकी साँठ–गाँठ जमींदारों और राजाओं से होती है। अंग्रेजीराज के परम भक्त और सहायक होते है। सूरदास इन सबकी ताकत को चुनौती देता है। उसकी लड़ाई वस्तुतः सामंत–विरोधी और साम्राज्य–विरोधी है।"[1] इस लड़ाई में प्रेमचंद ने सूरदास की पराजय दिखायी हैं। डॉ० शर्मा यह सवाल उठाते हैं कि सूरदास की जीत क्यों नहीं हुई? उनका उत्तर है कि "खिलाड़ी आपस में मिलकर न खेले थे, आपस में झगड़ते रहे थे।............ किसान आपस में झगड़ते रहे थे, मजदूरों में न आपसी एका था, न उन्होंने किसानों में एका किया था।' डॉ० शर्मा के अनुसार छल–कपट और जोर–जबर्दस्ती से किसानों की जमीनें छीनने के बाद सिगरेट का कारखाना बनता है और पांडेपुर की बस्ती में मजदूरों का जन्म होता है। इनमें अभी संगठन नहीं है। उन्होंने अपने एके की ताकत पहचानी नहीं है। मिल की नौकरी ने उन्हें जानवरों की तरह जिंदगी बिताने पर मजबूर किया है। वे अपनी पुरानी परंपराएँ खो रहे है। और नयी अभी गढ़ नहीं पाये। उस समय भारत में मजदूरों और उनके नवोदित मजदूर–आंदोलन की हालत करीब–करीब यही थी। उपन्यास की इस मुख्य के साथ ही प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों की तरह इसमें भी विनय और सोफिया के प्रेम की कहानी काफी जगह घेरती है। डॉ०शर्मा ने इस बात की आलोचना की है। उनका कहना है कि सोफिया और विनय की प्रेम कहानी का मुख्य कथा से कोई संबंध नहीं है और इसलिए 'रंगभूमि' के पूरे कथा–गठन में एक शिथिलता है, जो सेवा–सदन' या 'प्रेमाश्रय' जैसे उपन्यासों में नहीं है। सोफिया और विनय की प्रेम कहानी के एक हिस्से के रूप में ही विनय के राजस्थान जाने की कहानी भी है। यद्यपि मुख्य कथा से इसका कोई सीधा संबंध नहीं है, लेकिन फिर भी इसकी

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 83

प्रासगिकता देशी रियासतों मे जनता के दमन और आतक का चित्रण करने के लिए है। डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद ने दिखलाया है कि राजा और जागीरदार अग्रेजो की कठपुलियॉ हैं। वहॉ की प्रजा को दोहरा जुल्म सहना पडता है–एक तो अग्रेज का, दूसरा उसकी कठपुतली की। रियासतो मे प्रजा के दुख–सुख की चिता कोई नही करता। दरअसल इस उपन्यास मे प्रेमचद ने अत्यत विराट फलट चुना है, और वे कोई भी पहलू इसमे अछूता नहीं छोडना चाहते थे। कहने की आवश्यकता नही कि प्रेमचद अपने इस उद्देश्य मे बडी हद तक सफल रहे है। देश के पस्ती, निष्क्रियता और दमन के दौर मे प्रेमचद ने जनता के विभिन्न हिस्सो को देश के शत्रुओ के साथ सघर्षशील दिखाकर आने वाले तूफानी दौर के लिए जनसाधारण को तैयार किया है।

राजनीतिक दृष्टि से प्रेमचद का 'रगभूमि' उपन्यास महत्वपूर्ण है इसके कुछ अश 'गोदान' और 'सेवासदन' मे भी मिलते है। इस सबध मे अपना विवरण देते हुए डॉ०शर्मा लिखते है कि "प्रेमचद का लक्ष्य था कि धीरे–धीरे उत्पादन के साधनो पर समाज का अधिकार हो जाय। स्वराज का सकुचित राष्ट्रीयता वाला अर्थ उन्होने ग्रहण न किया था। आवश्यकता इसी बात की न थी कि अग्रेजो को निकाल बाहर किया जाए वरन इस बात की थी कि उनके साथ समाज की व्यवस्था मे परिवर्तन हो जाय।"

'कर्मभूमि'

प्रेमचद ने यह उपन्यास सन् 1930 के सविनय अवज्ञा आदोलन के दिनो मे लिखा था। डॉ० शर्मा के अनुसार यह आदोलन एक जबरदस्त सैलाब की तरह तमाम जनता को अपने अदर समेट लेता है। विद्यार्थी, किसान, अछूत, स्त्रियॉ, शिक्षक, व्यापारी, मजदूर सभी इसके प्रवाह मे आगे बढ चलते है। 'प्रेमाश्रम' के किसान अब अकेले नही है। उनकी लडाई के साथ तमाम जनता अपनी आजादी की लडाई मे आगे बढ रही है। आदोलन मे जनता के नये नेता पैदा होते है। लाठी–चार्ज होते है, गोलियॉ चलती है, लेकिन लोग अपनी सके मजबूत करते हुए आगे बढते हैं। यही कारण है कि वे 'कर्मभूमि' को हिन्दुस्तान के स्वाधीनता आदोलन की गहराई और प्रसार का उपन्यास मानते है। इस जमाने का उल्लेख करते हुए वे आगे लिखते हैं कि प्रेमचद का यह उपन्यास स्वाधीनता आदोलन के उस दौर

का है जब लोग अग्रेजो का मनमाना अत्याचार सहने के लिए तैयार न थे। वे अन्याय और अत्याचार का प्रतिकार करने लगे थे। इसके लिए वे जो भी साधन मिले, उनका उपयोग करने के लिए तैयार थे। प्रेमचद ने 'कर्मभूमि' मे पहली बार मजदूरो और विद्यार्थियो को एक साथ अग्रेजो का मुकाबला करते दिखाया है। डॉ० शर्मा के अनुसार "प्रेमचद ने राष्ट्रीय आदोलन की एक महत्वपूर्ण कडी को पकडा था और उसका यहाँ चित्रमय वर्णन किया है।"[1] आजादी की लडाई की यह महत्वपूर्ण कडी भी मजदूरो और विद्यार्थियो की एकता।

इस उपन्यास की अन्य विशेषता का उल्लेख करते हुए डॉ० शर्मा बताते है कि 'कर्मभूमि' हिन्दुस्तानी जनता के उन स्तरो को रगमच पर ला खडा करता है जिनके दर्शन पहले हिन्दी कथा–साहित्य मे कम हुए थे। ये शहर और गॉवो के गरीब अछूत हैं। डॉ० शर्मा के अनुसार इन अछूतो की दशा का मार्मिक चित्र, उनके जीवन की बुनियादी समस्याओ की झॉकी हिन्दी कथा–साहित्य मे हमे सबसे पहले 'कर्मभूमि' मे मिलती है। इसके साथ ही वे इस तथ्य की ओर भी ध्याान केद्रित करते हैं कि इस उपन्यास मे प्रेमचद ने हिन्दुस्तान की गरीबी पर ध्यान केद्रित किया है। उन्होने यह दिखलाया हं कि हिन्दुस्तान की आजादी इन गरीबो के लिए सबसे पहले है और वे आजादी की लडाई मे सबसे बडी ताकत भी है। प्रेमचद ने हिन्दुस्तान की गरीबी को साम्राज्यवादी शोषण क साथ ही पूँजीवादी दुनिया के विश्वव्यापी सकट से जोडकर देखा था, क्योकि यह जमाना सन् 1929–1930 की मदी का जमाना था। प्रेमचद यह दिखाते है कि इस आर्थिक सकट का सबसे ज्यादा बोझ गॉव के गरीब किसानो पर डाला जा रहा था।

डॉ० शर्मा ने इस उपन्यास का विवेचन करते हुए एक विशेष बात की ओर ध्यान दिलाया है। वे लिखते है कि सविनय अवज्ञा आदोलन के दार की रचना होते हुए भी 'यह एक दिलचस्प बात है कि नमक–कानून तोडने का आदोलन इसका विषय नही है।' इस उपन्यास की अतर्वस्तु का परिचय देते हुए वे बताते हैं कि स्वाधीनता आदोलन की गहराई और प्रसार का चित्रण करते हुए प्रेमचद 'सबसे ज्यादा जोर जमीन की समस्या, लगान कम करने की समस्या, खेत–मजदूरो और गरीब किसानो के लिए जमीन की समस्या पर देते हैं।' प्रेमचद की इन विशेषताओ के आधार पर ही डॉ०शर्मा ने लिखा है कि "प्रेमचद केवल यथार्थ के महत्वपूर्ण पहलुओ को परखकर उन्हे उपन्यास में विशेष स्थान देते हैं।"[2] यही कारण है

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 88–89
[2] उपर्युक्त, पृ० 85

कि प्रेमचद ने नमक–कानून तोडने वाले गाधीजी के चुनिदा व्यक्तिगत सत्याग्रहियो की बजाय जनता के उन स्तरो पर अपना ध्यान केद्रित किया था, जो अपनी जीवन–मरण की समस्या हल करने के लिए इस आदोलन मे शामिल होकर आजादी की लडाई को गहराई और विस्तार प्रदान करते है। प्रेमचद ने 'खूनी आतक का हृदय–विदारक चित्र' खीचते हुए उपन्यास के पॉचवे भाग मे लिखा है कि 'पुलिस ने उस पहाडी इलाके का घेरा डाल रखा था। सिपाही और सवार चौबीसो घटे घूमते रहते थे। पॉच आदमियो से ज्यादा एक जगह जमा न हो सके थे। शाम को आठ बजे के बाद कोई घर से निकल न सकता था। पुलिस को इत्तला दिये बगैर घर मे मेहमान को ठहरने की भी मनाही थी। फौजी कानून जारी कर दिया गया था। कितने ही घर जला दिये गये थे और उनके रहने वाले हबूडो की भॉति वृक्षो के नीचे बाल–बच्चो को लिए पडे थे। पाठशाला मे आग लगा दी गयी थी और उसकी आधी–आधी काली दिवारे मानो केश खोले मातम कर रही थी। दमन इतना बर्बर था कि बुढिया सलोनी भी हटरो की मार से नही बच सकी 'सलोनी की सारी देह सूज उठी है ओर साडी पर लहू के दाग सूखकर कत्थई हो गये हैं।' गॉव मे यह हालत थी तो उधर शहरो मे मजदूर हडताल कर रहे थे? वहॉ बाजार बद हो रहे थे और जनता जुलूसो मे सडको पर उतर आयी थी "नैना ने झडा उठा लिया और मयुनिसिपैलिटी के दफ्तर की ओर चली। और यह दल मेलो की भीड की तरह अश्रृखल नही, फौज की कतारो की तरह श्रृखलाबद्ध था। आठ–आठ आदमियो की असख्य पक्तियॉ गभीर भाव से एक विचार, एक उद्देश्य, एक धारणा की आतरिक शक्ति का अनुभव करती हुई चली जा रही थी, और उनका तॉता न टूटता था, मानो भूगर्भ से निकलती चली आती हो।"[1] जनता के व्यापक स्तरो की ऐसी जुझारू एकता के दर्शन इससे पहले कही नही होते।

डॉ०शर्मा के अनुसार यह वह जमाना था जब राष्ट्रीय सस्था काग्रेस से अलग यहॉ के किसान–मजदूर अपने वर्ग–सगठन बनाने लगे थे। रोज बडी–बडी किसान–सभाओ की खबरे आती थी। जगह–जगह किसान सभाएँ बन रही थी। 'प्रेमाश्रम' के दिनो से कितना अतर हो गया था। लखनपुर के किसान अब अकेले नही थे। उनके साथ तमाम इलाके के किसान अपने सगठनो के अदर अपना एका मजबूत बना रहे थे। वे इस तथ्य को भी रेखाकित करते है कि यहॉ पर दो तरह के नेतृत्व सुधारवादी और क्रातिकारी नेतृत्व के बीच टक्कर होती है। एक तरह पारिवारिक जीवन से लेकर राजनीति तक ढुलमुलयकीन

[1] प्रमचद 'कर्मभूमि' पृ० 281–82

अमरकात है तो दूसरी तरफ महत का घेराव करने और लगानबदी का नारा देने वाले किसान नेता आत्मानद है। अमरकात के ही सगी–साथी सलीम और हाकिम जिला गजनवी भी है, जो कहते है कि "मै इनके नेक इरादो की कद्र करता हूँ, लेकिन हम और वह दो कैपो मे है। स्वराज हम भी चाहते है, मगर इकबाल की सूरत मे नही।"[1] प्रेमचद की सहानुभूति स्पष्ट रूप से मेहनतकश जनता के बीच से उभरने वाले सघर्षशील नेतृत्व के साथ है। इसलिए डॉ०शर्मा ने लिखा है कि 'कर्मभूमि' मे 'प्रेमचद का यथार्थवाद और बुलदी पर पहुँचा है, क्योकि उपन्यास पढने के बाद पाठक सोचता रह जाता है– इनकी तकलीफो का कैसे अत हो? कौन सा रास्ता है जिससे आतक से इनकी रक्षा होगी? प्रेमचद उसे यह सोचने पर विवश करते हैं, यह उनकी जबरर्दस्त सफलता हे।"[2] पाठको के सामने प्रेमचद के यथार्थवाद की बुलदियो और उनकी कला की बारीकियो को इतने बेहतरीन ढग से पेश करना डॉ०शर्मा की भी जबर्दस्त सफलता है।

प्रेमचद का यथार्थवाद दृष्टिकोण और उनकी कला कोई इकहरी नही, बल्कि बहुआयामी है। डॉ० शर्मा के अनुसार वह उपन्यास मे जिन पात्रो को लेकर कथा रचते है, उनके जीवन के सभी पहलुओ पर प्रकाश डालते हैं। वह जनता की आर्थिक और सामाजिक कठिनाइयो का चित्रण ही नही करते, वह उसकी सजीव सास्कृतिक परपराओ से सच्ची सहानुभूति भी रखते है और उसके नृत्य और सगीत मे भी रस ले सकते है। प्रेमचद ने इस उपन्यास मे भी मुन्नी, सकीना, पठानिन, सलोनी, सुखदा और नैना जैसे अद्भुत नारी पात्रो की एक पूरी जमात दी है। इन सक्रिय नारी चरित्रों का सकारात्मक प्रभाव डॉ०शाति कुमार, अमरकात, सलीम और लाला समरकात जैसे मध्यमवर्गीय पात्रो पर भी पडता है। इस उपन्यास की एक अन्य विशेषता इस तथ्य पर बल देना है कि हिन्दुओ और मुसलमानो की बुनियादी समस्याएँ एक है। एक आजाद इसानियत की सस्कृति गढने मे उनकी सास्कृतिक समस्याएँ भी एक जैसी है। इस प्रकार यह उपन्यास आजादी के आदोलन की सभी वस्तुगत आवश्यकताओ पर रोशनी डालते हुए लिखा गया है। डॉ०शर्मा का महत्व यह है कि उपन्यास की अतर्वस्तु, और प्रेमचद की कला का सूक्ष्म विवेचन करते हुए उन्होने इन सभी पहलुओ को बडे तर्कसंगत ढग से उजागर किया है।

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 98
[2] 'प्रेमचद और उनका युग' पृ० 100

'गोदान'

कार्ल मार्क्स ने 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' मे प्रकाशित अपने 10 जून, 1853 के लेख मे भारत को 'सामाजिक दृष्टि से पूर्व का आयरलैंड' कहा था।"[1] इसी अखबार मे 8 अगस्त, 1853 को प्रकाशित अपने एक अन्य लेख मे उन्होने अत्यत विस्तार के साथ यह दिखलाया है कि भारत के काश्तकार को आयरलैड और फ्रास के काश्तकारो जितने अधिकार भी नही है।"[2] अपने पहले लेख मे वे अग्रेजी–राज की विध्वसकारी भूमिका के बारे मे लिखते है कि 'हिन्दुस्तान मे हुए सभी गह–युद्ध, उस पर हुए सारे आक्रमण वहॉ घटित सारे राज–परिवर्तन, उसकी अनेक अभिजातियॉ, समस्त दुर्भिक्ष एक के बार एक चाहे कितने ही जटिल, वेगवान और विनाशकारी क्यो न जान पडते हो, उनके प्रभाव गहरे न होकर मात्र सतही रहे। परन्तु इगलैड ने तो भारतीय समाज के सारे का सारा ढॉचा तोड डाला, और उसके नवनिर्माण के कोई लक्षण अभी तक नजर नही आते। इस भॉति एक तरफ तो भारतीय जनता की पुरानी दुनिया खो गयी है और दूसरी तरफ नयी दुनिया मिली नही है, जिससे उसकी वर्तमान दुख·पूर्ण स्थिति ओर भी करूण हा जाती है। भारतीय समाज के सपूर्ण ढॉचे के इस विध्वस का सर्वाधिकार शिकार हुआ था यहॉ का काश्तकार। इसलिए उसकी दु खपूर्ण और करूण स्थिति और भी त्रासद हो जाती थी। 'भारत मे ब्रिटिश राज' शीर्षक अपने उपर्युक्त लेख मे मार्क्स बताते है कि अति प्राचीन काल मे यहॉ शासन के तीन विभाग रहे है। मार्क्स के शब्दो मे वित्त विभाग, अर्थात अदरूनी लूट–पाट विभाग, युद्ध विभाग, अर्थात बाहरी लूट–पाट विभाग, और अत मे सार्वजनिक निर्माण विभाग।' इस सार्वजनिक निर्माण–विभाग का काम था धरती को उपजाऊ बनाना और सिचाई के साधनो का विकास। मार्क्स आगे लिखते है कि "अग्रेजो ने ईस्ट इडिया मे अपने पूर्वाधिकारियो से वित्त–विभाग तथा युद्ध–विभाग तो ले लिये, परन्तु सार्वजनिक निर्माण–विभाग की ओर बिल्कुल कोई ध्यान नही दिया। यही कारण है कि वह कृषि जो अग्रेजो के स्वतत्र होड के सिद्धान्त के मुताबिक नही चल सकती थी, बर्बाद हो गयी।"[3] देशी उद्योग–धधो और कला–कौशल को बलपूर्वक नष्ट कर देने से यह त्रासदी ओर भी गहरी हो जाती है।

[1] मार्क्स–एगल्स, उपनिवेशवाद के बारे मे' पृ० 40
[2] उपर्युक्त, पृ० 94
[3] उपर्युक्त पृ० 41, 42 एव 43

अपने 5 उगस्त 1853 वाले पूर्वोल्लिखित लेख मे मार्क्स ने बडे विस्तार के साथ यह दिखलाया है कि कैसे भारत के अदरूनी ढॉचे को तोडकर अग्रेज सारी जमीन के मालिक, भारत के सबसे बडे जमीदार बन बैठे थे। मार्क्स ने ब्रिटिश आज्ञाप्तियो द्वारा क्रियान्वित अग्रेजीराज की दोनो पद्धतियो जमीदार और रेयतदारी को क्रमश अग्रेजी जमीदारशाही का स्वाग और 'फ्रासीसी कृषक स्वामित्व का स्वाग' बताकर लिखा है कि 'दोनो मे बडे–से–बडे अतर्विरोध हैं, दोनो ही भूमि की काश्त करने वाली जनता के लाभ के लिए नही है और न जमीन को अपने हाथ मे रखने वाले मालिको के लाभ के लिए ही है।' वे आगे लिखते है कि 'बगाल मे, जमीदारी पद्धति के अधीन और मद्रास तथा बबई मे, रैयतवारी पद्धति के अधीन, रैयत किसान, जिनकी सख्या भारत की कुल आबादी का 11/12 है, तबाह–बर्बाद हो रहे है।' मार्क्स जमीदारो और रैयतवारी पद्धति के अलावा पटनीदारो और सहायक–पटनीदारो की एक अन्य पद्धति का भी उल्लेख करते है, जिसे इन व्यापारिक सट्टेबाजो ने लागू किया था। वे लिखते है कि 'इस तरह मध्यस्थो का एक पूरे का पूरा सिलसिला उठ खडा हुआ है, जिसका सारा बोझ अभागे काश्तकार को सहन करना पडता है।' मार्क्स के अनुसार भारत मे इगलैड की जमीदारशही, आयरलैड की मध्यस्थ पद्धति, आस्ट्रिया की कर उगाहने वाली पद्धति, फ्रास की भूदासत्व पद्धति और साथ ही जमीन पर राज्य के असल मालिकाना हल की एशियाई पद्धति इन सभी का मिश्रण मिलता है। वे लिखते है कि "इन विभिन्न पद्धतियो के दोषो का सारा बोझ तो भारतीय किसान को ढोना पडता है, किन्तु उनसे मिलने वाली सभी सुविधाओ से वचित रहता है।"[1] अग्रेजीराज की इस विध्वसकारी भूमिका को समझे बिना औपनिवेशिक किसान की त्रासदी को भी नही समझा जा सकता। प्रेमचद अकेले ऐसे कथाकार हैं जिन्होनें अपने उपन्यासो के माध्यम से भारतीय किसान की इस त्रासदी को अपने उपन्यासो मे मर्मभेदी कलात्मक सवेदना के साथ मूर्त कर दिया है। डॉ०रामविलास शर्मा अकेले ऐसे आलोचक है जिन्होने प्रेमचद की इस मर्मभेदी कलात्मक सवेदना का अत्यत हृदयग्राही सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

प्रेमचद के तीन उपन्यासो 'प्रेमाश्रम' 'कर्मभूमि' और 'गोदान' मे हिन्दुस्तानी किसानो के जीवन की वृहत्त्रयी बताते हुए डॉ०शर्मा ने लिखा है कि 'गोदान' की मूल्य समस्या ऋण की समस्या है। वे बताते है कि प्रेमचद किसानो के अलग–अलग पहलुओ पर उपन्यास लिख चुके थे– 'प्रेमचद' में बेदखली और इजाफा लगान पर 'कर्मभूमि' मे बढ़ते हुए आर्थिक सकट

[1] उपर्युक्त, पृ० 93 94 एव 95

ओर किसानो की लगानबदी की लडाई पर– लेकिन कर्ज की समस्या पर उन्होने विस्तार से कोई उपन्यास न लिखा था। 'गोदान' लिखकर उन्होने किसानो की कर्ज की भयावह समस्या पर प्रकाश डाला, जो आये दिन उनके जीवन को सबसे ज्यादा स्पर्श करती है। प्रसगवश मार्क्स ने भी अपने पूर्वाल्लिखित लेख मे इस तथ्य का खसतौर से उल्लेख किया हे कि फ्रासीसी किसान की तरह भारतीय किसान भी प्राइवेट सूदखोरो का शिकार होता है ओर उसे फ्रासीसी किसान की तरह भूमि पर पुश्तैनी स्थायी अधिकार भी प्राप्त नही है।"[1] अर्थात उसे कभी भी बेदखल किया जा सकता है। डॉ०शर्मा लिखते हैं कि प्रेमचद समाज के प्रवाह को बहुत गहराई से देखते थे। उस जमाने मे, जब स्वराज का महत्व अग्रेजी साम्राज्यवाद के अदर ही रहना था, प्रेमचद ने लगानबदी को स्वाधीनता आदोलन की रीढ बतलाया था। उस समय, जब लोग कर्ज की समस्या को किसान–आदोलन की एक बुनियादी समस्या न समझते थे, प्रेमचद ने उस पर तेज रोशनी डाली थी। वह बराबर कोशिश कर रहे थे कि आजादी का आदोलन किसानो की बुनियादी समस्याओ को अपने अदर समेट ले, वह अग्रेजीराज के शोषण चक्र पर वार्निश करने के बदले उसे जड से खोदकर फेक दे।' डॉ० शर्मा के अनुसार उस समय तक किसान को कर्ज के बोझ से हल्का करने की समस्या किसान–आदोलन का मुख्य अग न बन पायी थी।' प्रेमचद का महत्व यह हे कि उन्होने इस समस्या पर पूरे विस्तार और गहराई के साथ रोशनी डाली है। 'गोदान' की रचना शैली को 'रगभूमि' से 'किसी हद तक मिलती–जुलती' बताकर डॉ० शर्मा ने लिखा है कि इस उपन्यास की गति धीमी हे, होरी के जीवन की गति की तरह। यहाँ सैलाब का वेग नही है, लहरो की थपेडे नही है। यहाँ ऊपर से शात दिखने वाली नदी की भँवरे हे जो भीतर–ही–भीतर मनुष्य को दबाकर तलहटी से लगा देती हैं और दूसरो को वह तभी दिखायी देता है जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगे। प्रेमचद 'रगभूमि' के सूरदास की तरह होरी पर अपना ध्यान केद्रित करते है। यहाँ बहुत सार किसान पात्रो को उभारने के बजाय होरी के रूप मे भारत के औपनिवेशिक किसान का ऐसा प्रतिनिधिक चरित्र ढाला गया है, जो 'उन तमाम गरीब किसानो की विशेषताऍलिए हुए हे जो जमीदारो और महाजनो की धीमे–धीमे लेकिन बिना रूके हुए चलने वाली चक्की मे पिसा करते हैं।"[2] डॉ० शर्मा के अनुसार होरी का अत उन्हें निर्मला की याद दिला देता है, क्योंकि अकेले और निस्सहाय

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 94

[2] प्रेमचद और उनका युग पृ० 102 एव 103

होरी की मदद करने कोई नही आता। यहॉ वे यह सवाल उठाते हैं कि तब क्या प्रेमचद पीछे की तरफ लौट रहे थे। वस्तुत बात ऐसी नही है। प्रेमचद पीछे की ओर नही लौट रहे थे, क्योकि होरी अकेला है तो इसकी जिम्मेदारी ऐतिहासिक परिस्थितियो पर है। डॉ० शर्मा ने 'गोदान' का विवेचन करते हुए इन ऐतिहासिक परिस्थितियो पर भी विस्तार से रोशनी डाली है।

डॉ० शर्मा बताते है कि 'गोदान' मे किसानो का शोषण का रूप ही दूसरा है। यहॉ सीधे–सीधे राय साहब के कारिंदे होरी का घर लूटने नही पहुँचते। लेकिन उसका घर लुट जरूर जाता है। यहॉ अग्रेजीराज के कचहरी–कानून सीधे–सीधे उसकी जमीन छीनने नही पहुँचते। लेकिन जमीन छिन जरूर जाती है। वे गोदान' म मुनाफे और मेहनत के दोनो विरोधी ससारो के बीच निरतर गहरी होती खाई का जिक्र करने के बाद बताते है कि इस उपन्यास मे एक जमीदार राय साहब, मिल–मालिक खन्ना, मालती और मेहता की दुनिया हे, दूसरी तरफ होरी, धनिया, गोबर, शोभा, हीरा वगैरह की दुनिया हे। एक के बिना दूसरी का अस्तित्व सभव नही है, यानी अपने वर्तमान रूप मे। इसलिए प्रेमचद इन दोनो ससारो के चित्र खीचते है। डॉ०शर्मा के अनुसार अग्रेजीराज के शोषण की विलायती मशीन को तेल पिलाने वालो मे समेरी के रायसाहब मुख्य है। वे लिखते है कि "ज्ञानशकर एक भयकर खल पात्र है, लेकिन गोदान' के रायसाहब को खल कौन कहेगा? सत्याग्रह–सग्राम मे बहुत यश कमा चुके है। कौसिल की मेम्बरी तक छोड दी थी आर जेल चले गये थे।"[1] लेकिन किसानो के शोषण मे कोई कमी नही आयी थी। प्रेमचद क शब्दो मे यह नही कि उनके इलाके मे असामियो के साथ कोई खास रिआयत की जाती हो, या डॉड और बेगार की कडाई कुछ कम हो' और साथ ही रायसाहब राष्ट्रवादी होन पर भी हुक्काम से मेल–जोल बनाये रखते थे। उनकी नजरे और डालियॉ और कर्मचारियो की दस्तूरियॉ जैसी की तैसी चली आती थी।"[2] डॉ० के अनुसार सत्याग्रह–सग्राम मे यश कमाने के बाद भी रायसाहब अमरपाल सिह और अगेजीराज के सबधो मे कोई अतर न पडा था और न ही किसानो के शोषण, दमन और बेदखली मे कमी आयी थी।

रायसाहब के मित्र हैं शक्कर मिल के मैनेजिग डायरेक्टर और एक बैक के मैनेजर मिस्टर खन्ना, जो उन्ही देश–भक्तो के प्रतिनिधि हैं जिनकी देश–सेवा और बिलायती शराबे

---

[1] उपयुक्त पृ० 102 एव 103

[2] प्रमचद गोदान पृ० 13

पीने पर 'गबन' के देबीदीन ने अपने दिल के फफोले फोडे थे। डॉ० शर्मा के अनुसार एक बडे जमीदार से उनकी दोस्ती आकस्मिक नही है। इस तरह के पूँजीपति सामती हितो से बहुत नजदीकी सबध कायम रखते हैं। ये किस तरह के पूँजीपति थे, इसके बारे मे वे लिखते है कि 'खन्ना हिन्दुस्तान के उन पूँजीपतियो मे है जिनके कब्जे मे बैक है और जो इस बैक–पूँजी के बल पर उद्योग–धधो पर कब्जा कर लेते है।' मिस्टर खन्ना भी कोमी–आदोलन में जेल जा चुके थे और अहिसावादी थे। लेकिन मजदूरो की हडताल उन्हे बहुत बेजा मालूम होती थी। वे मजदूरो के वेतन मे कटौती करते है तो प्रो० मेहता उन्हे फटकारते है "आपके मजूर बिलो मे रहते हैं .. . गदे बदबूदार बिलो मे, जहॉ आप एक मिनट भी रह जाये, तो आपको कै हो जाये। कपडे जो वे पहनते है, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेगे। खाना जो वे खाते है, वह आपका कुत्ता भी न खायेगा। मैने उनके जीवन मे भाग लिया है। आप उनकी रोटियॉ छीनकर अपने हिस्सेदारो का पेट भरना चाहते है।"[1] इन अमानवीश परिस्थितियो मे रहने वाले मजदूर वेतन कटौती के विरोध मे हडताल करते है। लेकिन उनकी हडताल नाकामयाब रहती है, क्योकि भीषण बेरोजगारी से फायदा उठाकर नयी भरती कर ली जाती है। प्रेमचद मजदूरो और उनके बेरोजगार भाइयो मे एकता की कमी दिखाकर एक बडी ज्वलत समस्या की ओर सकेत करत हे।

डॉ० शर्मा लिखते हैं कि "एक तरफ मजदूर लडते है खन्ना से, दूसरी तरफ किसान सामना करते है रायसाहब के कारिदो का। लेकिन जहॉ खन्ना और रायसाहब एक–दूसरे के नजदीकी दोस्त है और सट्टे और शक्कर के शेयरो की स्कीमो बनाते है, वहॉ किसानो और मजदूरो को एक–दूसरे का पता नही है। अपनी लडाइयॉ अलग–अलग चलाने की वजह से दोनो मे किसी की भी दशा नहीं सुधर पाती। उनके बीच की बडी मेहता है, डॉ० शर्मा के अनुसार मेहता के चरित्र के रूप मे प्रेमचद यह दिखाना चाहते थे कि किस तरह से लोग जनता की सेवा कर सकते है। वे लिखते है कि 'अगर मेहता से होरी को जोडा जा सके तो व्यक्ति बनेगा, वह बहुत–कुछ प्रेमचद से मिलता–जुलता होगा।' मेहता के प्रभाव से ही मालती के चरित्र मे परिवर्तन होता है। होरी के सबध मे डॉ० शर्मा की मान्यता हैं कि वह मनोहर और बलराज की तरह सचेत किसान नही है। लेकिन फिर भी होरी का चरित्र भारत के अजेय किसान का चरित्र है। 'गोदान' उसके भगीरथ परिश्रम की गाथा है। डॉ० शर्मा के अनुसार 'होरी उन किसानो का प्रतिनिधि है जिनकी जमीन उनके हाथो से निकलती जाती

[1] उपर्युक्त, पृ० २४०

है। वे मजदूरी करने के लिए मजबूर किये जाते है। लेकिन मजदूरी ऐसी कि चार ही दिन मे आदमी की हड्डिया को चूर कर दे।' होरी के लडके गोबर के सबध मे वे लिखते हैं कि उसमे 'प्रेमाश्रम' के बलराज जैसी दृढता चाहे न हो, तो भी वह नये जमाने की रोशनी देख चुका है। चाहे गॉव मे खेती करे, चाहे शहर मे मजदूरी, वह दूसरो का अन्याय बर्दाश्त करने के लिए तैयार नही है।"[1] गोबर प्रेमचद का सबसे सभावनापूर्ण पात्र है। मिल मे हडताल होती है तो गोबर हडतालियो मे सबसे आगे रहता है। प्रेमचद के शब्दो मे गोबर ने "राजनीतिक जलसो के पीछे खडे होकर भाषण सुने है ओर उनसे अग–अग मे बिधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतो पर विजय पाना होगा।"[2] यह गोबर ही भविष्य पर दस्तक दे रहे भारतीय मजदूर वर्ग का प्रतिनिधि है। प्रेमचद उसका चित्रण एक सभावनामय पात्र के रूप मे कर सके, यह उनकी बडी भारी सफलता है।

होरी रायसाहब के दुखो और चिताओ का जिक्र करता है तो गोबर 'प्रेमाश्रम' के बलराज के लहजे मे कहता है, "तो फिर अपना इलाका हम क्यो नही दे देते। हम अपने खेत, हल बैल, कुदाल, सब उन्हे देने को तैयार है ..करेंगे बदला? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमर्दी। जिसे दु ख होता है, वह दर्जनो मोटरे नही रखता, महलो मे नही रहता, हलवा–पूरी नही खाता, और नाच–रग मे लिप्त रहता है। मजे से राज के सुख भोग रहे हैं, उस पर दुखी है।"[3] इसी तरह दातादीन मे झडप होती है तो वह कहता है, "कैसी चाकरी ओर किसकी चाकरी? यहॉ तो कोई किसी का चाकर नही। सभी बराबर है। अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रूपये उधार दे दिये और उससे सूद मे जिदगी–भर काम लेते रहे। मूल ज्यो–का–त्यो। यह महाजनी नही है, खून चूसना है।"[4] दातादीन को इसी लहजे मे डपटकर जबाब देती है गोबर की मॉ धनिया, "भीख मॉगो तुम, जो भिखमगे की जात हो। हम तो मजदूर ठहरे, जहॉ काम करेगे, वही चार पैसे पायेगे।" गॉव क पाखडी नेताओ को फटकारते हुए धनिया कहती है, "ये हत्यारे गॉव के मुखिया है, गरीबो का खून चूसने वाले। सूद–ब्याज, डेढी–सवाई, नजर–नजराना, घूस–घास जैसे भी हो, गरीबो को लूटो। उस पर

---

[1] प्रमचद आर उनका युग' पृ० 110 111 112, एव 113
[2] प्रमचद गोदान' पृ० 294
[3] उपर्युक्त, पृ० 18
[4] उपर्युक्त, पृ० 183

सुराज चाहिए। जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।"[1] प्रेमचद के अविस्मरणीय पात्रो मे होरी, गोबर, धनिया अन्यतम है, 'गोदान मे प्रेमचद की कला का चरमोत्कर्ष दिखायी देता है। उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण, उनकी कलात्मक सवेदना और रचना–कौशल यहॉ सर्वाधिक बुलंदी पर दिखायी देते है। डॉ० शर्मा के अनुसार 'गोदान' के वर्णन और चित्रण मे एक अपूर्व आत्मीयता ओर तल्लीनता हं जो प्रेमचद के उपन्यासो मे भी कम मिलती है। वे लिखते है कि "प्रेमचद ने 'गोदान' मे गॉवो की प्रकृति, वहॉ के किसानो और उनके जीवन के बारे मे प्रेम से लिखा है। मानो ये अब बिछुडने वाले हो और वह अब इन्हे बार–बार न देख पायेगे।"[2] यह बात सही भी साबित हुई। 'गोदान' की रचना के बाद अधूरे उपन्यास 'मगलसूत्र' के आरभिक पृष्ठ लिखने के बाद ही प्रेमचद का निधन हो जाता हे। डॉ०शर्मा बताते है कि 'गोदान' के बाद अगला कदम यही हो सकता है कि मेहता और होरी जैसे लोग अपना एका मजबूत करके रायसाहब और उनके विलायती प्रभुओ के जाल को छिन्न–भिन्न कर दे। 'गोदान' के अगले कदम अधूरे 'मगलसूत्र' के नायक साहित्यकार देव कुमार मेहता और होरी के मिले–जुले रूप है। ऐसा प्रतीत होता है कि प० देव कुमार के जीवन दर्शन के ही प्रतीक नही है, बल्कि इस आत्म कथात्मक अधूरे उपन्यास मे वे स्वय प्रेमचद के ग्रथावतार है। प० देव कुमार इस निष्कर्ष पर पहुंचते हे कि "दरिदो के बीच म उनके लडने के लिए हथियार बॉधना पडेगा। उनके पजो का शिकार बनना देवतापन नही, जडता है।"[3] इन पक्तियो से 'गोदान' के बाद अगला कदम और प्रेमचद की भावी दिशा एकदम स्पष्ट है।

डॉ० शर्मा के– 'प्रेमचद और उनका युग' पुस्तक के महाजनी सभ्यता' सबधी लेख मे दिखायी देता है कि प्रेमचद के ह्रदय मे जागीरदारी सभ्यता के प्रति थोडा बहुत स्नेह बाकी हं। डॉ रामविलास शर्मा के अनुसार वह स्नेह उस पुरानी सभ्यता के वश के वर्णन मे उसके रहे–सहे स्मारक, कुछ उदार जमीदारो, ताल्लुकदारो और बिगडे रइसो के चित्रण मे हमे देखने को मिलता है। यहॉ पर उनका दृष्टिकोण एक ठेठ किस्म का है जो स्वभावत नये युग के शोषण से व्याकुल होकर पिछले युग के दुख–स्वप्न देखता है और यह केवल कल्पना नहीं। प्रेमचद ने गॉवो मे रहकर देखा था कि पुरानी सभ्यता मे पला जमीदार उतना भयकर नही होता जितना कि वर्तमान सभ्यता के सम्पर्क मे आया हुआ उसी का जाति भाई

---

[1] उपर्युक्त, पृ० 171
[2] उपर्युक्त पृ० 97
[3] प्रमचद और उनका युग पृ० 102

उस सम्बन्ध मे डॉ०रामविलास शर्मा ने लिखा है कि विदेशी सभ्यता ने महाजनी सभ्यता की जडे हमारे समाज मे मजबूती से जमा दी है और इसलिए प्रेमचद उसका विरोध करते है। इसलिए नही कि वह विदेशी है। वह पुरानी सभ्यताा अपनी पुरानी सामाजिक सभ्यता के साथ मिट गयी है। उसमे कुछ दम नही बहुत से बहुत उसके लिए सहानुभूति के चार ऑसू गिराये जा सकते है। परन्तु नयी दिशा एक नयी सभ्यता को पोषित कर रही है और इस सभ्यता की भिति स्वार्थ पर है। यही नही डॉ०शर्मा ने यह भी बताया है कि समाज की व्यवस्था ही ऐसी है कि उसमे या तो महाजन बनो, या कर्जदार, ईमानदार के लिये उसमे जगह नही, या तो यत्र से सहयोग करो, या उसकी अनिवार्य गति के नीचे पिसने के लिए तैयार हो जाओ। (प्रेमचद पृ० 55) नई व्यवस्था ने यह करन के लिए मजबूर किया हे और कडे सघर्ष के दौर मे धन की भूमिका अहम हो गई है कयोकि धन को देवता बनाकर पूजने की परम्परा इन दोनो वर्ग के मानस पटल पर छा गई है।

कहानीकार प्रेमचंद

डॉ०शर्मा उपन्यासकार प्रेमचद को कहानीकार प्रेमचद से श्रेष्ठ मानते हैं। उनकी मान्यता है कि प्रेमचद के अच्छे से अच्छे और घटिया से घटिया उपन्यासो के बीच भी इतना बडा फासला नही मिलता है। इसकी वजह वह यह बताते ह कि एक बडे पेमाने पर उनकी कहानी सोचना उनके सस्कारो मे शामिल हो गया था। उपन्यासो मे उन्हे रस मिलता था। यहॉ उनकी कल्पना आकाश मे मुक्त विहग जैसी अपने पख फलाकर उड जाती सकती थी। कहानी की परिधि उन्हे उपनी प्रतिभा का पूरा करतब दिखाने से रोकती थी। उपन्यासकार प्रेमचद को ससार के बडे–से–बडे उपन्यासकारो के बराबर जगह देकर भी उन्हे कहानीकार की हैसियत से यह दर्जा देने मे सकोच करते है। प्रेमचद न ढाई सौ से अधिक कहानियॉ लिखी है, जिनमे से लगभग पचास को डॉ०शर्मा हिन्दी की अमर कहानियॉ मानते है। इनमे से भी वे उन कहानियो को अधिक महत्व देते है जो किसानो के जीवन से सम्बधित हैं। डॉ० शर्मा के अनुसार उनकी सबसे सफल कहानियॉवे हैं जिनमे उन्होने किसानो के जीवन का चित्रण किया है।

डॉ० शर्मा 'भारतीय कथा साहित्य की जातीय परम्परा से प्रेमचद की कहानियो का बहुत घनिष्ट सबध बताते हुए लिखते है कि 'प्रेमचद ने ग्राम कथाओ से कहानी कहना सीखा था, उनकी नकल न की थी। उनकी शैली आमतौर से व्यग–प्रधान होती थी, उनमे एक तरह का कसाव होता है, एक काव्य तत्व, जो ग्राम कथाओ मे भी कभी–कभी मिलता हे' ग्रामीण कथाओ का रस ग्रहण करने और उनकी शैली अपनाने के कारण ही 'आमतौर से उनकी कानियो मे जो एक ठेठपन है, पाठक ह्रदय मे अपनी बात को सीधे उतार देने की जो ताकत है, वह उन्होने हिन्दुस्तान के अक्षय ग्रामीण कथा–भडार सीखी है।' इसीलिए उनकी ज्यादातर कहानियॉ बडे सीधे–सादे ढग से शुरू होती है। इसके अलावा उनकी कहानियो का लोक रस और कहानी कहने का ठेठ हिन्दुस्तानी ढग उनकी लोकप्रियता का प्रमुख आधार है। प्रेमचद के कहानी कहने मे एक 'फुर्सत के भाव' का जिक्र करते हुए डॉ० शर्मा लिखते है कि "वह कहानी सुनाते हैं, अक्सर लच्छेदार जबान मे, वाक्यो को स्वाभाविक गति से फैलने की आजादी देकर, अग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियॉ और पत्ते कतर कर नही, फूलो और पत्तियो को हवा मे बढने और लहराने की आजादी देकर जिन्दगी के अनुभवो पर भी टीका टिप्पणी भी साथ मे चला करती थीं। व्यग्य, अनूठी उपमाये ओर हास्य बीच–बीच मे पाठक को गुदगुदाते रहते है।"[1] इन कहानियो की सबसे बडी विशेषता डॉ०शर्मा की नजर मे यह है कि प्रेमचद का कहानी साहित्य हमारे जातीय जीवन का दर्पण है। हिन्दी–भाषी जनता के उत्कृष्ट–गुण उनके पात्रो मे झलकते है। उनके अधिकाश पात्र हास्य–प्रेमी, जिदादिल, कठिन परिस्थितियो का धीरज से मुकाबला करने वाले, अन्याय के सामने सिर न झुकाने वाले होते है। प्रेमचद ने ये सब बात जनता मे देखी थी, इसलिए कहानियो मे उन्हे चित्रित कर सके थे।

डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद की कहानियो का विभिन्नता विविध पात्रो का भारी जमाव आश्चर्यजनक है। उनकी कहानियो की विषय–वस्तु म जितनी विविधता है उतनी कम कलाकारो के यहॉ मिलती है। इसी प्रसग मे वे लिखते ह कि 'पारिवारिक समस्याओ से लेकर राजनीतिक आदोलन तक वह सभी क्षेत्रो से कहानी के लिए विषय–वस्तु लेते है। उनकी कहानियो का सबध उन समस्याओ से है, जिनका सामना आये दिन लोगो को अपने जीवन मे करना पडता है।' डॉ० शर्मा की मान्यता है कि अच्छी कहानी लिखने के लिए विषय–वस्तु का महत्वपूर्ण होना बहुत जरूरी है और साथ ही लेखक को जीवन की भी

---

[1] प्रमचद 'मगलसूत्र' पृ० 231

गहरी जानकारी होनी चाहिए। प्रेमचद मे वे ये सभी विशेषताये पाते हैं। प्रेमचद की कहानियो मे 'एक महान रचनाकार की प्रचुरता और विविधता' दिखलाते हुए डॉ० शर्मा लिखते है कि 'समाज की पीडित विधवाए, सौतेली माताओ से परेशान बालक, महतो और पुरोहितो से ठगे जाने वाले किसान, दूसरो की गुलामी करके भी पेट न भर पाने वाले अछूत, महाजन का सूद भरते–भरते जिदगी गारत करने वाले किसान, ये और इस तरह के सभी लोग कहानीकार प्रेमचद मे एक अच्छा दोस्त और सलाहकार पाते हैं। समाज के अन्यायी ओर अत्याचारी, निठल्ले और मुफ्तखोर, अग्रेजीराज के वफादार मददगार प्रेमचद मे अपनी वह असली सूरत देख सकते हैं जो जनता का पक्ष लेने वाले एक सजग साहित्यकार को दिखयी देती थी।' इसी क्रम मे उन्होने इस विशेष तथ्य की ओर ध्यान दिलाया हे कि "प्रेमचद हिन्दुस्तान के उन थोडे से कलाकारो मे हैं। और हिन्दू और मुसलमान दोनो पर वे समान अधिकार से वे लिख सकते है। वह बच्चो, बूढो, विधवाओ, पढी–लिखी स्त्रियो ओर अपढ किसान स्त्रियो का समान सफलता से चित्रण कर सक हे।"[1] डॉ० शर्मा के अनुसार प्रेमचद की कहानियो मे ' घटनाओ का वेसा महत्व नही है जसा चरित्र का है।' वे लिखते हे कि उनके चरित्र चित्रण की यह बहुत बडी सफलता है कि थोडी देर के सम्पर्क से ही उनके पात्र बहुत दिनो के परिचित जैसे लगने लगते है आर कहानी खत्म कर देने पर भी पाठक को बहुत दिनो तक याद करते हैं' प्रेमचद जो भी बात कहते है वह अत्यत सजीव चित्र खीचकर कहते है। डॉ०शर्मा के अनुसार 'कथा की यह चित्रमयता, पात्र को उसकी पृष्ठ भूमि के साथ थोडे से शब्दो मे ऑक देने की यह खूबी प्रमचद की कला की सफलता का रहस्य है।' प्रेमचद की कहानियो मे उनके पात्रो को सवादो की प्रशसा करते हुए डॉ०शर्मा ने उनकी भाषा के सबध मे लिखा है कि "यहॉ भाषा पर प्रेमचद का असाधारण अधिकार दिखायी देता है। हिन्दी भाषा कितनी सबद्ध है। इसका परिचय भी मिलता है।"[2] वे तीन बातो के लिए प्रेमचद की आलोचना करते है। पहली यह कि उनकी कहानियो मे कही कही घटना वैचित्रथ भी मिलता है। दूसरे कुछ कहानियॉ जीवन–चरित्र जैसी हो गयी हैं। तीसरे कई कहानियो मे हृदय–परिवर्तन दिखलाने की कोशिश नजर आती है। ऐसी असफल और कमजोर कहानियो मे प्रेमचद का यथार्थवादी चित्रण अपनी चमक खो देता है। कहानीकार प्रेमचद की कला के बारे मे डॉ०शर्मा ने निष्कर्ष रूप मे लिखा है कि "उनकी

---

[1] प्रमचद आर उनका युग' पृ० 115, 116 एव 117
[2] उपर्युक्त पृ० 122–123

शेली की चित्रमयता, भाषा पर असाधारण अधिकार, चरित्र चित्रण का कौशल और हर जगह व्यग्य और हास्य ढूँढ लेने की क्षमता उन्हे एक प्रभावशाली कलाकार बनाती है। उसकी सहृदयता और मानव प्रेम उन्हे जनता का प्रिय कलाकार बनाते हैं।"[1] प्रेमचद की उपर्युक्त सभी विशेषताए डॉ०शर्मा ने अपने विवेचन मे उनकी अनेक कहानियो के अश उद्धत करके बडे विस्तार से दिखलायी है। लेकिन उन्होने अपने विवेचन मे प्रेमचद की किसी एक या किन्ही चुनिन्दा कहानियो का वैसा सूक्ष्म विश्लेषण नही किया है, जैसा उनके उपन्यासो का।

प्रेमचद की कम–से–कम दो विवादास्पद कहानियो 'पूस की रात' और 'कफन' का सूक्ष्म विश्लेषण डॉ०शर्मा से अपेक्षित था, क्योकि ये दोनो कहानियाँ प्रेमचद के किसी भी श्रेष्ठ उपन्यास से घटकर नही है। इसीलिए अनेक विद्वान डॉ०शर्मा के इस निष्कर्ष से सहमत नही प्रतीत होते कि कहानीकार प्रेमचद को ससार की चोटी के कहानीकारो के साथ नही रखा जा सकता, जबकि उपन्यासकार प्रेमचद को ससार के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारो के बीच यह दर्जा हासिल है।

चन्द्रबली सिह

चद्रबली सिह वरिष्ठ मार्क्सवादी आलोचक है। 'कलम पत्रिका के सपादको मे से एक तथा जनवादी लेखक सघ के महासचिव रहे है। उनकी पुस्तक 'लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य' (1956ई०) काफी चर्चित रही है। इसमे 'प्रेमचन्द की परपरा' शीर्षक निबन्ध सकलित है। प्रस्तुत अध्ययन इसी पर आधारित है।

प्रेमचद ने अपनी परपरा के रूप मे जो विरासत छोडी है, उसके लिए उन्हे जीवन मे सतत् सघर्ष करना पडा है। उनका यह सघर्ष अन्याय और असुदरता के खिलाफ रहा है। इससे भी कठिनतर सघर्ष उनका वह है जो एक क्रातिकारी रचनाकार अपने अतीत के दृष्टिकोणो और मान्यताओ से करता है। प्रेमचद की निष्ठा और दृढता को स्रोत हिदुस्तान की करोडो जनता थी। उनके विचारो और भावनाओ मे इस धरती की धडकने मिलती हैं। उनका साहित्य उथल–पुथल के युग मे ढला और उसे उस उथल–पुथल से अलग कर आकना उसकी आत्मा से अलग करना है। 'सोजे वतन' से लेकर 'मगलसूत्र' तक प्रेमचंद ने

[1] उपर्युक्त, पृ० 117–118

एक लबा रास्ता तय किया। इन दो छोरो के बीच राष्ट्रीय आदोलन और उसके अनुभवो से प्रेमचद की राजनीतिक चेतना का विकास होता है, जिससे वे साहित्य मे जीवन के सच्चे यर्थाथ का अकन करते हैं। चद्रबली सिह के अनुसार 'सेवासदन' पर मध्यवर्गीय सुधारवाद की छाप है। इसमे वेश्याओ की समस्याओ को मध्यवर्गीय दृष्टिकोण से देखा गया है। शहर मे मध्यवर्गीय युवक वेश्याओ के कारण किस तरह बिगड जाते हैं और किस तरह उन्हे बचाया जा सकता है, 'सेवासदन' की समस्या का एक पहलू यह है। वेश्यावृत्ति के क्या सामाजिक – आर्थिक पहलू है, इसका कोई सकेत प्रेमचद मे नही है।

चद्रबली सिह के अनुसार गॉधी जी के असहयोग आदोलन का प्रेमचद पर गहरा असर पडा है। वह अपने जीवन मे अधिकाश वर्षो तक गॉधीवादी आदर्शवाद और उसके सत्य ओर अहिसा के सिद्धान्तो से चिपके रहे। उनके उपन्यासो और कहानियो मे जिस यर्थाथ जीवन का वर्णन होता है, 'उस पर सत्य और अहिसा को हमेशा समस्याओ के समाधान के रूप मे यात्रिक ढग से आरोपित किया जाता हं। जबकि वह यर्थाथ समस्याओ के समाधान की कोई दूसरी दिशा बतलाता है। (उपर्युक्त, पृ० 132)

यर्थाथ और आदर्श की यह असगति 'गोदान' तक मे मिलती है। गॉधी जी और काग्रेस के नेतृत्व मे चलाये गये आदोलन की असगतियॉ 'प्रमाश्रम' मे देखी जा सकती है। यह जरूर है कि 'सेवासदन' की मध्यवर्गीय समस्या को छाडकर राष्ट्रीय समस्या उपन्यास के केन्द्र मे आ जाती है। इस उपन्यास मे प्रेमचद ने सामती व्यवस्था द्वारा किसानो पर किये गये अत्याचारो का सजीव चित्रण किया, उनके विद्रोह को प्रस्तुत किया पर उपन्यास का अत आदर्शवाद मे होता है। सत्य और अहिसा का इतना गहरा प्रभाव है कि सारी समस्याओ का समाधान प्रेमशकर के सुधारवादी दृष्टिकोण मे मिलता ह। श्री सिह के अनुसार उनके चरित्रो के अतिरिक्त स्वय उन पर अहिसावाद का गहरा प्रभाव उनके अनेक लेखो मे दिखता हे। 'जागरण' के एक सम्पादकीय मे (5 सितम्बर 1932 ई०) कहते है कि 'हमारे देश की सस्कृति कर्तत्य प्रधान, धर्म प्रधान, परमार्थ प्रधान, अहिसा प्रधान, व्रत और नियम प्रधान सस्कृति है'। इसके ठीक अगले अक मे वे यह दिखलाते हे कि प्राचीन भारत की समाज व्यवस्था सघर्ष पर नही वरन् सहयोग पर आधारित थी। इस पर चंद्रबली सिह टिप्पणी करते हे कि इन्ही प्रभावो के कारण प्रेमचद गॉधी जी के सरक्षण सिद्धात के आगे नही बढ़ सके। अत मे इन भावो का इन्द्रजाल हटा, जिसके लिए प्रेमचंद को नए अनुभवो से गुजरना पड़ा और इस प्रकार 'प्रेमचद की कल्पना द्वारा निर्मित वर्ग सहयोग और अहिसा का स्वप्न अंत मे

टूटा ही (उपर्युक्त, पृ० 134)। गॉधी जी का हर तरह से समर्थन करने वाले प्रेमचद ने 'अगस्त 1933 ई०' के 'जागरण' के सम्पादकीय मे लिखा – 'जिस दिन देश मे ऐसे आदमी बडी सख्या मे निकल आयेगे, जो अपना सर्वस्व स्वराज्य के लिए त्यागने को तैयार हो जाए, उस दिन तो आप ही स्वराज्य हो जायेगा। लेकिन ऐसा समय कभी आएगा, इसमे सदेह है। ऐसी दशा मे सत्याग्रही नीति से हमे अपने उद्देश्य प्राप्ति की आशा नही।' यही नही 16 अप्रेल 1934 के 'जागरण' के सपादकीय मे यहॉ तक लिखा

'अब यह मान लेना पडेगा कि जिस चीज को महात्मा जी भीतर की आवाज कहते हे, जिसका मतलब यह होता है कि उसके गलत होने की सभावना नही, वह बहुत भरोसे की चीज नही है, क्योकि उसने एक से ज्यादा अवसरो पर गलती की है।'

चद्रबली सिह कहते है कि प्रेमचद का यह स्वप्न इसलिए टूटा कि उन्होने हमारे साम्राज्य विरोधी आदोलन को हिदुस्तान के किसानो, मजदूरा और आम जनता के दृष्टिकोण से देखा, विशेषत किसानो के दृष्टिकोण से। प्रेमचद बहुत पहले से हमारे देश मे सामतवादी व्यवस्था और साम्राज्यवाद के गठबधन को समझते थे। प्रेमचद की साम्राज्यवाद विरोधी ओर सामतवाद विरोधी परपरा ही उनकी सच्ची विरासत है। श्री सिह का यह कथन उल्लेखनीय हे –

'प्रेमचद ने स्वय अपनी ऑखो से किसानो की कविताविहीन दिनचर्या को देखा था। शुरु शुरु मे उनका मानवतावादी ह्रदय कुछ ऐसा समाधान ढूँढ निकालना चाहता था जिससे शोषको और शोषितो दोनो का काम बन जाए और दोनो म किसी की हानि न हो। कितु जीवन और समाज के प्रति उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण उनम एक ऊँचे स्तर की मानवता को जन्म दे सका, वह मानवता जो शोषितो के लिए वेदना ग भरी थी और शोषको के लिए घृणा से।' (उपर्युक्त, पृ० 136)।

'हॅस' (दिसम्बर 33) मे उन्होने जीवन मे घृणा के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लिखा 'जीवन मे जब घृणा का इतना महत्त्व है, तो साहित्य कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता हे, जो जीवन का ही प्रतिबिब है।' सस्कृति के लिए कहा कि जब जनता मूर्च्छित थी, उस पर धर्म और सस्कृति का मोह छाया हुआ था। ज्यों ज्यो उसकी चेतना जाग्रत होती जाती हे, वह देखने लगी है कि यह सस्कृति केवल लूटेरों की सस्कृति थी, जो राजा बनकर, विद्वान बनकर, जगतसेठ बनकर जनता को लूटती थी। सन् 32 मे 'जागरण' के संपादकीय

मे प्राचीन सस्कृति का गौरवगान वे एक अधराष्ट्रीयतावादी की तरह से करते हैं और सन् 34 मे वह स्वय अपनी कही हुई बात को काट रहे हैं। इस परिवर्तन को प्रो० सिह विशेष रूप से रेखाकित करते है और कहते है कि प्रेमचद वर्ग सहयोग की भूमि को छोडकर वर्ग सघर्ष पर चले आये। चद्रबली सिह प्रेमचद के विचारो के विकास को दिखाते हुए कहते है 'प्रेमचद के साहित्य की साम्राज्यवाद विरोधी, सामतवाद विरोधी चेतना की परिधि मे अनेक अन्य समस्याओ के भी समाधान आ गए है।' (उपर्युक्त, पृ० 138)। साम्प्रदायिकता पर चोट करने के लिए प्रेमचद पुनरूत्थानवाद और सस्कृति पर प्रहार करते है 'साम्प्रदायिकता सदैव सस्कृति की दुहाई दिया करती है। उसे अपने असली रूप मे निकलते लज्जा आती हे, इसलिए वह गधे की भॉति खोल ओढकर आती है।' प्रेमचद के निर्मम आकम्रण के कारण ही कभी उन्हे ब्राह्मण विरोधी कहा गया। ज्योति प्रसाद 'निर्मल' ने उन पर यह कहते हुए प्रहार किया कि प्रेमचद की कहानियो मे ब्राह्मणो को काले रग म चित्रित किया गया है क्योकि उनमे पुजारियो ओर पुरोहितो पर आक्रमण किया गया है। प्रमचद ने इसका उत्तर अत्यत तीखे स्वर मे दिया—'हिन्दू जाति का सबसे घृणित कोढ, सबसे लज्जाजनक कलक, यही टकेपथी दल है, जो एक विशाल जोक की भॉति उसका खून चूस रहा हैं। हमारी राष्ट्रीयता के मार्ग मे यही सबसे बडी बाधा है। ('जागरण', 8 जनवरी 1934)।

श्री सिह के अनुसार इस प्रकार प्रेमचद द्वारा सम्प्रदायवाद के विरूद्ध यह सघर्ष उनके साम्राज्यविरोधी, सामतविरोधी सघर्ष का ही एक अग था और उसका भी उनकी परम्परा मे महत्वपूर्ण स्थान है। कहा जाता है कि प्रेमचद की सबसे बडी क्रातिकारी देन यह थी कि उन्होने हिदी साहित्य मे उन व्यक्तियो का जीवन प्रस्तुत किया जो साहित्य की परिधि के बाहर थे। लेकिन श्री सिह के अनुसार प्रेमचद का इससे भी बडा काम यह हे कि 'उन्होने हमे दिखलाया कि वे किसान जो आज सामतवादी शोषण के शिकार होने के कारण अधविश्वासो, अज्ञान, द्वेष, फूट इत्यादि के फदे मे बुरी तरह फॅसे हैं, हमारी घृणा के नही वरन् सहानुभूति और सम्मान के पात्र है। उनमे वह निष्ठा, उत्सर्ग की भावना, सयम, सतोष, उद्यम से प्रेम, सामूहिकता की प्रवृत्ति, धैर्य इत्यादि गुण भी हैं जो हमे उनके शोषको मे नही मिलते।' (उपर्युक्त, पृ० 140)। प्रेमचद का यह रूख उनको हिंदी साहित्य मे जनवादी और मानवतावादी परपरा का एक महान उन्नायक बना देता है। उन्होने साहित्य मे जिस हद तक जनवाद की जडे गहरी जमा दी उस हद तक बहुत कम रचनाकार पहुँच पाये हैं।

चद्रबली सिह का यह प्रेमचद विवेचन तथ्यो के आधार पर हुआ है जो मार्क्सवादी परम्परा का है। उन्होने प्रेमचद के लेखो और सपादकीय मे व्यक्त विचारो के आधार पर उनकी रचनाओ का विश्लेषण किया है और उनके वैचारिक विकास और गाधीवाद से मोहभग को सुदर ढग से दिखाया है।

नामवर सिंह

डॉ० नामवर सिह ने 29 जुलाई 94 को गोरखपुर विश्वविद्यालय मे प्रेमचद जयन्ती समारोह का उद्घाटन करते हुए 'प्रेमचद सादगी का सौन्दर्य शास्त्र' शीर्षक से एक व्याखान दिया था। इसके पूर्व 15 अप्रैल 1990 को विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे 'प्रेमचद और भारतीय उपन्यास' शीर्षक व्याखान दिया जो कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। ये दोनो व्याखान 'कर्मभूमि' (सम्पादक—सदानद शास्त्री), प्रेमचद साहित्य सस्थान, गोरखपुर की स्मारिका मे प्रकाशित हे इसके अलावे 'प्रेमचद अन्तर्विरोध और स्वाधीनता सग्राम' शीर्षक व्याखान और तुलसीदास के बाद हिन्दी का सबसे बडा लेखक' शीर्षक इटरव्यू जिसे राजेन्द्र माथुर ने लिया था, 'प्रेमचद और प्रगतिशील लेखन' (सम्पादक विजय गुप्त, चित्रलेखा प्रकाशन इलाहाबाद– 1980) मे सग्रहीत है प्रस्तुत अध्ययन इन्ही व्याखानो पर आधारित है।

प्रेमचद उन साहित्यकारो मे हैं जिन्होने साहित्य को मात्र आनन्द की वस्तु मानने से इनकार कर दिया और उसे ठोस सामाजिक—राजनीतिक सरोकारो से जोडा। प्रेमचद ने साहित्य का आधार जीवन माना। प्रेमचद ने पहली बार साहित्य के निर्माण मे सामाजिक जीवन की भूमिका का और जीवन के निर्माण मे साहित्य की भूमिका का महत्व प्रतिपादित किया। प्रेमचद के पूर्व 'कहानी कहानी है, जीवन जीवन, दोनो परस्पर विरोधी वस्तुऍ समझी जाती थी'। प्रेमचद का सौन्दर्यशास्त्र उनकी कहानियो और उपन्यासो की मार्मिक अतर्वस्तु और रचना—सगठन से नि सृत होता है। उनकी धारणा है कि मनुष्य मे जो कुछ सुदर, विशाल, आदरणीय और आनन्दप्रद है, साहित्य उसी की मूर्ति है। उसकी गोद मे निराश्रितो, पतितो और अनादृतो को आश्रय मिलना चाहिए। प्रेमचद का महत्व जटिलता की जगह सरलता को तरजीह देने और सादगी का सौन्दर्यशास्त्र रचने मे है। अपनी रचनाओं मे जनसाधारण को प्रतिष्ठित कर प्रेमचद ने सौन्दर्य की परिभाषा बदल दी। प्रेमचंद के अनुसार

दलितो, पीडितो और वचितो की वकालत करना साहित्य का फर्ज है। डॉ० नामवर सिह का यह कथन बिल्कुल सही है कि इस तरह की सरलता पक्षधरता से आती है। इस सादगी के सोन्दर्यशास्त्र के बल पर ही प्रेमचद परवर्ती काल मे भी चर्चा क विषय बने रहते है।

प्रेमचद ने मनुष्य को सभी वस्तुओ और विचारो का नियामक माना है। उन्होने जीवन और साहित्य, विचारधारा और साहित्य, राजनीति और समाज के सदर्भ मे परम्परित अवधारणाओ का विरोध किया। धार्मिक लोगो के मनोगत आवरण को उघाडा। अमूर्त्त और रहस्यवादी लेखन के विरूद्ध जिस यथार्थवादी लेखन की नीव डाली, उसे पाठको का व्यापक समर्थन मिला। इस वैचारिक सघर्ष मे जनता ने खुलकर प्रेमचद का साथ दिया। इस तथ्य से प्रेमचद साहित्य के जनवादी चरित्र की पुष्टि होती है। यही कारण है कि प्रेमचद की रचनाएँ इस सच्चाई की पेशकश करती है कि मानवता के विकास मे श्रम का महत्व सर्वोपरि है। श्रम को हेय दृष्टि से देखने वाली सामती विचारधारा पर व निरन्तर प्रहार करते है।

प्रेमचद साहित्य और सुदरता की कसौटी बदलना चाहते है। उनके अनुसार साहित्य का उदेश्य हमारे भावो को उत्तेजित कर झनझनाहट पैदा करना नही, उनका परिष्करण करना है। मनुष्य का जीवन केवल स्त्री–पुरूष की विलासिता तक सीमित नही है। श्रृगार और भोग–विलास मनुष्य के जीवन का मात्र एक अश है। आर श्रृगारिक साहित्य किसी जाति के लिए गर्व और गोरव की वस्तु नही। इसलिए सामतो की मासल वृत्तियो का सहलाने वाले साहित्य का प्रेमचद विरोध करते है। वे जीवन के सघर्षो मे सौन्दर्य का दर्शन करते है। इस तरह से सामती सौन्दर्य–दृष्टि के विरूद्ध प्रेमचद ने सादगी के सौन्दर्यशास्त्र की नीव रखी जो मनुष्य मे सच्चे सकल्प और सघर्ष की प्रेरणा उत्पन्न करता है। प्रेमचद का कथन है 'जिस साहित्य मे हमारे जीवन की समस्याएँ न हो हमारी आत्मा को स्पर्श करन की शक्ति न हो, जो केवल जिन्सी भावो मे गुदगुदी पैदा करने के लिए या भाषा–चातुरी दिखाने के लिए रचा गया हो, वह निर्जीव साहित्य है। साहित्य मे हमारी आत्मा को जगाने की, मानवता को सचेत करने की शक्ति होनी चाहिए। वह साहित्य जो हमे विलासिता के नशे मे डुबो दे, जो हमे वैराग्य, पस्तहिम्मती, निराशावाद की ओर ले जाए, जिसके नजदीक ससार दु:ख घर है– उससे निकल भागने मे ही कल्याण है।'

'प्रेमचद 'सादगी का सौन्दर्यशास्त्र' विषय पर बोलते हुए डॉ०नामवर सिह ने कहा कि प्रेमचद की कथा कृतियो की कथासार बताकरके आमतौर पर समीक्षाए की जाती रही है प्रेमचद के कथा–साहित्य का जो पाठ है, लोगो का ख्याल है कि उसमे ऐसी बारीकियाँ नही

है कि जहॉ हर शब्द और वाक्य को ध्यान से देखा जाय। प्रगतिशील लेखक सघ के पहले अधिवेशन मे प्रेमचद द्वारा कहा गया एक वाक्य प्रेमचद के साहित्य को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रेमचद का वाक्य था जो उर्दू लिए है कि हमे सुन्दरता का मेयार बदलना होगा। सुन्दरता की परिभाषा बदलनी होगी। मेयार सुन्दरता की धारणा या प्रतिमान है जिसे वे बदलना चाहते हे उदाहरण देकरके प्रेमचद ने समझाया हे कि आसमान मे घिर आये बादल मे एक किसान को वही नही दिखाई पडता जो शहर मे रहने वाले लोगो को दिखाई पडता है। एक की नजर मे जो सुन्दरता हो जरूरी नही कि दूसरे की नजर मे सुन्दर ही हो। सुन्दरता की यह समाज सापेक्ष दृष्टि समाज मे किसी आदमी की हैसियत से निर्धारित होती है। अपने कहानी–सग्रह मानसरोवर भाग एक की भूमिका मे प्रेमचद ने कहा कि यहॉ सरलता पैदा कीजिए, यही कमाल है। यहॉ सरलता पर जोर है, और वहॉ कहते है कि सुन्दरता का मानदण्ड बदलना चाहिए। इन दोनो मे कोई रिस्ता होना चाहिए।

कल्पना और सौन्दर्य के बारे मे प्रेमचद का यह कथन ध्यान मे रखना चाहिए कि हमारे साहित्यकार कल्पना की सृष्टि खडीकर उसमे मनमाने तिलिस्म बॉधा करते थे। कही फसानये आजाद की दास्तान थी, कही बोस्ताने ख्याल की आर कही चन्द्रकाता सतति की। इन आख्यानो का उद्देश्य केवल मनोरजन था और हमारे अद्‌भुत रस–प्रेम की तृप्ति। साहित्य का जीवन से कोई लगाव है यह उस समय कल्पनातीत था। प्रेमचद ने साहित्य के केन्द्र मे सामाजिक जीवन को रखा और उसे सघर्षो से जोडा। सामाजिक कुरीतियो और गैर बराबरी पर जमकर प्रहार किया।

इसके लिए उन्होंने वक्रोक्ति की जगह 'उक्ति' तथा स्वभावोक्ति का महत्व प्रतिपादित किया, जटिलता के स्थान पर सरलता को तरजीह दी। सामन्ती चरित्रो की अपेक्षा साधारण जन को समुचित प्रतिष्ठा दी। उनके इस प्रयास ने 'सौन्दर्य' की परिभाषा बदल दी। परम्परित सौन्दर्यबोध से विचलन की यह प्रवृति निराला कीी 'भिक्षुक', 'वह तोडती पत्थर', 'कुकुरमुत्ता', 'सरोजस्मृति', और यहॉ तक कि 'राम की शक्ति पूजा' मे देखी जा सकती है। प्रेमचद ने समाज मे व्याप्त गहन अधकार के विरूद्ध सघर्ष करते हुए प्रकाश की पक्षधरता की है। वे लिखते है कि जो दलित पीडित ओर वचित है उसकी हिमायतत और वकालत करना साहित्य का फर्ज है।

डॉ० नामवर सिंह के अनुसार प्रेमचद की श्रेष्ठ कहानियॉ कही न कही दलित या स्त्री से जुड़ी हे उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी सामान्यतः 'कफन' मानी जाती है और वह दलितो

की कहानी है। प्रेमचद की 'सद्गति', 'ठाकुर का कुऑं', 'दूध का दाम' ये तीनो उसी से जुडी हे उसके बाद ऐसी कहानियॉ हैं जो पिछडे वर्गो के जीवन पर है। उनके सबसे अच्छे दो उपन्यास– एक 'रगभूमि' जिसका नायक चमार जाति का सूरदास है। 'रगभूमि' का सूरदास मुट्ठी भर डेढ पसली का आदमी इतनी बडी ताकत के खिलाफ उठकर खडा होता हे और शहीद हो जाता है। 'गोदान' के होरी महतो पिछडी जाति हे और इसलिए प्रेमचद की चाहे कहानियॉ हो या उपन्यास अपनी व्यापक दृष्टि और सवेदनशीलता के कारण प्रेमचद उन ऊँचाइयो को छूते है जो दूसरे लेखको के लिए कठिन था। प्रेमचद ने करूणा से धो–धोकर इन उपेक्षित पात्रो को मनुष्य का दर्जा दिया।

प्रेमचद ने जो सौन्दर्यशास्त्र रचा है उसमे 'कर्मभूमि' की सुखदा का असन्तोष, 'आहुति' की शीलवती का असन्तोष, 'गोदान' के गोबर का असन्तोष, पछाड खाती धनिया का असन्तोष, 'कफन' के धीसू माधव का असन्तोष, 'पूस की रात' की मुन्नी का असन्तोष के व्याज से व्यक्त जीवन की बेहतरी की आकाक्षा की बडी भूमिका है। जिस यथार्थवादी लेखन की नीव प्रेमचद ने रखी उस सिलसिले मे पाठक वर्ग का व्यापक समर्थन मिला। जनता ने प्रेमचद के सघर्ष मे साथ दिया अन्यथा देवकी नदन खत्री आंर गोपालराम गहमरी के व्यापक प्रभाव को काटकर यथार्थवाद का झडा गाडना सम्भव न हुआ होता। जैनेन्द्र तथा अज्ञेय जसी दुर्धर्ष आत्मनिष्ठ प्रतिभाओ के आगमन के बावजूद अपनी ऊँचाई पर स्थिर रह जाना तो उनके जनवादी चरित्र को रेखाकित करता है। प्रेमचद सत्य को खोजते हुए धार्मिक ग्रन्थो मे मुँह नही घुसेडते। उनके विचार है– हम अब भी धर्म और नीति का दामन पकडकर समानता के ऊँचे लक्ष्य पर पहुँचना चाहे तो, तो विफलता ही मिलेगी। उनका मत हे कि समता के बिना राष्ट्रीयता की कल्पना नही की जा सकती। और सच यह है कि समाज मे समता की स्थापना अहिसा–प्रेम और करूणा से नही बल्कि जन–सघर्षो के माध्यम से सभव है।

डॉ० नामवर सिह के अनुसार– प्रेमचद ने अपनी कहानियो मे दलितो और स्त्रियो के अलावा पशुओ को भी अपनी सहानुभूति दी है। मनुष्य द्वारा सताया हुआ मनुष्य अन्तत· कुत्ते का साहचर्य पाता है। इस जीवन–सग्राम मे मनुष्य और कुत्त का आत्मीय सबध जीवन की ठोस सच्चाईयो से पैदा हुआ है। 'पूस की रात' मे सारी कहानी ठण्ड मे ठिठुरते हुए एक आदमी और उसके पालतू कुत्ते की है। किस तरह वे आग जलाते हैं, खेलते हैं, दौड़ते हैं प्रेमचद इसका सर्जनात्मक अकन करते हें पूरा प्रसंग मानो प्रेमचद ने कविता लिख दी हो।

लगभग यही स्थिति 'दूध का दाम' (1934) मे है। मगल, जिसका जब कोई सहारा नही रहता तो आखिर मे टामी का सहारा मिलता है। दलित लडका या पुरूष या कोई हो, एक स्त्री और फिर एक पशु ये तीनो जहॉ होते है, प्रेमचद अपनी कहानी मे या किसी कथाकृति मे एक नई जान डाल देते हे यह हिन्दी कथा–साहित्य का जनतत्रीकरण है जहॉ सताया हुआ मनुष्य और कुत्ता पूरी आत्मीयता और निश्छलता के साथ एक ावभूमि पर उपस्थित हे प्रेमचद का यही कौशल है कि वे जन्दगी के आस–पास से समस्याए चुनते हैं जो बहुत महत्वपूर्ण नही समझी जाती। आरम्भिक दिनो से उनकी कहानियो मे ये लाल धागा दिखाई पडता है। क्रमश इन विषयो को लेकर लोगो ने सिद्धान्त बनाये होगे। तब इस ओर लोगो का ध्यान गया।

डॉ० नामवर सिह ने आगे कहा कि 'सद्‌गति' और 'ठाकुर का कुऑ' दोनो कहानियो को एक साथ पढा जाना चाहिए वे परस्पर पूरक हैं। 'सद्‌गति' (1931 ई०) मे पुरोहित वर्ग ओर दलितो के बीच रिस्ते का मार्मिक अकन है। पुरोहित वर्ग कितनी अमानवीय क्रूरता के साथ दलितो का उत्पीडन और शोषण करता है, यह कहानी दिखाती है। धर्म का एकदम विकृत रूप पुरोहित वर्ग मे दिखता है। ऐसे ही धर्म के ठेकेदारो के लिए तुलसी दास ने लिखा है 'बेचहि बेद धरम दुहि लेही'। इसका ठीक दूसरा पहलू 'ठाकुर का कुऑ' (1932 ई०) मे चित्रित हुआ है। ठाकुर लाठी और आतक के बल पर दलितो का दमन करता है। ये दोनो पहलू इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि प्रेमचद दलितो पर होने वाले सामाजिक–आर्थिक या धार्मिक अत्याचार को बडी शिद्दत से उजागर करते हे इस प्रकार की कहानियो का लेखन–काल भी देखा जाना चाहिए। इससे यह पता चलता है कि कैसे प्रेमचद का लेखन उत्तरोत्तर निखरता गया। इसी तरह की सन् 1929 की एक कहानी है 'गुल्ली–डडा'। इसमे सादगी का सौन्दर्यशास्त्र प्रकट हुआ है। कला निष्कर्षो मे नही, ब्यौरो और वर्णन की बारीकियो मे हुआ करती है। 'गुल्ली–डडा' की कला उस ब्यौरे मे है जहॉ पहली बार वे बचपन की स्मृतियो को दुहराते हे उसमे प्रेमचद धीरे से कहते है कि क्यो गुल्ली–डडा का खेल और बचपन की याद मुझे अच्छी लगती हे वे याद करते है खेल मे पढ़ना–पढाना और लडाई–झगडे, वह सरल स्वभाव जिसमे छूत–अछूत, अमीर–गरीब का भेद लुप्त था। जिसमे अमीराना चोंचलो के प्रदर्शन और अभिमान की गुजाइश न थी।

उस पूरे खेल का वर्णन प्रेमचद कितना रस लेकर करते हैं यद्यपि वह खेल नहीं था, खेल का भुलावा था। यह कहानी इसलिए महत्वपूर्ण है कि प्रेमचद ने दमन, शोषण और

अत्याचार का जिक्र कही नही किया है। जैसा उनकी बहुत सारी कहानियो मे होता है पर जो सकेत से कहा है वह बहुत अर्थगर्भी है।

'ठाकुर का कुँआ' कहानी मे पीने के पानी की समस्या को उठाया है। यह वही समय है जब डॉ०अम्बेडकर पानी के सवाल को लेकर सघर्ष कर रहे थे। यही जीवन की विडम्बना है। प्रेमचद ने निहायत जरूरी चीज पानी को इस कहानी का विषय बनाया। मनुष्य–मनुष्य का इतनी दूर तक दमन कर सकता है कि साधारण सी चीज पानी जो सहज रूप मे उपलब्ध होना चाहिए, वही पानी नही मिल रहा हे जबकि कुएँ भरे पडे हे यहॉ प्रेमचद एक साथ तीन वर्णो को पूरी चर्चा मे ले आते हे जब गगी ने कहा कि मैं पानी लाने जा रही हूँ, तो जोखू कहता है बाभन देवता आर्शीवाद देगे, ठाकुर लाठी मारेगे, साहू जी एक के पॉच लेगे। गरीबो का दर्द कौन समझता है। यहॉ प्रेमचद ने तीनो वर्णों की असलियत उजागर करते है– एक आर्शीवाद देगे, पानी न देग, एक लाठी देगे, पानी न देगे, एक एक के पॉच लेगे फिर भी पानी न देगे। आगे चलकर इस पूरी कहानी मे प्रेमचद कही कोई ऐसी बात नही करते।

'ठाकुर का कुऑ' मे प्रेमचद कहते है– "गगी का विद्राह दिल रिवाजी पाबन्दियो और मजबूरियो पर चोटे करने लगा।" "हम क्यो नीच है और ये लाग क्यो ऊँच हैं? इसलिए कि ये लोग गले मे तागा डाल लेते है। चोरी ये करे, जाल फरेबी ये करे, झूठे मुकद्मे ये करे, अभी इस ठाकुर ने उस दिन बेचारे गडेरिये की एक भेड चुरा ली और बाद को मार कर खा गया। इन्ही पडित जी के घर मे तो बारहो मास जुआ होता ह और यही साहू जी घी मे तेल मिलाकर बेचते है किस बात मे हमसे ऊँचे हैं? प्रेमचद एक नयी नैतिकता का सवाल उठाते हे– कौन नीच है कौन ऊँच। यदि मनुष्य कर्म से ऊँच–नीच होता है तो कर्मो के आधार पर नियम होना चाहिए न कि जन्म के आधार पर। गगी सिर्फ सवाल पूछती है किस बात मे हमसे ऊँच है? कौन सा कर्म इनका है जिनसे ये ऊँचे हे और कौन सा कर्म हमारा है जिससे हम नीच है? फिर पूरी कहानी केवल पानी के बारे मे नही रह जाती। बल्कि निहितार्थ यह है कि लोटे का पानी जो बदबू दे रहा है उससे ज्यादा गदी, बदबू–भरी ये समाज व्यवस्था है जो सडी हुई है। जो लोग शुद्ध जल पीने वाले हैं और जो व्यवस्था बनाते है उनकी व्यवस्था ज्यादे बदबूदार है। जो बदबूदार पानी पीने वाले लोग हैं स्वय दलित वर्ग के वे कैसे चरित्र वाले है यह विरोधाभास प्रेमचद दिखाते हैं। कुएँ पर जब गंगी पहुँची तो दो औरते बात कर रही थी जो ऊँचे घरो की थीं। वे कह रही थीं रात को

पतिदेव ताजा पानी लाने का हुकुम दे देते हैं। अपने वो बैठे आराम कर रहे हैं और गुलछर्रे उडा रहे है, हमे भेज दिया कि तुम ले आओ ताजा पानी। जैसे लौडियॉ हैं हम, जो औरते हैं उनमे से ही एक कहती है लौडियॉ (दासी) नही हो तो क्या हो तुम। रोटी कपडा नही पाती, दस पॉच रूपये भी छीन झपट कर ले ही लेती हो और लौडियॉ कैसी होती हैं। अर्थात् वह व्यवस्था जो समाज के एक तबके को पानी नही देती उसी व्यवस्था के दावेदार अपने घर की स्त्रियो को दासी समझते है। पुरूष सत्तात्मक समाज औरत अर्थात आधी दुनिया को गुलाम बनाये हुए है। यह वही है जो अपने समाज के एक बहुत बडे हिस्से (दलितो) को गुलाम बनाये हुए हे। इस कहानी मे प्रेमचद एक उपमा देते हैं। अचानक जैसे ही पानी का घडा रस्से मे बॉधकर उसमे डुबोया, ठाकुर का दरवाजा खुला– और शेर का मुँह इससे अधिक भयानक नही होगा। इस आतक को रात का सन्नाटा अच्छी तरह व्यक्त करता है ओर गगी डरकर वहॉ से लौटती है तो वही बदबूदार पानी पीते हुए जोखू को देखती है। यह मूक विद्रोह पाठक के मन मे विस्फोट पैदा करता है। प्रेमचद उसका आभास कहानी मे एक जगह कराते है। रस्सी टूटकर जब घडा धडाम से पानी मे गिरा– कई क्षण तक उसमे हिलकोरो की आवाज सुनाई दी। इससे ज्यादा लेखक प्रेमचद कोई टिप्पणी नही करते। इसमे कोई निष्कर्ष या उपदेश नही। सिर्फ रस्सी हाथ से छूटी, धडाम से घडा गिरा और घडा गिरने के बाद पानी मे हिलकोरो की आवाजे–बस। यह है सादगी का सौन्दर्यशास्त्र। इस पूरी कहानी मे प्रेमचद कई सकेत देते है।

डॉ० नामवर सिह के शब्दो मे प्रेमचद के साथ बहुत बडा है। प्रेमचद का जो कैनन तैयार किया गया है– सेलेक्शन किया गया है उसमे 'बडे की घर बेटी' जैसी कहानियॉ रखी गई हे। जहॉ मनुष्य द्वारा मनुष्य के प्रति किया गया अन्याय इसी समाज द्वारा इसी समाज मे रहने वाले लोगो के प्रति किया गया अन्याय है ऐसी कहानियो को बाहर रखा गया है। उस अन्याय की व्यथा–पीडा का ऐसा चित्रण जो हमे इस हद तक झकझोर दे कि हम स्वय अपनी उस व्यवस्था जिसको अनजाने सस्कारवश ढोते चले जा रहे है, के खिलाफ हो जॉय–यह प्रेमचद का सर्जनात्मक कौशल है। प्रेमचद की कहानियो मे जहॉ अर्थगर्म प्रसग है उनको केवल रेखाकित कर देने की जरूरत है। वे अपनी व्याख्या करने मे स्वय समर्थ हैं, यही प्रेमचद की ताकत है। आलोचना मे उन स्थलों को केवल दिखला दिया जाय जहॉ कहानी का प्राण निवास करता है। आलोचना जितनी संक्षिप्त होगी उतनी सार्थक होगी।

प्रेमचद की 'भाषा' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ० नामवर सिह ने कहा है "प्रेमचद ने भाषा व सस्कृति के सौन्दर्यपरक अभिजात्य की घेरे बदी को तोडने के प्रयास अपनी उन रचनाओ में भी किया है जिनमे पात्रो का अभिषेक आदर्शीकरण से किया है और जहॉ उनका अन्तर्विरोध प्रत्यक्ष है। प्रेमचद की भाषा मे भारत की जनता बोलती, हॅसती–रोती, खीजती, आगाह करती, कराहती, आतक और पीडा से चीखती सुनाई पडती हे। शुद्ध सरल, खरी, सजीव और लचीली भाषा जिसका सृजन मानो जानबूझकर सोद्देश्य ओर महान कला के लिए किया गया है। भाषा का यह जनतत्रीकरण उनके सृजनशील सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण का प्रतिफल है।"

प्रेमचद सुन्दरता की कसौटी बदलना चाहते हैं। यह वही कालखण्ड है जब इटली मे अन्तोनियो ग्राम्यी, भाववादी क्रोचे की सौन्दर्य दृष्टि तथा अभिव्यजना प्रणाली का प्रतिवाद कर रहे थे। प्रेमचद का कहना था कि– हमे सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी यह कसोटी अमीरी और विलासिता के ढग की थी। हमारा कलाकार अमीरो का पल्ला पकडे रहना चाहता था, उन्ही की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलम्बित था और उन्ही के सुख–दुख, आशा–निराशा प्रतियोगिता और प्रतिद्वद्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अन्त पुर और बगलो की ओर उठती थी। झोपडी और खण्डहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे। उन्हे वह मनुष्यता की परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी चर्चा करता था तो इनका मजाक उडाने के लिए। राजाओ ओर सामतो की मासल वृत्तियो सहलाने वाले सौन्दर्यबोध के मानदण्ड का समग्र प्रत्याख्यान प्रेमचद का चरम लक्ष्य था।

डॉ० नामवर सिह के अनुसार "दुनिया से किनाराकशी प्रेमचद के सौन्दर्यशास्त्र के सर्वथा प्रतिकूल है। वे जीवन–सग्राम मे सौन्दर्य का दर्शन करते है, खेत की मेड पर बच्चे को सुलाकर खेत मे पसीना बहाती रूप रहित मजदूरना मे सौन्दर्य देख पाते हैं। अभिप्राय यह कि अभिजात सौन्दर्य–दृष्टि के विपरीत प्रेमचद ने नये सौन्दर्यशास्त्र की नीव रखी तथा रगे होठो और कपोलो की आड मे छिपे रूप–गर्व और निष्ठुरता की पहचान की। और मुरझाए हुए होठो एव कुम्हलाये हुए गालो के ऑसुओ मे त्याग, श्रृद्धा और कष्ट–सहिष्णुता की महिभाव मर्म का उद्घाटन किया। प्रेमचद के सादगी का सौन्दर्यशास्त्र की पृष्ठभूमि यह है। हमारी कला यौवन के प्रेम मे पागल है और यह नही जानती कि जवानी छाती पर हाथ रखकर कविता पढ़ने, नायिका की निष्ठुरता का रोना रोने या रूपगर्व और चोचलों का सिर धुनने मे नही है। जवानी नाम है आदर्शवाद का, हिम्मत का, कठिनाई से मिलने की इच्छा,

आत्म त्याग का। प्रेमचद सौन्दर्य की व्यापकता की बात करते हैं जब वह सकुचित परिधि को तोडकर बाहर आ जायेगा। वह किसी विशेष श्रेणी तक ही सीमित न होगा, उसकी उडान के लिए केवल बाग की चारदीवारी न होगी, वह वायुमण्डल होगा, जो सारे भूमण्डल को घेरे हुए है। जब कुरूचि हमारे लिए सहन न होगी, तब हम उसकी जड खोदने के लिए कमर कस कर तैयार हो जायेगे। हम ऐसी व्यवस्था को सहन न कर सकेगे कि हजारो आदमी कुछ अत्याचारियो की गुलामी करे, तभी हम केवल कागज के पृष्ठो पर सृष्टि करके के ही सतुष्ट न हो जायेगे, किन्तु उस विधान की सृष्टि करेगे, जो सौन्दर्य, सुरूचि, आत्म–सम्मान और मनुष्यता का विरोधी न हो।"

प्रेमचद ने इसके लिए यह आवश्यक समझा कि प्रभुत्वशाली सस्कृति सम्बन्धी दूसरी मान्यताओ पर भी आक्रमण किया जाय। इस सिलसिले मे उन्होने भारतीय समाज की सरचना के सन्दर्भ मे राष्ट्रीयता को नये सिरे से परिभाषित किया। राष्ट्रीयता की पहली शर्त, वर्ण व्यवस्था, ऊँचनीच के भेद और धार्मिक पाखण्ड की जड खोदना है। सामन्तवाद की सबसे मजबूत नस पकडते हुए वे आगे कहते है कि पुरोहितो के प्रभुत्व के दिन अब बहुत थोडे रह गये हे, समाज और राष्ट्र की भलाई उनकी समाप्ति मे है। यह भेदभाव, यह एकागी प्रभुत्व, यह खून चूसने की प्रवृत्ति मिटाई जाए। अपन इस अभियान मे प्रेमचद जनता के आदमी बनते है, उस भाषा मे कथा रचते है जो जनभाषा है, वैसी कला का पक्ष ग्रहण करते है जो जनकला है। अपनी इसी सोच को मानवीय धरातल के वृहत्तर फलक के मद्देनजर कहते है–'जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा तब तक मानव समाज का उद्धार नही हो सकता।'

डॉ० सिह ने व्याखान का समापन करते हुए कहा कि "प्रेमचद साहित्य का आधार जीवन को मानते थे। उनके सादगी का सौन्दर्यशास्त्र का आधार भी जीवन है। उनकी लगभग सारी रचनाए सोदेश्य है एव जीवन की बेहतरी के लिए सघर्ष करती रचनाएँ है, सुधारवादी और ह्रदय परिवर्तन वाली रचनाएँ भी उनकी सौन्दर्याभिरूचि के अनुकूल पाठको को सीख देती हुयी, बुराइयो से ऊपर उठाती और उन्हे भला बनाने के लिए द्वन्द्व को व्यक्त करती हैं एव उन्हे अन्याय, अत्याचार और विषमता के विरूद्ध सघर्ष करने की प्रेरणा देती है। प्रेमचद ने सौन्दर्यशास्त्रीय मूल्य की स्थापना कहानी और उपन्यास जैसी विधाओं को आधार बनाकर करते हैं जिन्हे अब तक कहने–सुनने की चीज माना जाता रहा है, जिनके माध्यम से कोई गभीर बात कही ही नही जा सकती। क्या कहानी और उपन्यास सिर्फ

मनोरजन की वस्तु है? ऐसी धारणा प्रभुत्वशाली विचारधारा का ही अग है। प्रेमचद के कथा साहित्य के समक्ष उपर्युक्त किस्म की प्रभुत्वशाली अवधारणाये आज धूल चाटती नजर आ रही है।

'प्रेमचद और भारतीय उपन्यास' विषय पर बोलते हुए डॉ० नामवर सिह ने कहा– "नावेल नाम की जिस विधा का दावा यूरोप करता है उसका एक ऐतिहासिक सामाजिक आधार है और दूसरा उसका रूपगत या मूलगत आधार है। ऐतिहासिक सामाजिक आधार यह है कि नावेल यूरोपीय सदर्भ मे नये उभरने वाले मध्यवर्ग का महाकाव्य माना गया है। यह बात हीगेल ने कही हे। औद्योगीकरण और पूँजीवाद के उदय के साथ पुराने अभिजात वर्ग (मध्यवर्ग) की आज्ञाओ आकाक्षाओ, विचारधाराओ और कलाबोध के रूप मे नये कथात्मक गद्यरूप का उदय हुआ। इसलिए नावेल यूरोपीय विधा है। यूरोप मे भी नावेल का रूप केवल ऐतिहासिक सामाजिक वर्ग से बँधे हुए साहित्य रूप की तरह नही है बल्कि उस रूप मे एक मूल्यबोध भी हे। यूरोप के आलोचको ने इस पर गहराई से विचार किया और एक मूल्य बोधक सकल्पना के रूप मे नावेल को रखा। सब नावेल नही है बल्कि नावेल उसमे से कुछ ही हे। डॉ० सिह ने कहा कि– अग्रेजी के प्रसिद्व आलोचक डॉ० एफ० आर० लेविस ने 'ग्रेट ट्रेडिशन्स' (1948) मे दृढता के साथ अग्रेजी उपन्यासो मे कवल 6 लेखको का नाम लिया जिसमे जेन आस्टिन, जार्ज इलियट और हेनरी जेम्स और जासेफ कोनराड प्रमुख हे। तात्पर्य यह कि आस्टिन से पहले रिचर्डसन और फील्डिग जैसे बडे उपन्यासकार लेखक थे। उन्होने उपन्यास की पृष्ठभूमि तैयार की थी। उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स को लेविस ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि ही वाज ए ग्रेट इन्टरटेनर बट ही वाज नाट ए नावेलिस्ट। नावेल केवल वर्णनात्मक या **descriptive term** नही रहा बल्कि नावेल एक मूल्य बोधक शब्द हो गया।

डॉ० नामवर सिह ने आगे कहा कि "नावेल के रूप विधान पर और उसके सिद्धान्त पर विचार करने वाले बडे महत्वपूर्ण आलोचको मे जार्ज लुकाच हैं उन्होने कहा कि नावेल एक विशेष प्रकार का रूप विधान है जिसमे निर्धारक तत्व है समस्याग्रस्त हीरो **(Problematic Hero)**। ऐसा पुरूष जिसकी अपने समाज से अनबन हो, जिसको, पूरा अहसास हो कि उसके आस–पास का पूरा समाज भ्रष्ट और मूल्यहीन है। अपने अकेलेपन के गहरे अहसास के साथ वह उसमे वांछित मूल्यो और आदर्शो के लिए छटपटाता रहता

हे। जिस कृति मे यह न मिले वह उपन्यास नही है। इस दृष्टि से उन्होने स्टेन्डिल के उपन्यासो को चुना। इसमे फ्लाबेयर, दोस्त्योवस्की और तोल्सताय के उपन्यासो को रखा।

डॉ० सिह के अनुसार– "मध्यवर्ग की कुछ ऐसी विचार धाराये थी जो नई रूप विधा को आकार देने मे सहायक हुई। उनमे से एक व्यक्तिवाद है, दूसरा अनुभववाद जहॉ जीता जागता इसान अपने वास्तविक परिवेश के साथ चित्रित किया जाता हो, जहॉ परिकथाओ की कपोल कल्पना न हो, केवल रोमास न हो या जिसे दास्तान या किस्सा कहा है वही न हो। **Formal realism,** रूपगत उपन्यास का गुण, उसका मूल्य और उसकी सारी विशेषताएँ अन्तत· सत्ता से जुडी है। उपन्यास की परिकल्पना के मूल मे ही सत्ता को चुनौती देने का आधार था। नये मध्यवर्ग के उदय के साथ नारी की स्थिति मे बहुत बडा परिवर्तन हुआ। जिस नारी को वाणी नही प्राप्त थी वह उपन्यास विधा के साथ कर्ता या कर्त्री के रूप मे सामने आयी और मुखर हो उठी।

डॉ० सिह ने कहा कि– "बगला मे दुर्गेशनन्दिनी जब आया तो आयशा इतनी महत्वपूर्ण चरित्र थी कि नायक की अपेक्षा उस आयशा ने लोगो का ध्यान खीचा। उन्नीसवी शताब्दी स्त्रियो की लिखी हुई आत्मकथाओ से भरी पडी हे। विशेषकर बगला और मराठी मे, उर्दू मे पहला महत्वपूर्ण उपन्यास रुस्वा का **1899** मे 'उमराव जान अदा' छपा है। उपन्यास का सम्बन्ध यूरोप मे केवल मध्यवर्ग से ही नही बल्कि उसका गहरा सम्बन्ध उस नयी नारी की परिकल्पना के साथ हुआ इस पूरो मूल्य विधान को तोडकर मध्यवर्ग के उदय के साथ एक नये नारी आदर्श की परिकल्पना हुई जहा नारी उस घुटन भरे दायरे से निकल कर अपनी अस्मिता को प्राप्त करने का प्रयास करती हे। नये ऐतिहासिक परिवर्तन के साथ यह सम्भव हो सका। नये पत्र पत्रिकाओ मे धारावाहिक रूप से बहुत से उपन्यास विभिन्न भाषाओ मे उन्नीसवी सदी के मध्य मे छपे थे। **1902** मे 'समालोचक' पत्रिका मे माधव प्रसाद मिश्र ने "उपन्यास और समालोचना" नाम से लेख लिखा, जिसमे बताया गया कि उपन्यास शब्द और उपन्यास का रूप विधान दोनो हिन्दी ने बगला से लिया। जिस तरह से पूरब बनाम पश्चिम की टकराहट मे पश्चिम की आलोचना करने के साथ ही समूची आधुनिकता को चुनौती देकर उन सामती मूल्यों को प्रतिष्ठा दी जा रही है, उस हिसाब से बकिम के उपन्यासो मे जिन मूल्यो की प्रतिष्ठा की गई वह सब कितनी दूर तक नये उभरने वाले मध्यमवर्गीय मूल्य है इसकी भी चर्चा होनी चाहिए जो कि वस्तुत· आधुनिक न होकर

मध्यकालीन है। उनके उपन्यासो मे विशेष प्रकार के शौर्य और पराक्रम प्राणो का बलिदान देने वाली क्षमता दिखाई देती है।

डॉ० सिह ने अपने वकतव्य मे कहा कि –"उन्नीसवी शताब्दी मे उपन्यास के नाम पर जो कुछ हमारे यहॉ आया उसमे दास्तान और किस्सागोई, आख्यानक, कथात्मकता आदि ये सारी चीजे मिलेगी। भारत मे उपन्यास का उदय मध्यवर्ग के महाकाव्य के रूप मे नही हुआ। किन्तु आधुनिकता के परिपेक्ष्य मे गद्य सर्वप्रथम निबन्धो मे मिलता है। इसके बाद आधुनिक बोध का समावेश कविता मे हुआ। श्रीधर पाठक जिस समय 'एकान्तवासी योगी' का सर्जनात्मक अनुवाद कर रहे थे, नये ढग की कविताएँ लिख रहे थे, ठीक उसके समानान्तर किशोरी लाल गोस्वामी उपन्यास लिख रहे थे जिसका आधुनिकता से कोई सम्बन्ध नही था। 19वी शताब्दी यह बहस करने मे लगी रही कि कविता ब्रजभाषा मे ही हो सकती हे खडी बोली मे नही। उन्नीसवी शताब्दी का सबसे महान साहित्यकार जिसने हिन्दी साहित्य मे आधुनिकता का प्रवर्तन किया, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उपन्यास न लिखना इस बात का प्रमाण है कि उन्नीसवी शताब्दी मे उपन्यास सम्भव नही था। महान साहित्यकार जो कुछ लिखते है वह महत्वपूर्ण होता है। वह जो नही लिखते है उससे कम महत्वपूर्ण नही हुआ करता। लेकिन मेरी समझ मे उपन्यास न लिखते हुए भी भारतन्दु ने उपन्यास की सबसे सटीक और सबसे अच्छी परिभाषा दी। और वह परिभाषा है, कुछ आप बीती कुछ जग बीती। यह कहते हुए वे वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनो का निर्वाह या यथार्थ और कल्पना इन दोनो का समन्वय जिस खूबी से कर ले गये इसस उचित परिभाषा और क्या हो सकती हे। बगला, उर्दू, मराठी तथा गुजराती मे गद्य–पद्य म समानता है और कविता तथा उपन्यास लेखन मे कोई भेद नही पाया जाता। इसलिए इनमे उपन्यासो की भी वृद्धि होनी चाहिए। परन्तु हिन्दी मे उपन्यास इतने विलम्ब से विकसित हुआ इसके अनेक कारणो पर विचार किया जाना चाहिए।

डॉ० नामवर सिह ने कहा– "ढाई सौ साल तक हिन्दी मे रीतिकाव्य की रचना होती रही यह सामतवाद की मजबूती का सकेत है। प्रेमचद का महत्व सामत विरोधी चेतना के सदर्भ मे उभरता है। सामतवाद जहॉ इतना अधिक मजबूत हो रहा हो एव जिस प्रदेश की भाषा गद्य और पद्य के बीच इतनी खण्डित हो रही हो जो साहित्यिक दृष्टि से दो जीभो वाला प्रदेश रहा हो– कविता ब्रज मे लिखता रहा हो और गद्य खडी बोली मे उस प्रदेश मे प्रेमचद जैसा एक उपन्यासकार अचानक पैदा हो यह अपने आप मे चमत्कार है। मध्यवर्ग से

उपन्यास का उदय नही हुआ भले ही हमारे लेखक मध्यवर्ग के रहे हो। उपन्यास के उदय और विकास की दो स्थितिया हैं। एक रेखीय विकास के रूप मे और दूसरा एक से अधिक रूपो मे पल्लवित होने मे।

डॉ० सिह के अनुसार– "उपन्यास राष्ट्रीय मुक्ति के आन्दोलन के प्रवक्ता के रूप मे विकसित हुआ और उस राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का प्रभाव किसानो के सघर्ष मे किसानो की भूमिका से जुडा है। भारत मे कही न कही उसका मूलाधार और अन्तर्वस्तु वह किसान चेतना है जो एक ओर प्रेमचद के प्रेमाश्रय, रगभूमि, कर्मभूमि, गोदान मे है और दूसरी ओर यह चेतना विभूतिभूषण बद्योपाध्याय, मानिक बद्योपाध्याय, ताराशकर बद्योपाध्याय के अधिकाश उपन्यासो मे है। जो बात फकीर मोहन से शुरू वही आगे चलकर हिन्दी मे रेणु, गुजराती मे पन्नालाल पटेल, मराठी मे वैकटेश नागुलकर, मलयालम मे कषी। शिवशकर पिल्लै के उपन्यासो की मुख्य धारा मे प्रकट हुई। यही भारतीय उपन्यास का मूल स्वरूप है जिसकी शुरूआत 19वी शताब्दी मे हो चुकी थी। इसके अन्तर्गत नये नारी आदर्श और नारी की स्वाधीनता से उपन्यास कितनी गहराई से जुडा हुआ था यह विचारणीय है। 1899 मे रूस्वा का 'उमरावजान अदा' नामक उपन्यास छपा और मेरी समझ मे 'उमरावजान अदा' अपने रूप विधान मे और यथार्थवाद मे उस भारतीय उपन्यास का सुत्रपात तो करता ही ह स्वय अपनी अन्तर्वस्तु मे उस नारी की वेदना, पीडा, करूणा जिसके साथ उपन्यास का गहरा सम्बन्ध है, को भी प्रकट करता है। जिस धारा को रूस्वा ने उठाया उसके सर्वोत्तम और लोकप्रिय कथाकार शरतचन्द्र है। जिसका आगे चलकर विकास जैनेन्द्र के रूप मे हुआ और अज्ञेय के 'शेखर। एक जीवनी' का नायक भले ही शेखर हो लेकिन इस उपन्यास की स्त्रिया जितनी सहानुभूति प्राप्त करती है और उपन्यास को मार्मिक और वास्तविक बनाती हे स्वय अहकारी, विद्रोही शेखर वह सहानुभूति नही प्राप्त करता।

डॉ० नामवर सिह ने कहा कि– साहित्य मे पहली बार किसान नायक के रूप मे प्रेमचद के उपन्यासो मे ही बना एव पहली बार नारी जो हाशिये पर थी उपन्यास विधा मे समस्त सवेदनाओ का केन्द्र बनी। इन दोनो के साथ भारतीय उपन्यासो ने वह रूप प्राप्त किया जहॉ इन उपन्यासो मे हम भारतीय नारी को पहचान सकते हैं। भारतीय मनुष्य और भारतीय नारी के ये जो दोनो रिस्ते है, ये जैसे कुल मिलाकर के उस उपनिवेशी आधिपत्य के ढॉचे में भारतीय समाज की समस्त अच्छाइयों को और भारतीय समाज मे जो उत्पीडन और दमन है उसकी वेदना को किस रूप मे समाहित करते है यह गैरतलब है। शायद यह

भारतीय उपन्यास को परिभाषित करने मे सहायक हो। प्रेमचद का स्थान शायद इसीलिए महत्वपूर्ण है कि प्रेमचद पहले उपन्यासकार थे जिन्होने इन दोनो को एक जगह किया। प्रेमचद का पहला चर्चित उपन्यास सेवासदन है जिसके केन्द्र मे नारी है– दूसरा किसान जीवन का उपन्यास है प्रेमाश्रम।

'गोदान' वह उपन्यास है जहाँ गगा और यमुना जैसी ये दोनो धाराएँ नारी वाली धारा और किसान वाली धारा यानि 'सेवासदन' की और 'प्रेमाश्रम' की दोनो धाराएँ समजस एकीकृत रूप मे जिस एक उपन्यास मे एकत्रित होती है। यद्यपि उसकी शुरूआत 'रगभूमि' हो चुकी थी। 'गोदान' मे जाकर नारी अलग से सुमन जैसी नारी नही रहती बल्कि एक ही किसान के घर मे वह होरी और धनिया के रूप मे, गोबर और झुनिया के रूप मे अकित होती है और मध्यवर्ग का चरित्र कितना कमजोर होता है ये मेहता और मालती के रूप मे जो नये मूल्यो की पीत छाया मात्र है, जो निरे आदर्शवाद से आच्छादित है। यही से भारतीय उपन्यास पैदा होने के साथ ही प्रेमचद के साथ सहसा वयस्क होता है। तोल्स्तोय ने 'अन्ना करेनिना' और 'युद्ध और शान्ति' इन दोनो उपन्यासो के द्वारा किसान चेतना और दुविधाग्रस्त नारी को चरितार्थ किया।

अन्त मे बोलते हुए डॉ० सिह ने कहा कि– उपन्यास का सर्वोत्तम विकास उन जगहो मे हुआ जो पश्चिमी यूरोप की सभ्यता से बाहर थे। गार्सिया मार्क्विस को जो लैटिन अमेरिकी देशो का उपन्यासकार है, नोबेल पुरस्कार मिला। इसलिए जरूरी नही कि कोई विधा जहाँ जन्म ले वही पूर्ण विकास प्राप्त करे– मणि मानिक मुक्ता छवि ऐसी, उपजहि अनत अनत छवि लहडी। उपन्यास पैदा जरूर पश्चिमी यूरोप मे हुआ लेकिन वह छवि प्राप्त आज इतने वर्षों के बाद बीसवी शदी के उत्तरार्द्ध मे उन जगहो पर कर रहा है जो उसके दायरे से बाहर थे।

"प्रेमचद के अन्तर्विरोध और उनका सामाजिक आधार" विषय पर बोलते हुए डॉ० नामवर सिह ने कहा– "प्रेमचद मे अन्तर्विरोध थे, पर उनके युग के अन्य लेखको, उदाहरणार्थ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और निराला से कम। उनमे अन्तर्विरोध अपेक्षाकृत कम ही नही है, बल्कि ऐसे अन्तर्विरोध भी नही हैं जो भारतीय समाज मे बद्धमूल हैं। प्रेमचद मे तोल्स्तोय और गोर्की दोनो का प्रभाव देखा जा सकता है, वे इन दोनो महान लेखको के अन्तर्विरोधो से मुक्त थे। तोल्स्तोय का विकास उन्मुक्त जीवन–दृष्टि से धार्मिक आस्था की ओर हुआ था, जबकि प्रेमचद आर्य समाज से शुरू करके मार्क्सवादी लेखको द्वारा आयोजित

प्रगतिशील लेखक सघ के सम्मेलन की अध्यक्षता तक पहुँचे थे। गोर्की समाजवादी यथार्थवाद के सस्थापको मे से थे, लेकिन वे लम्बे अर्से तक एक नये ईश्वर की तलाश मे रहे, जिसके चलते लेनिन को उनका विरोध करना पडा था। प्रेमचद मे इस तरह का कोई अन्तर्विरोध नही मिलता।"

गॉधी एवम् मार्क्स पर विचार व्यक्त करते हुए डॉ० सिह ने आगे कहा "आज विद्वानो का एक दल प्रेमचद को पूरा गॉधीवादी सिद्ध करने पर तुला है और दूसरा पूरा मार्क्सवादी। बीसवी शताब्दी का कोई भी भारतीय लेखक गॉधीवाद और मार्क्सवाद से अछूता नही रह सकता। यदि ऐसा हुआ तो जीवन और यथार्थ से कटकर वह मर जायगा। स्वभावत प्रेमचद पर इन दोनो दर्शनो का प्रभाव पडा था, लेकिन उनकी जीवन दृष्टि दर्शन विशेष के सॉचे मे ढली हुई नही थी। उन्होने जिन्दगी की पाठशाला से ज्यादा सीखा था, अपने जमाने के विचारको से उतना नही। उन पर गॉधीवाद के प्रभाव की बात जोर देकर कही जाती है, पर वे आरम्भिक दिनो मे भी गॉधीवादी नही थे।" उन्होने समाज पर गॉधीवाद के प्रभाव का वर्णन किया है, उसमे अपनी आस्था नही दिखलायी है। वे महात्मा गॉधी की अन्तरात्मा की आवाज, उनके अन्धविश्वासो तथा उनके सत्याग्रह, हृदय–परिवर्तन और वर्ग–सहयोग के सिद्धान्तो का लगातार विरोध करते रहे। उनके जिन उपन्यासो को गॉधीवाद से निस्सदिग्ध रूप से प्रभावित बतलाया जाता है उनमे भी चित्रण को देखे तो गॉधीवाद की आलोचना मिलेगी। हमे कहानी का ही विश्वास करना चाहिए, कहानीकार का नही। महात्मा गॉधी समझते थे कि किसान और जमीदार लडेगे, तो उससे आजादी की लडाई कमजोर होगी। प्रेमचद इस बात को नही मानते। उनके प्राय हर उपन्यास मे किसान और जमीदार की टकराहट है। प्रेमचद के उपन्यासो मे जमीदारो के लडके शुरू मे किसानो का पक्ष लेते है, पर जब किसान सघर्ष के लिए खडे होते है, तो वे अहिसा की दुहाई देते हुए अपने पिता के पक्ष मे चले जाते है। यह गॉधीवाद के सिद्धान्त और कर्म का अन्तर है, जिसे प्रेमचद ने अपने उपन्यासो मे उभार कर रख दिया है। प्रेमचद ने भारतीय जनता के जागरण को गुमराह करने वाली तमाम शक्तियो से हमे आगाह किया था। महात्मा गॉधी ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से पहले किसानो की शक्ति को पहचाना था। प्रेमचद ने आजादी की लडाई मे किसानो की भूमिका को महात्मा गॉधी के साथ ही समझा था। दोनो के रास्ते बाद मे अलग होते है। महात्मा गॉधी का रास्ता वर्ग–सहयोग की ओर चला जाता है और प्रेमचद का वर्ग–संघर्ष की ओर। इस प्रकार प्रेमचद मे न चित्रण और विचार को लेकर कोई

असमाधेय अन्तर्विरोध है, न गॉधीवाद और मार्क्सवाद को लेकर प्रेमचद की यथार्थ के गहन बोध से निर्मित जीवन–दृष्टि को उसके विकास–क्रम मे समझना चाहिए।"

लेखक की सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ मे विचार करते हुए डॉ० सिह ने कहा "लेखक अपनी सामाजिक स्थिति से ही बनता है। यही उसकी जीवन–दृष्टि का ढालती है। प्रेमचद की जीवन–दृष्टि एक खाते–पीते साधारण किसान की है, न मजदूर की, न नोकरी–पेशा मध्यम वर्गीय व्यक्ति की। लेकिन उनके जीवन की परिस्थितियॉ उन्हे खेतिहर मजदूर की ओर लिये जा रही थी। एक खाते–पीते किसान की आकाक्षा और खेतिहर मजदूर की परिस्थितियॉ इन दोनो की टकराहट से उनकी सर्जनात्मकता फूटती है। प्रेमचद किसान की छोटी महात्वाकाक्षा से सम्पूर्ण विश्व को देखते है। उनका यथार्थवाद सोन्दर्यशास्त्र से नही, किसानो के जीवन से प्राप्त है। उनमे जिन्दगी के ब्यौरे का जो चित्रण हे और उसमे जो निर्ममता है, वह भारतीय किसान की जीवन–दृष्टि का अपना कमाया हुआ सत्य है। प्रेमचद के यथार्थवाद की सीमा उसी की सीमा है। प्रेमचद के अन्तर्विरोध एक हद तक किसानो के ही अन्तर्विरोध है पर वे बडी हद तक उनस मुक्त भी है।"

भारतीय स्वाधीनता–आन्दोलन और प्रेमचद का विश्लषण करते हुए डॉ०नामवर सिह ने कहा– "प्रेमचद भारतीय स्वाधीनता–आन्दोलन के अनूठे महागाथाकार थे। **1907** से लेकर सन् **1936** तक के भारतीय जीवन का गहराई से किया गया चित्रण यदि किसी एक भारतीय लेखक मे मिलता है, तो वह प्रेमचद है, रवीन्द्र, शरत, इकबाल, भारती या खाडेकर नही। प्रेमचद ने कहा था कि साहित्य राजनीति के आगे मशाल लेकर चलने वाली सच्चाई हे। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के सन्दर्भ मे उनके इस कथन का विशेष महत्व है। बहुत से लोग साहित्य को राजनीतिज्ञो के विचारो का अनुवाद समझते है, लेकिन प्रेमचद का साहित्य कॉग्रेसी आन्दोलन का अनुवाद नही है। प्रेमचद का साहित्य तीन दौरो से गुजरा। उसके पहले दोर की शुरूआत "दुनिया का सबसे अनमोल रत्न" जेसी कहानियो से होती है, जिनमे राष्ट्र के लिए त्याग और आत्म–बलिदान की भावना की अभिव्यक्ति की गई है। यह हमारी आजादी की लडाई की पहली मजिल थी, जिसमे शहादत को सर्वाधिक प्राप्त था। प्रेमचद ने राजपूतो के राष्ट्रप्रेम और वीरता की अनेक कहानियॉ लिखीं। उनकी इन ऐतिहासिक कहानियो मे पुनरूत्थानवाद की झलक देखी गई है। उनमे वस्तुत एक लडाकू राष्ट्रवाद है, जो अधराष्ट्रवाद से मुक्त है। प्रेमचंद की ऐतिहासिक कहानियॉ इस बात की सबूत हैं कि वे केवल वर्तमान तक सीमित न थे।"

डॉ० सिह के अनुसार, "प्रेमचद के साहित्य का दूसरा दौर सन् 1917 के बाद शुरू होता है। यह रूसी क्रान्ति का वर्ष है। रूसी क्रान्ति की धमक प्रत्येक देश मे सुनाई पडी। इसने भारतीय स्वाधीनता–आदोलन मे नया मोड ला दिया। महात्मा गॉधी ने उसके सीमित आधार को तोडकर उसे गॉवो तक फैला दिया और साम्राज्यवाद के विरूद्ध जो लडाई चल रही थी उसमे किसानो को उतार दिया। प्रेमचद के 'सेवासदन'– जैसे उपन्यासो का आजादी की लडाई से कोई सम्बन्ध नही माना जाता। पर उसमे नारी अधिकारों का जो प्रश्न उठाया गया है, वह आजादी की लडाई का अंग है, कोरा सुधारवाद नही है। प्रेमचद, शरत और जैनेन्द्र के नारी–सम्बन्धी दृष्टिकोण को मिलाकर देखने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचद अर्थव्यवस्था को कितना महत्व देते थे। उन्होने ने 'सेवासदन' मे यह बतलाया है कि नारी की सामाजिक पराधीनता के मूल मे उसकी आर्थिक पराधीनता है। इसी तरह 'प्रेमाश्रम' मे केवल आश्रम और हृदय–परिवर्तन नही है उसमे आश्रम बनाने के पहले प्रेमचद यह दिखलाते है कि जमीदारो और किसानो का हित एक नही है। वे उसमे उन दोनो मे होने वाले सघर्ष का चित्रण करते है, जिसमे जमीदार के कारिन्दे का खून भी होता हे। प्रेमचद ने चौरी चौरा मे किसानो का जागरण देखा था। उन्होने किसानो के जीवन की सच्चाई दिखलाई। उन्होने यह भी दिखलाया कि अग्रेजी हूकूमत सामतो के बल पर टिकी हुई है, इसलिए सामतो से लडाई छेडना जरूरी है। प्रेमचद के लिए सामत–विरोध साम्राज्य–विरोध था। उनकी यह स्थापना उन्हे समाज सुधारको और काग्रेसी नेताओ से ही नही, 1929 मे स्वराज्य की कल्पना करने वालो से भी आग ल जाती है।

डॉ० सिह के अनुसार 'अनेक लोग आजादी की लडाई को केवल राजनीतिक लडाई मानते थे। बाद मे कम्युनिस्टो ने उसे आर्थिक लडाई मे बदल देना चाहा। प्रेमचद इस लडाई को आर्थिक और राजनीतिक ही नही, सास्कृतिक भी मानते थे। उन्होने कहा था कि सास्कृतिक अर्थात् मानसिक मुक्ति के बिना पूरी मुक्ति सम्भव नही है। इसी कारण उन्होने किसानो का आधा लगान माफ कर देने से ज्यादा जरूरी बतलाया था। उन्हे अन्धविश्वासो और पण्डे–पुजारियो के जुल्म से मुक्त करने को। इस तरह उन्होने आजादी को बहुत ही व्यापक और गहरे अर्थ मे लिया था। किसानो का शोषण राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक सभी स्तरो पर होता था। प्रेमचद उन्हे हर प्रकार के शोषण से मुक्त करना चाहते थे। इस मुक्ति संग्राम में एक बडी बाधा थी साम्प्रदायिकता। इसके प्रवाह में अच्छे–अच्छे लोग बह गये थे। प्रेमचद अकेले लेखक हैं, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण साहित्य में हर प्रकार के

सम्प्रदायवाद का विरोध किया है। उनके अनुसार साम्प्रदायिकता फैलाने वाले नबाव और जमीदार थे, जो उसके द्वारा किसानो को बॉटते थे। प्रेमचद ने 'जमाना' मे लिखा था कि जब राजनीतिक आन्दोलन ठप्प होता है, साम्प्रदायिकता उभरती है। उनका यह दृष्टिकोण राजनीतिक दलो के दृष्टिकोण से भिन्न था।"

सन् 1930 के आसपास से प्रेमचद के साहित्य का तीसरा दौर शुरू होता है। यह गॉधीवादी मान्यताओ से उनके मोहभग का काल है। 'गबन' को आभूषण–प्रेम के विरोध मे लिखा गया उपन्यास समझा जाता है, पर इसमे प्रेमचद ने वस्तुत शहरी मध्यवर्ग के उस ढुलमुल नायक का चित्रण किया है जिसकी परिणति देशद्रोह मे होती है। 'गबन', 'कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' इन तीनो उपन्यासो मे प्रेमचद यह दिखलाते है कि बडे घरो के लोग, जो आजादी के लिए लडते है, अपने हितो पर चोट पडने पर किसानो के खिलाफ खडे हो जाते है। उनकी 1930 से 1935 तक लिखी गई कहानियो मे से नब्बे फीसदी कहानियॉ गॉवो से सम्बन्धित है, जिनमे से पचहत्तर फीसदी कहानियो का विषय छोटी जाति के लोग है। काग्रेस के भीतर जब समझौते की प्रवृत्ति जोर मार रही थी और काग्रेसी नेता 1935 के ऐक्ट के मुताबिक 1930 मे असेम्बली की सीटो की छीना–झपटी मे लगे थे, एक ओर इस देश मे वामपथी पार्टियॉ मजदूरो का सगठन कर रही थी और दूसरी ओर प्रेमचद गॉवो के सबसे निचले स्तर के लोगो के जीवन की बदहाली का चित्रण कर रहे थे। 'गोदान' मे उन्होने हमे भारतीय जीवन के नये पहलू से परिचित कराया। वह पहलू यह था कि शोषण का क्रम जारी रखने के लिए अब उद्योगपति और जमीदार इकट्ठे हो रहे थे।

'गोदान' का खन्ना काग्रेस को चदा देता है और मजदूरो से बहुत प्रेम करता है, पर कहता है कि मजदूर हडताल क्यो करते है? खन्ना के गहर ताल्लुकात रायसाहब से है। प्रेमचद ने 'गोदान' मे शोषण के नग्न यथार्थ का चित्रण किया है। होरी को रायसाहब, खन्ना, ओकारनाथ, तखा, मिर्जा, मेहता, दातादीन, लाला परमेश्वरी, दुलारी सहुआइन सभी मिलकर लूटते है। यह जरूर है कि यही उसका शोषण प्रत्यक्ष रूप से होता है, कही परोक्ष रूप से। अपनी 'कफन' नामक कहानी मे भी प्रेमचद ने शोषण के भयावह रूप का चित्रण किया है। लेकिन उसे निराशा की कहानी समझना भूल होगी, वह शोषण के प्रति विद्रोह की कहानी है। इस तरह प्रेमचद के साहित्य मे आजादी की लडाई के विभिन्न स्तर और रूप दिखलाई पड़ते है। आजादी का महत्व उन्होने महात्मा गॉधी से नही सीखा था, उसे वे पहले से जानते थे। समाजवाद का ज्ञान भी उन्हे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के

पहले से था। इन कारणो से प्रेमचद के साहित्य को आधार बनाया जाय तो भारतीय–स्वाधीनता का इतिहास बेहतर ढग से लिखा जा सकता है।"

सन् 1936 ई० के साल मे विश्व के तीन महान् लेखको की मृत्यु हुई। वे थे रूस के मैक्सिम गोर्की, चीन के लु झुन और भारत के प्रेमचद ये तीनो लेखक उच्चतर सामाजिक गोरव की अपनी जनता की आकाक्षा के लिए लडे और अपने राष्ट्र के मुक्ति सग्राम के अग थे।

डॉ० नामवर सिह के अनुसार प्रेमचद ने एक बहुत बडा काम यह किया कि उन्होने भारतीय उपन्यास को जन्म दिया। यूरोप मे आमतौर पर उपन्यास को मध्यवर्ग का महाकाव्य समझा जाता है, और कहा गया है कि मध्यवर्ग के उदय के साथ उपन्यास जुडा है। लेकिन प्रेमचद के उपन्यास भारतीय किसान के उदय और विकास के साथ जुडे हैं। भारतीय मुक्ति आदोलन की शक्ति का स्रोत बुद्धिजीवियो या मध्यवर्ग मे नही, बल्कि किसान मे है। प्रेमचद ने पहली बार हिन्दी उपन्यास को भारतीय चरित्र प्रदान किया। रवीन्द्र, शरतचद्र, बकिम और यहॉ तक कि वि० स० खाडेकर भी मध्यवर्ग के नायक को केन्द्रीय मानते हे, इसलिए वे प्रेमचद की तरह भारतीय उपन्यास की सृष्टि नही करते। अत प्रेमचद को योरोपीय परम्परा से भिन्न मानकर उनका मूल्याकन करना होगा।

"अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है" वाला नास्टालजिया कवियो के मन मे होगा, लेकिन प्रेमचद के उपन्यासो मे वह नही हैं। उन्होने ग्राम्य जीवन की कटुता और नग्नता का चित्रण किया है और गॉवो की सरलता की ओर लौट जाने का आह्वान उनमे कही नही है। गॉधी तो चम्पारन के समय गॉवो की ओर आकृष्ट हुए लेकिन प्रेमचद उसके पहले से गॉवो के बारे मे कहानियॉ लिख रहे थे। बेशक गॉधीजी के कारण प्रेमचद पर दूसरे प्रभाव जरूर पडे। इनमे जमीदार के ह्रदय परिवर्तन की धारणा प्रमुख है जो थाडे दिनो तक रही और बाद मे उन्होने छोड दी। प्रेमचद पूर्व का पाठक टूटते हुए सामती जीवन की कहानियॉ पढना चाहता था। वह बकिमचन्द्र चाहता था। वह रवीन्द्र नाथ की खास किस्म की उदासी चाहता था। वह शरत की दुखी और लाक्षिता नारी के बारे मे पढना चाहता था।

स्वाधीनता सग्राम का भारतीय मनुष्य की नियति से गहरा सम्बन्ध है। और यदि साहित्य का विषय मनुष्य है, अपना देश ओर समाज है तो स्वाधीनता सग्राम सिर्फ राजनीतिक घटना नही है। गोदान मे कहीं रूस नही है, झडे नही है। लेकिन प्रेमचद ने समझ लिया था कि अग्रेजो का राज अफसरो, जमींदारो, मुल्ला–पडितों के बूते पर टिका है।

पुराने दया मायावाले जमींदार और नए क्रूर अर्थवादी जमींदार (जैसे ज्ञानशंकर) का फर्क भी वे नेताओं से ज्यादा समझ चुके थे। और ये चीजें उन्होंने किताबों या घोषणा पत्रों से नहीं, सीधे जिन्दगी से सीखी थी।

सन् 1918 में प्रेमचंद ने रूस की समाजवादी क्रान्ति का स्वागत किया था। प्रेमाश्रम में किसान स्वागत करते हैं कि एक देश ऐसा है जहाँ किसान राज आ गया है। सन् 1919 में, जब कम्युनिस्ट पार्टी देश में कायम भी नहीं हुई थी, तब उन्होंने 'जमाना' साप्ताहिक में एक लेख लिखा थाः नया जमाना, पुराना जमाना, जिसमें उन्होंने व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति की वकालत की थी। 1930 में उन्होंने कांग्रेसियों तक की आलोचना की थी और कहा था कि जो स्वराजी लोग आज इतना ऐश कर रहें हैं, वे बाद में कया करेंगे? लेकिन जनता की पक्षधरता का निर्णय उन्होंने कर लिया था। वे जनता के बारे में नहीं, जनता के साथ सोचते थे। लेकिन कुछ वर्षो बाद नागार्जुन आए जिन्होंने गाँव के बँधुआ मजदूरों के बारे में 'बलचनमा' लिखा। केदारनाथ अग्रवाल ने कविताएँ लिखी। राहुल सांकृत्यायन ने अपने ढंग से परम्परा को आगे बढ़ाया। धूमिल जैसे कवि ने कोई उपन्यास नहीं लिखा, लेकिन उनमें भी प्रेमचंद परम्परा है। लेकिन प्रगतिशील आन्दोलन से इतर जो बाकी हिन्दी साहित्य है प्रेमचंद की छोड़कर उसने शरत चन्द्र की पटरी अपना ली। नारी समस्या लेखक की केन्द्रीय चिन्ता हो गई। जैनेन्द्र कुमार, भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी, ये प्रेमचंद के बाद हिन्दी के बड़े लेखक हैं और सबकी केन्द्रीय समस्या नारी है, मध्यवर्ग है, इस मध्यवर्ग की नैतिकता है। यशपाल जैसे प्रगतिशील लेखक ने भी मध्यवर्ग को ही अपने कैंनवास के लिए चुना।

हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा ने प्रेमचंद की परम्परा को छोड़ दिया। सारे हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन की स्थिति केन्द्रीय नहीं थी। वह हाशिये का आन्दोलन था, इसलिए प्रेमचंद परम्परा भी हिन्दी में हाशिये की चीज बन गई। प्रेमचंद अपने जमाने में भी परम्परा की दृष्टि से हाशिये के लेखक थे। उन दिनों छायावाद का बोलबाला था, और प्रेमचंद हाशिए पर पड़ते थे। अगर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद के बारे में 30 पेज लिखे, तो प्रेमचंद पर उन्होंने सिर्फ तीन पेज लिखे हैं। सच पूछिये तो उपन्यास हिन्दी साहित्य की मुख्य विधान न तो तब था, न आज है। हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा कविता के साथ है, कुछ साल कहानियों की चर्चा रही, लेकिन वह भी खत्म हो गयी।

कला और शिल्प की दृष्टि से भी प्रेमचद ने कम से कम बीस ऐसी कहानियॉ लिखी हे, जो बेजोड है। जैसे 'ठाकुर का कुऑ', 'दूघ का दाम', 'जुर्माना', 'कफन', 'पूस की रात'। उनके उपन्यासो के गठन को ढीला ढाला बताया गया है, लेकिन कमजोरियो के बावजूद वे कलात्मक दृष्टि से ऊँचाइयो को छूते है। इस श्रेष्ठता का आधार है वास्तविकता की पहचान, जीवत चरित्रो का निर्माण, पात्रो के मानसिक गठन और व्यवहार की परख। केवल समकालीन विषयो पर लिखने के कारण उनका महत्व ऐतिहासिक होता, लेकिन उनका महत्व कलात्मक भी है।

डॉ० नामवर सिह के अनुसार हिन्दी मे तुलसीदास के बाद प्रेमचद दूसरे श्रेष्ठ लेखक हे। इसके बाद ही कबीर का स्थान आता है। निराला महत्वपूर्ण हैं क्योकि जीवन के कथ्य की जितनी विविधता और फार्म की जितनी नवीनता निराला मे है, उतनी शायद हिन्दी के किसी रचनाकार मे नही है। तुलसीदास ने पार्वती–मगल और रामलला नहछू जैसे ग्रथ लिखे, लेकिन निराला के हर ग्रथ मे नयापन है।

इस प्रकार डॉ० नामवर सिह का प्रेमचद विषयक उपर्युक्त विवेचन प्रेमचद के बारे मे नई स्थापनाऍं करता है जो मौलिक और विचारोत्तजक है। साथ ही उपन्यास के मूल स्वरूप का उद्घाटन भी करता है। वस्तुत डॉ० रामविलास शर्मा के प्रेमचद विषयक मूल्याकन की यह अगली कडी है।

शिव कुमार मिश्र

डॉ० रामविलास शर्मा और डॉ० नामवर सिह जैसे धुरधर मार्क्सवादी आलोचको के बाद मार्क्सवादी आलोचना की दूसरी कतार के आलोचको मे डॉ० शिव कुमार मिश्र, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, डॉ० कुँवरपाल सिह, डॉ० नन्द किशोर नवल और मैनेजर पाडेय के नाम प्रमुख है। शिव कुमार मिश्र और डॉ० नवल की प्रेमचद पर एक–एक पुस्तक प्रकाशित है। कुँवरपाल सिह और मैनेजर पाडेय ने प्रेमचद से सबधित कई लेख लिखे हैं। रमेश कुन्तल मेघ ने प्रेमचद पर न तो कोई स्वतत्र पुस्तक लिखी है और न तो कोई लेख। उन्होने प्रसगवशात प्रेमचद–साहित्य की चर्चा आधुनिकता के सदर्भ मे की है। आधुनिक धरातल पर किया गया उनका प्रेमचंद–साहित्य का विवेचन मौलिक और नया है। शिव कुमार मिश्र ने

बडी शिद्दत से प्रेमचद की विरासत का सवाल उठाकर प्रेमचद की परम्परा को गहराने की कोशिश की है। इस प्रकार की आलोचनाओ मे किसी तरह का नयापन नही है और मौलिकता का अभाव है। मार्क्सवादी आलोचना के पुरोधा डॉ० राम विलास शर्मा की मान्यताओ का बारम्बार भाष्य किया गया है और उत्तरवर्त्ती प्रेमचद के आधार पर जबर्दस्ती प्रेमचद को मार्क्सवादी और यथार्थवादी सिद्ध करने की कोशिश की गई है। जिस सफलता के साथ और तर्कपूर्ण ढग से डॉ० नन्द किशोर नवल ने राम विलास शर्मा के निराला सबधी विचारो और मूल्याकन को चुनौती दी है, उस प्रकार की त्वरा शिव कुमार मिश्र के विवेचन मे नही हे। यह भाष्यपरक चर्वित चर्वण अखबारीपन लिए हुए है जिसे आलोचना की भाषा नही कहा जा सकता। डॉ० मिश्र की आलोचना मार्क्सवादी कट्टरता से भरी हुई है। उनका अतिउत्साह आलोचा की गभीरता को कम करता है। डॉ० शिव कुमार मिश्र ने प्रेमचद के विषय मे अपनी पुस्तक 'प्रेमचद विरासत का सवाल' (वाणी प्रकाशन, सस्करण 1981) मे दस अध्यायो मे विचार किया है जो निम्नलिखित है–

1. प्रेमचद और भारतीय मुक्ति आन्दोलन
2. सुधारवाद से आमूल सामाजिक बदलाव तक
3. आदर्श और यथार्थ का सवाल
4. साप्रदायिक सौहार्द का सवाल
5. प्रेमचद गॉधी और मार्क्स
6. प्रेमचद· विरासत का सवाल
7. परवर्ती कथा सर्जना यथार्थ और मिथ्या यथार्थ
8. प्रेमचद की विरासत उत्तराधिकार का सही सन्दर्भ
9. व्यक्ति और विचार
10. प्रेमचद की जन्म शताब्दी· कुछ विचारणी मुद्दे

प्रेमचद एक विकासशील लेखक हैं। उनका लेखन निरतर मँजता गया है। उनके लेखन का समय 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' से लेकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन की समाप्ति के बाद के समय (प्रगतिशील आन्दोलन 1936 ई०) तक माना जाता है।

राजनीति मे यह गॉधीजी के चरमोत्कर्ष का समय था। प्रेमचद ने यह स्वीकार भी किया था कि 'राजनीति के क्षेत्र मे जो कार्य गॉधीजी कर रहे हैं साहित्य के क्षेत्र मे वही कार्य मैं कर रहा हूँ।' सन् 1930 मे बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र लिखते हुए प्रेमचद अपनी अभिलाषाओ के बारे मे उन्हे यो सुचित करते हैं—"मेरी अभिलाषऍ बहुत सीमित हैं। इस समय सबसे बडी अभिलाषा यही है कि हम अपने स्वतत्रता सग्राम मे सफल हो। मैं दौलत और शोहरत का इच्छुक नही हूँ। खाने को मिल जाता है, मोटर और बॅगले की मुझे हवस नही है। हॉ, यह जरूर है कि दो चार उच्च कोटि की रचनाऍ छोड जाऊॅ लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतत्रता की प्राप्ति हो।" ऐसे ढेर सारे पत्र, वार्तालाप एव साक्षात्कार मिल जाएगे जिसमे प्रेमचद ने राष्ट्रीय नेताओ के स्वार्थों तथा वर्गहित से ऊपर उठकर राष्ट्रीय आदोलन मे शिरकत करने की अपील की है। इन सबका सशक्त उदाहरण है प्रेमचद का पहला कहानी सग्रह 'सोजे वतन' (1909) एव आखिरी कहानी सग्रह 'समरयात्रा' (1931-32) जो ब्रिटिश सरकार द्वारा आपत्तिजनक करार कर दिए गये। इस अतिम सग्रह तक आते—आते प्रेमचद को यह स्वीकार करना पडा कि आजादी कुबार्नी देकर ही मिल सकती है, जुलूस और पिकेटिंग करके नही। 'गबन' के देवीदीन खटिक तथा दूसरे तमाम पात्रो के मुँह से तथाकथित स्वराजियो के कारनामो तथा आचरणो का खुलासा भी किया गया है। प्रेमचद के उपन्यासो एव कहानियो मे जो किसान आये है वह कोई बनावटीपन या ओढे हुए चरित्र वाले न होकर स्वय मे प्रेमचद के ऑखो के सामने वाले किसान थे जिनकी दशा और तबाही स्वय उन्होने देखी थी। अग्रेजो के दमन का शिकजा उनके समय मे और भी कस गया था। प्रेमचद अवध के किसानो से सीधे परिचित थे। यही कारण है कि प्रेमचद ने किसान चेतना और राजनीति से ओत—प्रोत उपन्यास 'प्रेमाश्रम', 'गबन', 'कर्मभूमि', 'रगभूमि' लिखे। शिवकुमार मिश्र के अनुसार— "अपने समूचे रचनाकाल मे प्रेमचद की सबसे मुख्य चिता राष्ट्र की मुक्ति और राष्ट्र की स्वतत्रता ही थी। अपने समय के दूसरे तमाम लेखको से भिन्न वे मुख्यत हमारे स्वाधीनता सग्राम के लेखक थे। हिन्दुस्तान के विराट स्वाधीनता सग्राम को उनकी सर्जना मे अक्षत लिपिबद्ध देखा जा सकता है" ('प्रेमचद विरासत का सवाल'— पृ० 4)। अन्तत यह कहा जा सकता है कि प्रेमचद की समस्त रचनाओ मे राष्ट्रीय मुक्ति का सवाल उठाया गया है। उनकी समूची साहित्य साधना का लक्ष्य एक शोषण विहीन, समातपूर्ण समाज रचना के पक्ष में आवाज उठाना रहा है, और एक पक्षधर साहित्यकार की भूमिका निवाहते हुए उन्होंने यही किया भी है" (प्रेमचद· विरासत का सवाल—पृ० 14)।

प्रेमचद के लेखन का समय मात्र तीस वर्ष था और इस तीस वर्षो मे प्रेमचद ने जिदगी को जीने, देखने, समझने तथा आत्मसात् करने का अनुभव किया। उसका इतिहास बहुत ही पेचीदा तथा अनिश्चित एव तमाम चुनौतियो से भरा था। उनकी साहित्य साधना इस बात की साक्षी है कि इस चुनौती को प्रेमचद ने साहस के साथ स्वीकार किया। प्रेमचद को विरासत मे ऐसा कुछ भी नही प्राप्त हुआ था जो उनके साहित्य सृजन मे सहायक होता। उनके पहले देवकी नदन खत्री के उपन्यासो की धूम मची हुई थी, जिसका विषय आकर्षण भरा तिलिस्मी, ऐय्यारी तथा रोमान की दुनिया का था। जैसा कि शिव कुमार मिश्र ने लिखा है कि "प्रेमचद अपनी उम्र की पहली उठान मे खुद कही न कही इस दुनिया मे खोए हुए थे। 'तिलस्म होशरूबा' उन्होने अपने विद्यार्थी जीवन मे ही रात–रात भर जागकर पढ डाला था" (प्रेमचद विरासत का सवाल– पृ० 18)। प्रेमचद इस तिलिस्मी दुनिया से निकलकर एक ऐसी दुनिया का चुनाव करते है जो उनके आस–पास की दुनिया थी। उसके दु·ख–दर्द ही प्रेमचद के दु ख–दर्द हुए तथा सामती शोषण के शिकार साधारण जन उनकी साहित्य सर्जना के स्रोत बने। शिव कुमार मिश्र इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखते है कि कदाचित भारत के वे पहले कथाकार है जिन्होने सामती मानसिकता को तार–तार करते हुए सडक के साधारण आदमी को कथानायक का गौरव प्रदान किया। इस प्रकार हिन्दी कथा साहित्य मे यथार्थ की एक नई परम्परा की बुनियाद प्रेमचद ने रखी। अपने लेखन मे प्रेमचद एक नेकदिल एव ईमानदार रचनाकार का रूप मे प्रस्तुत हुए। जीवन के आन्तरिक एव वाह्य द्वद्व मे उनकी रचना प्रकिया अपने मूल्यो के प्रति अडिग रही। इन सबमे देश की मुक्ति मुद्दा छाया रहा। आदर्शवादी रचना के रूप मे चर्चित 'निर्मला' जैसा उपन्यास का एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि इसमे समस्या और उसका शिकार दोनो का परिप्रेक्ष्य एकदम यथार्थ है। कहानियो की इस श्रृखला मे समय के बदलते परिप्रेक्ष्य मे प्रेमचद मे स्वत से टकराने का जो द्वन्द्व है उस द्वन्द्व से निकलने तथा अपने को काटते–तराशने का जो बदलाव देखने को मिलता है वह गॉधीजी की सत्य, अहिसा, हृदय परिवर्तन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन जैसे हथियारो के साथ वह अब प्रेमचद के लिए अर्थहीन सा प्रतीत होता है। इसका उदाहरण 'कातिल' कहानी मे मॉ–बेटे के बीच होने वाला वार्तालाप है। इस कहानी मे बेटा जुलूस और पिकेटिग की व्यर्थता को प्रतिपादित करता है। यह सच है कि जीवन भर सघर्ष करने तथा मनुष्य मात्र के कल्याण की बात करने वाले प्रेमचद यहॉ पहुॅच कर इस हकीकत का खुलासा करते हैं। शिव कुमार मिश्र के अनुसार– "वर्ग चेतना की जमीन तथा वर्ग सघर्ष

का चित्रण प्रेमचद ने पहले भी किया था। शुरू मे हॉलाकि आरोपित आस्थाओ का परिदृश्य धुधला था, किन्तु अब परिदृश्य साफ है, और तभी पूरे विश्वास के साथ प्रेमचद जी कह सकते है कि दुनिया और व्यवस्था को वे आदमी के हित मे बदलना चाहते हैं। इन तथ्यो का विश्लेषण करने पर यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि प्रेमचद मानवतावादी दृष्टिकोण को सर्वोच्च प्राथमिकता देते थे। 'आदर्श और यथार्थ के सवाल' पर आलोचको मे आज भी बहस का यह मुद्दा बना हुआ है कि प्रेमचद यथार्थवादी थे या आदर्शवादी था कि आदर्शोन्मुख यथार्थवादी या जनवादी। इस बहस मे न पडकर यदि हम प्रेमचद के विचारो को ले तो बेहतर होगा। "यथार्थवादी चरित्रो को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप मे रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नही कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। ससार मे सदैव नेकी का फल अच्छा और बदी का फल बद् नही होता बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है . यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है। मानव चरित्र पर इससे हमारा विश्वास उठ जाता है। हमको अपने चारो तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है।" एक स्थान पर यथार्थवाद का समर्थन करते हुए प्रेमचद लिखते है– "इसमे सन्देह नही कि समाज की कुप्रथा की ओर उसका ध्यान दिलाने के लिए यथार्थवाद अत्यत उपयुक्त है– लेकिन जब दुर्बलताओ का चित्रण करने मे शिष्टता की सीमाओ से आगे बढ जाता है तो आपत्तिजनक हो जाता है।" इसी क्रम मे प्रेमचद दोनो के समन्वय की बात करते हुए लिखते है– "यथार्थवाद यदि हमारी ऑखे खोल देता है तो आदर्शवाद हमे उठाकर किसी मनोरम स्थान मे पहुँचा देता ह   आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का प्रयोग होना चाहिए   उपन्यास की सबसे बडी विभूति ऐसे चरित्रो की सृष्टि है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक का मोहित कर ले। जिस उपन्यास के चरित्रो मे यह गुण नही है वह दो कौडी का है।" इन तथ्यो के विश्लेषण से आलोचको को यह अहसास होना चाहिए कि किसी व्यक्ति के ऊपर आरोप प्रत्यारोप लगाने से पहले हमे उसकी जमीनी बुनियाद तथा उसके परिवेश के बारे मे जानकारी कर लेनी चाहिए। शिव कुमार मिश्र के अनुसार– "प्रेमचद की सर्जना और उनके चितन के इस गुणात्मक विकास को नजरदाज कर जानबूझकर उन्हे आदर्शवादी घोषित करना या उन्हे आदर्शवाद–यथार्थवाद से परे बताना हमारे विचार से यह ऐसा अपराध है जिसे प्रेमचद की विरासत को उसके क्रान्तिकारी सदर्भो में ग्रहण करने वाली आगे की रचनाकार पीढियॉ कभी माफ नहीं करेगी" (प्रेमचद विरासत का सवाल– पृ० स० 34) मिश्र जी की बातो को एक नये परिप्रेक्ष्य में

देखते हुए मिली–जुली मान्यताओ, विशेषकर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के बारे मे उनकी मान्यता को गोर्की के क्रान्तिकारी स्वच्छदतावाद के निकट कहा जा सकता है।

साम्प्रदायिकता के सौहार्द के सवाल पर प्रेमचंद एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का ढॉचा अपने उपन्यासो एव कहानियो मे चुनते हैं जो, वर्ग, वर्ण, धर्म और सम्पदाय, सबसे परे हो। वह मानव धर्म और एक मानव सस्कृति के रूप को चुनते हैं। इसी को केन्द्र मे रखकर उनका रचना ससार अपनी फली–फूली फसल को काटता है। प्रेमचद के समय का दौर हिन्दू धर्म तथा इस्लामी मजहब के टकराव का दौर था। मुस्लिम बादशाहो के सघर्ष एव अत्याचारो की कथा ने साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना को बढावा दिया। शिव कुमार मिश्र के अनुसार– "प्रेमचद यदि अपने लेखन मे बार–बार इतिहास को दफन कर देने की बात करते हे, 'तमाम विष की गॉठ' इतिहास को मानते है, और इस प्रकार के इतिहास के पीछे निहित जेहनियत के प्रति अपना सात्विक आक्रोश व्यक्त करते है तो यह सर्वथा उचित है।" (पृ० 42)। प्रेमचद इतिहास विरोधी नही थे। इतिहास विरोधी भावना 'सेक्यूलर' मानसिकता के कारण है। हिन्दू मुस्लिम एकता के वे कट्टर समर्थक है। हसराज रहबर के अनुसार– "उनके धार्मिक विचार कुछ भी रहे हो, वे जनसाधारण की धार्मिक भावनाओ का कदर करते थे और उन्हे एक आस्तिक की श्रद्धा के साथ अकित करते थे, क्योकि वे जानते थे कि शोषित जनता के पास एक धर्म ही तो है जो उसे इस भीषण दरिद्रता मे जीने का बल प्रदान करता है। यदि उनसे यह विश्वास भी छीन लिया जाय तो फिर उनके पास और कौन सा सहारा रह जाएगा।" शिव कुमार मिश्र की नजर मे प्रेमचद का समाज सुधारक रूप कबीर जैसा था। साम्प्रदायिकता सम्बधी प्रेमचद के बिचारो पर टिप्पणी करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि "न मे हिन्दू हूँ ओर न मुसलमान, मे एक इन्सान हूँ। साम्प्रदायिक सौहार्द्र का सवाल इस प्रकार प्रेमचद के यहॉ राष्ट्रीय मुक्ति से, शोषित मनुष्यता की मुक्ति और फलतः सर्वहारा सस्कृति तक व्याप्त हो जाता है। रचनात्मक तथा बैचारिक स्तर पर प्रेमचद की सारी जद्दोजहद इसी सपने को साकार करने के लिए है" (प्रेमचद विरासत का सवाल पृ० 45)। शिव कुमार मिश्र कहते है कि अपनी सारी मानसिक उदारता तथा गैर साम्प्रदायिक दृष्टि के बावजूद हिन्दू–मुस्लिम के हमी महात्मा गॉधी तक अपनी पहचान एक सनातनी हिन्दू के रूप मे ही करा पाते है। उनका वह सनातन धर्म कितने भी उदार आशय का क्यो न हो किन्तु प्रेमचद उनसे कही आगे बढकर न केवल हिन्दू या मुसलमान या ईसाई के रूप में अपना परिचय नही देते, एक इसान के रूप में ही अपनी पहचान को रेखाकित करते हैं।

गॉधी और मार्क्स के साथ प्रेमचद का रिश्ता इसलिए जोडना उचित है क्योंकि इतिहास से प्रेमचद का गहरा सरोकार है। शिव कुमार मिश्र के अनुसार– "प्रेमचद कदाचित अकेले भारतीय लेखक है जिन्हे विश्वास पूर्वक भारतीय स्वतत्रता सग्राम का लेखक कहा जा सकता है" (प्रेमचद विरासत का सवाल – पृ० 55)। प्रेमचद की रचनाओ मे जो सुधारवाद या आदर्शवाद दिखाई देता है वह वास्तव मे उनकी अपनी बनाई विरासत से उपजा था। उनका परिवेश उनके अपने वातावरण से सृजित था और इसके पीछे उनका लम्बा चितन एव गहरा मानवीय सरोकार था। इस बात को शिव कुमार मिश्र भी स्वीकार करते हैं कि उनकी इस दौर की रचनाओ मे जो आदर्शवाद अथवा सुधारवाद दिखाई देता है उसका सम्बन्ध भी गॉधी या गॉधी के चितन से न होकर उनकी उन आदर्शवादी–सुधारवादी आस्थाओ से है जो उन्हे विरासत मे भारत की लम्बी चितन परम्परा, आर्य समाज तथा तोल्स्ताय जैसे उन मानवतावादी विचारको से मिली थी जिनके प्रति अपने समय के दूसरे तमाम मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियो की भॉति वे भी आकर्षित थे। मार्क्स दर्शन या समाजवादी दर्शन प्रेमचद की प्रगतिशील परम्परा से स्पष्ट तौर पर आया हे और इस दर्शन को प्रेमचद यथार्थ की परिस्थितियो मे ही ग्रहण करते है। और इसका रूप अचानक नही वरन् एक सिलसिले के रूप मे क्रमश होता नजर आता है। इस जमीनी सच्चाई को स्वीकार करते हुए शिव कुमार मिश्र कहते है कि सन् 1930-31 के बाद मुशीजी का लेखन और चितन वही नही रह जाता जैसा कि वह पहले था। आदर्श अब भी उनके साथ है आदर्शवाद नही है। पुराने सस्कार, पुराने चितन के निशान अब भी उनमे हैं, पर वह द्वन्द्व नही जो उनमे पहले था। नई चेतना से एक सीधा साक्षात्कार यहॉ उनके पाठको को होता है। सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि प्रेमचद ने आदर्श और यथार्थ की भॉति गॉधी और मार्क्स को मिलाकर अपनी रचनाओ का सृजन किया।

प्रेमचद की विरासत के प्रश्न पर भी डॉ०शिव कुमार मिश्र व्यवस्थित ढग से विचार करते है। जहॉ तक प्रेमचद के प्रासगिक होने का प्रश्न है बात समझ मे नही आती। जिस लेखक की विचारधारा और सर्जना को हम निरन्तर महसूस करे उसकी प्रासगिकता तलाशने की जरूरत क्यो पडी? 'गोदान' और 'मगलसूत्र' तक की यात्रा तय करते हुए प्रेमचद ने जीवन से जो द्वन्द्व किया था और यथार्थ का जिस प्रकार साक्षात्कार किया था उसे विवेकशील पाठक समझते है। आज भी 'निर्मला' और सुमन की तरह नारियॉ लाचार और विवश हैं। शिव कुमार मिश्र के अनुसार– हमारे सामने मुख्य सवाल प्रेमचंद की प्रासंगिकता

को परखने का नही, इस बात का होना चाहिए कि प्रेमचद की विरासत को कितना समझ और सहेज पाये हैं। सम्पूर्ण मनुष्यता की यातना के प्रति जितनी गहन सोच और समाज के पशुओ के प्रति जितना तीखा विक्षोभ प्रेमचद न अपनी रचनाओ मे प्रकट किया है उतना कही मिलना दूभर है। होरी की जिजीविषा और जिदा रहने के लिए सघर्ष प्रेमचद का अपना भोगा हुआ सघर्ष लगता है और यह मृत्यु के कुछ क्षणो पहले उसकी मन स्थिति से ऑका जा सकता है। प्रेमचद के शब्दो मे– "जीवन के सारे सकट, सारी निराशाए मानो उसके चरणो पर लोट रही थी। कौन कहता है जीवन सग्राम मे वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं। इन्ही हारो मे उसकी विजय है। उसके टूटे–फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ हैं" ('गोदान' पृ० 307) यह झूठा आशावाद नही है और इसे यथार्थ के धरातल से हटाया नही जा सकता। मिश्रजी की टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि यह हवाई और ठडी आशा नही है, और न यह आस्था कोई किताबी चीज है, इस आस्था का सम्बन्ध हिन्दी के उस रचनाकार से है जिसने जिदगी को उसकी सारी विरूपता मे पहचाना मे पहचाना और भोगा था। न चाहते हुए भी जिसे जिदगी के बदले मौत मिली, किन्तु मौत जिदगी के प्रति, सही मानवीय जिदगी के प्रति, जिसकी आस्था को रौद नही सकी। इस खरी आस्था को झुठलाना प्रेमचद की विरासत का झुठलाना है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि मानवीय सवेदनाओ को वाणी देने मे प्रेमचद सक्षम सिद्ध होते है।

डॉ० शिव कुमार मिश्र 'परवर्ती कथा सर्जना यथार्थ ओर मिथ्या यथार्थ' नामक निबध मे भी समन्वित ढग से विचार करते हैं। प्रेमचद के साहित्य की यह विशेषता है कि उनका साहित्य जीवन से अलग नही है। यही कारण है कि 'गोदान , 'कफन' और 'पूस की रात' जैसी रचनाएँ प्रेमचद की रचना प्रक्रिया की सार्थक पहल हे, जो सुधारवाद की धुध से उबरकर समूचे बदलाव का मार्ग प्रशस्त करती है। उनका भोगा हुआ यथार्थ उनकी कृतियो मे स्पष्ट रूप से नजर आता है। यह 'नमक का दरोगा', 'पच परमेश्वर' और 'बडे घर की बेटी' की दुनिया न होकर 'ठाकुर का कुऑ', 'कफन', 'पूस की रात' जैसी कहानियों और 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' 'रगभूमि' और 'गोदान' तथा 'मगलसूत्र' (अधूरा) की दुनिया है। यह 'बेहद क्रूर और बेहद आक्रामक, किन्तु बेहद चतुर और बेहद सावधान' लोगों की दुनिया है जिसे प्रेमचंद बदलना चाहते हैं। मनुष्यो के रहने के काबिल बनाना चाहते हैं। प्रेमचंद के सामने परिदृश्य एकदम साफ है, वे पूरे विश्वास के साथ अपना अभिमत देते हैं कि जिस दुनिया और व्यवस्था को वे आदमी के हित मे बदलना चाहते हैं वह समाजवाद के रास्ते पर

चलकर ही बदलेगी। लेकिन प्रेमचद का समाजवाद अपनी जडो से कटकर नही हैं, मिश्र जी अवश्य उसे एक विशेष दृष्टि से विवेचित करते हैं। सभी तत्कालीन प्रचलित वादों की सूक्ष्म घुलावट ही प्रेमचद मे मिलती है।

'प्रेमचद की विरासत उत्तराधिकार का सही सन्दर्भ' नामक अध्याय मे शिव कुमार मिश्र ने प्रेमचद विरासत के सच्चे उत्तराधिकारियो को एक पक्ति मे रखा है क्योकि प्रेमचद की जन्मशताब्दी मे इस ज्वलत मुद्दे को लेकर काफी गहमागहमी रही। प्रेमचंद की परम्परा से जुडने का अर्थ प्रेमचद के तरीके और सोच के साथ लिखना मात्र वही है यह भी जरूरी है कि जिदगी की जो शक्ल कृतियो के माध्यम से उभरे वह यथार्थ हो। प्रेमचद ने अपने कथा साहित्य मे शोषित मनुष्यता की आवाज उठाने के साथ उनके अधिकारो के लिए सघर्ष किया। प्रेमचद का यथार्थबोध उनके अनुभवो के लम्बे दौर से गुजरने के कारण प्राप्त होता हें। वह कही से भी पुनरूत्थानवादी नही है। वे जिस आने वाले समय की कल्पना करते है वह शायद उनका वर्तमान ही है। शिव कुमार मिश्र के अनुसार–"प्रेमचद कही से भी पुनरूत्थानवादी नही है। वे जिस भविष्य के मुतजिर है उसे वर्तमान के गर्भ से ही खीचकर बाहर लाना चाहते है, इतिहास अथवा अतीत को उनमे जीवित नही देखना चाहते है इसलिए उनके लिए समय तथा मनुष्य की निरन्तरता के प्रमाण के रूप मे सामने आता है" (प्रेमचद विरासत का सवाल–पृ० 107)। साहित्य समाज का दर्पण होता है साथ ही जनता के ह्रदय का विकास भी इससे होता है। प्रेमचद की सर्जना अद्वितीय है। शिव कुमार मिश्र के शब्दो मे–"प्रेमचद और उनकी सर्जना यदि बडी है तो इसलिए कि उनके अनुभवो का ससार और उसे सहेजने वाला उनका ह्रदय बडा है। अनुभवो के इस ससार का एक एक कण उनका अर्जित किया हुआ है, जिन्दगी की सीधी रगड से पाया गया है। वह केवल दिमागी नही है, उसके पीछे एक समर्पित जीवन की अत्यत कठोर साधना निहित है" (प्रेमचद विरासत का सवाल–पृ० 161)। प्रेमचद ने जिन्दगी की बुनियाद समस्याओ को उठाया। हसराज रहबर ने उत्साह के अतिरेक मे प्रेमचद को पुररूत्थानवादी सिद्ध कर दिया है। उनके अनुसार प्रेमचद अपनी कहानियो के माध्यम से हिन्दुस्तान की जनता के स्वाभिमान और साहस को सजग करते हैं, सोई हुई गैरत को जगाते हैं और उदासीनता को भग करते है। देश की जनता को उसके गौरवमय अतीत से परिचित कराना उस समय के संदर्भो मे एक राष्ट्रीय जरूरत थी। इस सदर्भ मे शिव कुमार मिश्र के विचार उल्लेखनीय हैं "भॉति–भॉति की गुलामी की बेडियो मे जकडी भारत की साधारण जनता की मुक्ति के

पक्षधर के रूप मे उन्होंने अपने लेखन कर्म की शुरूआत मे ही पहचान कराई और यातनाग्रस्त इस साधारण जन मे आगे बढकर किसान, नारी और अछूत इन तीन को सर्वाधिक शोषित और पीडित के रूप मे रेखाकित किया" (प्रेमचद विरासतत का सवाल– पृ० 164)। जिस मुक्ति की परिकल्पना प्रेमचद ने की थी वह आज के परिप्रेक्ष्य मे सच्ची साबित हुई। जॉन के हाथो से सत्ता गोविन्द के हाथो मे आयी परन्तु बाकी सब कुछ वैसा ही रहा जैसा पहले था। अस्तु, प्रेमचद की जडे जमीनी गहरीई मे रोपी गई थी और उसकी शक्ति एव सौन्दर्य का स्रोत साधारण का जीवन था।

'प्रेमचद–जन्म शताब्दी कुछ विचारणीय मुद्दे' शीर्षक निबध मे मिश्र जी कुछ ज्वलत प्रश्नो को सामने रखते है। वस्तुत आचरण तथा रचना मे व्यवस्था का विरोध प्रेमचद मे सर्वत्र हे। चूँकि वे मानवीय सवेदनाओ को वाणी देने मे भी सफल है, अत एक सहजता भी उनके यहॉ विद्यमान है। खास बात यह है कि वे अपनी जडो से भी रस–ग्राह्य करते है। निराला साहित्यकार को मस्तिष्क और राजनीति को धड मानते है। उन्होने उदर को धर्म की सज्ञा दी। धर्म पर प्रेमचद और निराला को लेकर बहस की जा सकती है, परन्तु राजनीति के बारे मे दोनो के विचार लगभग एक है। दोनो मुक्ति के आग्रही है ओर धर्म, दर्शन या राजनीति, सस्कृति का सत् ही उनके साहित्य मे मिलता है। प्रेमचद के बाद के साहित्यकारो के साहित्य मे विचारधाराओ का दबाव स्पष्ट दिखता हे। साथ ही राजनैतिको पर साहित्यकारो की निर्भरता भी बढी है। इन सबके चलते पूर्व के साहित्यकारो को अपने–अपने खेमे मे समेटने का प्रयास भी होता रहता है। अपने इसी प्रयास मे कभी–कभी साहित्यकार के पोस्टमार्टम की कोशिशे भी होती है। कहीं–कही यह वीभत्स और भदेस शक्ल अख्तियार कर लेता है। प्रेमचद की जन्मशताब्दी पर भी ऐसा ही कुछ हुआ। प्रेमचद पर लगाये आरोपो जिनमे से कुछ उनके व्यक्तिगत जीवन से भी सम्बन्धित थे को एक सिरे से खारिज किया गया। शिव कुमार मिश्र भी "सोजे वतन जब्त नही हुआ यह अफवाह फैलाई गयी" पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि– "सोजे वतन जब्त नही हुआ, यह तथ्य क्या प्रेमचद की रचनाओ से उभरने वाली राष्ट्रीय चेतना के महत्व को कम कर देता है।" (प्रेमचद विरासत का सवाल–पृ० स० 186)। वस्तुत रचना का विश्लेषण होना चाहिए। इस दृष्टि से प्रेमचद की उपेक्षा नही की जा सकती। व्यक्तित्व की दृष्टि से भी प्रेमचद खारिज नही किये जा सकते।

रमेश कुन्तल मेघ

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ की ख्याति मार्क्सवादी आलोचक के रूप मे हैं उन्होने साहितय का विवेचन आधुनिकता के धरातल पर अस्तित्ववादी शब्दावली मे किया है। 'कामायनी' और तुलसीदास पर उनकी लिखी पुस्तके चर्चित रही हैं इसके अलावे 'क्योकि समय एक शब्द है', 'आधुनिकता–बोध और आधुनिकीकरण' तथा 'अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा' ने अपनी मौलिक विवेचन दृष्टि तथा आधुनिकता के कारण विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है। यो उनका व्यवस्थित विवेचन प्रेमचद पर नही मिलता पर प्रसगवशात उन्होने प्रेमचद के कथा–साहित्य पर अपने विचार प्रकट किये हैं। 'आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण' पुस्तक मे 'आधुनिक कलाकार का आत्मसघर्ष' शीर्षक अध्याय मे प्रेमचद का विवेचन आधुनिकता के सदर्भ मे किया है। विचारो के नयेपन और मौलिकता के कारण उनकी प्रेमचद आलोचना महत्त्वपूर्ण हो गई है। प्रस्तुत अध्ययन उपर्युक्त अश पर आधारित है।

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार आधुनिक कलाकार के आत्मसघर्ष का अद्वितीय रूपान्तर प्रेमचद मे मिलता है। प्रेमचद आदर्शवादी तथा गॉधीवादी, उपदेशवादी तथा टालस्टॉय से प्रभावित रहे। उन्होने सामाजिक घटनाओ को चुनकर उनकी कलात्मक व्याख्या की तथा उन्हे सार्थक ढग से चित्रित किया। इन घटनाओ तथा सबधो को अर्थ देते–देते उन्होने आत्मसस्कार तथा आत्मशिक्षण भी किया। इस क्रम मे उपदेश उन्हे 'स्टट' लगते है तथा आदर्श फूहडता। फिर वे नये सिरे से घटनाओ की सार्थक व्याख्या करके सामाजिक सत्यो का आत्मसाक्षात्कार करते है। डॉ० मेघ के अनुसार इस दृष्टि से 'रगभूमि' मे वे पहला प्रयाण करते है। इसमे वे यथार्थ की उपेक्षा नही करते, अत अस्वाभाविक सिद्धान्तो का प्रतिपादन बद कर देते है। ईसाई लडकी सोफिया और जमीन्दार विनय सिह के प्रेम की रोमाटिक क्षरणशीलता दिखाकर वे छायावादी जीवन–दृष्टि की फूहडता प्रकट करते हैं, तथा अधे गॉधीवादी सूरदास के सत्याग्रह की हार के साथ वे आदर्शवादी मानवतावाद से छुट्टी पा लेते है। 'गोदान' मे प्रेमचद का आत्मसघर्ष और आत्मसाक्षात्कार सर्जनात्मक रूप मे प्रकट होता है। इस उपन्यास में वे टाल्सटॉय से मुक्त होकर गोर्की के नजदीक आ जाते हैं। निम्नवर्गीय पात्रो के जीवन की विडम्बना सवेदनशील रूप में अंकित करने के कारण आधुनिकता अपने ऊर्जस्वित रूप मे प्रकट होती है। 'रगभूमि' और 'कर्मभूमि' में आदर्शवाद

पर प्रश्नचिह्न लगाकर सदेह प्रकट किया था, वह 'गोदान' मे आकर सामाजिक यथार्थ के सत्य मे परिणत हो जाता है। 'गोदान' मे सामाजिक परिवर्तन के द्वद का अकन है। मालती–मेहता के रोमास मे आधुनिकता है। इसके माध्यम से नारी की स्वतत्रता/स्वच्छन्दता ओर वैवाहिक जीवन के सवालो को उठाया है। लेकिन मालती–मेहता के आलिगन–चुम्बन मे जो यथार्थ उभरा था उसकी परिणति काल्पनिक आदर्श प्रेम करने से आधुनिकता का क्षरण हुआ है। शराबी और जुआरी पति को हटरो से मारनेवाली मीनाक्षी और प्रेमविवाह करने वाली मालती की बहन सरोज का अभिनन्दन कर प्रेमचद ने अपना अभिमत प्रकट कर दिया है। यहॉ वे सामती और अभिजात हिन्दू नैतिकता को धराशायी करते हैं। सिलिया, धनिया, सोना और झुनिया के माध्यम से नई नारी को रचते हैं जो अभिजात नैतिकता को ध्वस्त कर प्रेम को नया आयाम प्रदान करती है। सयुक्त परिवार के विघटन की त्रासदी होरी–धनिया के माध्यम से मुखर हुई है। महाजनी शोषण का विकराल रूप कर्ज और ऋणग्रस्तता की समस्या से उभरता है। इस तरह 'गोदान' मे सामाजिक यथार्थ बिल्कुल नए रूप मे है। 'गोदान' की विलक्षणता का मूल कारण प्रेमचद की सर्जनशीलता है, जो स्वय आधुनिकता की प्रकृति एव प्रत्ययगत अवधारणाओ का सदर्भ है। आधुनिकता को सर्जनशीलता का नया सदर्भ भी माना गया है (डॉ० रघुवश, 'माध्यम', जुलाई 1967, पृ० 10)।

'गोदान' के यथार्थ को सर्जनशीलता का सदर्भ सहज मानवीय स्थितियो से मिलता है। आधुनिकता के सदर्भ मे 'गोदान' के पात्रो का सघर्ष इसे नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। होरी की मृत्यु और धनिया की पछाड उपन्यास को विकसनशील बनाते है। जीवन–यथार्थ गहराई के साथ अकन करने वाला यह हिदी का पहला उपन्यास है। डॉ० गगा प्रसाद विमल का यह कथन सही है · 'गोदान केवल एक विचार–कथा या समस्याओ की कथा नही है, बल्कि यह मानवीय संघर्ष की कथा है। ऐसी कथा जिसमे स्वाधीनता–युग की क्रान्ति की स्वर लहरी का ज्वार भी है तो सारी लडाई का पराजय बोध भी ('प्रेमचद · आज के सदर्भ मे', पृ० 147)।

सर्जनशीलता के इस सदर्भ मे प्रेमचद का रचना सघर्ष अभिव्यक्ति की नई व्यग्यात्मक मुद्राएँ लिए हुए है। यह वही मुद्राएँ हैं जो 'पूस की रात' और कफ़न' मे भी उपलब्ध होती हैं और जिनसे आज की हिन्दी कहानी की शुरुआत माना गया है। 'कफन' से आधुनिक – बोध की शुरुआत मान सकते हैं। इस कहानी में एक ओर माधव की जवान

बीवी बुधिया प्रसव वेदना से पछाड खाकर चीख रही है। तो दूसरी ओर माधव और उसका बाप घीसू अलाव के पास बैठे–बैठे गर्म आलू निगलते जा रहे हैं। यह अजनबीपन की भयावह स्थिति है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ इस पर टिप्पणी करते हैं –

'प्रेमचद बताते हैं कि ये दोनो खेत मजदूर कामचोर है, बेहया हो गए हैं, काहिल हैं ओर फॉके करते है, इतने दीन हैं कि लोग इन्हे कुछ न कुछ कर्ज दे देते हैं तथा घीसू ने इसी आकाशवृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी।' (आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृ० 433)।

वस्तुत यह श्रम से अजनबीपन की स्थिति है जिसकी तरफ सकेत पहले पहल कार्ल मार्क्स ने अपने सुप्रसिद्ध निबध 'अजनबी श्रम' मे किया था। पूँजीवादी समाज की अनिवार्य विकृतियो मे से एक है अजनबीपन। अपने श्रम का उचित प्रतिफल न मिलने से श्रमिक के भीतर अजनबीपन पनपता है और वह श्रम से जी चुराता है। अजनबी दुनिया मे उसके कृत्य अमानवीय और क्रूर हो उठते है। घीसू और माधव इसी अजनबीपन के शिकार हैं। प्रसव पीडा से छटपटाती बुधिया को देखने घीसू और माधव मे से कोई नही जाता क्योकि उन्हे भय था कि आलुओ का बडा दूसरा साफ कर देगा। जिस समाज मे किसानो की कमजोरियो का लाभ उठाने वाले लोग हरदम घात लगाये बंठे रहते है वहॉ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा होना कोई आश्चर्य की बात नही। डॉ० मेघ का कथन है "घीसू और माधव की यह दशा परायेपन की है– श्रम के शोषण से उत्पन्न। इस परायेपन मे प्रेमचद ने आगे बढकर अवमानवीयकरण तथा पाशविकीकरण जोड दिया।" (उपर्युक्त, पृ० 433)।

डॉ० मेघ के अनुसार यह 'गोदान' से अगला प्रयाण ह। घीसू और माधव मे श्रम का परायापन ही नही उद्भूत होता बल्कि गुलाम जैसी अपनी वर्तमान स्थिति के प्रति जागरुकता भी नष्ट हो जाती है। इस प्रकार डॉ० कुन्तल मेघ के शब्दो मे, "प्रेमचद ने 'कफन' मे पहली बार हमारे आधुनिक बोध की निषेधात्मक सपूर्णता को प्रकट किया – परायापन, श्रम का परायापन, अवमानवीयकरण, पाशविकीकरण, चेतना का लोप आदि।" (उपर्युक्त, पृ० 433)।

घीसू और माधव को यह सोचकर संतोष है कि कम से कम उन्हे किसानों की – सी जी तोड मेहनत तो नहीं करनी पडती और उनकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग

बेजा फायदा तो नही उठाते। घीसू की चेतना मे मानवता की सभावनाएँ कभी–कभी कौध जाती है और स्वय अपने अनुभवो से समाज की विषमताओ को समझता जाता है। कफन लाने के प्रसग मे वह बुधिया की मृत्यु के सामाजिक कारणो की तथा झूठी नैतिक प्रथाओ की फूहडता का अहसास कराता है। दोनो कफन के रुपयो की शराब पी लेते हैं। डॉ० मेघ के अनुसार इसी पाशविकता के बीच अधविश्वास तथा धर्म की फूहडता भी उभरती हैं

इस तरह आधुनिकता के सदर्भ मे किया गया प्रेमचद का विवेचन, देखने की एक नई दृष्टि देता है। डॉ० रमेश कुन्तल मेघ की आलोचना प्रेमचद की आधुनिकता पर ऊँगली रखती है: "इस तरह प्रेमचद ने आधुनिक बोध के सत्रास, अस्थिरता, अमानवीयता, दीनता तथा फूहडता को एक विराट फलक पर प्रस्तुत किया है तथा स्वतत्रता के सकल्प की क्षीण छायाएँ भी पेश की हैं।" (आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, पृ० **434**)।

प्रेमचद की कहानी पद्धति की सबसे बडी विशेषता यह है कि अपने जमाने के सामाजिक यथार्थ के अनेक केन्द्रीय स्थलो को वे अनेक कोणो से देखते हैं और उसकी वास्तविकता को कभी भी अपने विचारो के आधार पर विकृत नही करते। ह्रदय परिवर्तन या सयोगो का जहॉ सहारा लेते है वहॉ भी वे यथार्थ और स्वाभाविकता का दामन नही छोडते। डॉ० सुधीश पचौरी ने प्रेमचद की रचना प्रक्रिया मे अजनबीपन के प्रत्यय को दिखाते हुए डॉ० मेघ के विचारो की ही पुष्टि की है – 'गोदान के होरी का भी एक अजनबीपन है, कफन के घीसू–माधव का भी एक अजनबीपन है और सवा सेर गेहॅ के शकर का भी अजनबीपन है। कितु वहॉ प्रेमचद ने इन पात्रो का बेगानापन ठोस सामाजिक सबंधो के बीच ही चित्रित किया है, अमूर्त्त शून्य सदर्भ मे नही। इसीलिए वहॉ वर्णन नपे–तुले, सधे–सधाये, स्वाभाविक और यथार्थवादी है। जिस मन·स्थिति को बताने मे ये नये कहानीकार पॉच पृष्ठ रगते हैं, प्रेमचद एक वाक्याश से या एक विशेषण से उसे स्पष्ट कर देते है। अजनबीपन की मन:स्थिति एक ठोस सामाजिक प्रक्रिया है पूँजीवादी समाज मे और उसे उन ठोस संदर्भों में ही सिद्ध किया जा सकता है। ('उत्त्तार्द्ध' प्रेमचद अंक, अप्रैल **1980** मे सुधीश पचौरी का लेख, पृ० **89**)।

सप्तम् अध्याय :

प्रेमचन्द के कथा साहित्य की आलोचना – प्रक्रिया का अध्ययन

प्रेमचद के कथा साहित्य की आलोचना – प्रक्रिया का अध्ययन

प्रेमचद हमारे आलोचको की सूझबूझ और क्षमता को परखने की कसौटी रहे हैं। एक हद तक शायद आज भी है। कोई आलोचक या सामान्य पाठक प्रेमचद को किस हद तक समझता है, यह बात इस तथ्य पर निर्भर करता है कि वह भारतीय समाज की बनावट और उसकी समस्याओ को किस हद तक समझता है। प्रेमचद का मूल्याकन और उनके महत्त्व की स्वीकृति इस बात पर निर्भर करती है कि प्रेमचद के आलोचक का नजरिया साहित्य और समाज के प्रति क्या है, कुल मिलाकर उसका विश्वदृष्टिकोण क्या है। प्रेमचद इसी अर्थ मे कसौटी रहे है और आज भी हैं। इस सदर्भ मे डॉ० रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है 'प्रेमचद के साहित्य की परख समालोचक की राजनीतिक सूझबूझ और उसके वेज्ञानिक दृष्टिकोण की परख है।'

प्रेमचद के कथा–साहित्य पर लिखी आलोचनाओ को मोटे तौर पर दो वर्गों मे बॉटा जा सकता है **(i)** प्रेमचद समर्थक आलोचना और **(ii)** प्रेमचद विरोधी आलोचना। इसी को यो भी विभाजित किया जा सकता है **(i)** मार्क्सवादी आलोचना और **(ii)** गैर मार्क्सवादी आलोचना। गैर मार्क्सवादी आलोचना का मूल स्वर प्रेमचद विरोधी है वही मार्क्सवादी आलोचना प्रेमचद साहित्य का पक्षधर है। ज्यादातर मार्क्सवादी आलोचक प्रेमचद के पक्ष मे लामबन्द है, एकाध शिवदान सिह चौहान जैसे अपवादो को छोडकर। इसी तरह साहित्य मे आशिक रूप से स्वीकृति पाई दलित आलोचना मे भी विरोध और समर्थन के दो खेमे देखे जा सकते है।

दलित आलोचना का बडा हिस्सा प्रेमचद का समर्थन करता है और उन्हे प्रासगिक और प्रामाणिक मानता है। दूसरा हिस्सा उन पर तरह तरह के आरोप लगाता है। इनके अनुसार प्रेमचद ने दलितो का मखौल उडाया है। वस्तुत दलित आलोचना का यह आरभिक दौर है, इसलिए उसमे आवेश और उफान ज्यादा है। क्रमश जब दलित आलोचना परिपक्व और प्रौढ होगी तब प्रेमचद विषयक आलोचना मे गभीरता आएगी और सतहीपन खत्म होगा। अभी दलित आलोचना की इस सुगबुगाहट मे किसी दलित आलोचक का नाम इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसका उल्लेख किया जाय।

गैर मार्क्सवादी आलोचना प्रेमचद के प्रति कितनी अनुदार रही है, इसका अदाजा डॉ० कमलकिशोर गोयनका के इस कथन से लगाया जा सकता है : 'यहॉ तक कि युग के सर्वाधिक प्रबुद्ध समीक्षक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'हिदी साहित्य का इतिहास' मे अनेक उपन्यासो की विस्तृत विवेचना के प्रति उपेक्षा भाव रखा, और अपने सक्षिप्त विवेचन मे 'युग' के कुछ अन्य आलोचको के स्वर मे स्वर मिलाते हुए उन्हे 'प्रचारवादी' घोषित कर दिया।' इस सदर्भ मे डॉ० समीक्षा ठाकुर का पर्यवेक्षण एकदम सही हे कि प्रेमचद साहित्य के प्रति जो उत्साह 'हिदी शब्द सागर' की भूमिका मे था वह आचार्य शुक्ल के 'इतिहास' के सशोधित सस्करण मे आकर खत्म हो गया। प्रेमचद के प्रति आचार्य शुक्ल मे मन मे प्रशसा का जो भाव आरम्भ मे था, उसमे क्रमश कमी आती गई और आलोचना का स्वर प्रखर होने लगा।

आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने प्रेमचद पर किये जाने वाले आक्षेपो को अप्रत्यक्ष समर्थन देते हुए आरोपो की जानकारी इस प्रकार दी है 'आपको स्त्री चरित्रो का चित्रण करने मे सफलता नही मिली, प्रचारक रूप प्रमुख है, ब्राह्मणदोही हैं, भाषा का बहुत साधारण ज्ञान हे।' स्वय आचार्य बाजपेयी के अनुसार 'हिदी का यह युग विचार की पूँजी मे दिवालिया हे और प्रेमचद भी इसके अपवाद नही है। उनके अनुसार प्रमचद के मानसिक सघटन के कल्पना को कोई स्थान प्राप्त नही है। बाजपेयी जी का निष्कर्ष है कि कथानक, चरित्र, विचारसूत्र और कला की निर्मिति मे प्रेमचद प्रथम श्रेणी के यूरोपीय उपन्यासकारो की ऊँचाई पर नही पहुँचते।

भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विद्वान डॉ० नगेन्द्र को प्रेमचद दूसरे दर्जे के रचनाकार लगते है। 'आस्था के चरण' मे सकलित एक लम्ब निबध मे उन्होने प्रेमचद पर कई तरह के आक्षेप लगाये है जो स्वय आलोचक और उसकी आलोचना के लिए ज्यादा मोजूँ है। श्री विश्वम्भर 'मानव' ने इसका सही जवाब दिया है कि प्रेमचद सभी दृष्टियो से एक प्रतिभाशाली कलाकार है। यदि डॉ० नगेन्द्र को उनके विचारो मे पोलापन दिखाई देता है तो इसे उनका दृष्टिदोष समझना चाहिए।

समकालीन और परवर्ती रचनाकारो का एक वर्ग भी गैरमार्क्सवादी आलोचको के सुर मे सुर मिलाता है। जैनेन्द्र ने समस्याओ के सरल समाधान का दोष देखा तो अज्ञेय का आरोप है कि उनके पात्र केवल एक परिपाटी के सॉचे मे ढली हुई छायाएँ मात्र हैं। यह भी कि उनका शिक्षित मध्यवर्गीय या उच्चवर्गीय पात्रों का चित्रण सतही और अविश्वसनीय है।

इलाचद्र जोशी भी विरोधियो की कतार मे शामिल हैं। धर्मवीर भारती ने प्रेमचद्र पर 'शार्ट कट अपनाने' का आरोप लगाया जिससे साहित्य मे सतहीपन आया। निर्मल वर्मा का तो यह मानना है कि प्रेमचद के पास उपन्यास का सही ढॉचा ही नही था। परवर्ती रचनाकारो मे फणीश्वर नाथ 'रेणु', नागार्जुन, मार्कण्डेय, राजेन्द्र यादव और दूधनाथ सिह प्रेमचद की विरासत के दावेदार रहे है। उनकी कोशिश प्रेमचद – साहित्य के सही सदर्भ को उजागर करने की रही है।

गैरमार्क्सवादी आलोचको मे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का स्वर सयत और सतुलित है। उनकी आलोचना का विशिष्ट क्षेत्र मध्यकाल हं। आधुनिक काल और उसके साहित्य मे उनका मन रमा नही है। कुछ रवीन्द्र नाथ ठाकुर की मानवतावादी दृष्टि के प्रभाव से और कुछ दूसरी परम्परा के प्रतिष्ठापक आलोचक होने के कारण प्रेमचद के विवेचन मे उन्होने उदारता बरती है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा दूसरे महत्त्वपूर्ण गैर मार्क्सवादी आलोचक है जिनकी आलोचना का स्वर प्रेमचद के समर्थन मे फूटा है। इन्होने प्रेमचद के महत्व को उजागर करने के साथ उनकी भाषा पर भी महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है। डॉ० इन्द्रनाथ मदान का समाजशास्त्रीय विवेचन पूर्वाग्रहमुक्त हे और उसमे एक तरह का नयापन है। प्रगतिवादी आलोचक हसराज रहबर उत्साह के अतिरेक मे प्रेमचद्र को पुनरुत्थानवादी सिद्ध करने लगते है। वैसे वे प्रेमचद के जीवन के माध्यम से उनके साहित्य तक पहॅुचने की कोशिश करते है। हिदी मे काव्यभाषा को केन्द्र मे रखकर चलने वाले एकमात्र आलोचक डॉ० रामस्वरूप चर्तुवेदी की प्रेमचद की भाषा पर की गई टिप्पणी महत्वपूर्ण है। प्रेमचद अपनी रचना प्रक्रिया मे भाषा का सपूर्णत दोहन कर लेते हैं, फलत आलोचक के लिए ऐसी भाषा छवियॉ और सकेत शेष नही बचते जिनके सहारे वह उस रचना मे आगे अर्थ का सर्वद्धन कर सके। यहॉ आकर प्रेमचद आलोचक के लिए मुश्किल बनते है और यह स्थिति अपने मे विडम्बनापूर्ण है कि अनुभव बहुलता के जिस विशिष्ट गुण के लिए पाठक के रूप मे आभारी था, वही अनुभव बहुलता आलोचक के रूप मे उसके सामने एक सीमा बनाती है। डॉ० चतुर्वेदी के अनुसार, प्रेमचद मन को छूते हैं और झकझोरते भी हैं। हिदी क्षेत्र का व्यक्ति, परिवार और समाज उनकी कथाकृतियो मे पुनर्सृजित हुआ है। गैरमार्क्सवादी आलोचको के प्रेमचद विरोध की चरम परिणति डॉ० गिरिजा राय के उस कथन में दिखती है जहॉ उन्होने प्रेमचद को उर्दू का कथाकार घोषित किया है जैसे मीर और गालिब महान रचनाकार होते हुए उर्दू के हैं, उसी तरह प्रेमचंद महान कथाकार हैं

लेकिन उनका स्थान हिन्दी परम्परा मे नही, उर्दू परम्परा के बीच है।' ('साहित्य का नया शास्त्र) मे 'उर्दू परम्परा और प्रेमचद' पृ० 49।

हिदी साहित्य की जातीय और जनवादी परम्परा के मार्क्सवादी पुरोधा डॉ० रामविलास शर्मा के मूलकन की पहली कडी प्रेमचद है। इस आलोचनात्मक मूल्याकन से उनका वैचारिक सघर्ष शुरु हो जाता है। इसमे कोई शक नही कि प्रेमचद उनके लिए एक लेखक से अधिक एक प्रतिमान बन गये है। इस सदर्भ मे उनकी कुछ स्थापनाएँ अतिरजनापूर्ण और एकागी हो गई है। टालस्टॉय, दोस्तोएवस्की, गोर्की और शरत्चद्र इन सबको, प्रेमचद को स्थापित करने के अतिरेकपूर्ण उत्साह मे नीचा दिखाया है। उनके अनुसार गोर्की मे अवारापन था, टालस्टॉय पर ईसाई प्रभाव था, दोस्तोएवस्की हत्यारो, विक्षिप्तो और मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियो का कथाकार है। शरत्चद्र इसलिए घटिया लेखक है क्योकि उन्होने बगाल के भद्रलोक और घरेलू समस्याओ को केन्द्र बनाया है। उनकी मूल समस्या प्रेम के आकर्षण–विकर्षण की है। यह सही है कि इस प्रकार की अतिरेकपूर्ण और विवादास्पद् स्थापनाओ के पीछे शिवदानसिह चौहान जैसे आलोचको की 'प्रेमचद और गोर्की तुलनात्मक अध्ययन की समस्या' जैसे प्रेमचद के अवमूल्यन के कुत्सित प्रयासो की प्रतिक्रिया है। पर इससे डॉ० शर्मा के उत्साहपूर्ण प्रयास को सही नही ठहराया जा सकता।

इसमे कोई शक नही कि प्रेमचद अपने युग के साथ थे और अपने युग की उथल–पुथल को अपनी रचनाओ मे सशक्त ढग से चित्रित किया है। प्रेमचद भारतीय समाज की बुनावट को बहुत गहराई तक देखने मे सक्षम थ। अपने कथा साहित्य मे बहुत सी सामाजिक कुरीतियो की जमकर आलोचना की है और उनकी जड भी उन्होने सामाजिक व्यवस्था मे खोज निकाली है। इसलिये उनकी सर्जना मात्र सुधारवादी न होकर क्रातिकारी ओर सामाजिक व्यवस्था की जड पर आघात करने वाली हैं। इसी से डॉ० रामविलास शर्मा प्रेमचद को एक क्रातिकारी और युग द्रष्टा रचनाकारी घोषित करते हैं जिनमे अपने युग के बहुत से राजनीतिक नेताओ से बहुत आगे देख सकने की क्षमता थी।

अपने युग के मनोरजन धर्मी उपन्यासो से अलग साहित्य की सामाजिक भूमिका को ...कर प्रेमचंद काफी सचेत हैं। प्रेमचद का यथार्थवादी दृष्टिकोण अपने युग के ...जिक–राजनीतिक जीवन पर तीव्र प्रकाश डालकर उसके घृणित पक्ष को प्रकट करता ...टिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय स्वाधीनता आदोलन मे जनजागरण पर

जनप्रतिरोध अकित करने वाले प्रेमचद निश्चित रूप से पहले भारतीय लेखक थे। इसी आधार पर रघुपतिसहाय 'फिराक' ने उन्हे रवीन्द्रनाथ और शरतचद्र की तुलना मे एक बडा लेखक माना। वास्तव मे राष्ट्रीय स्वाधीनता की लडाई मे जनता की प्रतिरोध – चेतना के अकन मे प्रेमचद बेजोड है। स्वाधीनता आदोलन मे काग्रेस की जनविरोधी और वर्गसहयोग पर आश्रित भूमिका प्रेमचद बहुत पहले पहचान लेते है। जॉन की जगह गोविन्द को गद्दी मिल जाने वाली आजादी की वास्तविकता उनसे छिपी नही थी। डॉ० शर्मा का यह कथन एकदम सटीक है कि हमारे बहुत से राष्ट्रीय नेताओ की तुलना मे प्रेमचद का रचना विवेक और सर्जनात्मक अर्न्तदृष्टि कही अधिक विकसित थी।

रामविलास शर्मा ने 'सेवासदन' को वेश्यावत्ति का उपन्यास न मानकर भारतीय नारी की पराधीनता की समस्या का उपन्यास माना है। इस तरह से डॉ० शर्मा ने प्रेमचद के कथा–साहित्य को समझने की मौलिक दृष्टि विकसित की। बॅधी–बॅधायी आलोचना से अलग हटकर नए निष्कर्ष बनाये और उसके आधार पर प्रेमचद की महत्त का उद्घोष किया। इस प्रकार के प्रयत्न मे कुछ गल्तियॉ हो सकती है, अतिरजनाएँ भी आ सकती है पर इससे रामविलास जी की आलोचना की मौलिकता पर ऑच नही आती। वस्तुत रामविलास शर्मा पहले आलोचक है जिन्होने बलपूर्वक और दृढता के साथ प्रेमचद के महत्त्व की घोषणा की।

डॉ० राम विलास शर्मा के बाद, प्रेमचद आलोचना मे दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम डॉ० नामवर सिह का है। यो नामवर सिह ने व्यवस्थित रूप मे प्रेमचद पर कुछ लिखा नही है पर उनके कुछ व्याख्यान केवल प्रेमचद पर केन्द्रित है और अत्यत महत्त्वपूर्ण है। मूल्याकन की दृष्टि से यह रामविलास शर्मा के आगे की कडी है। डॉ० नामवर सिह के अनुसार प्रेमचद ने सुदरता की परिभाषा ही बदल दी। वे जीवन–सग्राम मे सौन्दर्य का दर्शन करते है। प्रेमचद की सारी रचनाएँ सोद्देश्य है और जीवन की बेहतरी के लिए सघर्ष करती है। उनके सादगी के सौन्दर्यशास्त्र का आधार भी जीवन है। प्रेमचद का महत्त्व सामतविरोधी चेतना के सदर्भ मे उभरता है। प्रेमचद को साथ हिदी उपन्यास सहसा वयस्क होता है। डॉ० नामवर सिह का प्रेमचद विषयक विवेचन प्रेमचद के बारे मे नई स्थापनाएँ करता है जो मौलिक और विचारोत्तेजक है।

डॉ० रामविलास शर्मा और डॉ० नामवर सिंह जैसे धुरधर मार्क्सवादी आलोचकों के बाद मार्क्सवादी आलोचना की दूसरी कतार के आलोचको मे डॉ० शिवकुमार मिश्र, डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, डॉ० कुॅवरपाल सिह, डॉ० नन्दकिशोर नवल और डॉ० मैनेजर पाडेय के

नाम प्रमुख है। शिवकुमार मिश्र और डॉ० नवल की प्रेमचद पर एक–एक पुस्तक प्रकाशित है। कुँवरपाल सिह और मैनेजर पाडेय ने प्रेमचद से सबधित कई लेख लिखे हैं। रमेश कुन्तल मेघ ने प्रसगवशात प्रेमचद–साहित्य की चर्चा आधुनिकता के धरातल पर की है जिसमे पर्याप्त मौलिकता है। शिवकुमार मिश्र ने डॉ० रामविलास शर्मा की मान्यताओ का भाष्य किया है। उसमे किसी तरह का नयापन नही है और मौलिकता का अभाव है। इनकी आलोचना अखबारीपन लिए हुए और मार्क्सवादी कट्टरता से भरी हुई है।

परिशिष्ट :

(क) प्रेमचंद का कथा साहित्य

(ख) अन्य रचनाएँ

(ग) प्रेमचंद पर लिखित विभिन्न
शोध ग्रथ सूची

(घ) प्रेमचंद विषयक आलोचनात्मक
ग्रंथो की सूची

(ड) अन्य सहायक ग्रंथों की सूची

(च) विभिन्न पत्र – पत्रिकाएँ

परिशिष्ट

(क) प्रेमचंद का कथा साहित्य

प्रेमचन्द के प्रकाशित कहानियो की सूची कालक्रमानुसार

कहानी सग्रह का नाम		प्रकाशन काल
(1)	सप्त सरोज	1917 ई०
(2)	नवनिधि	1918 ई०
(3)	प्रेम–पूर्णिमा	1920 ई०
(4)	प्रेम–पचीसी	1923 ई०
(5)	प्रेम–प्रसून	1924 ई०
(6)	प्रेम–प्रमोद	1926 ई०
(7)	प्रेम–प्रतिभा	1926 ई०
(8)	प्रेम–द्वादशी	1926 ई०
(9)	अग्नि समाधि	1929 ई०
(10)	प्रेम–तीर्थ	1929 ई०
(11)	प्रेम–चतुर्थी	1929 ई०
(12)	पॉच–फूल	1929 ई०
(13)	प्रेम–प्रतिज्ञा	1929 ई०
(14)	समर–यात्रा	1930 ई०
(15)	सप्त – सुमन	1930 ई०
(16)	प्रेम पचमी	1930 ई०
(17)	प्रेरणा	1932 ई०
(18)	नव जीवन	1935 ई०
(19)	पच–प्रसून	1934 ई०
(20)	प्रेम–सरोवर	
(21)	प्रेम–कुज	
(22)	प्रेम–गगा	

(23) प्रेम–लोक

(24) मानसरोवर भाग 1 (सत्ताइस कहानियाँ) 1936 ई०

(25) मानसरोवर भाग 2 (छब्बीस कहानियाँ)

(26) मानसरोवर भाग 3 (बत्तीस कहानियाँ)

(27) मानसरोवर भाग 4 (बीस कहानियाँ)

(28) मानसरोवर भाग 5 (चौबीस कहानियाँ)

(29) मानसरोवर भाग 6 (बीस कहानियाँ)

(30) मानसरोवर भाग 7 (तेइस कहानियाँ)

(31) मानसरोवर भाग 8 (छब्बीस कहानियाँ)

प्रेमचद के उपन्यासो का काल –निर्देश

(1)	असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान–रहस्य	8 अक्टूबर 1903 से 1 फरवरी 1905 तक बनारस के उर्दू साप्ताहिक 'आवाज ए खलक' मे क्रमश प्रकाशित
(2)	हमखुर्मा व हमसवाब	1906 मे प्रकाशित
(3)	प्रेमा	'हम खुर्मा व हम सवाब' का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशन 1907 मे इडियन प्रेस से
(4)	किशना	1907 मे बनारस मेडिकल हाल प्रेस से प्रकाशित
(5)	रूठी रानी	अप्रैल 1907 से अगस्त 1907 तक 'जमाना' मे क्रमश प्रकाशित
(6)	जलवए ईसार	1912 मे इडियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित
(7)	सेवासदन (बाजारे हुस्न)	1919 मे प्रकाशन। लिखा पहले उर्दू मे गया, परन्तु प्रकाशन हिन्दी मे पहले हुआ।
(8)	प्रेमाश्रम (गोशए आफियत)	1921 मे प्रकाशन। लेखन पहले उर्दू मे हुआ परन्तु छपा पहले हिन्दी मे।
(9)	वरदान	'जलवए ईसार' का हिन्दी रूपान्तर। प्रकाशन 1921 में ग्रंथ भडार, बम्बई मे।

(10)	रगभूमि (चौगाने हस्ती)	**1925** मे प्रकाशन। लेखन पहले उर्दू मे हुआ परन्तु छपाई पहले हिन्दी मे।
(11)	कायाकल्प (पर्दए मजाज)	**1926** मे प्रकाशन। मूल पाडुलिपि हिन्दी मे
(12)	अहकार	**1926** मे सरस्वती प्रेस से प्रकाशित। अनातोल फ्रास के 'शायस' का रूपान्तर
(13)	निर्मला	नवम्बर **1925** से नवम्बर **1926** तक 'चॉद' मे क्रमश प्रकाशित
(14)	प्रतिज्ञा	जनवरी **1927** से नवम्बर **1927** तक 'चॉद' मे क्रमश प्रकाशित
(15)	गबन	**1931** मे सरस्वती प्रेस से प्रकाशित
(16)	कर्मभूमि (मैदाने अमल)	**1932** अगस्त मे प्रकाशन
(17)	गोदान	**1936** जून मे प्रकाशन
(18)	मगलसूत्र	**1948** मे प्रकाशन (लेखक का अपूर्ण उपन्यास)

(ख) अन्य रचनाएँ

प्रेमचद के नाटक

(1)	सग्राम	पहला हिन्दी नाटक – जनवरी **1923** मे प्रकाशित हिन्दी पुस्तक एजेन्सी से
(2)	कर्बला	सन् **1924** मे गगा पुस्तक माला से प्रकाशित
(3)	प्रेम की वेदी	सन् **1933** मे सरस्वती प्रेस से प्रकाशित

अनुवाद

(1)		अनातोले फ्रास कृत 'थाइस' का हिन्दी अनुवाद। सन् **1923** मे हिन्दी पुस्तक भवन, हरिसन रोड, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित

(2)	सुखदास	जार्ज इलियट कृत SILAS MARINES का हिन्दी अनुवाद 1923 मे
(3)	आजाद कथा	रतननाथ सरशार के वृहद् ग्रन्थ का सक्षिप्त सस्करण गगा पुस्तकमाला से 1926 मे प्रकाशित
(4)	न्याय	'गॉल्सवर्दा के जस्टिस' का अनुवाद एकेडमी, इलाहाबाद से प्रकाशित
(5)	चॉदी की डिबिया	जॉन गॉल्सवर्दी के SILVER BOX का अनुवाद। प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडमी सन् 1931 मे
(6)	हडताल	जॉन गॉल्सवर्दी के STRIFE नामक तीन अको के नाटक का हिन्दी अनुवाद, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद से प्रकाशित
(7)	पिता का पत्र पुत्री के नाम	जवाहरलाल नेहरु की प्रसिद्ध पुस्तक 'लेटर्स फ्राम ए फादर टू हिज डाउटर' का हिन्दी अनुवाद
(8)	शबेतार	माटरलिक के 'साइटलेस' का हिन्दी अनुवाद। पहले 1917 मे जमाना मे प्रकाशित। फिर हस प्रकाशन से पुस्तक के रूप मे प्रकाशित।
(9)	सृष्टि का आरम्भ	जार्ज बर्नाड शॉ कृत METHUSELAH का सक्षिप्त सस्करण निधन के बाद प्रकाशित हिन्दी में।
		आस्कर वाइल्ड के 'घोस्ट आफ केन्टरविल्लेस' का अनुवाद – अप्रकाशित

बालोपयोगी पुस्तके

(1)	महात्मा शेखसादी	1918 मे प्रकाशित

(2) मनमोदक 1924 मे प्रकाशित

(3) जगल की कहानियॉ

(4) कुत्ते की कहानी

(5) रामचर्चा 1929 मे प्रकाशित

(ग) प्रेमचंद पर लिखित विभिन्न शोध ग्रथ सूची

(1)	उपन्यासकार प्रेमचद उनकी कला, सामाजिक विचार और जीवन दर्शन	शकरनाथ शुक्ल, 1952, आ० वि० वि०
(2)	प्रेमचद का नारी–चित्रण और उसे प्रभावित करने वाले स्रोत	गीतालाल, 1961, प० वि० वि०
(3)	प्रेमचद और रमणलाल, बसतलाल देसाई के उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन	गगा प्रसाद पाठक, 1960, आगरा विद्यापीठ
(4)	प्रेमचद के कथा साहित्य मे शहरी जीवन	यज्ञदत्त शर्मा 1961, इ० वि० वि०
(5)	प्रेमचद के उपन्यासो और लघु कहानियो का समीक्षात्मक अध्ययन	श्रीमती शीला गुप्ता 1962, ई०वि०वि०
(6)	प्रेमचद की कहानियो के आधार पर तद्युगीन सामाजिक जीवन का अध्ययन	इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, 1966, प० वि० वि०
(7)	प्रेमचद की रचनाओ मे व्यक्ति और समाज	रक्षापुरी, 1966, इ० वि० वि०
(8)	प्रेमचद और प्रसाद के कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	जगदीश चन्द्र शर्मा 'इदु', 1963, आ० वि० वि०
(9)	प्रेमचंद के उपन्यासो मे समसामायिक परिस्थितियो का प्रतिफलन	सरोज प्रसाद, 1966, बि० वि० वि०
(10)	प्रेमचद के उपन्यास–साहित्य मे	सत्येन्द्र वर्मा, 1966, इ० वि० वि०

सामाजिक समस्याएँ

(11)	खाडेकर और प्रेमचद के नारी–पात्रो का तुलनात्मक अध्ययन	शोभना खतारकर, 1966, पूना वि० वि०
(12)	प्रेमचद के समस्यामूलक उपन्यास	महेन्द्र भटनागर, 1957, नाग० वि० वि०
(13)	प्रेमचद और शरत्चन्द्र के उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन	सुरेन्द्रनाथ तिवारी, 1962, ल० वि० वि०
(14)	प्रेमचद तथा उनके समवर्ती कथा–साहित्य मे लोक–सस्कृति	प्रभा शर्मा, 1966, ल० वि० वि०
(15)	प्रेमचद के उपन्यासो मे मध्यवर्ग	डॉ० श्यामकुमार घोष, 1967
(16)	प्रेमचद के व्यक्तित्व और जीवन–दर्शन के विधायक तत्व	कृष्ण चद्र पाण्डेय, 1967, ई० वि० वि०
(17)	प्रेमचद और हरिनारायण आप्टे के उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन	प्रमिला गुप्ता, 1967, दिल्ली वि० वि०
(18)	प्रेमचद और शमाजी के उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन	मुहम्मद अब्दुल करीम, 1978, केरल वि० वि०
(19)	कहानीकार प्रेमचद तथा पन्नालाल पटेल का तुलनात्मक अध्ययन	रामबाबू सारस्वत, 1967, आगरा विद्यापीठ
(20)	शैली विज्ञान की दृष्टि से प्रेमचद की भाषा का अध्ययन	सुरेश कुमार, 1968, आ० वि० वि०
(21)	प्रेमचद के उपन्यासो के मानवीय सबध	बच्चन पाठक, 1969, प० वि० वि०
(22)	प्रेमचद के उपन्यासो की सास्कृतिक पृष्ठभूमि	प्रकाश बलशम, 1970, बि० वि० वि०
(23)	प्रेमचद औन नानक सिह के उपन्यासो का तुलनात्मक अध्ययन	निर्मल चावला, 1970, ल० वि० वि०
(24)	प्रेमचद की शब्दावली का सास्कृतिक अध्ययन	मनमोहन पाडेय, 1970, जबलपुर वि० वि०
(25)	प्रेमचद और प्रसाद के नारी पात्र	सतोष जाक, 1970, कश्मीर वि० वि०
(26)	प्रेमचद साहित्य का समाजशास्त्रीय	निर्मला वर्मा, 1971, इ० वि० वि०

अध्ययन

(27) प्रेमचद साहित्य मे भारतीय ग्राम और उनकी समस्याएँ — इभा गुप्ता, 1971, इ० वि० वि०

(28) प्रेमचद के नारी पात्र — भरत सिह, 1971, आ० वि० वि०

(29) समाजशास्त्रीय सिद्धान्तो के परिप्रेक्ष्य मे प्रेमचद साहित्य का मूल्याकन — सतीश कुमार दूबे, 1971, इन्दौर वि० वि०

(30) प्रेमचद और नानक सिह के उपन्यास — तिलकराज बठेरा, 1971, दिल्ली वि० वि०

(31) प्रेमचद की परिवार निष्ठा और उसकी रचना प्रक्रिया पर प्रभाव — रामसिह, 1972, इ० वि० वि०

(32) प्रेमचद के कथा साहित्य मे अतर्द्वन्द — ऊषा खत्री, 1972 आ० वि० वि०

(33) प्रेमचद की कहानियो का शैली तात्विक अध्ययन — राधा किशन, 1972, राजस्थान वि० वि०

(34) प्रेमचद के उपन्यासो का शिल्प–विधान — कमल किशोर गोयनका, 1972

(35) प्रेमचद के उपन्यासो मे जीवन और कला — इन्दुमती सिह मल्ल, 1973, का० हि० वि० वि०

(36) प्रेमचद साहित्य मे कारकीय प्रयोग — वेदप्रकाश वशिष्ठ, 1973, मेरठ वि० वि०

(37) प्रेमचद और गोपीचद एक तुलनात्मक अध्ययन — सत्यनारायण, 1974, आन्ध्र वि० वि०

(38) प्रेमचद तथा उनकी उर्दू कहानियाँ एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन — मुहम्मद आजम, 1974, शिवाजी वि० वि०

(39) प्रेमचद साहित्य मे सूक्तियाँ एक विवेचनात्मक अध्ययन — मजू भटनागर, 1974, रा० वि० वि०

(40) प्रेमचद और ताराशकर की उपन्यास – कला का तुलनात्मक अध्ययन — कमलनाथ, 1974, विक्रम विश्वविद्यालय

(41) प्रेमचद और शरत् के नारी–पात्रो का तुलनात्मक अध्ययन — कमलादेवी गुप्ता, 1974, का० हि० वि० वि०

(42) युगचेतना के सदर्भों मे प्रेमचद — शिवकुमार यादव, 1974, का० हि० वि० वि०

(43) प्रेमचद साहित्य में शिशु– मनोविज्ञान — श्रीमती सुसन्ना चन्ने, 1978, इ० वि० वि०

(44)	प्रेमचद और प्रसाद के कथा साहित्य मे नारी	रमा मेहरोला, 1974, ल० वि० वि०
(45)	प्रेमचद और शरत्चन्द्र के उपन्यासो मे अभिव्यक्त समाज और जीवन–दर्शन	मोनिका चटर्जी, 1975, ल० वि० वि०
(46)	प्रेमचद के कथा–सहित्य मे ग्राम्य जीवन	काति सिह, 1975, का० हि० वि० वि०
(47)	हिन्दी कहानी और प्रेमचद	रोचना सुमन, 1975, बि० वि० वि०
(48)	प्रेमचद के उपन्यासो मे युग–जीवन	श्रीकात पाडेय, 1974, सागर वि० वि०
(49)	प्रेमचद तथा शरत्चन्द्र के कथा – साहित्य नारी पात्रो का तुलनात्मक अध्ययन	प्रभारानी डे, 1976, पजाब वि० वि०
(50)	प्रेमचद के उपन्यासो मे सामाजिक समस्याएँ	सुभद्रा एन० पटेल, 1976,दक्षिण गुजरात वि० वि०
(51)	प्रेमचद और शरत्चन्द के उपन्यासो के नारी–पात्रो का तुलनात्मक अध्ययन	शशि भल्ला, 1976, भोपाल वि० वि०
(52)	प्रेमचद के उपन्यासो मे जीवन–दर्शन	ब्रजवासी लाल शर्मा, 1976, आ० वि० वि०
(53)	प्रेमचद के कथा साहित्य मे सामाजिक जीवन	श्रीमती मजूरानी जायसवाल, 1976, का०हि० वि० वि०
(54)	प्रेमचद का समाज दर्शन	श्री कृष्ण पाण्डेय, 1976, श० वि० वि०
(55)	प्रेमचद के उपन्यासो मे मध्यवर्ग का चित्रण	जे० हेमवती रम्भा, 1977-78, सागर वि० वि०
(56)	प्रेमचद के कथा–साहित्य मे धर्म निरपेक्षता की भावना	राधा अग्रवाल, 1977, दि० वि० वि०
(57)	प्रेमचद की कहानी शिल्प और हिन्दी कहानी	शुभागी देवी, 1978, श० वि० वि०
(58)	प्रेमचद की कहानियो की शिल्प–विधि	गौतम देव सचदेव, 1979, दिल्ली वि० वि०
(59)	प्रेमचद की कृतियो का अध्ययन	रामेश्वर प्रसाद गुरु, 1957, नागपुर वि० वि०

(घ) प्रेमचद विषयक आलोचनात्मक ग्रथो की सूची

(1)	प्रेमचद की उपन्यास कला	जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', 1933, प्रकाशन वाणी मदिर, छपरा
(2)	प्रेमचद आलोचनात्मक परिचय	रामविलास शर्मा, 1941, प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस
(3)	प्रेमचद और ग्राम समस्या	प्रेमनरायण टडन, 1942
(4)	प्रेमचद कृतियाँ और कला	प्रेमनरायण टडन, 1942
(5)	प्रेमचद जीवन, कला और कृतित्व	हसराज रहबट, 1951, प्रकाशन आत्मराम एड सस, दिल्ली
(6)	प्रेमचद ओर उनका युग	रामविलास शर्मा, 1952, नेशनल प्रिटिग वर्क्स, 10, दरियागज, दिल्ली
(7)	प्रेमचद साहित्यिक विवेचन	नन्द दुलारे बाजपेयी, 1952, मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली
(8)	प्रेमचद	त्रिलोकी नारायण दीक्षित, 1952
(9)	कथाकार प्रेमचद	जितेन्द्रनाथ पाठक, 1955
(10)	प्रेमचद	रामरतन भटनागर, 1948
(11)	प्रेमचद और गोर्की	शचीरानी गुर्टू, 1955, प्रकाशन राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
(12)	प्रेमचद घर मे	शिवरानी देवी, 1956, प्रकाशन आत्माराम एड सस, दिल्ली
(13)	गोदान अध्ययन की समस्याएँ	गोपाल राय, 1958
(14)	प्रेमचद – स्मृति	अमृतराय, 1959, हस प्रकाशन इलाहाबाद
(15)	हिन्दी कहानी की शिल्प विधि का विकास	लक्ष्मी नारायण लाल, प्रकाशन साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद, 1960
(16)	कथाकार प्रेमचंद · व्यक्तित्व और साहित्यकार	मन्मथनाथ गुप्त, 1961, प्रकाशन सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
(17)	प्रेमचद और गाधीवाद	रामदीन गुप्त, 1961, हिन्दी साहित्य ससार,

दिल्ली

(18) प्रेमचद – एक अध्ययन — राजेश्वर गुरु, मध्य प्रदेशीय प्र० समिति, भोपाल, प्र० स० 1961

(19) प्रेमचद कलम का सिपाही — अमृतराय, 1961, प्रकाशन – हस प्रकाशन इलाहाबाद

(20) कलम का मजदूर प्रेमचद — मदन गोपाल, राजकमल प्र०, दिल्ली, स० 1965

(21) प्रेमचद के साहित्य सिद्धान्त — नरेन्द्र कोहली, 1966

(22) प्रेमचद चिन्तन व कला — इन्द्रनाथ मदान, प्रकाशन सरस्वती प्रेस, बनारस

(23) प्रेमचद एक विवेचन — रामकमल प्रकाशन, दिल्ली

(24) प्रेमचद एक कृति वयक्तित्व — जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली प्र० स० 1967

(25) प्रेमचद आज के सदर्भ मे — गगा प्रसाद विमल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1968 ई०

(26) हिन्दी उपन्यास विशेषत प्रेमचद — नलिन विलोचन शर्मा, प्रकाशन ज्ञानपीठ प्रकाशन प्रा० लि० पटना प्र० स० 1968

(27) उपन्यास सम्राट प्रेमचद — शिव नारायण श्रीवास्तव 1969 ई०

(28) गोदान मूल्याकन और मूल्याकन — इन्द्रनाथ मदान 1971 ई० प्रकाशन – नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद प्र० स० 1971

(29) प्रेमचद और उनका साहित्य — शीला गुप्त, 1972 साहित्य भवन (प्रा०) लिमिटेड इलाहाबाद

(30) प्रेमचद के उपन्यासो का शिल्प विधान — कमल किशोर गोयनका, 1974, सरस्वती प्रेस, नयी दिल्ली

(31) प्रेमचद अध्ययन की दिशाएँ — कमल किशोर गोयनका, 1978, प्रकाशन : साहित्य निधि, सी. 38 ईस्ट कृष्णनगर दिल्ली

(32) प्रेमचद उर्दू हिन्दी कथाकार — जाकर रजा, 1983

(33) प्रेमचद की उपन्यास यात्रा — डा० शैलेश जैदी, 1978 में प्रकाशित, प्रकाशन

	नवमूल्याकन	यूनिवर्सिटी पब्लिशिग हाउस, कोठी नायाब सरसैयद रोड, सिविल लाईन्स, अलीगढ
(34)	प्रेमचद विरासत का सवाल	1992 डॉ० शिव कुमार मिश्र, प्रकाशन : अरुणोदय प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली
(35)	दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचद	सदानद शाही, 2000 ई०
(36)	प्रेमचद के उपन्यास साहित्य मे सास्कृतिक चेतना	नित्यानद पटेल, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली
(37)	प्रेमचद की विरासत	राजेन्द्र यादव

(ङ) अन्य सहायक ग्रथों की सूची

(1)	आज का हिदी उपन्यास	डॉ० इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्र० दिल्ली, प्र० स० 1966
(2)	निबन्ध और निबन्ध	इन्द्रनाथ मदान, बसल एण्ड कम्पनी, दिल्ली, प्र० स० 1966
(3)	प्रेमचद प्रतिभा	इन्द्रनाथ मदान, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, प्र० स० 1967
(4)	प्रेमचद और शतरज के खिलाडी	डॉ० लोठार लुत्से तथा डॉ० कमल किशोर गोयनका, पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागज, नयी दिल्ली
(5)	मुशी प्रेमचद ऑफ लमही विलेज	राबर्ट ओ० स्वान
(6)	प्रेमचद का 'गोदान' और चार्ल्स डिकेन्स की भारतीय प्रतिध्वनियॉ	सार्गफ्रिड ए० शुक्ल, कैथोलिक युनिवर्सिटी ऑफ अमेरिका, वाशिगटन
(7)	प्रिस्पेविक के स्टूदियु हिदस्के होवेसानिचके ही रोमानु (ग्राम्य जीवन सम्बन्धी हिन्दी उपन्यासो का अध्ययन)	डॉ० ओदोलेन स्मैकेल
(8)	पत्रकार प्रेमचद और हस	डॉ० रत्नाकर पांडेय

(9) प्रेमचद के निबध साहित्य मे सामाजिक चेतना — अर्जना जैन

(10) प्रेमचद सपादक — विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, प्रकाशन सस्थान, शाहदरा, दिल्ली

(11) प्रेमचद और जनवादी साहित्य की परपरा — स० डॉ० कुँवर पाल सिह तथा सव्यसाची, भाषा प्रकाशन, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली

(12) 'गोदान' गवेषण — स० प्रो० कपिल देव सिह एव अन्य, हरिश्चन्द्र सभा, बी० एन० कालेज, भारती भवन, पटना

(13) प्रेमचद के नारी पात्र — ओम अवस्थी, नेशलन पब्लिशिग हाउस, दिल्ली

(14) प्रेमचद के पात्र — कोमल केशरी तथा विजयदान देबा, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली

(15) हिन्दी उपन्यास एक अर्न्तयात्रा — रामदरश मिश्र, रामकमल मिश्र, राजकमल प्रकाश, नयी दिल्ली

(16) प्रेमचद सचित्र जीवन—परिचय — अमृतराय, हस प्रकाशन, इलाहाबाद

(17) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास — हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली

(18) प्रेमचद परिचिर्चा — स० कल्याणमल लोढा, रामनाथ तिवारी

(19) राधा कष्ण मूल्याकन माला प्रेमचद — सम्पदक सत्येन्द्र, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नयी दिल्ली

(20) हिन्दी उपन्यासो मे नारी — डॉ० शैल रस्तोगी, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद

(21) हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद — डॉ० त्रिभुवन सिह

(22) प्रेमचद विविध आयाम — दिनेश प्रसाद सिह

(23) हिन्दी कहानी की विकास प्रक्रिया — आनद प्रकाश

(24) गोदान का महत्व — स० डॉ० सत्य प्रकाश मिश्र

(25) प्रेमचद के उपन्यासो मे समकालीनता — रजनीकान्त जैन, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद

(26) प्रेमचद की उपन्यास कला — डॉ० पारसनाथ तिवारी

(27) प्रेमचद की कहानियों का महत्व — सम्पादक मार्कण्डेय डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र

(28)	हिन्दी उपन्यास का विकास	मधुरेश, सुमित प्रकाशन, अलोपीबाग, इलाहाबाद
(29)	प्रेमचद का चितन अपनी जमीन	राममूर्ति त्रिपाठी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
(30)	साहित्य का नया शास्त्र	डॉ० गिरिजाराय, शालिनी प्रकाशन, इलाहाबाद
(31)	कामायनी की आलोचना प्रक्रिया	गिरिजा राय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
(32)	आधुनिक कथा – साहित और मनोविज्ञान	देवराज उपाध्याय, एस चॉद एण्ड कम्पनी, दिल्ली
(33)	कथा के तत्व	देवराज उपाध्याय, ग्रन्थ माला, कार्यालय, पटना
(34)	जैनेन्द्र के उपन्यासो का अध्ययन	देवराज उपाध्याय, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली
(35)	प्रेमचद और उनकी साहित्य साधना	पद्मसिंह शर्मा कमलेश, अत्तरचद कपूर एण्ड सस, दिल्ली
(36)	हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	एस० एन० गणेशन, राजपाल एण्ड सस, दिल्ली
(37)	उपन्यासकार प्रेमचद	स० सुरेशचन्द्र गुप्त, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
(38)	गोदान – अध्ययन की समस्याएँ	डॉ० गोपालराय, ग्रन्थ निकेतन, पटना
(39)	साहित्यिक शब्दावली	प्रेमनारायण टडन, हिन्दी सा० भडार, लखनऊ
(40)	हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन	चडी प्रसाद जोशी, अनुसधान प्रकाशन, कानपुर
(41)	आस्था के चरण	डॉ० नगेन्द्र
(42)	आज का हिदी उपन्यास	इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
(43)	निबन्ध और निबन्ध	इन्द्रनाथ मदान, बसल एण्ड कम्पनी, दिल्ली
(44)	प्रेमचद प्रतिभा	इन्द्रनाथ मदान, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
(45)	कहानी का रचना विधान	जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
(46)	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
(47)	हिन्दी उपन्यास–उद्भव और विकास	शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मदिर,

वाराणसी

(48)	उपन्यास सम्राट प्रेमचद	शिवनारायण श्रीवास्तव, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली
(49)	हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास	सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली
(50)	आधुनिक हिदी साहित्य का इतिहास	लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिदी परिषद प्रकाशन, इलाहाबाद विश्व वि०
(51)	हिन्दी साहित्य और सवेदना का इतिहास	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
(52)	भाषा और सवेदना	डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी

(च) विभिन्न पत्र – पत्रिकाएँ

(1)	उत्तरार्द्ध	अप्रैल 1980, स० सव्यसाची 2164, इम्पीयर, मथुरा
(2)	सारिका	वर्ष 20 अक 265, स० कन्हैयालाल नदन, 10 दरियागज, दिल्ली
(3)	दस्तावेज	7/8 स० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, बेतिया हाता, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश
(4)	आजकल जुलाई 1980	द्रोणवीर कोहली, पटियाला, हाउस
(5)	आलोचना	स० नामवर सिह, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली
(6)	साक्षात्कार	स० प्रभाकर क्षेत्रीय, मध्य प्रदेश, साहित्य परिषद, ई० 135/1 रवीन्द्र मार्ग, प्रोफेसर कॉलोनी, भोपाल
(7)	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	स० मनोहर श्याम जोशी, हिन्दुस्तान टाइम्स, नयी दिल्ली, जुलाई, 80
(8)	धर्मयुग	स० धर्मवीर भारती, टाइम्स ऑफ इंडिया, बम्बई

(9)	कलम	कलकत्ता
(10)	उत्तरगाथा	स० सव्यसाची
(11)	हिंदी अनुशीलन	
(12)	हिंदुस्तानी	